वाराणसेयसंस्कृतग्रन्थमालायाः

अष्टमं पुष्पम्

अध्यात्म रामायण

हिन्दी टीका एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित

टीकाकारः

डा० चन्द्रमा पाण्डेयः

व्याख्याता, ज्योतिष विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी

प्रकाशक :

वाराणसेय संस्कृत संस्थान

जगतगंज, वाराणसी

प्रकाशक :
वाराणसेय संस्कृत संस्थान
सी. २७/६४ जगतगंज, वाराणसी

प्रथमसंस्करणम्

सं० २०४१

मूल्यम्- 350-00

मुद्रक :
आनन्द प्रिंटिंग प्रेस
२७/१७० ए, जगतगंज
वाराणसी–२२१००२
दूरभाष : ४४७६२
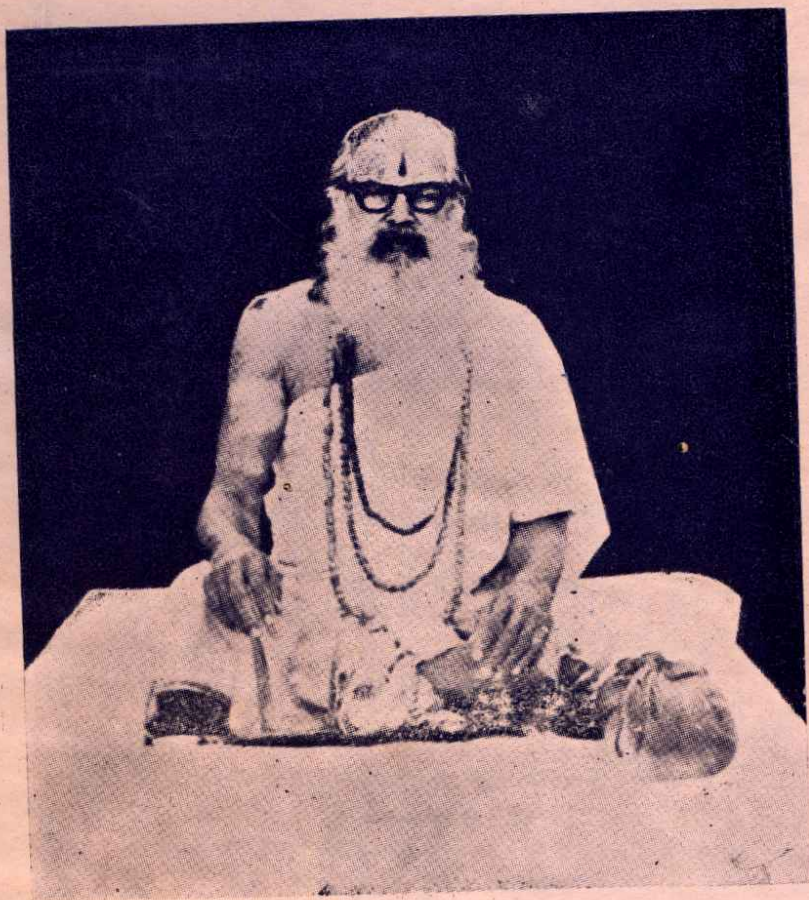
श्री श्री १००८ श्रीमद्वेद्मार्गप्रतिष्ठापन्नाचार्योभयवेदान्तप्रवर्त्तकाचार्यसत्सम्प्रदायाचार्यपादीय
विहारप्रान्तीय रोहतासमण्डलान्तर्गत घरवासडीह श्रीमन्त्ररत्नप्रतिवादिभयंकर-
मठाधीश्वर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ परमार्थशिरोमणि अनन्तश्रीविभूषित
सन्तसम्राट् श्रीमज्जगद्गुरु श्रीस्वामी रामानुजाचार्यजी महाराज
की पीयूषवर्षिणी कृपादृष्टि से हम सतत् पल्लवित एवं
पुष्पित होते रहे हैं, इन गुरुवर के कर-कमलों
में यह पुष्प सादर समर्पित है।

पादारविन्दाभिलाषी
डॉ० चन्द्रमा पाण्डेय

प्राक्कथन

निर्गुण निराकार परमब्रह्म परमात्मा सगुण साकार रूप धारण कर भक्तों के लिये धराधाम पर अवतरित होता है। सगुण-साकार होता हुआ भी परमात्मा माया के गुणधर्मों से लिप्त नहीं होता और अचिन्त्य, अव्यक्त, निर्गुण, गुणात्मा, समस्तजगदाधार, परंब्रह्म परमात्मा अपनी अहैतुकी कृपा से अपने भक्तों के लिये धराधाम पर अवतार ग्रहण करता है। "एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेम" भगवान् की इस इच्छा शक्ति के द्वारा अखिल प्रपञ्च की उत्पत्ति होती है और उनकी इच्छा से पुनः सम्पूर्ण सृष्टि उन्हीं में लीन हो जाती है। सृष्टि की पुन इच्छा होने पर जीवों के पूर्वजन्मार्जित गुण-कर्मों के अनुसार सृष्टि परिवर्तित होती है। परमब्रह्म परमात्मा का अंशभूत जीव का अपनी पूर्ण राशि को प्राप्त होना ही परमलक्ष्य है। किन्तु माया के गुण-धर्मों से लिप्त जीव पूर्णत्व को प्राप्त नहीं करता और आवागमन के चक्र में फँसा रहता है।

तात्पर्य यह है कि सृष्टि का लय होने पर भी जीव के साथ संलग्न माया के गुण धर्मों का नाश न होने से पूर्व सृष्टि के गुण-धर्मों के साथ द्वितीय सृष्टि में भी आत्मा विभिन्न योनियों में भ्रमित होता रहता है। जब तक आत्मा के साथ संलग्न कर्मों का क्षय नहीं हो जाता, तब तक जीव आवागमन के बन्धन में पड़ा ही रहता है। आत्मा परमात्मा का ही अंशभूत है किन्तु माया के आश्रय से स्वस्वरूप का बोध नहीं कर पाता और किसी भी कार्य का कर्त्ता न होते हुए भी अपने को कर्त्ता तथा भोक्ता न होता हुआ भी भोक्ता मानता है। फलस्वरूप जबतक कर्तृत्व-भोक्तृत्व का आत्मा को भान होता है, तबतक कृत कर्मों का फल भोगने के लिये विविध योनियों में भ्रमित होना सुतरां सिद्ध है।

कर्म देहान्तर की प्राप्ति के लिये ही स्वीकार किये गये हैं, क्योंकि कर्म करने वालों से इष्ट-अनिष्ट दोनों प्रकार के कर्म होते हैं। उनसे धर्म और अधर्म दोनों की ही प्राप्ति होती है और उनके कारण शरीर की प्राप्ति होती है, जिससे पुनः कर्म होते हैं। इसी प्रकार यह संसार चक्र के समान चलता रहता है। इस संसार का मूल कारण अज्ञान ही है। शास्त्रीय विधिवाक्यों से अज्ञान नाश का उपाय बतलाया गया है। अज्ञान नाश में ज्ञान ही समर्थ है, सकाम कर्म नहीं। क्योंकि अज्ञान से उत्पन्न होने वाला कर्म उसका विरोधी नहीं हो सकता। सकाम कर्म द्वारा अज्ञान का नाश अथवा राग का क्षय नहीं हो सकता, बल्कि उससे दूसरे सदोष कर्म की उत्पत्ति होती है, उससे पुनः संसार की प्राप्ति होती है। अतएव बुद्धिमान को ज्ञान विचार में तत्पर होना चाहिये। कहा भी गया है—

क्रिया शरीरोद्भवहेतुरादृता प्रियाप्रियौ तौ भवतः सुरागिणौ।
धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकं पुनः क्रियाचक्रवदीर्यते भवः॥
अज्ञानमेवास्य हि मूलकारणं तद्धानमेवात्रविधौ विधीयते।
विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी न कर्म तज्जं सविरोधमीरितम्॥
नाज्ञानहानिर्न च रागसंक्षयो भवेत्ततः कर्म सदोषमुद्भवेत्।
ततः पुनः संसृतिरप्यवारिता तस्माद्बुधो ज्ञानविचारवान्भवेत्॥

सर्व प्रथम मन की शुद्धि के लिये शास्त्रविहित वर्णाश्रमधर्मों का विधिवत् पालन करे। चित्त शुद्ध हो जाने पर उन कर्मों को छोड़कर शम-दमादि साधन सम्पन्न हो आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये सद्गुरु के शरण में जाना चाहिये। देह और इन्द्रियों के साथ अहं का सम्बन्ध जब तक रहता है, तब-तक आत्मा और अनात्मा के विवेक से रहित जीव का सुख दुःखादि भोगरूप संसार से सम्बन्ध रहता है। यह संसार

आत्मा में मिथ्या ही आरोपित हुआ है तथापि ज्ञानोदय के बिना यह अपने आप निवृत्त नहीं होता। जिस प्रकार विषयों का निरन्तर ध्यान करने वाले पुरुष को स्वप्न में अनेक पदार्थ दीखते हैं परन्तु वास्तविक में वे मिथ्या ही होते हैं। अनादि अविद्या और उसके कार्य अहङ्कार के सम्बन्ध से स्थित हुआ यह संसार निरर्थक (अत्यन्त मिथ्या) होते हुए भी राग द्वेष से पूर्ण है। मन ही संसार एवं मन ही बन्धन है। कहा भी गया है—"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"। इस अनात्म वस्तु मन के साथ अन्योन्याध्यास से एक हो जाने से यह आत्मा तद्गत सुख दुःखादि के बन्धन में पड़ता है। स्फटिक मणि शुक्ल होने पर भी लाख आदि के समीप होने से स्फटिक मणि उन्हीं के रंग की प्रतीत होने लगती है, परन्तु वास्तव में वह रंग नहीं होता, उसी प्रकार बुद्धि और इन्द्रिय आदि की सन्निधि से आत्मा को वलात् संसार की प्रतीति होती है। आत्मा अपने लिङ्ग (पहचान के साधन) मन को स्वीकार कर उसे प्राप्त होने वाले विषयों का सेवन करता हुआ उसके राग-द्वेष आदि गुणों में बँधकर विवश हो संसार चक्र में फँसा रहता है। पहले वह राग-द्वेषादि मन के गुणों की रचना करता है, पुनः उसके योग से विविध कर्म करता है। वे शुक्ल कर्म (जप-ध्यानादि) लोहित (हिंसामय यज्ञ-यागादि) और कृष्ण (मद्यपानादि पापकर्म) तीन प्रकार के होते हैं। उन कर्मों के अनुसार जीव की तीन गतियाँ होतीं हैं। इस प्रकार यह जीव कर्मों के वशीभूत होकर प्रलय पर्यन्त आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है।

वाली का निधन होने के अनन्तर वाली के शव के समीप स्थित हो तारा विलाप करती है। विशेष विह्वल देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तारा से कहते हैं कि "विचार कर बतलाओ कि वास्तविक तुम्हारा पति यह वाली का शरीर है या इसमें रहने वाला जीव? यदि तुम्हारा पति यह देह है, तो यह पञ्चभूतात्मक जड शरीर त्वचा, मांस, रुधिर और अस्थियों से बना हुआ है तथा काल-कर्म और गुणों से उत्पन्न है, वह अब भी तुम्हारे सामने पड़ा है। अत-एव इसके लिये शोक क्यों करती हो? यदि तू जीव को अपना पति मानती हो तो तुझे शोक नहीं करना चाहिये क्योंकि वह निर्विकार है। वह न उत्पन्न होता है, न मरता है, न स्थिर रहता है और न आता जाता है। जीव सर्वव्यापी और अव्यय है। वह स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक कुछ भी नहीं है, बल्कि एक, अद्वितीय आकाश के समान निर्लेप, नित्य, ज्ञानमय और शुद्ध है, वह शोचनीय कैसे हो सकता है? इस प्रकार तारा को गूढ ज्ञान का उपदेश देने पर तारा का सम्पूर्ण संशय दूर हो गया और वह जीवन्मुक्त हो गयी।

जीव का जिस समय विशेष पुण्य का उदय होता है उस समय उसे भगवद्भक्त आर शान्तचित्त महात्माओं की संगति मिलती है, उस समय इसका चित्त भगवान् की ओर लगता है। तदनन्तर जीव को कथा सुनने की श्रद्धा होती है। भगवान् की कथा सुनने से अनायास ही जीव को भगवत्स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। उस समय गुरुकृपा से तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के अर्थज्ञान से तथा स्वयं अपने अनुभव से ही यह अपने सच्चिदानन्द स्वरूप अद्वितीय आत्मा को देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और अहङ्कार आदि से पृथक जानकर क्षणमात्र में ही मुक्त हो जाता है। भगवान् की कथा के वक्ता लोक गुरु साक्षात् परंब्रह्म शंकर जी हैं और श्रोता जगज्जननी पराम्बा आद्या शक्ति माँ पार्वती जी हैं। लोकगुरु भूतभावन शङ्करजी द्वारा कथित भगवान् की कथा अध्यात्म रामायण के नाम से लोक विश्रुत है। अध्यात्मरामायण के अध्ययन मात्र से ही प्राणियों की शुभगति हो जायेगी। भगवान् की कथा से ब्रह्महत्यादि अविरल पापों का सर्वात्मना नाश हो जाता है। कलियुग का प्रभाव और यमदूत का भय भगवद्भक्तों पर कदापि नहीं रहता। कहा भी गया है—

तावत्कलिमहोत्साहो निःशङ्कं सम्प्रवर्तते । यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥
तावद्यमभटाः शूराः सञ्चरिष्यन्ति निर्भयाः । यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥

लोक पितामह ब्रह्माजी का कथन है कि भगवान् की कथा का सम्पूर्ण महत्त्व अनादिदेव श्रीशङ्करजी ही जानते हैं, उसका आधा जगदम्बा पार्वतीजी और उसका आधा मैं जानता हूँ। हे नारद ! प्रयत्नपूर्वक खोजने पर भी उस तरह का पाप मैं नहीं देख पाता जो भगवान् की कथा श्रवण से नष्ट न हो सके। श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदि सैकड़ों शास्त्रों के विधिवत् अनुष्ठान से उत्पन्न पुण्यफल श्रीअध्यात्मरामायण की एक तुच्छ कला के भी समान नहीं हैं। श्रीशङ्कररूप पर्वत से निकली हुई श्रीरामरूप समुद्र में मिलनेवाली अध्यात्मरामायण रूपिणी यह गङ्गा त्रिलोकी को पवित्र करती है।

भगवान् के अनन्यभक्त मुक्ति को भी तुच्छ समझते हैं और जब कभी आनन्दघनसच्चिदानन्द साकेत विहारी के दिव्य स्वरूप का आलोक पाते हैं तब भगवान् द्वारा वरदान देने पर भक्ति एवं उनके भक्तों की सत्सङ्गति का ही वरदान माँगते हैं। मुक्ति जैसे दुर्लभ गति को भी तुच्छ समझने वाले भक्तों का ही भगवान् अनुगमन करते हैं। निर्गुण निराकार की उपासना अथवा मुक्ति की वरीयता देनेवाले भक्तों के लिये भगवान् को अवतार ग्रहण करने की आवश्यकता ही क्या है ? दुष्टों का विनाश अथवा धर्म संस्थापन के लिये भी अवतार ग्रहण करने की भगवान् को कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि उनके भृकुटि विलास मात्र से सृष्टि एवं प्रलय होते रहते हैं उनको तुच्छ कार्यों के लिये अवतार ग्रहण की क्या आवश्यकता ? अखिल ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण कर्म उनके संकल्प मात्र से ही सिद्ध होना सुतरां सिद्ध हैं; परन्तु भगवान् अपने भक्तों के बीच बिना आये, अपना दिव्य स्वरूप का बिना दर्शन दिये, ठुमक-ठुमक कर पायँ में पायजनियाँ बाँधकर किलकित मुख से दौड़ते और अपने भक्तों को अपने पीछे दौड़ाते, थिरक-थिरक कर अपने भक्तों को नाँच दिखाये बिना भगवान् एवं उनके भक्तों को चैन कहाँ। यह परमानन्द आत्मानुभव एवं आत्मचिन्तन करने वाले को कहाँ ? धन्य हैं राजा-दशरथ एवं महारानी कौसल्या जिनकी गोद में अखिल ब्रह्माण्ड नायक खेलते रहे हैं। धन्य हैं वे भक्त जिनको भगवान् का दिव्य सगुण-स्वरूप का दर्शन हुआ है। धन्य हैं वे भक्त जो गुणातीत मायापति को पुत्र, भाई, दामाद, पति, पिता, स्वामी आदि विविध रूपों में अपरोक्षानुभूति करते हैं। इन्हीं भक्तों के बीच की जगन्नियन्ता भगवान् की लीला प्राणियों को चतुर्विध मुक्ति प्रदायिनी होती है।

विशेष ध्येय यह है कि किसी भी युग अथवा किसी भी काल में भगवान का भक्त अपने प्रभु का निश्चय ही दर्शन कर सकता है। सृष्टि तत्व पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने अनन्य भक्तों के लिये भगवान् दुर्लभ नहीं हैं और भगवान् का भक्त जब भी भगवान् के स्वरूप का दर्शन करना चाहता है तत्क्षण भगवान् दर्शन देते हैं। सूर, तुलसी, मीरा आदि अनेक भक्त उदाहरण स्वरूप हमारे सामने विद्यमान हैं। सृष्टि में आकाश तत्त्व के द्वारा वायु की उत्पत्ति, वायु से अग्नि तत्त्व और अग्नि से जल तत्त्व तथा जल से पृथ्वी तत्त्व की उत्पत्ति सर्व विदित है। पञ्च महाभूतों में प्रत्येक महाभूतों के अंश विद्यमान् रहते हैं। तेज, जल एवं पार्थिव तत्त्वों को हम देख सकते हैं। आकाश तत्त्व का ही परिवर्त्तित रूप इन तत्त्वों का है। तात्पर्य यह है कि अव्यक्त तत्त्व व्यक्तरूप में एवं व्यक्त तत्त्व अव्यक्त रूप में हो सकते हैं। देवताओं का स्वरूप पार्थिव नहीं होता, अत-एव हम उनका पार्थिव दृष्टि से दर्शन नहीं कर पाते। यदि परमब्रह्म परमात्मा की इच्छा हो कि हम अपने भक्तों को पार्थिव रूप में दर्शन दें तो तत्क्षण ही अव्यक्त तत्त्व रूप अपने को पार्थिव व्यक्त रूप में परिवर्तित कर अपने भक्तों को दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं। यह तब

सम्भव है जब भगवान् का भक्त अनन्य योग से भगवान् का चिन्तन करे। 'कीट-भ्रमर' न्याय अनन्य चिन्तन का ही उदाहरण है। इसी प्रकार भगवान् का अनन्य भक्त निश्चय ही भगवान् को तत्क्षण प्राप्त करता है। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" यह गीता में भगवान् की उक्ति प्रसिद्ध ही है। वास्तव में बड़े व्यक्ति कहते कम और करते अधिक हैं। इसी लिये भगवान् की यह उक्ति "तांस्तथैव भजाम्यहम्" उनके कार्य व्यवहार से न्यून ही है। वास्तव में भगवान् का भक्त जिस अनुपात में भगवान् का भजन सेवन अथवा चिन्तन करता है उससे कोटि गुणा वल्कि अनन्त गुणा अधिक भगवान् अपने भक्तों का अनुगमन करते हैं। तभी तो थोड़ा सा वस्त्र भगवान् को देने वाली द्रौपदी के लिये भगवान् वस्त्रों का अम्बार लगा दिये, जिससे हजारों हाथियों के बल वाला दुःशासन थक गया और भगवान् के अनन्य भक्त से पार न पा सका; अपने भक्तों के लिये भगवान् वस्त्रावतार तक धारण किये। राजा दशरथ एवं महारानी कौसल्या के चरित्र पर ही ध्यान दें, अनन्य गतिक होकर भगवान् का ध्यान और उनकी तपस्या करने पर स्वयं को भगवान् उनका पुत्र बना दिये। इस प्रकार करुणामय प्रभु के भजन-कीर्त्तन से मुक्ति ही प्राप्त हो जाय तो कौन बड़ी बात है ?

वास्तव में भक्त और भगवान् के बीच की परम ब्रह्म की लीला ही अध्यात्म रामायण के नाम से विख्यात है। इसमें कुल सात काण्ड हैं। सभी काण्डों के विषय यथा-स्थल वर्णित हैं।

भगवान् की लीला पुरुषार्थ चतुष्टय दायिनी है। जो व्यक्ति अध्यात्म रामायण के एक श्लोक अथवा आधे श्लोक का भी पाठ करता है वह तत्क्षण पापों से मुक्त हो जाता है। अध्यात्म रामायण के पुस्तक को लिखने मात्र से जो पुण्य प्राप्त होता है वह विधिवत् वेदों का अध्ययन और विविध शास्त्रों की व्याख्या करने से भी प्राप्त नहीं हो सकता। कहा भी गया है—

अध्यात्मरामायणतः श्लोकं श्लोकार्धमेव वा। यः पठेद्भक्तिसंयुक्तः स पापान्मुच्यते क्षणात्॥
लिखित्वा पुस्तकेऽध्यात्मरामायणमशेषतः। यो दद्याद्रामभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु॥
अधीतेषु च वेदेषु शास्त्रेषु व्याकृतेषु च। यत्फलं दुर्लभं लोके तत्फलं तस्य सम्भवेत्॥

इन्हीं उद्देश्यों और जगन्नियन्ता प्रभु एवं जगज्जननी माँ परम्बा की कृपा प्राप्ति के लिये अध्यात्म रामायण की टीका करने की मेरी प्रवृत्ति हुई, फलतः इस कार्य में मैं संलग्न हुआ। वाराणसेय संस्कृत संस्थान काशी के संस्थापक पं० जगत नारायण पाण्डेय जी के हम आभारी हैं जो प्रभु की भक्ति से भाव विह्वल हो इस पुस्तक को अपने द्रव्य व्यय से प्रकाशित कराने में तत्पर हुए। श्री विद्या प्रेस के संचालन श्रीवसन्तू रामजी एवं इनके तनय श्रीबलरामजी भी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं, जो दत्त चित्त हो इस पुस्तक को छपवाने की व्यवस्था किये। वास्तविक रूप में किसी भी रूप में इसमें सहयोग करने वाले सभी भगवान् के अनन्य भक्त एवं पूर्वजन्म के योगि रहे हैं और शुचिनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते" के आधार पर पुनः धराधाम पर जन्म लिये हैं। इस जन्म में भगवान् के चरणारविन्द में भक्ति होने से निःसन्देह भगवान् की सब पर कृपा है। त्रुटि होना मानव धर्म है। अत-एव जहाँ कहीं भी त्रुटि हो उसे विज्ञजन क्षमा करेंगे।

विदुषामनुचरः
चन्द्रमा पाण्डेयः

विषयानुक्रमणिका

———

॥ ॐ परब्रह्मणे नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अध्यात्मरामायण

माहात्म्य

अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः ॥

अप्रमेयत्रयातीतनिर्मलज्ञानमूर्तये । मनोगिरां विदूराय दक्षिणामूर्तयेनमः ॥ १ ॥

सूत उवाच

कदाचिन्नारदो योगी परानुग्रहवाञ्छया । पर्यटन्सकलाँल्लोकान् सत्यलोकमुपागमत् ॥ २ ॥
तत्र दृष्ट्वा मूर्तिमद्भिश्छन्दोभिः परिवेष्टितम् । बालार्कप्रभया सम्यग्भासयन्तं सभागृहम् ॥ ३ ॥
मार्कण्डेयादिमुनिभिः स्तूयमानं मुहुर्मुहुः । सर्वार्थगोचरज्ञानं सरस्वत्या समन्वितम् ॥ ४ ॥
चतुर्मुखं जगन्नाथं भक्ताभीष्टफलप्रदम् । प्रणम्य दण्डवद्भक्त्या तुष्टाव मुनिपुङ्गवः ॥ ५ ॥
सन्तुष्टस्तं मुनिं प्राह स्वयम्भूर्वैष्णवोत्तमम् । किं प्रष्टुकामस्त्वमसि तद्वदिष्यामि ते मुने ॥ ६ ॥

श्री गणेणायनमः । अप्रमेय, त्रिगुणातीत, निर्मलज्ञानस्वरूप, मन और वाणी के अविषय दक्षिणामूर्त्ति भगवान (सदाशिव) को नमस्कार है ॥ १ ॥ सूतजी बोले—किसी समय नारद जी परानुग्रह की इच्छा से सम्पूर्ण लोकों में विचरण करते हुए सत्यलोक में पहुँचे ॥ २ ॥ वहाँ मूर्त्तिमान् वेदों के द्वारा परिवेष्टित बालसूर्य की प्रभा के समान कान्ति से सभागृह को प्रकाशित करते हुए, मार्कण्डेय आदि मुनियों द्वारा बार-बार स्तुति किये जाते हुए, सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञाता, सरस्वती से युक्त, भक्तों को अभिलषित फल देने वाले जगत् को उत्पन्न करने वाले ब्रह्माजी को देखकर भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम कर नारद जी ने स्तुति की ॥३-५॥ ब्रह्माजी प्रसन्न होकर वैष्णवों में श्रेष्ठ नारदजी से बोले—"मुने ! तुम क्या प्रश्न करना चाहते हो ? मैं तुम्हें सब कुछ कहूँगा ॥ ६ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजी का वचन सुनकर नारद जी ब्रह्माजी से बोले—हे देवों में श्रेष्ठ !

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुनिर्ब्रह्माणमब्रवीत् । त्वत्तः श्रुतं मया सर्वं पूर्वमेव शुभाशुभम् ॥ ७ ॥
इदानीमेकमेवास्ति श्रोतव्यं सुरसत्तम । तद्रहस्यमपि ब्रूहि यदि तेऽनुग्रहो मयि ॥ ८ ॥
प्राप्ते कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिताः । दुराचाररताः सर्वे सत्यवार्तापराङ्मुखाः ॥ ९ ॥
परापवादनिरताः परद्रव्याभिलाषिणः । परस्त्रीसक्तमनसः परहिंसापरायणाः ॥१०॥
देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिकाः पशुबुद्धयः । मातृपितृकृतद्वेषाः स्त्रीदेवाः कामकिङ्कराः ॥११॥
विप्रा लोभग्रहग्रस्ता वेदविक्रयजीविनः । धनार्जनार्थमभ्यस्तविद्या मदविमोहिताः ॥१२॥
त्यक्तस्वजातिकर्माणः प्रायशः परवञ्चकाः । क्षत्रियाश्च तथा वैश्याः स्वधर्मत्यागशीलिनः ॥१३॥
तद्वच्छूद्राश्च ये केचिद्ब्राह्मणाचारतत्पराः । स्त्रियश्च प्रायशो भ्रष्टा भर्त्रवज्ञाननिर्भयाः ॥१४॥
श्वशुरद्रोहकारिण्यो भविष्यन्ति न संशयः । एतेषां नष्टबुद्धीनां परलोकः कथं भवेत् ॥१५॥
इति चिन्ताकुलं चित्तं जायते मम सन्ततम् ।
लघूपायेन येनैषां परलोकगतिर्भवेत् । तमुपायमुपाख्याहि सर्वं वेत्ति यतो भवान् ॥१६॥
इत्यृषेर्वाक्यमाकर्ण्य प्रत्युवाचाम्बुजासनः । साधु पृष्टं त्वया साधो वक्ष्ये तच्छृणु सादरम् ॥१७॥
पुरा त्रिपुरहन्तारं पार्वती भक्तवत्सला । श्रीरामतत्त्वं जिज्ञासुः पप्रच्छ विनयान्विता ॥१८॥

मैं आपके द्वारा पहले ही शुभाशुभ कर्मों को सुन चुका हूँ। इस समय मुझे एकही बात सुननी है। यदि आपकी मुझ पर कृपा है तो इसका रहस्य मुझे बतलाइये ॥ ७-८ ॥ अब घोर कलियुग आने पर मनुष्य पुण्य से रहित, दुराचार में प्रवृत्त और सत्यभाषण से विमुख अर्थात् मिथ्यावादी होंगे ॥ ९ ॥ दूसरों की निन्दा करने में तल्लीन, दूसरों के धन के अपहरण करने की अभिलाषा रखने वाले तथा परस्त्री में मन रखने वाले और दूसरों की हिंसा करने में तत्पर होंगे ॥ १० ॥ शरीर में हीं आत्मदृष्टि रखने वाले, मूढ़, नास्तिक, पशुबुद्धि अर्थात् आहार-विहार में हीं तत्पर, माता-पिता से द्वेष करने वाले, स्त्री भक्त और कामदेव के भृत्य (सेवक) होंगे ॥ ११ ॥ ब्राह्मण लोभ रूपी ग्रह से ग्रसित होकर शास्त्रों को बेचकर जीविका चलाने वाले, धन के लिये विद्याभ्यास करने वाले, मद से विमोहित तथा अपने जाति-कर्म को छोड़ने वाले और दूसरों का वञ्चन करने वाले होंगे। क्षत्रिय और वैश्य भी अपने जाति-धर्म को छोड़ने वाले होंगे ॥ १२-१३ ॥

इसी प्रकार शूद्र भी ब्राह्मणों के आचार में तत्पर होंगे और स्त्रियाँ प्रायः भ्रष्टाचारिणी और पति का अपमान करने में निर्भय रहेंगी ॥ १४ ॥ निः सन्देह अपने सास-श्वसुर से द्रोह करने वाली होंगी। इन नष्ट-बुद्धि वालों का परलोक किस प्रकार होगा ॥ १५ ॥ इस प्रकार की चिन्ता से मेरा मन निरन्तर व्याकुल हो रहा है। जिससे स्वल्प उपाय से इन पापप्राणियों की परलोक गति हो, उस उपाय को आप बतलाइये, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं। इस प्रकार नारद ऋषि की वाणी सुनकर कमलासन ब्रह्माजी बोले ॥ १६-१७ ॥ हे साधो ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न की है, अतः सादर पूर्वक सुनो। पूर्वकाल में भक्तवत्सला पार्वती त्रिपुरारि श्रीशिवजी से श्रीरामतत्त्व को जानने की इच्छा से विनयपूर्वक पूछी। अपनी प्रिया के पूछने पर

प्रियायै गिरिशस्तस्यै गूढं व्याख्यातवान् स्वयम् । पुराणोत्तममध्यात्मरामायणमिति स्मृतम् ।१९।
तत्पार्वती जगद्धात्री पूजयित्वा दिवानिशम् । आलोचयन्ती स्वानन्दमग्ना तिष्ठति साम्प्रतम् ।२०।
प्रचरिष्यति तल्लोके प्राण्यदृष्टवशाद्यदा । तस्याध्ययनमात्रेण जना यास्यन्ति सद्गतिम् ॥२१॥
तावद्विजृम्भते पापं ब्रह्महत्यापुरःसरम् । यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥२२॥
तावत्कलिमहोत्साहो निःशङ्कं सम्प्रवर्तते । यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥२३॥
तावद्यमभटाः शूराः सञ्चरिष्यन्ति निर्भयाः । यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥२४॥
। तावत्सर्वाणि शास्त्राणि विवदन्ते परस्परम् ॥२५॥
तावत्स्वरूपं रामस्य दुर्बोधं महतामपि । यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥२६॥
अध्यात्मरामायणसङ्कीर्तनश्रवणादिजम् । फलं वक्तुं न शक्नोमि कार्त्स्न्येन मुनिसत्तम ॥२७॥
तथापि तस्य महात्म्यं वक्ष्ये किञ्चित्तवानघ । शृणु चित्तं समाधाय शिवेनोक्तं पुरा मम ॥२८॥
अध्यात्मरामायणतः श्लोकं श्लोकार्धमेव वा । यः पठेद्भक्तिसंयुक्तः स पापान्मुच्यते क्षणात् ॥२९॥
यस्तु प्रत्यहमध्यात्मरामायणमनन्यधीः । यथाशक्ति वदेद्भक्त्या स जीवन्मुक्त उच्यते ॥३०॥

गिरिश श्रीशंकर जी स्वयं गूढ रामतत्त्व का व्याख्यान किये ॥ १८-१९ ॥ श्रीशंकरजी द्वारा वर्णित गूढ रामतत्त्व पुराणों में उत्तम अध्यात्मरामायण इस नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस अध्यात्मरामायण को जगद्धात्री पार्वती जो पूजन कर अहर्निश मनन करती आत्मानन्द में आज भी मग्न है । प्राणियों के अदृष्ट (भाग्य) वश जब संसार में अध्यात्मरामायण का प्रचार होगा ॥ २०-२१ ॥

उसके अध्ययन मात्र से प्राणी सद्गति प्राप्त करेंगे । तब तक ही ब्रह्म हत्यादि पाप गर्जना करते हैं, जब तक संसार में अध्यात्मरामायण का प्रादुर्भाव नहीं होता । तब तक ही कलियुग महान् उत्साह के साथ निःशङ्क प्रवृत्त होगा जब तक संसार में अध्यात्मरामायण का प्रादुर्भाव नहीं होता, तथा तब तक ही यम के दूत निर्भय विचरण करेंगे जब तक संसार में अध्यात्मरामायण का प्रादुर्भाव नहीं होता ॥ २२-२४ ॥ तब तक हीं संसार में शास्त्रों में परस्पर विवाद रहेगा, जब तक संसार में अध्यात्मरामायण का प्रादुर्भाव नहीं होता ॥ २५ ॥ तब तक ही श्रीरामजी का स्वरूप महान् व्यक्तियों को भी दुर्ज्ञेय है, जब तक संसार में अध्यात्मरामायण का प्रादुर्भाव नहीं होता ॥ २६ ॥

हे मुनि श्रेष्ठ ! अध्यात्मरामायण के संकीर्त्तन और श्रवण के फल को पूर्णतया मैं भी वर्णन नहीं कर सकता ॥ २७ ॥ परन्तु श्रवण, कीर्त्तन का माहात्म्य संक्षेप में कहता हूँ, सावधान होकर सुनो । इसे प्राचीनकाल में शिवजी ने मुझसे कहा था ॥ २८ ॥ अध्यात्मरामायण का एक श्लोक अथवा श्लोकार्ध जो भक्ति-पूर्वक पढ़ता है, वह शीघ्र ही पापों से मुक्त हो जाता है ॥ २९ ॥ जो भक्तिपूर्वक अनन्यभाव से यथा-शक्ति अध्यात्मरामायण का पाठ करता है वह जीवनमुक्त कहा जाता है ॥ ३० ॥ हे मुनि । जो सावधानी

यो भक्त्यार्चयतेऽध्यात्मरामायणमतन्द्रितः। दिने दिनेऽश्वमेधस्य फलं तस्य भवेन्मुने ॥३१॥
यदृच्छयापि योऽध्यात्मरामायणमनादरात्। अन्यतःश्रृणुयान्मर्त्यः सोऽपिमुच्येतपातकात्॥३२॥
नमस्करोति योऽध्यात्मरामायणमदूरतः। सर्वदेवार्चनफलं स प्राप्नोति न संशयः॥३३॥
लिखित्वा पुस्तकेऽध्यात्मरामायणमशेषतः। यो दद्याद्रामभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफलं श्रृणु ॥३४॥
अधीतेषु च वेदेषु शास्त्रेषु व्याकृतेषु च। यत्फलं दुर्लभं लोके तत्फलं तस्य सम्भवेत् ॥३५॥
एकादशीदिनेऽध्यात्मरामायणमुपोषितः। यो रामभक्तः सदसि व्याकरोति नरोत्तमः॥३६।
तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये श्रृणु वैष्णवसत्तम। प्रत्यक्षरं तु गायत्रीपुरश्चर्याफलं भवेत् ॥३७॥
उपवासव्रतं कृत्वा, श्रीरामनवमीदिने।
रात्रौ जागरितोऽध्यात्मरामायणमनन्यधीः। यः पठेच्छृणुयाद्वापि तस्य पुण्यं वदाम्यहम् ॥३८॥
कुरुक्षेत्रादिनिखिलपुण्यतीर्थेष्वनेकशः। आत्मतुल्यं धनं सूर्यग्रहणे सर्वतोमुखे ॥३९॥
विप्रेभ्यो व्यासतुल्येभ्यो दत्त्वा यत्फलमश्नुते। तत्फलं सम्भवेत्तस्य सत्यं सत्यं न संशयः॥४०॥
यो गायते मुदाध्यात्मरामायणमहर्निशम्। आज्ञां तस्य प्रतीक्षन्ते देवा इन्द्रपुरोगमाः॥४१॥
पठन्प्रत्यहमध्यात्मरामायणमनुव्रतः। यद्यत्करोति तत्कर्म ततः कोटिगुणं भवेत् ॥४२॥

से अध्यात्मरामायण का भक्ति पूर्वक पूजन करता है, उसे प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥ ३१॥ जो कोई अनादर पूर्वक भी किसी से अध्यात्मरामायण का श्रवण करता है, वह भी पातक से मुक्त होता है ॥ ३२ ॥ जो व्यक्ति समीप से अध्यात्मरामायण को नमस्कार करता है वह निःसन्देह सम्पूर्ण देवताओं के पूजन का फल प्राप्त करता है ॥ ३३ ॥ जो व्यक्ति सम्पूर्ण अध्यात्मरामायण को लिखकर राम-भक्त को देता है उसका फल सुनो ॥ ३४ ॥ संसार में वेद, शास्त्र, व्याकरणादि के अध्ययन करने पर जो फल दुर्लभ है वह फल अध्यात्मरामायण को लिखकर रामभक्त को देने वाले को होता है ॥ ३५ ॥ हे वैष्णवाग्रणो! एकादशी तिथि के दिन उपवास रहकर जो रामभक्त सभा में अध्यात्मरामायण का व्याख्यान करता है उसका फल सुनो ॥ ३६ ॥ एक-एक अक्षर पढ़ने में गायत्री पुरश्चरण का फल प्राप्त होता है। जो व्यक्ति श्रीरामनवमी के दिन उपवासव्रत करके रात्रि में जागरणकर अनन्य बुद्धि से अध्यात्मरामायण का पाठ करता अथवा श्रवण करता है उस फल को कहता हूँ ॥ ३७-३८ ॥

कुरुक्षेत्रादि सम्पूर्ण पुण्य तीर्थों में सर्वग्रस्त सूर्यग्रहण के समय अनेकों बार व्यासजी के समान ब्राह्मणों को अपने बराबर धन का दान करने से जो फल होता है, वही फल उस व्यक्ति को भी होता है, इसमें सन्देह नहीं है यह सर्वथा सत्य है ॥ ३९-४० ॥

जो व्यक्ति प्रसन्नता पूर्वक अहर्निश अध्यात्मरामायण का गान करता है उसकी आज्ञा के लिये इन्द्रादि देवगण प्रतीक्षा करते हैं ॥ ४१ ॥ तत्परतापूर्वक प्रतिदिन अध्यात्मरामायण का पाठ करता हुआ पुरुष जो-जो कार्य करता है उसके कर्मों का फल कोटिगुणित हो जाते हैं ॥ ४२ ॥ जो व्यक्ति अध्यात्मरामायण के

तत्र श्रीरामहृदयं यः पठेत्सुसमाहितः । स ब्रह्मघ्नोऽपि पूतात्मा त्रिभिरेव दिनैर्भवेत् ॥४३॥
श्रीरामहृदयं यस्तु हनूमत्प्रतिमान्तिके । त्रिःपठेत्प्रत्यहं मौनी स सर्वेप्सितभाग्भवेत् ॥४४॥
पठन् श्रीरामहृदयं तुलस्यश्वत्थयोर्यदि । प्रत्यक्षरं प्रकुर्वीत ब्रह्महत्यानिवर्तनम् ॥४५॥
श्रीरामगीतामाहात्म्यं कृत्स्नं जानाति शङ्करः । तदर्धं गिरिजा वेत्ति तदर्धं वेद्म्यहं मुने ॥४६॥
तत्ते किञ्चित्प्रवक्ष्यामि कृत्स्नं वक्तुं न शक्यते । यज्ज्ञात्वा तत्क्षणाल्लोकश्चित्तशुद्धिमवाप्नुयात् ।४७।
श्रीरामगीता यत्पापं न नाशयति नारद । तन्न नश्यति तीर्थादौ लोके क्वापि कदाचन ॥४८॥
रामेणोपनिषत्सिन्धुमुन्मथ्योत्पादितां मुदा । लक्ष्मणायार्पितां गीतासुधां पीत्वाऽमरो भवेत्॥४९॥
जमदग्निसुतः पूर्वं कार्तवीर्यवधेच्छया । धनुर्विद्यामभ्यसितुं महेशस्यान्तिके वसन् ॥५०॥
अधीयमानां पार्वत्या रामगीतां प्रयत्नतः । श्रुत्वा गृहीत्वाऽऽशु पठन्नारायणकलामगात् ॥५१॥
ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं यदि वाञ्छति । रामगीतां मासमात्रं पठित्वा मुच्यते नरः ॥५२॥
दुष्प्रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिसम्भवम् । पापं यत्तत्कीर्तनेन रामगीता विनाशयेत् ॥५३॥
शालग्रामशिलाग्रे च तुलस्यश्वत्थसन्निधौ । यतीनां पुरतस्तद्वद्रामगीतां पठेत्तु यः ॥५४॥

अन्तर्गत श्रीरामहृदय का पाठ करता है, वह ब्रह्महत्यारा भी हो तो तीन दिनों में पवित्र (पूतात्मा) हो जाता है ॥ ४३ ॥ जो पुरुष हनुमानजी की प्रतिमा के समीप मौन होकर तीन बार श्रीरामहृदय का पाठ करता है वह सम्पूर्ण अभिलषित फल प्राप्त करता है ॥ ४४ ॥ जो पुरुष श्रीतुलसी और पीपल के वृक्ष के समीप श्रीरामहृदय का पाठ करे, वह प्रत्यक्षर पर ब्रह्महत्या (तुल्य पापों) को दूर करता है ॥ ४५ ॥

हे मुने ! श्रीरामगीता के सम्पूर्ण माहात्म्य को श्रीशंकरजी जानते हैं, उसका आधा पार्वती जी और उसका आधा मैं जानता हूँ ॥ ४६ ॥ सम्पूर्ण कहा भी नहीं जा सकता, इसलिये किञ्चित् वर्णन करूँगा, जिसको जानने मात्र से शीघ्र ही चित्त विशुद्ध हो जाता है ॥ ४७ ॥ हे नारद ! जिस पाप को श्रीरामगीता नाश नहीं कर सकती, वह पाप तीर्थादिकों में संसार में कभी भी नष्ट नहीं हो सकते ॥ ४८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी ने उपनिषद् रूपी समुद्र का मन्थन कर श्रीरामगीता रूपी अमृत को निकालकर लक्ष्मण जी को दिया। इस रामगीता रूपी अमृत का पान कर व्यक्ति अमर हो जाता है ॥ ४९ ॥ प्राचीनकाल में जमदग्नि सुत श्रीपरशुरामजी कार्त्तवीर्य सहस्रार्जुन के वध की इच्छा से धनुर्विद्या का अभ्यास करने के निमित्त श्रीमहेशजी के समीप रहते हुए प्रयत्न पूर्वक श्रीपार्वती जी द्वारा रामगीता को सुनकर ग्रहण करने से नारायण के अंश को प्राप्त किये ॥ ५१ ॥ यदि पुरुष ब्रह्महत्यादि पापों से उद्धार होना चाहता है, तो रामगीता का एकमास पाठ करने पर पापों से रहित हो जाता है ॥ ५२ ॥

दुष्परिग्रह (कुत्सितदान लेना) निषिद्ध भोजन और कुत्सित आलाप (बातचीत) से उत्पन्न पाप रामगीता का पाठ करने से समाप्त हो जाते हैं ॥ ५३ ॥ शालिग्राम के आगे, तुलसी और पीपल के समीप और सन्यासियों के समीप जो रामगीता का पाठ करता है ॥ ५४ ॥ वह उस फल को प्राप्त करता है जिसे

स तत्फलमवाप्नोति यद्वाचोऽपि न गोचरम्। रामगीतां पठन्भक्त्या यः श्राद्धे भोजयेद्द्विजान्।५५।
तस्य ते पितरः सर्वे यान्ति विष्णोः परं पदम्। एकादश्यां निराहारो नियतो द्वादशीदिने ॥५६॥
स्थित्वागस्त्यतरोर्मूले रामगीतां पठेत्तु यः। स एव राघवः साक्षात्सर्वदेवैश्च पूज्यते ॥५७॥
विना दानं विना ध्यानं विना तीर्थावगाहनम्। रामगीतां नरोऽधीत्य तदनन्तफलं लभेत् ॥५८॥
बहुना किमिहोक्तेन शृणु नारद तत्त्वतः।
श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानि च। अर्हन्ति नाल्पमध्यात्मरामायणकलामपि ॥५९॥

अध्यात्मरामचरितस्य मुनीश्वराय माहात्म्यमेतदुदितं कमलासनेन।
यः श्रद्धया पठति वा शृणुयात्स मर्त्यः प्राप्नोति विष्णुपदवीं सुरपूज्यमानः ॥६०॥

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डेऽध्यात्मरामायणमाहात्म्यं सम्पूर्णः ॥१॥

वाणी द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। जो व्यक्ति रामगीता का भक्ति पूर्वक पाठ करता हुआ श्राद्ध के दिन ब्राह्मणों को भोजन कराता है ॥ ५५ ॥ उसके पितर लोग विष्णु भगवान् के परमपद को प्राप्त करते हैं। एकादशी के दिन निराहार रहकर द्वादशी के दिन अगस्त्य के मूल के समीप बैठकर रामगीता का जो व्यक्ति पाठ करता है, वह साक्षात् श्रीराघव का रूप होकर देवताओं द्वारा पूजित होता हैं ॥ ५६-५७ ॥ रामगीता का पाठ करने वाला मनुष्य बिना किसी दान, विना किसी ध्यान अथवा बिना किसी तीर्थ में स्नान किये हीं अनन्तदान ध्यानादि का फल प्राप्त करता है ॥ ५८ ॥

हे नारद ! अधिक कहने से क्या ? तत्त्व को सुनो। श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास सैकड़ों शास्त्र ये सब अध्यात्मरामायण के स्वल्प कला को भी प्राप्त नहीं कर सकते ॥ ५९ ॥ ब्रह्माजी द्वारा महर्षि नारदजी के निमित्त प्रतिपादित श्रीअध्यात्मरामायण का जो व्यक्ति श्रद्धा पूर्वक पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, वह देवताओं से पूजित होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे अध्यात्मरामायणे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँ-
ग्रामनिवासिपराशरगोत्रीय पं० प्र० रामव्रतपाण्डेयात्मजपं०चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया
भाषाटीकया सहितः महात्म्यं परिपूर्णः ॥ १ ॥

* * * * * *

ॐ

अध्यात्मरामायण

बालकाण्ड

प्रथमसर्ग

रामहृदय

यः पृथिवीभरवारणाय दिविजैः सम्प्रार्थितश्चिन्मयः
सञ्जातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः ।
निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद्ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां
कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे ॥१॥

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यमूर्तिम् ।
आनन्दसान्द्रममलं निजबोधरूपं सीतापतिं विदिततत्त्वमहं नमामि ॥२॥

पठन्ति ये नित्यमनन्यचेतसः शृण्वन्ति चाध्यात्मिकसंज्ञितं शुभम् ।
रामायणं सर्वपुराणसम्मतं निर्धूतपापा हरिमेव यान्ति ते ॥३॥

जो चैतन्यस्वरूप अविनाशी प्रभु पृथ्वी का भार दूर करने के लिये देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर पृथ्वीतल पर सूर्यवंश में माया-पुरुष रूप अवितरित हुए और राक्षस-समुह का संहार कर सांसारिक प्राणियों के पापों को हरण करने वाली अपनी अविचल कीर्ति संसार में स्थापित कर पुनः आद्य ब्रह्मस्वरूप में लीन हो गये, उन श्रीजानकीपति का मैं भजन करता हूँ ॥ १ ॥ विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय आदि के कारण माया के आश्रय होकर भी मायायीत, अचिन्त्यमूर्त्ति, आनन्दघन, उपाधिकृत दोषों से रहित, स्वयं प्रकाश-स्वरूप, तत्त्वविद्, श्रीसीतापति को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ जो व्यक्ति सर्वपुराण सम्मत अध्यात्म-रामायण का एकाग्रचित होकर पाठ करते हैं, अथवा श्रवण करते हैं, वे निष्पाप (पापरहित) होकर हरि को हीं प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥ भवबन्धन से मुक्ति की ईच्छा हो तो अध्यात्मरामायण का नित्य पाठ करना चाहिए ।

अध्यात्मरामायणमेव नित्यं पठेद्यदीच्छेद्भवबन्धमुक्तिम् ।
गवां सहस्रायुतकोटिदानात्फलं लभेद्यः शृणुयात्स नित्यम् ॥४॥

पुरारिगिरिसम्भूता श्रीरामार्णवसङ्गता । अध्यात्मरामगङ्गेयं पुनाति भुवनत्रयम् ॥५॥

कैलासाग्रे कदाचिद्रविशतविमले मन्दिरे रत्नपीठे
संविष्टं ध्याननिष्ठं त्रिनयनमभयं सेवितं सिद्धसङ्घैः ।
देवी वामाङ्कसंस्था गिरिवरतनया पार्वती भक्तिनम्रा
प्राहेदं देवमीशं सकलमलहरं वाक्यमानन्दकन्दम् ॥६॥

पार्वत्युवाच– नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास सर्वात्मदृक् त्वं परमेश्वरोऽसि ।
पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य सनातनं त्वं च सनातनोऽसि ॥७॥
गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यं वदन्ति भक्तेषुमहानुभावाः ।
तदप्यहोऽहं तव देव भक्ता प्रियोऽसि मे त्वं वद यत्तु पृष्टम् ॥८॥
ज्ञानं सविज्ञानमथानुभक्तिवैराग्ययुक्तं च मितं विभास्वत् ।
जानाम्यहं योषिदपि त्वदुक्तं यथा तथा ब्रूहि तरन्ति येन ॥९॥
पृच्छामि चान्यच्च परं रहस्यं तदेव चाग्रे वद वारिजाक्ष ।
श्रीरामचन्द्रेऽखिललोकसारे भक्तिर्दृढा नौर्भवति प्रसिद्धा ॥१०॥

जो व्यक्ति इसका नित्य श्रवण करता है, वह लाखों करोड़ों गोदान का फल प्राप्त करता है ॥ ४ ॥ श्रीशंकर-रूप पर्वत से निःसृत रामरूप-समुद्र में मिलने वाली यह अध्यात्मरामायण रूपिणी गंगा त्रिलोकी को पवित्र करती है ॥ ५ ॥ एक समय कैलाशपर्वत के शिखर पर सैकड़ों सूर्यों के समान प्रकाशित शुभ्रमन्दिर में रत्नसिंहासन पर बैठे हुए ध्यानावस्थित सिद्ध-समूहों से सेवित, नित्य निर्भय, सम्पूर्णपापों को हरण करने वाले आनन्दकन्द, देवताओं के स्वामी भगवान् त्रिनयन से वामभाग में स्थित श्रीगिरिराजकुमारी पार्वती भक्तिपूर्वक ये वाक्य बोली ॥ ६ ॥

श्रीपार्वती जी बोलीं—हे देव ! हे जगन्निवास ! हे सबके अन्तः करणों के साक्षी ! आप सनातन एवं परमेश्वर हैं । मैं आपसे पुरुषोत्तम भगवान के सनातन तत्त्व को पूछना चाहती हूँ ॥ ७ ॥ महात्मा पुरुष जो अत्यन्त गोपनीय किसी दूसरे से नहीं कहने योग्य विषय को भक्तों को बतला देते हैं । हे देव ! मैं आपकी भक्त हूँ, आप मुझे अत्यन्त प्रिय हैं । अतः मैं जो पूछी हूँ, उसका वर्णन कीजिये ॥ ८ ॥ जिस ज्ञान के द्वारा पुरुष संसार-सागर से पार हो जाते हैं, उस भक्ति और वैराग्य से युक्त प्रकाशमय आत्मज्ञान का वर्णन आप विज्ञान सहित स्वल्प शब्दों में इस प्रकार कीजिये, जिससे स्त्री होने पर भी मैं आपके कथन को समझ सकूँ ॥ ९ ॥ हे कमलनयन ! मैं एक परमगुह्य रहस्य पूछती हूँ, कृपया उसे ही पहले वर्णन कीजिये । यह तो प्रसिद्ध है कि अखिल लोकसार श्रीरामचन्द्र में विशुद्ध भक्ति संसार-सागर को पार करने के लिये

भक्तिः प्रसिद्धा भवमोक्षणाय नान्यत्ततः साधनमस्ति किञ्चित् ।
तथाऽपि हृत्संशयबन्धनं मे विभेत्तुमर्हस्यमलोक्तिभिस्त्वम् ॥११॥
वदन्ति रामं परमेकमाद्यं निरस्तमायागुणसम्प्रवाहम् ।
भजन्ति चाहर्निशमप्रमत्ताः परं पदं यान्ति तथैव सिद्धाः ॥१२॥
वदन्ति केचित्परमोऽपि रामः स्वाविद्यया संवृतमात्मसंज्ञम् ।
जानाति नात्मानमतः परेण सम्बोधितो वेद परात्मतत्त्वम् ॥१३॥
यदि स्म जानाति कुतो विलापः सीताकृतेऽनेन कृतः परेण ।
जानाति नैवं यदि केन सेव्यः समो हि सर्वैरपि जीवजातैः ॥१४॥
अत्रोत्तरं किं विदितं भवद्भिस्तद् ब्रूत मे संशयभेदि वाक्यम् ॥१५॥

श्रीमहादेव उवाच

धन्याऽसि भक्ताऽसि परात्मनस्त्वं यज्ज्ञातुमिच्छा तव रामतत्त्वम् ।
पुरा न केनाप्यभिचोदितोऽहं वक्तुं रहस्यं परमं निगूढम् ॥१६॥
त्वयाऽद्य भक्त्या परिनोदितोऽहं वक्ष्ये नमस्कृत्य रघूत्तमं ते ।
रामः परात्मा प्रकृतेरनादिरानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि ॥१७॥

सुदृढ़ नौका है ॥ १० ॥ संसार से मुक्ति के लिये भक्ति ही प्रसिद्ध साधन है; इसके अतिरिक्त कोई साधन नहीं है। तथापि आप अपने विशुद्ध वचनों से मेरे हृदय के संशय-ग्रन्थि का छेदन कीजिये ॥ ११ ॥ प्रमाद रहित सिद्ध गण श्रीरामचन्द्र जी को परम अद्वितीय, सबका आदि कारण, माया के गुण-प्रवाह से पृथक् वर्णन करते हैं, तथा वे अहर्निश उनका भजन करते हैं और परमपद को प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥ परन्तु कोई कोई कहते हैं कि राम परमब्रह्म होने पर भी अपनी माया से आवृत्त होने के कारण अपने आत्मस्वरूप को नहीं जानते थे। अतः उन्होंने दूसरों (वसिष्ठादि) के उपदेश से आत्मतत्त्व को जाना ॥ १३ ॥ यदि वे आत्मतत्त्व को जानते थे, तो वे सीता के लिये इतना विलाप क्यों किये ? और यदि वे आत्मतत्त्व को नहीं जानते थे तो अन्य जीवों के समान ही हुये। अतः उनका भजन क्यों करना चाहिये ॥ १४ ॥ इसका उत्तर यदि आप जानते हों तो मेरे संशय को नष्ट करने के लिये कहिये ॥ १५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती ! तुम धन्य हो, तुम परमात्मा की भक्त हो, जो तुझे रामतत्त्व को जानने की ईच्छा है। इसके पहले परम गूढ़तत्व का वर्णन करने के लिये मुझसे कोई नहीं कहा ॥ १६ ॥ आज तुम भक्तिपूर्वक पूछी हो, अतः मैं श्रीरघुकुलशिरोमणि को नमस्कार कर तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देता हूँ। श्रीरामचन्द्रजी प्रकृति से परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दस्वरूप अद्वितीय और पुरुषोत्तम हैं ॥ १७ ॥

स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः ।
सर्वान्तरस्थोऽपि निगूढ आत्मा स्वमायया सृष्टमिदं विचष्टे ॥१८॥
जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवद्धि ।
एतन्न जानन्ति विमूढचित्ताः स्वाविद्यया संवृतमानसा ये ॥१९॥
स्वाज्ञानमप्यात्मनि शुद्धबुद्धे स्वारोपयन्तीह निरस्तमाये ।
संसारमेवानुसरन्ति ते वै पुत्रादिसक्ताः पुरुकर्मयुक्ताः ॥२०॥
जानन्ति नैवं हृदये स्थितं वै चामीकरं कण्ठगतं यथाऽज्ञाः ।
यथाऽप्रकाशो न तु विद्यते रवौ ज्योतिःस्वभावे परमेश्वरे तथा ।
विशुद्धविज्ञानघने रघूत्तमेऽविद्याकथं स्यात्परतः परात्मनि ॥२१॥
यथा हि चाक्ष्णा भ्रमता गृहादिकं विनष्टदृष्टेर्भ्रमतीव दृश्यते ।
तथैव देहेन्द्रियकर्तुरात्मनः कृते परेऽध्यस्य जनो विमुह्यति ॥२२॥
नाहो न रात्रिः सवितुर्यथा भवेत्प्रकाशरूपा व्यभिचारतः क्वचित् ।
ज्ञानं तथाऽज्ञानमिदं द्वयं हरौ रामे कथं स्थास्यति शुद्धचिद्घने ॥२३॥

जो अपनी माया से अखिल विश्व को बनाकर इसके भीतर और बाहर सर्वत्र आकाश के समान व्याप्त हैं; तथा आत्मास्वरूप होकर सबके अन्तःकरण में स्थित होकर अपनी माया से इस विश्व का संचालन कर रहे हैं ॥ १८ ॥ जिस प्रकार चुम्बक के समीप होने पर जडवस्तु लोहा भी गतिशील हो जाता है उसी प्रकार जिनकी सन्निधि मात्र से यह ब्रह्माण्ड नित्य-भ्रमण कर रहा है, उन परमात्मा श्रीराम को अविद्या से आवृत्त विमूढ-चित्त वाले नहीं जान सकते ॥ १९ ॥

जो पुरुष माया को दूर करने वाले शुद्ध-बुद्ध स्वरूप परमात्मा में अपने अज्ञान को आरोपित करते हैं, अर्थात् अपने अज्ञान से उन्हें भी अपने समान अज्ञानी मानते हैं, वे पुरुष स्त्री-पुत्रादि में आसक्त होकर यज्ञ-यज्ञादि कर्म करते हुये संसार चक्र में हीं घूमते रहते हैं ॥ २० ॥

अज्ञ पुरुष जिस प्रकार अपने गले में धारण किये सुवर्णाभूषण को अज्ञान के कारण नहीं जानते उसी प्रकार अपने हृदय में विद्यमान परमात्मा श्रीराम को नहीं जानते (अतः उनमें अज्ञानादि का आरोप करते हैं) । वस्तुतः जिस प्रकार सूर्य में कभी अन्धकार नहीं रह सकता, उसी प्रकार माया से परे विशुद्ध आनन्दघन, ज्योतिःस्वरूप परमेश्वर परमात्मा श्रीराम में भी अविद्या कैसे रह सकती है ॥ २१ ॥ जिस प्रकार मनुष्य को दृष्टि-दोष होने से नेत्र द्वारा गृहादि घूमता हुआ दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार अपने देह और इन्द्रिय रूप कर्त्ता के किये हुये कर्मों का आत्मा में आरोपण कर मोहित होते हैं ॥ २२ ॥ प्रकाशरूपता का व्यभिचार न होने से यथा सूर्य में रात-दिन का भेद नहीं होता, उसी प्रकार शुद्ध-चिद्घन् श्रीरामचन्द्र में ज्ञान और अज्ञान दोनों कैसे स्थित रह सकते हैं ॥ २३ ॥

तस्मात्परानन्दमये रघूत्तमे विज्ञानरूपे हि न विद्यते तमः ।
अज्ञानसाक्षिण्यरविन्दलोचने मायाश्रयत्वान्न हि मोहकारणम् ॥२४॥

अत्र ते कथयिष्यामि रहस्यमपि दुर्लभम् । सीतारामरुत्सूनुसंवादं मोक्षसाधनम् ॥२५॥
पुरा रामायणे रामो रावणं देवकण्टकम् । हत्वा रणे रणश्लाघी सपुत्रबलवाहनम् ॥ २६ ॥
सीतया सह सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां समन्वितः । अयोध्यामगद्रामो हनूमत्प्रमुखैर्वृतः ॥ २७ ॥
अभिषिक्तः परिवृतो वसिष्ठाद्यैर्महात्मभिः । सिंहासने समासीनः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ २८ ॥
दृष्ट्वा तदा हनूमन्तं प्राञ्जलिं पुरतः स्थितम् । कृतकार्यं निराकाङ्क्षं ज्ञानापेक्षं महामतिम् ॥ २९ ॥
रामः सीतामुवाचेदं ब्रूहि तत्त्वं हनूमते । निष्कल्मषोऽयं ज्ञानस्य पात्रं नौ नित्यभक्तिमान् ३०।
तथेति जानकी प्राह तत्त्वं रामस्य निश्चितम् । हनूमते प्रपन्नाय सीता लोकविमोहिनी ॥ ३१ ॥
रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् । सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोरचम् ॥ ३२ ॥
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम् । सर्वव्यापिनमात्मनं स्वप्रकाशमकल्मषम् ॥ ३३ ॥
मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम् । तस्य सन्निद्धिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता ॥ ३४ ॥

इसलिये परमानन्दस्वरूप, विज्ञानघन, अज्ञानसाक्षी, कमललोचन भगवान श्रीराम में अज्ञान का लेश भी नहीं है, क्योंकि वे माया के आश्रय हैं, इसलिये माया उन्हें मोहित नहीं कर सकती ॥ २४ ॥ हे पार्वती ! मैं तुमसे अत्यन्त गोपनीय सुदुर्लभ गूढ़ रहस्य सीता ,राम और हनुमान जी का मोक्ष का साधन रूप संवाद को सुनाता हूँ ॥ २५ ॥ पूर्वकाल में रामावतार के समय युद्धप्रिय श्रीरामजी देवताओं के कण्टक स्वरूप रावण को सन्तान सेना और वाहनों के सहित युद्ध में मारकर सीता, सुग्रीव और लक्ष्मण के सहित हनुमान आदि प्रमुख वानरों से घीरे हुये अयोध्या आये ॥ २६-२७ ॥ वहाँ आकर राज्यभिषेक होने पर वशिष्ठादि महात्माओं से परिवृत्त, कोटि सूर्य की प्रभा से युक्त होकर सिंहासन पर विराजमान हुये ॥ २८ ॥ उस समय महामति हनुमान जी जो सम्पूर्ण कार्य कर चुके हैं तथा बदले में कुछ लेने की इच्छा नहीं है, ज्ञान की अभिलाषा से अपने सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ा देखकर श्रीरामचन्द्र जी सीताजी से बोले—हे सिते ! यह हनुमान हम दोनों का भक्त है । अतः यह निष्पाप एवं ज्ञान देने के लिये सुयोग्य पात्र है । अतः तुम मेरे तत्त्व का उपदेश करो ॥ २९-३० ॥

तब विश्व विमोहिनी जनकनन्दिनी सीता श्रीरामचन्द्र जी से तथास्तु कहकर शरणागत हनुमान को भगवान् राम का निश्चित तत्त्व कहने लगी ॥ ३१ ॥ श्रीराम को तुम साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप परं-ब्रह्म समझो । ये निःसन्देह समस्त उपाधि रहित, सत्तामात्र, मन-वाणी के अविषय, निर्मल, शान्त, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वव्यापक, स्वयंप्रकाश, कल्मष रहित परमात्मा हीं हैं ॥ ३२-३३ ॥ मुझे संसार की उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करने वाली मूल-प्रकृति जानो । मैं हीं आलस्य रहित होकर इनकी सन्निधिमात्र से विश्व का सृजन करती हूँ ॥ ३४ ॥ तथापि इनकी सन्निधिमात्र से मेरे द्वारा रचित जगत को अज्ञानी लोग

तत्सान्निध्यान्मया सृष्टं तस्मिन्नारोप्यतेऽबुधैः । अयोध्यानगरे जन्म रघुवंशेऽतिनिर्मले ॥ ३५ ॥
विश्वामित्रसहायत्वं मखसंरक्षणं ततः । अहल्याशापशमनं चापभङ्गो महेशितुः ॥ ३६ ॥
मत्पाणिग्रहणं पश्चाद्भार्गवस्य मदक्षयः । अयोध्यानगरे वासो मया द्वादशवार्षिकः ॥ ३७ ॥
दण्डकारण्यगमनं विराधवध एव च । मायामारीचमरणं मायासीताहृतिस्तथा ॥ ३८ ॥
जटायुषो मोक्षलाभः कबन्धस्य तथैव च । शबर्याः पूजनं पश्चात्सुग्रीवेण समागमः ॥ ३९ ॥
वालिनश्च वधः पश्चात्सीतान्वेषणमेव च । सेतुबन्धश्च जलधौ लङ्कायाश्च निरोधनम् ॥ ४० ॥
रावणस्य वधो युद्धे सपुत्रस्य दुरात्मनः । बिभीषणे राज्यदानं पुष्पकेण मया सह ॥ ४१ ॥
अयोध्यागमनं पश्चाद्राज्ये रामाभिषेचनम् ।
एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि । आरोपयन्ति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मनि ॥४२॥

रामो न गच्छति न तिष्ठति नानुशोचत्याकाङ्क्षते त्यजति नो न करोति किञ्चित् ।
आनन्दमूर्तिरचलः परिणामहीनो मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति ॥४३॥

ततो रामः स्वयं प्राह हनूमन्तमुपस्थितम् । शृणु तत्त्वं प्रवक्ष्यामि ह्यात्मानात्मपरात्मनाम् ॥४४॥

इनमें आरोपित करते हैं । इसलिये अयोध्या में अति निर्मल रघुकुल में जन्म लेना ॥ ३५ ॥ पुनः विश्वामित्र की सहायता तथा यज्ञ की रक्षा करना, अहल्या को शाप से मुक्त करना, श्रीशंकर जी का धनुष तोड़ना ॥ ३६ ॥ इसके बाद मेरा पाणिग्रहण करना, श्रीपरशुरामजी का गर्व-क्षय करना, मेरे साथ बारह वर्षों तक अयोध्या में निवास करना ॥ ३७ ॥

दण्डकारण्य जाना, विराध का वध करना, माया रूपी मारीच का मरण तथा मायारूपी सीता का हरण होना ॥ ३८ ॥ पुनः जटायु और कबन्ध का मुक्त होना, शबरी से पूजित होना, पुनः सुग्रीव से मित्रता करना ॥ ३९ ॥ पुनः वालि का वध होना तथा सीता की खोज करना, समुद्र में सेतुबन्ध और लंका को घेर लेना ॥ ४० ॥ तथा दुराचारी रावण को पुत्रों सहित युद्ध में मारना एवं विभीषण को लंका का राज्य देना तथा पुष्पकविमान पर मेरे साथ लंका से अयोध्या लौट आना, पुनः श्री रामजी का राज्यपद पर अभिषिक्त होना इत्यादि सभी कर्म मेरे द्वारा हीं किये हुए हैं तथापि अज्ञानी व्यक्ति इन कर्मों को इन निर्विकार सर्वात्मा राम में आरोपित करते हैं ॥ ४१-४२ ॥ वस्तुतः श्रीरामचन्द्र जी न चलते हैं, न स्थित होते हैं, न शोक करते हैं, न किसी वस्तु की आकांक्षा करते हैं, न किसी वस्तु का त्याग करते हैं और न कोई अन्य कर्म हीं करते हैं । ये आनन्दस्वरूप, अविचल और परिणामहीन हैं, माया के गुणों से व्याप्त होने के कारण हीं ये तत्सदृश प्रतीत होते हैं ॥ ४३ ॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने सम्मुख उपस्थिति पवनसुत हनुमान से स्वयं कहा—"मैं तुम्हें आत्मा, अनात्मा और परमात्मा के तत्त्व को बतलाता हूँ, सुनो ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार एक ही आकाश तीन प्रकार का

आकाशस्य यथा भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान् । जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि ॥
प्रतिबिम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभः ॥४५॥
बुद्ध्यवच्छिन्नचैतन्यमेकं पूर्णमथापरम् । आभासस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः ॥४६॥
साभासबुद्धेः कर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि । साक्षिण्यारोप्यते भ्रान्त्या जीवत्वं च तथाऽबुधैः ४७
आभासस्तु मृषाबुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते । अविच्छिन्नं तु तद्ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पतः ॥४८॥
अविच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपाद्यते । तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा ॥४९॥
ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः । तदाऽविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः ॥५०॥
एतद्विज्ञाय मद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते ।
मद्भक्तिविमुखानां हि शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम् । न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्मशतैरपि ॥५१॥
इदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो मयैव साक्षात्कथितं तवानघ ।
मद्भक्तिहीनाय शठाय न त्वया दातव्यमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिकम् ॥५२॥

प्रतीत होता है, यथा—सर्वत्र व्यापक महाकाश, दूसरा जलाशयावच्छिन्न आकाश तथा तृतीय जलगत प्रतिबिम्बाकाश ॥ ४५ ॥ इसी प्रकार चेतना का भी तीन भेद है। एक तो बुद्ध्यवच्छिन्न चेतन (समस्त बुद्धियों की समष्टि रूप माया में प्रतिबिम्बित होकर सकल विश्व में व्याप्त ईश्वर) दूसरा आभास चैतन्य (विविध बुद्धियों में प्रतिबिम्बित जीव) तृतीय बिम्बचैतन्य (शुद्ध चैतन्य ब्रह्म) ॥ ४६ ॥ इनमें आभास चेतन के सहित बुद्धि में कर्त्तृत्व भोक्तृत्व है, अर्थात् चिदाभास के सहित बुद्धि सब कार्य करती है। किन्तु अज्ञानी व्यक्ति भ्रान्ति होने से निरवच्छिन्न, निर्विकार साक्षी आत्मा में कर्त्तृत्व और जीवत्व का आरोप करते हैं, अर्थात् उसे ही कर्त्ता और भोक्ता मान लेते हैं ॥ ४७ ॥

(सभी आभासमिथ्या होने से) आभास चैतन्य मिथ्या है, और बुद्धि अविद्या का कर्म है। परब्रह्म परमात्मा विच्छेद रहित हैं। अतः परमात्मा का विच्छेद भी विकल्प से ही माना जाता है ॥ ४८ ॥ समास अहंरूप अवच्छिन्न चेतन (जीव) की तत्त्वमसि आदि महावाक्यों द्वारा पूर्ण चेतन (ब्रह्म) के साथ एकता वर्णित है ॥ ४९ ॥ महावाक्यों के द्वारा जीवात्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान जब उत्पन्न हो जाता है, तब अपने कार्यों के सहित अविद्या नष्ट हो जाती है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ५० ॥ इस तत्त्व को समझकर कर मेरा भक्त मेरे स्वरूप को प्राप्त होने का अधिकारी हो जाता है, जो मेरी भक्ति से विमुख होकर शास्त्ररूप गर्त (खाई) में भटकते रहते हैं, उन्हें सैकड़ों जन्मों तक ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है ॥ ५१ ॥ हे अनघ हनुमान्! यह परमरहस्य मेरा हृदय है और साक्षात मैंने ही तुम्हें सुनाया है। इन्द्र के राज्य से अधिक सम्पत्ति भी यदि तुम्हें मिले तो भी मेरे भक्ति से हीन किसी शठ को मत देना ॥ ५२ ॥

॥ श्रीमहादेव उवाच ॥

एतत्तेऽभिहितं देवि श्रीरामहृदयं मया । अतिगुह्यतमं हृद्यं पवित्रं पापशोधनम् ॥५३॥
साक्षाद्रामेण कथितं सर्ववेदान्तसङ्ग्रहम् । यः पठेत्सततं भक्त्या स मुक्तो नात्र संशयः ॥५४॥
ब्रह्महत्यादिपापानि बहुजन्मार्जितान्यपि । नश्यन्त्येव न सन्देहो रामस्य वचनं यथा ॥५५॥
योऽतिभ्रष्टोऽतिपापी परधनपरदारेषु नित्योद्यतो वा
स्तेयी ब्रह्मघ्नमातापितृवधनिरतो योगिवृन्दापकारी ।
यः सम्पूज्याभिरामं पठति च हृदयं रामचन्द्रस्य भक्त्या
योगीन्द्रैरप्यलभ्यं पदमिह लभते सर्वदेवैः स पूज्यम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे श्रीरामहृदयं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले हे देवि। मैंने तुम्हें अत्यन्त गोपनीय, हृदयहारी, पवित्र और पाप का नाश करने वाला "श्रीरामहृदय" को सुनायी है ॥ ५३ ॥ सम्पूर्ण वेदान्त का सार तत्त्व साक्षात् राम के द्वारा यह 'रामहृदय' कहा गया है। जो व्यक्ति इसका निरन्तर पाठ करता है, वह निःसन्देह मुक्त हो जाता है ॥५४॥ अनेक जन्मों के संचित ब्रह्महत्यादि समस्त पाप इसके पठनमात्र से निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि श्रीरामजी के वचन इसी प्रकार हैं ॥ ५५ ॥ जो व्यक्ति अत्यन्त भ्रष्ट, अत्यन्तपापी, दुसरों का धन हरण और दुसरों केस्त्री में नित्य आसक्त रहने वाला हो, अथवा चोर, ब्रह्महत्यारा, माता-पिता के बध करने में बुद्धि रखने वाला और योगिजनों का अहित करने वाला हो वह भी यदि श्रीरामचन्द्र जी का पूजन कर इस रामहृदय का भक्ति पूर्वक पाठ करता है, तो वह समस्त देवताओं से पूजित होकर योगिजनों को भी दुर्लभ परमपद को प्राप्त करता है ॥ ५६ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया-सहितः प्रथमसर्गः परिपूर्णः ॥ १ ॥

द्वितीयसर्गः

भारपीडिता पृथिवी का ब्रह्मादि देवताओं के पास जाना और भगवान् का उनकी प्रार्थना से प्रकट होकर उन्हें धैर्य धारण कराना।

पार्वत्युवाच

धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि कृतार्थास्मि जगत्प्रभो। विच्छिन्नो मेऽतिसन्देहग्रन्थिर्भवदनुग्रहात् ॥१॥
त्वन्मुखाद्गलितं रामतत्त्वामृतरसायनम्। पिबन्त्या मे मनो देव न तृप्यति भवापहम् ॥२॥
श्रीरामस्य कथा त्वत्तः श्रुता सङ्क्षेपतो मया। इदानीं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण स्फुटाक्षरम् ॥३॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं महत्। अध्यात्मरामचरितं रामेणोक्तं पुरा मम ॥४॥
तदद्य कथयिष्यामि शृणु तापत्रयापहम्। यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुरज्ञानोत्थमहाभयात्।
प्राप्नोति परमामृद्धिं दीर्घायुः पुत्रसन्ततिम् ॥५॥

भूमिर्भारेण मग्ना दशवदनमुखाशेषरक्षोगणानां
धृत्वागोरूपमादौ दिविजमुनिजनैः साकमब्जासनस्य।
गत्वा लोकं रुदन्ती व्यसनमुपगतं ब्रह्मणे प्राह सर्वं
ब्रह्मा ध्यात्वा मुहूर्तं सकलमपि हृदा वेदशेषात्मकत्वात् ॥६॥

पार्वतीजी बोलीं—हे जगत्प्रभो! मैं आपकी कृपा से अनुगृहीत होकर धन्य एवं कृत-कृत्य हो गयी तथा मेरी सन्देह की ग्रन्थि विच्छिन्न हो गई ॥ १ ॥

हे देव! आपके मुख से निःसृत भवभयहारी रामतत्त्वरूपी अमृत का पान करते हुए मेरा मन तृप्त नहीं होता ॥ २ ॥ मैं आपके मुख से श्रीरामचन्द्रजी की कथा संक्षेप से सुनी। अब मैं स्पष्ट शब्दों में उसे विस्तृत रूप से सुनना चाहती हूँ ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले—हे देवी! सुनो, मैं तुम्हें अत्यन्तगोपनीय महान् अध्यात्मरामायण को सुनाता हूँ, जिसे पहले श्रीरामचन्द्रजी मुझसे कहते थे ॥ ४ ॥ अब मैं तुम्हें तापत्रयहारी अध्यात्मरामायण सुनाता हूँ, जिसके श्रवणमात्र से जीव अज्ञान से उत्पन्न महाभय से छुटकर परम ऐश्वर्य, दीर्घायु और पुत्र पौत्रादि प्राप्त करता है ॥ ५ ॥ एक समय रावण आदि विविध राक्षसों के भार से दुःखित होकर पृथिवी गौ का रूप धारण कर देवता और मुनियों के साथ ब्रह्माजी के पास ब्रह्मलोक में गयी। ब्रह्माजी के पास जाकर रुदन करती हुई अपनी सारी व्यथा ब्रह्मा जी को सुनायी। मुहूर्त्त मात्र ध्यान कर अपने हृदय में दुःख की निवृत्ति का सम्पूर्ण उपाय ब्रह्माजी जान लिये क्योंकि वे अन्तर्यामी हैं ॥ ६ ॥ तत्पश्चात् देवगण सहित पृथ्वी को साथ लेकर ब्रह्माजी क्षीरसमुद्र के तटपर गये और वहाँ अत्यन्त निर्मल आनन्दाश्रुओं से युक्त हो अखिल लोकान्तर्यामी, अजर, सर्वज्ञ, भगवान् हरि की अत्यन्त

तस्मात्क्षीरसमुद्रतीरमगमद्ब्रह्माथ देवैर्वृतो
देव्या चाखिललोकहृत्स्थमजरं सर्वज्ञमीशं हरिम् ।
अस्तौषीच्छ्रुतिसिद्धनिर्मलपदैः स्तोत्रैः पुराणोद्भवै-
र्भक्त्या गद्गदया गिरातिविमलैरानन्दबाष्पैर्वृतः ॥७॥

ततः स्फुरत्सहस्रांशुसहस्रसदृशप्रभः । आविरासीद्धरिः प्राच्यां दिशां व्यपनयंस्तमः ॥८॥
कथञ्चिद्दृष्टवान्ब्रह्मा दुर्दर्शमकृतात्मनाम् । इन्द्रनीलप्रतीकाशं स्मितास्यं पद्मलोचनम् ॥९॥
किरीटहारकेयूरकुण्डलैः कटकादिभिः । विभ्राजमानं श्रीवत्सकौस्तुभप्रभयान्वितम् ॥१०॥
स्तुवद्भिः सनकाद्यैश्च पार्षदैः परिवेष्टितम् । शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजितम् ॥११॥
स्वर्णयज्ञोपवीतेन स्वर्णवर्णाम्बरेण च ॥१२॥
श्रिया भूम्या च सहितं गरुडोपरि संस्थितम् । हर्षगद्गदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रमे ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

नतोऽस्मि ते पदं देव प्राणबुद्धीन्द्रियात्मभिः । यच्चिन्त्यते कर्मपाद्धृदि नित्यं मुमुक्षुभिः ॥१४॥
मायया गुणमय्या त्वं सृजस्यवसि लुम्पसि । जगत्तेन न ते लेप आनन्दानुभवात्मनः ॥१५॥
तथा शुद्धिर्न दुष्टानां दानाध्ययनकर्मभिः । शुद्धात्मता ते यशसि सदा भक्तिमतां यथा ॥१६॥

निर्मल गद्गद वाणी के द्वारा श्रुति-प्रसिद्ध विमल पदों और पुराणोक्त स्तोत्रों द्वारा स्तुति की ॥ ७ ॥ तत्पश्चात् सहस्त्रों देदीप्यमान सूर्य के समान प्रभाशाली भगवान् हरि सब दिशाओं के अन्धकार दूर करते हुये प्राची दिशा में प्रकट हुए ॥ ८ ॥

पापी व्यक्तियों के लिये दुर्दर्शनीय (इन्द्रनीलमणि के समान कान्तियुक्त, इषत् हास्य युक्त, कमललोचन भगवान् हरि को ब्रह्माजी भी (उनके अमित तेज के कारण) कठिनता से ही देख पाये ॥ ९ ॥ वे किरीट, हार, केयूर, कुण्डल और कटक आदि आभूषणों से सुशोभित, श्रीवत्स और कौस्तुभमणि की प्रभा से युक्त थे ॥ १० ॥ सनकादि पार्षद गण उन्हें स्तुति करते हुये चारो तरफ से घेरे थे और शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा वनमाला के द्वारा सुशोभित हो रहे थे ॥ ११ ॥ उन्हें स्वर्ण यज्ञोपवीत और पीताम्बर से सुशोभित तथा लक्ष्मी और भूमि के सहित गरुड पर स्थित देखकर ब्रह्माजी सहर्ष गद्गदवाणी से स्तुति करने लगे ॥ १२-१३ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे देव ! कर्म बन्धन से मुक्त होने के लिये मुमुक्षु लोग अपने प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय और मन से जिनका नित्य चिन्तन करते हैं, आपके उन चरणकमल की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! आप अपनी त्रिगुणात्मिका माया के द्वारा जगत् की उत्पत्ति, पालन एवं संहार करते हैं, किन्तु ज्ञानानन्द स्वरूप आप इससे लिप्त नहीं होते ॥ १५ ॥

हे भगवन् ! आपके विमलयश में भक्ति रखने वाले भक्तों का अन्तःकरण जैसा शुद्ध होता है, उस प्रकार दान, अध्ययन आदि कर्मों में लिप्त रहने वाले दुष्ट प्राणियों का नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ मुनि जन

अतस्तवाङ्घ्रिमें दृष्टश्चित्तदोषापनुत्तये । सद्योऽन्तर्हृदये नित्यं मुनिभिः सात्वतैर्वृतः ॥१७॥
ब्रह्माद्यैः स्वार्थसिद्ध्यर्थमस्माभिः पूर्वसेवितः । अपरोक्षानुभूत्यर्थं ज्ञानिभिर्हृदि भावितः ॥१८॥
तवाङ्घ्रिपूजानिर्माल्यतुलसीमालया विभो । स्पर्धते वक्षसि पदं लब्ध्वापि श्रीः सपत्निवत् ॥१९॥
अतस्त्वत्पादभक्तेषु तव भक्तिः श्रियोऽधिका । भक्तिमेवाभिवाञ्छन्ति त्वद्भक्ताः सारवेदिनः ॥२०॥
अतस्त्वत्पादकमले भक्तिरेव सदाऽस्तु मे । संसारामयतप्तानां भेषजं भक्तिरेव ते ॥२१॥
इति ब्रुवन्तं ब्रह्माणं बभाषे भगवान् हरिः । किं करोमीति तं वेधाः प्रत्युवाचातिहर्षितः ॥२२॥
भगवन् रावणो नाम पौलस्त्यतनयो महान् । राक्षसानामधिपतिर्मद्दत्तवरदर्पितः ॥२३॥
त्रिलोकीं लोकपालांश्च बाधते विश्वबाधकः । मानुषेण मृतिस्तस्य मया कल्याणकल्पिता ।
अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जहि देवरिपुं प्रभो ॥२४॥

श्रीभगवानुवाच

कश्यपस्य वरो दत्तस्तपसा तोषितेन मे ॥२५॥
याचितः पुत्रभावाय तथेत्यङ्गीकृतं मया । स इदानीं दशरथो भूत्वा तिष्ठति भूतले ॥२६॥

जिनका अपने हृदय में निरन्तर ध्यान करते हैं, इन चरण कमलों का अपने अन्तःकरण के दोषों के नाश करने के लिये आज मैंने दर्शन किया ॥ १७ ॥ इन चरणों का पूर्वकाल में हम ब्रह्मा आदि देवगण अपने कार्य सिद्धि के लिये सेवन किये हैं और ज्ञानी-मुनिजन अपरोक्षानुभूति के लिये अपने हृदय में ध्यान किये हैं ॥ १८ ॥ हे विभो ! श्रीलक्ष्मीजी आपके वक्षःस्थल में स्थान प्राप्त कर भी आपकी चरणपूजा के समय चढ़ी हुई तुलसी की माला से सपत्नी (सौत) जैसी ईर्ष्या करती है ॥ १९ ॥ आपके चरण कमलों में भक्ति रखने वाले भक्तों में श्रीलक्ष्मीजी से भी अधिक आपका प्रेम है । अतः आपके सारग्राही भक्तगण केवल आपकी भक्ति की ही इच्छा रखते है ॥ २० ॥

इसलिये आपके चरण कमलों में मेरी सदा भक्ति रहे; क्योंकि संसार-रोग से ग्रसित रोगियों के लिये एकमात्र औषधि आपकी भक्ति ही है ॥ २१ ॥ इस प्रकार स्तुति करते हुये ब्रह्माजी से भगवान् बोले कि मैं क्या करूँ ? इसपर अत्यन्त प्रसन्न चित्त ब्रह्माजी भगवान् से बोले ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! पुलस्त्य तनय विश्वश्रवा का पुत्र राक्षसों का राजा रावण मेरे दिये हुये वरदान से अभिमानी हो गया है ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण विश्व का बाधक त्रिलोकी और लोकपालों को सता रहा है। हे कल्याणरूप ! मैने उसकी मृत्यु मनुष्य के हाथ लिखी है। इसलिये आप मनुष्य रूप धारण कर देवताओं के शत्रु का विनाश कीजिये ॥ २४ ॥ श्रीभगवान् बोले—कश्यप की तपस्या से प्रसन्न होकर मैंने उन्हें वरदान दिया था। वे मुझे पुत्र-भाव से याचना किये थे, जिसे मैं स्वीकार किया था। वे इस समय पृथ्वी पर राजा दशरथ होकर विद्यमान हैं ॥ २५-२६ ॥ उनके यहाँ पुत्र रूप से पृथक्-२ चार अंशों में प्रकट होकर मैं कौसल्या से और अन्य दो माताओं से जन्म लेंगे ॥ २७ ॥ उस समय मेरी योगमाया सीता राजा

तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्यायां शुभे दिने । चतुर्धात्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक् ॥२७॥
योगमायाऽपि सीतेति जनकस्य गृहे तदा । उत्पत्स्यते तया सार्धं सर्वं सम्पादयाम्यहम् ॥२८॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुर्ब्रह्मा देवानथाब्रवीत् । विष्णुर्मानुषरूपेण भविष्यति रघोः कुले ॥२९॥
यूयं सृजध्वं सर्वेऽपि वानरेष्वंशसम्भवान् । विष्णोः सहायं कुरुत यावत्स्थास्यति भूतले ॥३०॥
इति देवान्समादिश्य समाश्वास्य च मेदिनीम् । ययौ ब्रह्मा स्वभवनं विज्वरः सुखमास्थितः ॥३१॥
देवाश्च सर्वे हरिरूपधारिणः स्थिताः सहायार्थमितस्ततो हरेः ।
महाबलाः पर्वतवृक्षयोधिनः प्रतीक्षमाणा भगवन्तमीश्वरम् ॥३२॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥२॥

तृतीयसर्ग

भगवान् का जन्म और बाललीला

श्रीमहादेव उवाच

अथ राजा दशरथः श्रीमान्सत्यपरायणः । अयोध्याधिपतिर्वीरः सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥१॥
सोऽनपत्यत्वदुःखेन पीडितो गुरुमेकदा । वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥२॥

जनक के यहाँ उत्पन्न होगी, उसके साथ मैं तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करूँगा। ऐसा कहकर विष्णु भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये, तब ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा ॥ २८ ॥ भगवान् विष्णु रघुकुल में मनुष्य रूप से अवतार लेंगे। आप लोग भी अपने-अपने अंशों से वानर योनि में उत्पन्न हो, तथा जब तक विष्णु भगवान् पृथ्वी पर रहें तब तक उनकी सहायता करें ॥ २९-३० ॥ इस प्रकार देवताओं को आदेश तथा भूमि को शान्त्वना देकर ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये और चिन्ता रहित होकर सुखपूर्वक रहने लगे ॥ ३१ ॥ तदनन्तर समस्त देवगण पर्वत और वृक्षों के द्वारा युद्ध करने वाले महाबलवान् वानरों का रूप धारणकर भगवान् की सहायता के लिये उनकी प्रतीक्षा करते हुए यत्र-तत्र रहने लगे ॥ ३२ ॥

बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज-
पं०चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया सहितः द्वितीयसर्गः परिपूर्णः ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—एक समय सर्वलोक प्रसिद्ध सत्यपरायण श्रीमान अयोध्याधिपति वीरवर महाराज दशरथ सन्तान न होने से दुःखी अपने कुल के आचार्य गुरुवर वसिष्ठ जी की वन्दना कर इस प्रकार बोले ॥ १-२ ॥ हे स्वामिन्! सर्वलक्षण सम्पन्न पुत्र मुझे किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं? बिना पुत्र के

स्वामिन्पुत्राः कथं मे स्युः सर्वलक्षणलक्षिताः । पुत्रहीनस्य मे राज्यं सर्वं दुःखाय कल्पते ॥३॥
ततोऽब्रवीद्वसिष्ठस्तं भविष्यन्ति सुतास्तव । चत्वारः सत्त्वसम्पन्ना लोकपाला इवापराः ॥४॥
शान्ताभर्तारमानीय ऋष्यशृङ्गं तपोधनम् । अस्माभिः सहितः पुत्रकामेष्टिं शीघ्रमाचर ॥५॥
तथेति मुनिमानीय मन्त्रिभिः सहितः शुचिः । यज्ञकर्म समारेभे मुनिभिर्वीतकल्मषैः ॥६॥
श्रद्धया हूयमानेऽग्नौ तप्तजाम्बूनदप्रभः । पायसं स्वर्णपात्रस्थं गृहीत्वोवाच हव्यवाट् ॥७॥
गृहाण पायसं दिव्यं पुत्रीयं देवनिर्मितम् । लप्स्यसे परमात्मानं पुत्रत्वेन न संशयः ॥८॥
इत्युक्त्वा पायसं दत्त्वा राज्ञे सोऽन्तर्दधेऽनलः । ववन्दे मुनिशार्दूलौ राजा लब्धमनोरथः ॥९॥
वसिष्ठऋष्यशृङ्गाभ्यामनुज्ञातो ददौ हविः । कौसल्यायै सकैकेय्यै अर्धमर्धं प्रयत्नतः ॥१०॥
ततः सुमित्रा सम्प्राप्ता जगृध्नुः पौत्रिकं चरुम् । कौसल्या तु स्वभागार्धं ददौ तस्यै मुदान्विता ।११।
कैकेयी च स्वभागार्धं ददौ प्रीतिसमन्विता । उपभुज्य चरुं सर्वाः स्त्रियो गर्भसमन्विताः ॥१२॥
देवता इव रेजुस्ताः स्वभासा राजमन्दिरे । दशमे मासि कौसल्या सुषुवे पुत्रमद्भुतम् ॥१३॥
मधुमासे सिते पक्षे नवम्यां कर्कटे शुभे । पुनर्वस्वृक्षसहिते उच्चस्थे ग्रहपञ्चके ॥१४॥

यह सम्पूर्ण राज्य मुझे दुःखदायी ही प्रतीत होता है ॥ ३ ॥ तब राजा दशरथ से वशिष्ठ जी बोले— "लोकपालों के सदृश सर्वशक्तिसम्पन्न तुम्हारे चार पुत्र होंगे ॥ ४ ॥ तुम शान्ता के पति तपोधन ऋष्यशृङ्ग को बुलाकर हमलोगों के सहित पुत्रेष्टि-यज्ञ का अनुष्ठान करो ॥ ५ ॥ वशिष्ठ जी के कथनानुसार राजा दशरथ ऋष्यशृङ्ग ऋषि को बुलाकर मन्त्रियों सहित पवित्र होकर निष्पाप मुनिजनों की सहायता से पुत्रेष्टि यज्ञ प्रारम्भ किये ॥ ६ ॥ यज्ञानुष्ठान के समय भक्तिपूर्वक अग्नि में हवन करने पर तप्त काञ्चन की द्युति वाले हव्यवाहन-अग्निभगवान् एक स्वर्णपात्र में पायस लेकर प्रकट हुए और बोले ॥ ७ ॥ हे राजन्! देव निर्मित यह दिव्य-पायस लो। इसके द्वारा निःसन्देह साक्षात् परमात्मा को पुत्र रूप में प्राप्त करोगे ॥ ८ ॥

इस प्रकार कहकर राजा को पायस देकर अग्निदेव अन्तर्ध्यान हो गये। तत्पश्चात् राजा ने सफल मनोरथ होकर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ और ऋष्यशृङ्ग की चरण वन्दना की और उनकी आज्ञा से सावधानी पूर्वक कौसल्या और कैकेयी को आधा-आधा पायस दे दिये ॥ ९-१० ॥ पुत्र प्रदायक चरु को लेने की इच्छा से सुमित्रा जी उस स्थल पर आयी। इसपर प्रसन्नतापूर्वक कौसल्या जी अपने भाग में से आधा पायस सुमित्रा को दी ॥ ११ ॥ कैकेयी ने भी प्रीतिपूर्वक अपने भाग का आधा पायस सुमित्रा को दे दिया। पायस को खाकर सभी स्त्रियाँ गर्भवती हुईं ॥ १२ ॥ वे तीनों रानियाँ राजभवन में अपनी तेज से देवताओं के समान सुशोभित हुईं। गर्भ से दशम महीने में कौसल्या ने अद्भुत पुत्र को उत्पन्न किया ॥ १३ ॥ मधुमास (चैत्र), शुक्लपक्ष, नवमी तिथि, कर्क लग्न में, पुनर्वसु नक्षत्र में जिस समय पाँच ग्रह उच्च राशि पर स्थित थे, सूर्य मेष राशि पर विद्यमान थे, उस समय परमात्मा सनातन जगन्नाथ का आविर्भाव हुआ। उस

मेषं पूषणि सम्प्राप्ते पुष्पवृष्टिसमाकुले । आविरासीज्जगन्नाथः परमात्मा सनातनः ॥१५॥
नीलोत्पलदलश्यामः पीतवासश्चतुर्भुजः । जलजारुणनेत्रान्तः स्फुरत्कुण्डलमण्डितः ॥१६॥
सहस्रार्कप्रतीकाशः किरीटी कुञ्चितालकः । शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः ॥१७॥
अनुग्रहाख्यहृत्स्थेन्दुसूचकस्मितचन्द्रिकः । करुणारससम्पूर्णविशालोत्पललोचनः ।
श्रीवत्सहारकेयूरनूपुरादिविभूषणः ॥१८॥
दृष्ट्वा तं परमात्मानं कौसल्या विस्मयाकुला । हर्षाश्रुपूर्णनयना नत्वा प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥१९॥

कौसल्योवाच

देवदेव नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर । परमात्माऽच्युतोऽनन्तः पूर्णस्त्वं पुरुषोत्तमः ॥२०॥
वदन्त्यगोचरं वाचां बुद्ध्यादीनामतीन्द्रियम् । त्वां वेदवादिनः सत्तामात्रं ज्ञानैकविग्रहम् ॥२१॥
त्वमेव मायया विश्वं सृजस्यवसि हंसि च । सत्त्वादिगुणसंयुक्तस्तुर्य एवामलः सदा ॥२२॥
करोषीव न कर्त्ता त्वं गच्छसीव न गच्छसि । शृणोषि न शृणोषीव पश्यसीव न पश्यसि ॥२३॥
अप्राणो ह्यमनाः शुद्ध इत्यादि श्रुतिरब्रवीत् । समः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्नपि न लक्ष्यसे ॥२४॥

समय आकाश दिव्य पुष्पों की वर्षा से पूर्ण हो गया ॥ १४-१५ ॥ जो नीलकमलदल के समान श्यामवर्ण, पीताम्बर धारण किए हुए, चार भुजाओं से युक्त, नेत्रों के भीतर का हिस्सा अरुण कमल के समान सुशोभित और कानों में कान्तिमान कुण्डल सुशोभित हैं ॥ १६ ॥ जिनका हजारों सूर्यों के समान प्रकाश था, कुण्डल धारण किये हुए, जो कुञ्चित (घुँघराली) अलकों से युक्त, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म एवं वनमाला धारण किए हुए थे ॥ १७ ॥ हृदयस्थ अनुग्रह रूपी चन्द्रमा की सूचना देने वाली जिनके मुखमण्डल पर मधुमुस्कान रूपी चन्द्रिका छिटक रही थी, जिनके करुणरस से परिपूर्ण नयन कमलदल के समान विशाल हैं तथा जो श्रीवत्स, हार, केयूर, नूपुर आदि अलंकारों से सुशोभित हैं ॥ १८ ॥ कौसल्या ने पुत्र-रूप से प्रकट हुए उन परमात्मा को देखकर विस्मय से व्याकुल होकर, नेत्रों में आनन्दाश्रुपूर्ण, हाथ जोड़कर नमस्कार कर कहा ॥ १९ ॥

श्रीकौसल्या जी बोलीं—हे देवाधिदेव ! आपको नमस्कार है; हे शङ्खचक्रगदाधर ! आप अच्युत, अनन्त और परमात्मा हैं, तथा सर्वत्र पूर्ण पुरुषोत्तम हैं ॥ २० ॥ वेदवादी लोग आपको वाणी-बुद्धि और मन से अज्ञेय, अतीन्द्रिय, सत्तामात्र और एकमात्र ज्ञानस्वरूप बतलाते हैं ॥ २१ ॥ आपही सत्व-रज-तम आदि तीनों गुणों से युक्त हो अपनी माया से इस विश्वप्रपञ्च का सृजन, पालन एवं संहार करते हैं, तथापि वास्तव में सर्वदा निर्मल तुरीय पद में विद्यमान रहते हैं ॥ २२ ॥ आप कर्त्ता न होते हुए भी कर्त्ता प्रतीत होते हैं, आप स्थिर होते हुए भी, जाते हुए तथा श्रोता न होते हुए भी श्रोता और द्रष्टा न होते हुए भी द्रष्टा प्रतीत होते हैं ॥ २३ ॥ श्रुति कहती है कि आप सम्पूर्ण जीवों में समान भाव से स्थित हैं तथापि अज्ञानरूपी अन्धकार से ढँके हुए बुद्धि वाले व्यक्तियों को दिखाई नहीं देते, सुबुद्धि पुरुषों को आपका साक्षात्कार होता

अज्ञानध्वान्तचित्तानां व्यक्त एव सुमेधसाम् । जठरे तव दृश्यन्ते ब्रह्माण्डाः परमाणवः ॥२५॥
त्वं ममोदरसम्भूत इति लोकान्विडम्बसे । भक्तेषु पारवश्यं ते दृष्टं मेऽद्य रघूत्तम ॥२६॥
संसारसागरे मग्ना पतिपुत्रधनादिषु । भ्रमामि मायया तेऽद्य पादमूलमुपागता ॥२७॥
देव त्वद्रूपमेतन्मे सदा तिष्ठतु मानसे । आवृणोतु न मां माया तव विश्वविमोहिनी ॥२८॥
उपसंहार विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् । दर्शयस्व महानन्द बालभावं सुकोमलम् ।
ललितालिङ्गनालापैस्तरिष्याम्युत्कटं तमः ॥ २९॥

श्रीभगवानुवाच

यद्यदिष्टं तवास्त्यम्ब तत्तद्भवतु नान्यथा ॥३०॥
अहं तु ब्रह्मणा पूर्वं भूमेर्भारापनुत्तये । प्रार्थितो रावणं हन्तुं मानुषत्वमुपागतः ॥३१॥
त्वया दशरथेनाहं तपसाऽऽराधितः पुरा । मत्पुत्रत्वाभिकाङ्क्षिण्या तथा कृतमनिन्दिते ॥३२॥
रूपमेतत्त्वया दृष्टं प्राक्तनं तपसः फलम् । मद्दर्शनं विमोक्षाय कल्पते ह्यन्यदुर्लभम् ॥३३॥
संवादमावयोर्यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि । स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत् ॥३४ ।
इत्युक्त्वा मातरं रामो बालो भूत्वा रुरोद ह । बालत्वेऽपीन्द्रनीलाभो विशालाक्षोऽतिसुन्दरः ।३५।

है। हे भगवन् ! आपके जठर में अनेकों ब्रह्माण्ड परमाणु तुल्य दिखायी पड़ रहे हैं, तथापि आप मेरे पेट से उत्पन्न हुए इस प्रकार लोगों में प्रकट कर रहे हैं, आप भक्तों के आधीन हैं यह आपकी भक्तवत्सलता मैंने आज देख ली ॥ २४-२६ ॥ मैं आपकी माया से मोहित होकर पति, पुत्र, धन आदि के लोभ में संसार सागर में मग्न थी, आज सौभाग्यवश आपके चरण कमलों के समीप आयी हूँ ॥ २७ ॥ हे देव ! आपका यह रूप हमेशा मेरे हृदय में विराजमान रहे और आपकी विश्वमोहिनी माया मुझे कभी व्याप्त न हो ॥२८॥ हे विश्वात्मन् ! आप अपने अलौकिक रूप का उपसंहार कर परमानन्द दायक सुकोमल बालरूप दिखाइये, जिसके ललित आलिङ्गन और सम्भाषण आदि से मैं उत्कट अज्ञानान्धकार को पार कर जाऊँगी ॥ २९ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे अम्ब ! आपकी जो इच्छा है वही हो, इसके विपरीत कुछ भी न हो। पूर्व समय में भूमि का भार हरण करने के लिए ब्रह्मा ने मुझसे प्रार्थना की थी, अतः रावणादि राक्षसों को मारने के लिए मैं मनुष्य रूप से अवतरित हूँ ॥ ३०-३१ ॥ हे अनिन्दिते ! पूर्वकाल में आप दशरथ जी सहित मेरी तपस्या कर मुझे पुत्र रूप में प्राप्त करने की इच्छा की थी। अतः इस समय प्रकट होकर मैं उसे पूर्ण किया ॥ ३२ ॥ तुमने पूर्वजन की तपस्या के प्रभाव से यह मेरा दिव्य रूप देखा है। मेरा दर्शन मोक्ष-पद देनेवाला होता है, पापियों का इसका दर्शन परम दुर्लभ है ॥ ३३ ॥ जो व्यक्ति इस आख्यान को पढ़ेगा अथवा श्रवण करेगा, वह मेरे सारूप्य मुक्ति प्राप्त करेगा तथा मरण के समय उसे मेरी स्मृति होगी ॥ ३४ ॥ इस प्रकार माता से कहकर बाल रूप धारण कर रुदन करने लगे। उनका बालरूप भी

बालारुणप्रतीकाशो लालिताखिललोकपः ।
अथ राजा दशरथः श्रुत्वा पुत्रोद्भवोत्सवम् । आनन्दार्णवमग्नोऽसावाययौ गुरुणा सह ॥३६॥
रामं राजीवपत्राक्षं दृष्ट्वा हर्षाश्रुसम्प्लुतः । गुरुणा जातकर्माणि कर्त्तव्यानि चकार सः ॥३७॥
कैकेयी चाथ भरतमसूत कमलेक्षणा । सुमित्रायां यमौ जातौ पूर्णेन्दुसदृशाननौ ॥३८॥
तदा ग्रामसहस्राणि ब्राह्मणेभ्यो मुदा ददौ । सुवर्णानि च रत्नानि वासांसि सुरभीः शुभाः ॥३९॥
यस्मिन् रमन्ते मुनयो विद्ययाऽज्ञानविप्लवे । तं गुरुः प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि ॥४०॥
भरणाद्भरतो नाम लक्ष्मणं लक्षणान्वितम् । शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारमेवं गुरुरभाषत ॥४१॥
लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च । द्वन्द्वीभूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारतः ॥४२॥
रामस्तु लक्ष्मणेनाथ विचरन्बाललीलया । रमयामास पितरौ चेष्टितैर्मुग्धभाषितैः ॥४३॥
भाले स्वर्णमयाश्वत्थपर्णमुक्ताफलप्रभम् । कण्ठे रत्नमणिव्रातमध्यद्वीपिनखाञ्चितम् ॥४४॥
कर्णयोः स्वर्णसम्पन्नरत्नार्जुनसटालुकम् । शिञ्जानमणिमञ्जीरकटिसूत्राङ्गदैर्वृतम् ॥४५॥

इन्द्र नीलमणि के समान श्यामवर्ण और विशाल नेत्रों वाला अत्यन्त सुन्दर था ॥ ३५ ॥ उनकी कान्ति बाल-सूर्य के समान थी, भगवान् के अवतरित होने पर इन्द्रादि सम्पूर्ण लोकपाल आनन्दित हुए । तत्पश्चात् राजा दशरथ जी ने पुत्रोत्पत्ति के उत्सव का समाचार सुनकर आनन्द सागर में मग्न होकर अपने गुरु वसिष्ठ के साथ आये ॥ ३६ ॥ राजा दशरथ कमलनयन श्रीराम को देखकर आनन्दाश्रुओं से युक्त हो गये और गुरुजी के द्वारा जात-कर्म आदि संस्कार किये ॥ ३७ ॥

तदनन्तर कैकेयी से कमल के समान नेत्र वाले भरत का जन्म हुआ और सुमित्रा से पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले यमल पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ उस समय महाराज दशरथ उल्लास में सहस्रों ग्राम, सुवर्ण, रत्न, वस्त्र, शुभ लक्षण से युक्त गौ आदि ब्राह्मणों को दान दिये ॥ ३९ ॥ विज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश होने पर जिसमें मुनि जन रमण करते हैं, अथवा अपनी सुन्दरता से जो अपने भक्तजनों के चित्तों को आनन्दित करते हैं, गुरु वशिष्ठ जी ने उनका नाम 'राम' रखा ॥ ४० ॥ गुरु वशिष्ठ जी ने संसार का भरण-पोषण करने से द्वितीय बालक का नाम भरत तथा सर्वलक्षण सम्पन्न होने से तृतीय पुत्र का नाम लक्ष्मण तथा शत्रुओं के हनन करने वाला होने से चतुर्थ पुत्र का नाम शत्रुघ्न रखा ॥ ४१ ॥ पायस के अंश के अनुसार लक्ष्मण और राम एक साथ तथा भरत और शत्रुघ्न एक साथ रहने लगे ॥ ४२ ॥ लक्ष्मण जी के साथ विचरण करते हुए श्री रामचन्द्र जी अपनी बाललीला, चेष्टा तथा भोली-भाली बातों से माता-पिता को आनन्दित करने लगे ॥ ४३ ॥ ये ललाट पर मोतियों से सुसज्जित सुवर्णमय अश्वत्थपत्र (पीपल का पत्ता) तथा गले में व्याघ्रनख से सुसज्जित रत्न तथा मणियों की माला से सुशोभित है ॥ ४४ ॥ दोनों कानों में अर्जुनवृक्षों के कच्चे फलों के समान रत्न जटित सुवर्ण के आभूषण धारण किये हैं और रमणीय शब्द करने वाले मणिमय नूपुर और मेखला और बाजूबन्द धारण किए हैं ॥ ४५ ॥ इन्द्रनीलमणि तुल्य कान्ति वाले

स्मितवक्त्राल्पदशनमिन्द्रनीलमणिप्रभम् । अङ्गणे रिङ्गमाणं तं तर्णकाननु सर्वतः ॥४६॥
दृष्ट्वा दशरथो राजा कौसल्या मुमुदे तदा । भोक्ष्यमाणो दशरथो राममेहीति चासकृत् ।४७॥
आह्वयत्यतिहर्षेण प्रेम्णा नायाति लीलया । आनयेति च कौसल्यामाह सा सस्मिता सुतम् ।४८।
धावत्यपि न शक्नोति स्प्रष्टुं योगिमनोगतिम् । प्रहसन्स्वयमायाति कर्दमाङ्कितपाणिना ॥४९॥
किञ्चिद्गृहीत्वा कवलं पुनरेव पलायते । कौसल्या जननी तस्य मासि मासि प्रकुर्वती ॥५०॥
वायनानि विचित्राणि समलङ्कृत्य राघवम् ।
अपूपान्मोदकान्कृत्वा कर्णशष्कुलिकास्तथा । कर्णपूरांश्च विविधान् वर्षवृद्धौ च वायनम् ॥५१॥
गृहकृत्यं तया त्यक्तं तस्य चापल्यकारणात् । एकदा रघुनाथोऽसौ गतो मातरमन्तिके ॥५२॥
भोजनं देहि मे मातर्न श्रुतं कार्यसक्तया । ततः क्रोधेन भाण्डानि लगुडेनाहनत्तदा ॥५३॥
शिक्यस्थं पातयामास गव्यं च नवनीतकम् । लक्ष्मणाय ददौ रामो भरताय यथाक्रमम् ।५४।
शत्रुघ्नाय ददौ पश्चाद्दधि दुग्धं तथैव च । सूदेन कथिते मात्रे हास्यं कृत्वा प्रधावति ॥५५॥
आगतां तां विलोक्याथ ततः सर्वैः पलायितम् । कौसल्या धावमानापि प्रस्खलन्ती पदे पदे ।५६।
रघुनाथं करे धृत्वा किञ्चिन्नोवाच भामिनी । बालभावं समाश्रित्य मन्दं मन्दं रुरोद ह ॥५७॥

अल्प दाँतों से युक्त मधुर मुस्कान युक्त मुख वाले आङ्गन में बछड़े के पीछे-पीछे सभी ओर बालगति से श्रीरामचन्द्र को दौड़ते देख महाराजा दशरथ और रानी कौसल्या अति आनन्दित होते थे। भोजन करते समय राजा दशरथ अति हर्ष और प्रेमपूर्वक हे राम! यहाँ आओ ऐसा कहकर बारम्बार बुलाते थे। खेल में लीन रहने के कारण श्रीरामचन्द्र जी के न आने पर कौसल्या से पकड़ लाने को कहते थे। परन्तु जो योगिजनों के चित्त के आश्रयीभूत हैं, ऐसे पुत्र को कौसल्या जी हँसकर दौड़ती हुई नहीं पकड़ पातीं, किन्तु हाथ में कीचड़ लगाये हुए स्वयं हीं आ जाते और एकाध ग्रास खाकर फिर भाग जाते थे। माता कौसल्या श्रीराम को उत्तम प्रकार से वस्त्रालंकारों से सुसज्जित कर प्रतिमास अनेक प्रकार के मिष्ठान्न बनाकर उत्सव मनाती थी। वर्धापन (वर्षगाँठ) के दिन पूआ, लड्डू, जलेबी और कचौड़ी आदि विविध उपकरण बनाकर उत्सव मनाती थीं ॥ ४६-५१ ॥ श्रीराम जी की चञ्चलता के कारण माता कौसल्या सम्पूर्ण गृह-कार्य छोड़ दी थीं। एक समय श्रीरघुनाथ जी माता के समीप गये ॥ ५२ ॥ माता के पास जाकर बोले कि हे माता! मुझे भोजन दो। किन्तु कार्य में व्यस्त रहने के कारण माता सुन न सकी। इस पर क्रोधित होकर लगुड (डण्डा) से बर्तनों को फोड़ दिये ॥ ५३ ॥ छींके पर रखे हुए दूध और माखन गिरा कर क्रमशः लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न को दे दिये। रसोइयादार के कहने पर माता कौसल्या हँसती हुई पकड़ने के लिए दौड़ी ॥ ५४-५५ ॥ माता को आती हुई देख कर सभी लड़के भाग गये। उनके पीछे माता कौसल्या दौड़ती हुई पग-पग पर गिर जाती थी ॥ ५६ ॥ पश्चात् श्रीराम जी का हाथ पकड़ कर माता कौसल्या कुछ भी नहीं बोली। उस समय बालक जैसे धीरे-धीरे भगवान् रुदन करने लगे ॥५७॥

ते सर्वे लालिता मात्रा गाढमालिङ्ग्य यत्नतः। एवमानन्दसन्दोहजगदानन्दकारकः ॥५८॥
मायाबालवपुर्धृत्वा रमयामास दम्पती। अथ कालेन ते सर्वे कौमारं प्रतिपेदिरे।।५९॥
उपनीता वसिष्ठेन सर्वविद्याविशारदाः। धनुर्वेदे च निरताः सर्वशास्त्रार्थवेदिनः ॥६०॥
बभूवुर्जगतां नाता लीलया नररूपिणः। लक्ष्मणस्तु सदा राममनुगच्छति सादरम् ॥६१॥
सेव्यसेवकभावेन शत्रुघ्नो भरतं तथा। रामश्चापधरो नित्यं तूणीबाणान्वितः प्रभुः।६२।
अश्वारूढो वनं याति मृगयायै सलक्ष्मणः। हत्वा दुष्टमृगान्सर्वान्पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥६३॥
प्रातरुत्थाय सुस्नातः पितरावभिवाद्य च। पौरकार्याणि सर्वाणि करोति विनयान्वितः ॥६४॥
बन्धुभिः सहितो नित्यं भुक्त्वा मुनिभिरन्वहम्। धर्मशास्त्ररहस्यानि शृणोति व्याकरोति च।६५।

एवं परमात्मा मनुजावतारो मनुष्यलोकाननुसृत्य सर्वम्।
चक्रेऽविकारी परिणामहीनो विचार्यमाणे न करोति किञ्चित् ॥ ६६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

—*—

उन सबों को माता ने बड़े प्रेम से हृदय से लगाकर आलिंगन कर प्यार किया। इस प्रकार जगत् को आनन्द देने वाले आनन्दकन्द-भगवान् श्रीराम मायामय बालक का रूप धारण कर दम्पती को आनन्दित करने लगे। कुछ समय व्यतीत होने पर सभी भाई कौमारावस्था में प्रविष्ट हुए ॥ ५८-५९ ॥

गुरु वशिष्ठ जी चारो भाइयों का यज्ञोपवीत संस्कार किए और लीला से मनुष्य रूप धारण करने वाले सम्पूर्ण लोकों के स्वामी चारो भाई सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता और धनुर्वेद में निपुण हो गये ॥ ६० ॥ श्री लक्ष्मण जी आदर-पूर्वक सेव्य-सेवक भाव से सदा श्रीरामचन्द्र जी का अनुगमन करते थे ॥ ६१ ॥ इसी प्रकार शत्रुघ्न सेव्य-सेवक भाव से भरत जी की सेवा करते थे। श्रीरामचन्द्र जी प्रतिदिन लक्ष्मण जी के साथ धनुष, वाण और तरकस धारण कर घोड़े पर सवार होकर शिकार खेलने के लिए जंगल में जाते और मृगादि पशुओं का हनन कर उनकी बात को अपने पिता से निवेदन करते थे ॥ ६२-६३ ॥ प्रातःकाल उठकर शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर माता-पिता का अभिवादन कर विनम्रता पूर्वक नगर-निवासियों का कार्य करते थे ॥ ६४ ॥ पुनः बन्धुओं सहित मुनिजनों के द्वारा धर्मशास्त्र का रहस्य सुनते तथा उसकी व्याख्या भी करते थे ॥ ६५ ॥ इस प्रकार अविकारी परिणामहीन परमात्मा मनुष्य का रूप धारण कर मनुष्य के समान आचरण किये। वास्तविक विचार किया जाय तो वे कुछ कार्य नहीं करते ॥ ६६ ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितयाभाषा
टीकयासहितस्तृतीयसर्गः परिपूर्णः ॥ ३ ॥

चतुर्थसर्ग

विश्वामित्र जी का आगमन, राम और लक्ष्मण का उनके साथ जाना और ताड़का वध करना

श्रीमहादेव उवाच

कदाचित्कौशिकोऽभ्यागादयोध्यां ज्वलनप्रभः । द्रष्टुं रामं परात्मानं जातं ज्ञात्वा स्वमायया ।१।
दृष्ट्वा दशरथो राजा प्रत्युत्थायाचिरेण तु । वसिष्ठेन समागम्य पूजयित्वा यथाविधि ॥२॥
अभिवाद्य मुनिं राजा प्राञ्जलिर्भक्तिनम्रधीः । कृतार्थोऽस्मि मुनीन्द्राहं त्वदागमनकारणात् ॥३॥
त्वद्विधा यद्‌गृहं यान्ति तत्रैवायान्ति सम्पदः । यदर्थमागतोऽसि त्वं ब्रूहि सत्यं करोमि तत् ।४।
विश्वामित्रोऽपि तं प्रीतः प्रत्युवाच महामतिः । अहं पर्वणि सम्प्राप्ते दृष्ट्वा यष्टुं सुरान्पितॄन् ।५॥
यदारभे तदा दैत्या विघ्नं कुर्वन्ति नित्यशः । मारीचश्च सुबाहुश्चापरे चानुचरास्तयोः ॥६॥
अतस्तयोर्वधार्थाय ज्येष्ठं रामं प्रयच्छ मे । लक्ष्मणेन सह भ्राता तव श्रेयो भविष्यति ॥७॥
वसिष्ठेन सहामन्त्र्य दीयतां यदि रोचते । पप्रच्छ गुरुमेकान्ते राजा चिन्तापरायणः ॥८॥
किं करोमि गुरो रामं त्यक्तुं नोत्सहते मनः । बहुवर्षसहस्रान्ते कष्टेनोत्पादिताः सुताः ॥९॥
चत्वारोऽमरतुल्यास्ते तेषां रामोऽतिवल्लभः । रामस्त्वितो गच्छति चेन्न जीवामि कथञ्चन ॥१०॥

श्री महादेव जी बोले—एक समय अग्नि के समान देदीप्यमान विश्वामित्र मुनि परमात्मा अपनी माया से रामावतार धारण किए हैं यह जानकर उनका दर्शन करने के लिए अयोध्यापुरी आए ॥ १ ॥ विश्वामित्र मुनि को देखकर महाराजा दशरथ शीघ्र ही उठ खड़े हुए तथा वसिष्ठमुनि के साथ आकर यथाविधि उनकी पूजा किए ॥ २ ॥ मुनि का अभिवादन कर राजा ने मुनि से कहा—हे मुनीन्द्र ! आपके आगमन से मैं कृतार्थ हूँ ॥ ३ ॥ आप जैसे महानुभावों का जिस घर में पादार्पण होता है, वहीं पर सभी सम्पत्तियाँ आ जाती हैं। आप जिसनिमित्त आये हों मुझसे कहिए, मैं उसका अवश्य पालन करूँगा ॥ ४ ॥

महामति विश्वामित्र जी उनपर प्रसन्न होकर बोले—पर्वकाल उपस्थित होने पर देव और पितरों के लिये जब मैं यज्ञ प्रारम्भ करता हूँ तो मारीच, सुबाहु और अन्य उनके अनुचर दैत्यगण उसमें विघ्न उपस्थित करते हैं ॥ ५-६ ॥ अतः उन दोनों को मारने के लिये लक्ष्मण के सहित बड़े लड़के श्रीराम को मुझे देदें, इसमें आपका भी कल्याण होगा ॥ ७ ॥ यदि आपकी ईच्छा हो तो वशिष्ठ जी से विचार-विमर्श कर मुझे देदें। तदनन्तर चिन्ता से व्याकुल राजा दशरथ एकान्त में अपने गुरु से प्रश्न किये ॥ ८ ॥ हे गुरुप्रवर ! हजारों वर्ष व्यतीत होने पर अत्यन्त कष्ट से मुझे ये देवताओं के समान चार पुत्र हुए हैं। इनमें भी राम मुझे अत्यन्त प्रिय है, मैं क्या करूँ ? मेरा मन राम को छोड़ने के लिये तैयार नहीं है। राम को चले जाने पर मैं किसी प्रकार भी जीवित नहीं रह सकूँगा ॥ ९-१० ॥ यदि मैं विपरीत जबाब दूँ तो निश्चय ही मुनि शाप

प्रत्याख्यातो यदि मुनिः शापं दास्यत्यसंशयः । कथं श्रेयो भवेन्मह्यमसत्यं चापि न स्पृशेत् ।११।

वसिष्ठ उवाच ।

शृणु राजन्देवगुह्यं गोपनीयं प्रयत्नतः । रामो न मानुषो जातः परमात्मा सनातनः ॥१२॥
भूमेर्भारावताराय ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा । स एव जातो भवने कौसल्यायां तवानघ ॥१३॥
त्वं तु प्रजापतिः पूर्वं कश्यपो ब्रह्मणः सुतः ।
कौसल्या चादितिर्देवमाता पूर्वं यशस्विनी । भवन्तौ तप उग्रं वै तेपाथे बहुवत्सरम् ॥१४॥
अग्राम्यविषयौ विष्णुपूजाध्यानैकतत्परौ । तदा प्रसन्नो भगवान्वरदो भक्तवत्सलः ॥१५॥
वृणीष्व वरमित्युक्ते त्वं मे पुत्रो भवामल । इति त्वया याचितोऽसौ भगवान्भूतभावनः ॥१६॥
तथेत्युक्त्वाऽद्य पुत्रस्ते जातो रामः स एव हि । शेषस्तु लक्ष्मणो राजन् राममेवान्वपद्यत ॥१७॥
जातौ भरतशत्रुघ्नौ शंखचक्रे गदाभृतः । योगमायाऽपि सीतेति जाता जनकनन्दिनी ॥१८॥
विश्वामित्रोऽपि रामाय तां योजयितुमागतः । एतद्गुह्यतमं राजन्न वक्तव्यं कदाचन ॥१९॥
अतः प्रीतेन मनसा पूजयित्वाऽथ कौशिकम् । प्रेषयस्व रमानाथं राघवं सह लक्ष्मणम् ॥२०॥

देगें। अतः किस प्रकार मेरा कल्याण हो और मैं असत्य से भी बच सकूँ, यह मुझे बतलाइये ॥ ११ ॥ वशिष्ठजी बोले—हे राजन् देवताओं से गुप्त रखने योग्य बात सुनिये। राम मनुष्य नहीं हैं, साक्षात् पुराण पुरुष परमात्मा ही अपनी माया से इस रूप में प्रकट हुए हैं ॥ १२ ॥

हे अनघ! प्राचीन समय में भूमि का भार हरण करने के लिये ब्रह्मा जी ने भगवान् से प्रार्थना की थी, उसे पूरा करने के लिये परमात्मा कौसल्या के गर्भ से आपके घर प्रादुर्भूत हुये हैं ॥ १३ ॥ पूर्वजन्म में आप ब्रह्मा जी के पुत्र प्रजापति कश्यप थे, और यशस्विनी कौसल्या देवताओं की माता अदिति थी। उस समय दोनों व्यक्ति सम्पूर्ण ग्राम्य-भोगों का त्याग कर बहुत वर्षों तक एक मात्र भगवान् विष्णु की पूजा तथा ध्यान में तत्पर रहकर कठिन तपस्या किये। भगवान् प्रसन्न होकर तुम दोनों से वर माँगने के लिये कहे। तदनन्तर आपने वर माँगा कि हे निरञ्जन! आप मेरे पुत्र हों। तब भूतभावन भगवान् ने "ऐसा ही हो" यह वरदान दी। अतः वे ही श्रीविष्णुभगवान् इस समय श्रीराम के रूप में आपके पुत्र हुए हैं और (उनकी सेवा के लिये) शेषजी लक्ष्मण के रूप में प्रकट होकर उनके अनुयायी हुये हैं ॥ १४-१७ ॥

गदाधर भगवान् के शङ्ख और चक्र ने भरत और शत्रुघ्न के रूप में अवतार लिये हैं, उनकी योगमाया श्रीजनक जी की पुत्री सीताजी के रूप में प्रकट हुई है ॥ १८ ॥ श्रीविश्वामित्र जी राम और योगमाया से संयोग कराने हेतु आए हैं। हे राजन्! यह गोपनीय रहस्य किसी समय किसी से भी नहीं बताना ॥ १९ ॥ इसलिये आप प्रसन्न मन श्रीविश्वामित्र जी का पूजन कर लक्ष्मीपति श्रीरघुनाथ जी को लक्ष्मण के साथ इनके साथ भेज दें ॥ २० ॥

वसिष्ठेनैवमुक्तस्तु राजा दशरथस्तदा । कृतकृत्यमिवात्मानं मेने प्रमुदितान्तरः ॥२१॥
आहूय रामरामेति लक्ष्मणेति च सादरम् । आलिङ्ग्य मूर्ध्न्यवघ्राय कौशिकाय समर्पयत् ॥२२॥
ततोऽतिहृष्टो भगवान्विश्वामित्रः प्रतापवान् । आशीर्भिरभिनन्द्याथ आगतौ रामलक्ष्मणौ ॥२३॥
गृहीत्वा चापतूणीरबाणखड्गधरौ ययौ । किञ्चिद्देशमतिक्रम्य राममाहूय भक्तितः ॥२४॥
ददौ बलां चातिबलां विद्ये द्वे देवनिर्मिते । ययोर्ग्रहणमात्रेण क्षुत्क्षामादि न जायते ॥२५॥
तत उत्तीर्य गङ्गां ते ताटकावनमागमन् । विश्वामित्रस्तदा प्राह रामं सत्यपराक्रमम् ॥२६॥
अत्रास्ति ताटका नाम राक्षसी कामरूपिणी । बाधते लोकमखिलं जहि तामविचारयन् ॥२७॥
तथेति धनुरादाय सगुणं रघुनन्दनः । टङ्कारमकरोत्तेन शब्देनापूरयद्वनम् ॥२८॥
तच्छ्रुत्वाऽसहमाना सा ताटका घोररूपिणी । क्रोधसंमूर्च्छिता राममभिदुद्राव मेघवत् ॥२९॥
तामेकेन शरेणाशु ताडयामास वक्षसि । पपात विपिने घोरा वमन्ती रुधिरं बहु ॥३०॥
ततोऽतिसुन्दरी यक्षी सर्वाभरणभूषिता । शापात्पिशाचतां प्राप्ता मुक्ता रामप्रसादतः ॥३१॥
नत्वा रामं परिक्रम्य गता रामाज्ञया दिवम् ॥३२॥

इस प्रकार राजा दशरथ से वसिष्ठ जी के कहने पर प्रसन्नचित्त राजा अपने को कृतकृत्य समझे ॥२१॥ इसके बाद राम और लक्ष्मण को बुलाकर आलिङ्गन किये तथा सिर को सूँघकर श्रीविश्वामित्र जी को सौंप दिये ॥ २२ ॥

अनन्तर अत्यन्त प्रसन्नचित्त प्रतापवान् भगवान् विश्वामित्र जी आशिर्वचनों से अभिनन्दन किये और धनुष, तरकश, बाण एवं खड्ग आदि से सुसज्जित होकर आये हुए राम और लक्ष्मण को लेकर चल दिये। थोड़े दूर जाकर विश्वामित्र जी ने भक्ति-पूर्वक राम को बुलाकर देवनिर्मित बला और अतिबला नामक दो विद्याएँ दीं, जिसके ग्रहण करने से क्षुधा और दुर्बलता आदि बाधा नहीं होती ॥ २३-२५ ॥ इसके बाद गङ्गाजी को पार कर ताटकावन आकर विश्वामित्र जी सत्यपराक्रमी राम से बोले—हे राम ! इस स्थान पर अपने इच्छा के अनुरूप रूप धारण करने वाली ताटका नाम की राक्षसी रहती है, जो यहाँ रहने वालों को अत्यन्त कष्ट देती है, तुम बिना कुछ सोच-विचार किये उसका बध करो ॥ २७ ॥

"तथा इति" ऐसा कहकर श्री रघुनाथ जी ने धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर टङ्कार किया, जिसके शब्द से वह सम्पूर्ण वन शब्दायमान हो गया ॥ २८ ॥ उस शब्द को सुनकर घोररूपिणी ताटका उसे सहन न करने से क्रोध से पागल होकर मेघ के समान राम की ओर दौड़ी ॥ २९ ॥

उसके वक्षःस्थल में एक बाण राम ने मारा। जिससे घोरराक्षसी मुख से रुधिर वमन करते हुए वन में गिर पड़ी ॥ ३० ॥ इसके बाद वह शापवश पिशाच हुई तथा श्रीराम की कृपा से शाप से मुक्त होकर सर्वालङ्कार से विभूषित होकर परम यक्षिणी हो गई और श्रीरामचन्द्र जी की परिक्रमा कर स्वर्गलोक को चली गयी ॥ ३१-३२ ॥

ततोऽतिहृष्टः परिरभ्य रामं मूर्धन्यवघ्राय विचिन्त्य किञ्चित् ।
सर्वास्त्रजालं सरहस्यमन्त्रं प्रीत्याऽभिरामाय ददौ मुनीन्द्रः ॥३३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायण उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥४॥

पञ्चमसर्गः

मारीच और सुबाहु का दमन तथा अहल्योद्धार

॥ श्रीमहादेव उवाच ॥

तत्र कामाश्रमे रम्ये कानने मुनिसङ्कुले । उषित्वा रजनीमेकां प्रभाते प्रस्थिताः शनैः ॥ १ ॥
सिद्धाश्रमं गताः सर्वे सिद्धचारणसेवितम् । विश्वामित्रेण सन्दिष्टा मुनयस्तन्निवासिनः ॥ २ ॥
पूजां च महतीं चक्रू रामलक्ष्मणयोर्द्रुतम् । श्रीरामः कौशिकं प्राह मुने दीक्षां प्रविश्यताम् ॥ ३ ॥
दर्शयस्व महाभाग कुतस्तौ राक्षसाधमौ । तथेत्युक्त्वा मुनिर्यष्टुमारेभे मुनिभिः सह ॥ ४ ॥
मध्याह्ने ददृशाते तौ राक्षसौ कामरूपिणौ । मारीचश्च सुबाहुश्च वर्षन्तौ रुधिरास्थिनी ॥ ५ ॥

तदनन्तर मुनिवर विश्वामित्र परमानन्दित होकर रामजी का अलिङ्गन किये और उनके सिर को सूँघकर कुछ सोच समझकर रहस्य सहित मन्त्र और समस्त अस्त्र-शस्त्र प्रतिपूर्वक अभिराम राम को दे दिये ॥ ३३ ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंबादे बालकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितया भाषाटीकयासहितः चतुर्थसर्गः परिपूर्णः ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती ! इसके बाद विश्वामित्र जी के साथ वे दोनों भाई एक रात मुनिजन सङ्कुलित परमरम्य उस कामाश्रम वन (इस स्थान पर श्रीशिवजी ने कामदेव को भस्म किया था) में रहकर प्रातःकाल होने पर धीरे-धीरे प्रस्थान किये ॥ १ ॥ पुनः सिद्ध और चारणों से सुसेवित सिद्धाश्रम पर आये । विश्वामित्र जी की आज्ञा से वहाँ के निवासी मुनिजनों ने शीघ्रता पूर्वक राम और लक्ष्मण का अतिसत्कार किया । तत्पश्चात् श्री रामचन्द्रजी ने विश्वामित्रजी से कहा—हे मुने ! अब आप यज्ञ प्रारम्भ करें ॥ २-३ ॥ हे महाभाग ! मुझे दिखावें कि दोनों राक्षसाधम कहा हैं । मुनिवर ने बहुत अच्छा ऐसा कह मुनिगण के साथ यज्ञ करना प्रारम्भ किया ॥ ४ ॥

मध्याह्न के समय कामरूप धारण करने वाले मारीच और सुबाहु रुधिर और अस्थि की वर्षा करते

रामोऽपि धनुरादाय द्वौ बाणौ सन्दधे सुधीः । आकर्णान्तं समाकृष्य विससर्ज तयोः पृथक् ॥ ६ ॥
तयोरेकस्तु मारीचं भ्रामयन् शतयोजनम् । पातयामास जलधौ तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७ ॥
द्वितीयोऽग्निमयो बाणः सुबाहुमजयत्क्षणात् । अपरे लक्ष्मणेनाशु हतास्तदनुयायिनः ॥ ८ ॥
पुष्पौघैराकिरन्देवा राघवं सहलक्ष्मणम् । देवदुन्दुभयो नेदुस्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ॥ ९ ॥
विश्वामित्रस्तु सम्पूज्य पूजार्हं रघुनन्दनम् । अङ्के निवेश्य चालिङ्गय भक्त्या वाष्पाकुलेक्षणः १०
भोजयित्वा सह भ्रात्रा रामं पक्वफलादिभिः । पुराणवाक्यैर्मधुरैर्निनाय दिवसत्रयम् ॥११॥
चतुर्थेऽहनि सम्प्राप्ते कौशिको राममब्रवीत् । राम राम महायज्ञं द्रष्टुं गच्छामहे वयम् ॥१२॥
विदेहराजनगरे जनकस्य महात्मनः । तत्र माहेश्वरं चापमस्ति न्यस्तं पिनाकिना ॥१३॥
द्रक्ष्यसि त्वं महासत्त्वं पूज्यसे जनकेन च । इत्युक्त्वा मुनिभिस्ताभ्यां ययौ गङ्गासमीपगम् ॥१४॥
गौतमस्याश्रमं पुण्यं यत्राहल्यास्थिता तपः । दिव्यपुष्पफलोपेतपादपैः परिवेष्टितम् ॥१५॥
मृगपक्षिगणैर्हीनं नानाजन्तुविवर्जितम् । दृष्ट्वोवाच मुनिं श्रीमान् रामो राजीवलोचनः ॥१६॥
कस्यैतदाश्रमपदं भाति भास्वच्छुभं महत् । पत्रपुष्पफलैर्युक्तं जन्तुभिः परिवर्जितम् ॥१७॥

दिखायी दिये ॥ ५ ॥ बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्र भी धनुष लेकर उसपर दो बाण चढ़ाये और कर्ण पर्यन्त खींचकर पृथक्-पृथक् दोनों राक्षसों की ओर छोड़ दिये ॥ ६ ॥ उनमें से एक बाण मारीच को लेकर घुमाता हुआ सौ योजन दूर समुद्र में गिरा दिया, यह एक आश्चर्य जनक घटना हुई ॥ ७ ॥ अग्नितुल्य दूसरा बाण क्षणभर में सुबाहु को भस्म कर दिया और उनके अनुयायियों को शीघ्र ही लक्ष्मण जी ने मार दिया ॥ ८ ॥ उस समय देवगण श्रीराम और लक्ष्मणजी पर फूल की वर्षा किये और देव दुन्दुभि बजाये, तथा सिद्धचारण गण उनकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ श्रीविश्वामित्र जी पूजनीय रघुनन्दन का पूजन कर गोद में बैठाकर भक्तिपूर्वक प्रेमाश्रु से पूर्ण हो आलिङ्गन किये ॥ १० ॥

पुनः भाई लक्ष्मण के साथ राम को सुपक्व फल आदि खिलाकर पुराण और इतिहास की सुमधुर कथाएँ सुनाते हुये तीन दिन निवास किये ॥ ११ ॥ चतुर्थ दिन आने पर श्री विश्वामित्र जी श्रीराम से बोले— हे राम ! महात्मा जनक जी का महायज्ञ देखने के लिये जनकपुर में चलना है। वहाँ धरोहर के रूप में श्री महादेवजी का रखा हुआ बड़ाभारी धनुष है ॥ ११-१३ ॥ वह सुदृढ़ धनुष तुम देखोगे और महाराज जनक तुम्हारा पूजन करेंगे। विश्वामित्र जी इस प्रकार कहकर राम और लक्ष्मण को साथ लेकर गंगाजी के समीप श्रीगौतमऋषि के पुण्य आश्रम पर गये। वह आश्रम दिव्य और पवित्र फलों वाले वृक्षों से सुसज्जित था और अहल्या वहाँ जप कर रही थी ॥ १४-१५ ॥ मृगादि पक्षियों और वन्यजन्तुओं से रहित इस आश्रम को देखकर राजीवलोचन श्रीमान् रामजी मुनिश्रेष्ठ कौशिक से बोले ॥ १६ ॥ पत्र, पुष्प फल आदि से सुसम्पन्न, जीवजन्तुओं से रहित अत्यन्त सुन्दर, रमणीय और पवित्र दीख रहा है, यह आश्रम किसका है ॥ १७ ॥

आह्लादयति मे चेतो भगवन् ब्रूहि तत्त्वतः ॥१८॥

विश्वामित्र उवाच

शृणु राम पुरा वृत्तं गौतमो लोकविश्रुतः । सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठस्तपसाराधयन् हरिम् ॥१९॥
तस्मै ब्रह्मा ददौ कन्यामहल्यां लोकसुन्दरीम् । ब्रह्मचर्येण सन्तुष्टः शुश्रूषणपरायणाम् ॥२०॥
तया सार्धमिहावात्सीद्गौतमस्तपतां वरः । शक्रस्तु तां धर्षयितुमन्तरं प्रेप्सुरन्वहम् ॥२१॥
कदाचिन्मुनिवेषेण गौतमे निर्गते गृहात् । धर्षयित्वाऽथ निरगात्त्वरितं मुनिरप्यगात् ॥२२॥
दृष्ट्वा यान्तं स्वरूपेण मुनिः परमकोपनः । पप्रच्छ कस्त्वं दुष्टात्मन्मम रूपधरोऽधमः ॥२३॥
सत्यं ब्रूहि न चेद्भस्म करिष्यामि न संशयः । सोऽब्रवीद्देवराजोऽहं पाहि मां कामकिङ्करम् ।२४॥
कृतं जुगुप्सितं कर्म मया कुत्सितचेतसा । गौतमः क्रोधताम्राक्षः शशाप दिविजाधिपम् ।२५।
योनिलम्पट दुष्टात्मन्सहस्रभगवान्भव । शप्त्वा तं देवराजानं प्रविश्य स्वाश्रमं द्रुतम् ॥२६॥
दृष्ट्वाहल्यां वेपमानां प्राञ्जलिं गौतमोऽब्रवीत् । दुष्टे त्वं तिष्ठ दुर्वृत्ते शिलायामाश्रमे मम ॥२७॥
निराहारा दिवारात्रं तपः परममास्थिता । आतपानिलवर्षादिसहिष्णुः परमेश्वरम् ॥२८॥

इसे देखकर मेरा मन आह्लादित हो रहा है, इस तत्त्व को आप मुझसे कहिये। विश्वामित्र जी बोले—हे राम ! इसका प्राक्तन वृत्तान्त सुनो। पूर्वसमय में लोकविश्रुत धार्मिक-श्रेष्ठ मुनिवर गौतमजी तपस्या से श्रीहरि की आराधना करते हुये इस आश्रम में निवास करते थे ॥ १९ ॥ उनके ब्रह्मचर्य से प्रसन्न होकर श्री ब्रह्माजी उनकी सेवा के लिये लोकसुन्दरी सेवा परायण अहल्या नाम की कन्या दिये ॥ २० ॥ तदनन्तर तपस्वियों में श्रेष्ठ गौतम जी उस अहल्या के साथ यहाँ निवास करने लगे, इन्द्र अहल्या के रूप एवं सुन्दरता पर मोहित होकर नित्य प्रति उसके साथ रमण करने का समय देखने लगे ॥ २१ ॥ एकदिन मुनिवर गौतम के घर से बाहर चले जाने पर इन्द्र गौतम का रूप धारण कर अहल्या के साथ रमण कर शीघ्र ही वहाँ से चले गये, उसी समय गौतम मुनि भी वहाँ लौट आये ॥ २२ ॥ इन्द्र को जाते देखकर गौतम मुनि ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक पूछा—रे दुष्टात्मन् ! रे अधम् । मेरे रूप को धारण करने वाला तू कौन है ? ॥ २३ ॥ सत्य सत्य बोलो, नहीं तो मैं निःसन्देह तुम्हें भस्म कर दूँगा। इस वाणी को सुनकर इन्द्र बोला मेरी रक्षा करें, मैं कामकिंकर देवराज इन्द्र हूँ ॥ २४ ॥

मैं पापात्मा अतिनिन्दितकर्म किया हूँ। यह सुनकर गौतम ने क्रोध से आँखे लालकर देवराज इन्द्र को शाप दिया ॥ २५ ॥ रे दुष्टात्मन् ! तू योनि लम्पट है, अतः तुम हजारों भगवाला हो जाओ। इस प्रकार देवराज को शाप देकर शीघ्र ही अपने आश्रम में प्रवेश किये ॥ २६ ॥ मुनि ने अपने आश्रम में प्रवेश करने पर भय से काँपती हुई हाथ जोड़कर खड़े अहल्या को देखा। उसे देखकर गौतम जी बोले—हे दुष्टे ! हे दुर्वृत्ते ! तू मेरे आश्रम में शिलामें निवास कर ॥ २७ ॥ यहाँ तू निराहार रहकर धूप, वायु और वर्षा अदि का सहन करती हुई दिन-रात तपस्या कर और एकाग्रचित्त होकर हृदय में विद्यमान परमेश्वर

ध्यायन्ती राममेकाग्रमनसा हृदि संस्थितम् । नानाजन्तुविहीनोऽयमाश्रमो मे भविष्यति ॥२९॥
एवं वर्षसहस्रेषु ह्यनेकेषु गतेषु च । रामो दाशरथिः श्रीमानागमिष्यति सानुजः ॥३०॥
यदा त्वदाश्रयशिलां पादाभ्यामाक्रमिष्यति । तदैव धूतपापा त्वं रामं सम्पूज्य भक्तितः ॥३१॥
परिक्रम्य नमस्कृत्य स्तुत्वा शापाद्विमोक्ष्यसे । पूर्ववन्मम शुश्रूषां करिष्यसि यथासुखम् ॥३२॥
इत्युक्त्वा गौतमः प्रागाद्धिमवन्तं नगोत्तमम् । तदाद्यहल्या भूतानामदृश्या स्वाश्रमे शुभे॥३३॥
तव पादरजःस्पर्शं काङ्क्षते पवनाशना । आस्तेऽद्यापि रघुश्रेष्ठ तपो दुष्करमास्थिता ॥३४॥
पावयस्व मुनेर्भार्यामहल्यां ब्रह्मणः सुताम् । इत्युक्त्वा राघवं हस्ते गृहीत्वा मुनिपुङ्गवः ॥३५॥
दर्शयामास चाहल्यामुग्रेण तपसा स्थिताम् । रामः शिलां पदा स्पृष्ट्वा तां चापश्यत्तपोधनाम् ।३६।
ननाम राघवोऽहल्यां रामोऽहमिति चाब्रवीत् । ततो दृष्ट्वा रघुश्रेष्ठं पीतकौशेयवाससम् ॥३७॥
चतुर्भुजं शंखचक्रगदापङ्कजधारिणम् । धनुर्बाणधरं रामं लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥३८॥
स्मितवक्त्रं पद्मनेत्रं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् । नीलमाणिक्यसङ्काशं द्योतयन्तं दिशो दश ॥३९॥
दृष्ट्वा रामं रमानाथं हर्षविस्फारितेक्षणा । गौतमस्य वचः स्मृत्वा ज्ञात्वा नारायणं वरम् ।४०॥

श्रीराम का ध्यान कर। यह आश्रम नाना जीव-जन्तुओं से रहित हो जायेगा ॥ २८-२९ ॥ इस प्रकार कई हजार वर्ष व्यतीत होने पर दशरथ जी के पुत्र श्रीरामजी अपने अनुज के साथ यहाँ आयेंगे ॥ ३० ॥ जब अपने दोनों चरण कमलों से तेरी आश्रयशिला का स्पर्श करेंगे, उस समय तू पापरहित हो जाओगी, पुनः भक्तिपूर्वक श्री रामचन्द्र जी का पूजन कर उनकी परिक्रमा और नमस्कार पूर्वक स्तुति कर तुम शाप से मुक्त हो जाओगी, तथा पूर्ववत् तू सुखपूर्वक मेरी सेवा करोगी ॥ ३१-३२ ॥

यह कहकर गौतम मुनि पर्वतों में श्रेष्ठ हिमालय पर चले गये। हे रघुश्रेष्ठ ! उस समय से अहल्या प्राणियों से अलक्षित रहकर वायु का भक्षण करती हुई कठोर तपस्या में स्थित होकर आपके चरणारविन्द के स्पर्श की ईच्छा से अपने आश्रम में रहती है ॥ ३३-३४ ॥ हे राम ! तुम ब्रह्माजी की पुत्री गौतम-पत्नी अहल्या का उद्धार करो। मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी ऐसा कह कर श्रीरघुनाथ जी का हाथ पकड़कर उन्हें कठिन तपस्या में स्थित अहल्या को दिखाये। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी अपने चरण से शिला का स्पर्श कर तपस्विनी अहल्या को देखे ॥ ३५-३६ ॥ अहल्या को देखकर भगवान् राम "मैं राम हूँ" यह कहकर नमस्कार किये ॥ तब अहल्या पीताम्बर धारण किये हुये श्रीराम को देखी ॥ ३७ ॥ वे चारो भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुये और धनुर्बाण धारण किये हुये लक्ष्मण जी के साथ थे ॥३८ ॥ उनका मुख मण्डल इषत्हास्ययुक्त, कमल के समान नेत्र और हृदय श्रीवत्साङ्क से सुशोभित था। अपने नीलमणि तुल्य क्रान्ति से दसों दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे ॥ ३९ ॥

रमानाथ श्रीरामचन्द्र को देखकर अहल्या के नेत्र हर्ष से प्रफुल्लित हो गये और मुनिवर के वाक्यों का स्मरण हो गया। तब भगवान् श्रीरामचन्द्र को साक्षात् नारायण जानकर अनिन्दिता अहल्या ने अर्घ्यादि

सम्पूज्य विधिवद्रामनर्घ्यादिभिरनिन्दिता। हर्षाश्रुजलनेत्रान्ता दण्डवत्प्रणिपत्य सा ॥४१॥
उत्थाय च पुनर्दृष्ट्वा रामं राजीवलोचनम्। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी गिरा गद्गदयैलत ॥४२॥

अहल्योवाच

अहो कृतार्थाऽस्मि जगन्निवास ते पादाब्जसंलग्नरजःकणादहम्।
स्पृशामि यत्पद्मजशङ्करादिभिर्विमृग्यते रन्धितमानसैः सदा ॥४३॥
अहो विचित्रं तव राम चेष्टितं मनुष्यभावेन विमोहितं जगत्।
चलस्यजस्रं चरणादिवर्जितः सम्पूर्ण आनन्दमयोऽतिमायिकः ॥४४॥
यत्पादपङ्कजपरागपवित्रगात्रा भागीरथी भवविरिञ्चिमुखान्पुनाति।
साक्षात्स एव मम दृग्विषयो यदास्ते किं वर्ण्यते मम पुराकृतभागधेयम् ॥४५॥
मर्त्यावतारे मनुजाकृतिं हरिं रामाभिधेयं रमणीयदेहिनम्।
धनुर्धरं पद्मविशाललोचनं भजामि नित्यं न परान्भजिष्ये ॥४६॥
यत्पादपङ्कजरजः श्रुतिभिर्विमृग्यं यन्नाभिपङ्कजभवः कमलासनश्च।
यन्नामसाररसिको भगवान्पुरारिस्तं रामचन्द्रमनिशं हृदि भावयामि ॥४७॥
यस्यावतारचरितानि विरिञ्चिलोके गायन्ति नारदमुखा भवपद्मजाद्याः।
आनन्दजाश्रुपरिषिक्तकुचाग्रसीमा वागीश्वरी च तमहं शरणं प्रपद्ये ॥४८॥

द्वारा उनका विधिवत् पूजन कर आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्र होकर साष्टाङ्ग दण्डवत् पूर्वक प्रणाम किया ॥४०-४१॥ पुनः खड़ी होकर राजीवलोचन श्रीरामचन्द्र को देखकर सर्वाङ्ग से पुलकित होकर गद्गद वाणी से उनकी स्तुति करने लगी ॥४२॥ अहल्या बोली—हे जगन्निवास! आपके चरण कमलों में लगे रजःकण के स्पर्श से मैं कृतार्थ हो गयी। अहो! जिनके पादारविन्दों का ब्रह्मा, शंकरादि देव सदा एकाग्रचित्त से चिन्तन करते हैं, उन्हीं का आज मैं स्पर्श कर रही हूँ ॥ ४३ ॥ हे राम! आपकी चेष्टाएँ विचित्र हैं, आपके मनुष्य भाव से सम्पूर्ण जगत् विमोहित हो रहा है। आप सम्पूर्ण आनन्दमय और मायिक (मायावी) हैं, क्योंकि चरणादि से रहित होकर भी आप निरन्तर चलते हैं ॥ ४४ ॥ जिनके चरणारविन्द के पराग से पवित्र हुई भागीरथी (गंगाजी) शिव, ब्रह्मा आदि प्रमुख देवताओं को भी पवित्र करती हैं, साक्षात् वे ही मेरे नेत्रों के विषय हो रहे हैं, मैं अपने पूर्व समय में किये हुए पुण्यकर्मों को किस प्रकार वर्णन करूँ ? ॥ ४५ ॥ परम रमणीय मानव रूप में मर्त्यलोक में अवतार लिए हैं, मैं उन धनुर्धारी कमल के समान विशाल नेत्र वाले भगवान् राम का सदा भजन करती हूँ और किसी का भी भजन नहीं करना चाहती ॥ ४६ ॥ जिनके पादारविन्द रज को श्रुतियाँ अन्वेषण करती हैं, जिनके नाभि से समुद्भूत कमल से कमलासन ब्रह्मा जी प्रकट हुए तथा जिनके नाम रूपी अमृत के भगवान् शंकर जी रसिक हैं, उन श्रीरामचन्द्रजी का मैं अहर्निश अपने हृदय में ध्यान करती हूँ ॥ ४७ ॥ जिनके अवतार-चरित्रों का ब्रह्मलोक में

सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण एकः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः।
मायातनुं लोकविमोहनीयां धत्ते परानुग्रह एष रामः ॥४९॥
अयं हि विश्वोद्भवसंयमानामेकः स्वमायागुणबिम्बितो यः।
विरिञ्चिविष्ण्वीश्वरनामभेदान् धत्ते स्वतन्त्रः परिपूर्ण आत्मा ॥५०॥
नमोऽस्तु ते राम तवाङ्घ्रिपङ्कजं श्रिया धृतं वक्षसि लालितं प्रियात्।
आक्रान्तमेकेन जगत्त्रयं पुरा ध्येयं मुनीन्द्रैरभिमानवर्जितैः ॥५१॥
जगतामादिभूतस्त्वं जगत्त्वं जगदाश्रयः। सर्वभूतेष्वसंयुक्त एको भाति भवान्परः ॥५२॥
ओंकारवाच्यस्त्वं राम वाचामविषयः पुमान्। वाच्यवाचकभेदेन भवानेव जगन्मयः ॥५३॥
कार्यकारणकर्तृत्वफलसाधनभेदतः। एको विभासि राम त्वं मायया बहुरूपया ॥५४॥
त्वन्मायामोहितधियस्त्वां न जानन्ति तत्त्वतः। मानुषं त्वाभिमन्यन्ते मायिनं परमेश्वरम् ॥५५॥
आकाशवत्त्वं सर्वत्र बहिरन्तर्गतोऽमलः। असङ्गो ह्यचलो नित्यः शुद्धो बुद्धः सदव्ययः ॥५६॥
योषिन्मूढाऽहमज्ञा ते तत्त्वं जाने कथं विभो। तस्मात्ते शतशो राम नमस्कुर्यामनन्यधीः ॥५७॥
देव मे यत्र कुत्रापि स्थिताया अपि सर्वदा। त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदाऽस्तु मे ॥५८॥

नारदादि देवर्षिगण, शंकर जी एवं ब्रह्मादि देवेश्वरगण गान करते हैं, तथा आनन्दाश्रुओं से भीगे हुए कुच-मण्डल वाली सरस्वतीजी भी ब्रह्मलोक में निरन्तर गान करती हैं, उन परमात्मा की मैं शरण लेती हूँ॥ ४८ ॥ पुराणपुरुष परमात्मा राम ने परानुग्रह के लिए एक स्वयंज्योतिः, अनन्त और सबका आदिकारण होने पर भी संसार को विमोहित करने वाली मायामय स्वरूप धारण किए हैं ॥ ४९ ॥ ये अकेले ही विश्व के उद्भव, पालन एवं संहार के लिए अपनी माया के गुणों का आश्रय ग्रहण कर ब्रह्मा, विष्णु एवं महादेव आदि विविध रूप धारण करते हैं, स्वतन्त्र और परिपूर्ण आत्मा आप हीं हैं ॥ ५० ॥ हे राम ! आपके चरण-कमलों को नमस्कार है, जिन्हें श्रीलक्ष्मीजी अपने वक्षःस्थल पर रख कर अति प्रेम से लाड़-प्यार करती हैं। जिन्होंने पूर्व समय में एक ही पग में तीनों लोकों को माप ली थी, तथा अभिमान रहित मुनिगण जिनका सतत ध्यान किया करते हैं, उन चरण कमलों की मैं वन्दना करती हूँ ॥ ५१ ॥ हे प्रभो ! आपही जगत् के आदि कारण, जगत् रूप और जगत् के आश्रय हैं, तथापि सम्पूर्ण प्राणियों से पृथक् और अद्वितीय परंब्रह्म रूप से प्रकाशमान हैं ॥ ५२ ॥

हे राम ! आप ओंकार के वाच्य तथा वाणी के अगोचर परमपुरुष हैं। हे प्रभो ! वाच्य-वाचक (शब्द-अर्थ) भेद से आप ही सम्पूर्ण जगद्रूप हैं ॥ ५३ ॥ हे राम ! आप बहु-रूपमयी माया से कार्य, कारण, कर्तृत्व, फल और साधन के भेद से अनेक रूप में विभासित हो रहे हैं ॥ ५४ ॥ आपके माया से मोहित-बुद्धि वाले लोग आपके वास्तविक रूप को नहीं जान सकते। आप मायापति परमेश्वर को मूढ़जन मनुष्य समझते हैं ॥ ५५ ॥ आप आकाश के समान बाहर-भीतर सर्वत्र विद्यमान, निर्मल, असङ्ग, अचल, नित्य, शुद्ध-बुद्ध, सत्य-स्वरूप और अनन्य हैं ॥ ५६ ॥ हे विभो ! मैं मूढ़ और अज्ञानी स्त्री आपके तत्त्व को किस प्रकार समझूँ ? अतः हे राम ! मैं अनन्य भाव से सैकड़ों बार नमस्कार करती हूँ ॥ ५७ ॥ हे देव ! मैं जहाँ कहीं भी रहूँ वहीं सर्वदा आपके चरणारविन्द में आसक्तिपूर्ण भक्ति मेरी बनी रहे ॥ ५८ ॥

नमस्ते पुरुषाध्यक्ष नमस्ते भक्तवत्सल। नमस्तेऽस्तु हृषीकेश नारायण नमोऽस्तु ते ॥५९॥
भवभयहरमेकं भानुकोटिप्रकाशं करधृतशरचापं कालमेघावभासम्।
कनकरुचिरवस्त्रं रत्नवत्कुण्डलाढ्यं कमलविशदनेत्रं सानुजं राममीडे ॥६०॥
स्तुत्वैवं पुरुषं साक्षाद्राघवं पुरतः स्थितम्। परिक्रम्य प्रणम्याशु सानुज्ञाता ययौ पतिम् ॥६१॥
अहल्यया कृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिसंयुतः। स मुच्यतेऽखिलैः पापैः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥६२॥
पुत्राद्यर्थे पठेद्भक्त्या रामं हृदि निधाय च। संवत्सरेण लभते वन्ध्या अपि सुपुत्रकम् ॥६३॥
सर्वान्कामानवाप्नोति रामचन्द्रप्रसादतः ॥६४॥

ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगोऽपि पुरुषः स्तेयी सुरापोऽपि वा
मातृभ्रातृविहिंसकोऽपि सततं भोगैकबद्धातुरः।
नित्यं स्तोत्रमिदं जपन् रघुपतिं भक्त्या हृदिस्थं स्मरन्
ध्यायन्मुक्तिमुपैति किं पुनरसौ स्वाचारयुक्तो नरः ॥६५॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे अहल्योद्धरणं नाम पञ्चमः सर्गः ॥५॥

—※—

हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है, हे भक्तवत्सल ! आपको नमस्कार है; हे ऋषिकेश ! आपको नमस्कार है; हे नारायण ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ५९ ॥

जो एकमात्र संसार के भय को दूर करने वाले हैं, जो सैकड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान हैं, जो कर-कमलों में धनुष-बाण धारण किये हैं, जो मेघ के समान श्यामकान्ति वाले हैं, जो सुवर्ण के समान पीतवस्त्र पहने हुए हैं, जो रत्न से जटित कुण्डलों को धारण किये हुए हैं, जिनके नेत्र कमलदल के समान विशाल अति सुन्दर हैं, भाई लक्ष्मण जी सहित उन श्रीरघुनाथजी की मैं स्तुति करती हूँ ॥ ६० ॥

इस प्रकार सामने स्थित साक्षात् परम पुरुष श्रीराघवजी की स्तुति, परिक्रमा और वन्दना कर वह उनकी आज्ञा पाकर शीघ्र ही अपने पति के पास चली गयी ॥ ६१ ॥ जो प्राणी अहल्या के द्वारा किये हुए इस स्तोत्र का भक्ति-पूर्वक पाठ करता है वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर परंब्रह्म-पद को प्राप्त करता है ॥ ६२ ॥ बन्ध्या स्त्री पुत्र की इच्छा रखकर श्रीरामजी को हृदय में ध्यान कर भक्ति-पूर्वक इसका पाठ करे तो एक वर्ष में उसे श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति हो सकती है तथा श्रीरामचन्द्र की कृपा से उसके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं ॥ ६३-६४ ॥ ब्रह्म हत्यारा, गुरु की स्त्री के साथ गमन करने वाला, चोर, मदिरापान करने वाला, माता, पिता तथा भाई की हिंसा करने वाला तथा सतत् भोग में आसक्त रहने वाला पुरुष भी यदि अपने हृदय में विद्यमान श्रीरघुनाथजी का भक्तिपूर्वक नित्य स्मरण करता है तथा उनका ध्यान करते हुए इस स्तोत्र का पाठ करता है तो वह मुक्ति को प्राप्त करता है, पुनः अपने धर्म में परायण पुरुषों की बात ही क्या है ? अर्थात् इनकी मुक्ति तो होगी ही ॥ ६५ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गत बजुरियाँग्रामनिवासि पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः बालकाण्डे अहल्योद्धरणंनाम पञ्चमसर्गः परिपूर्णः ॥ १ ॥

→※←

षष्ठ सर्ग

धनुर्भङ्ग और विवाह

सूत उवाच

विश्वामित्रोऽथ तं प्राह राघवं सहलक्ष्मणम् । गच्छामो वत्स मिथिलां जनकेनाभिपालिताम् ॥१॥
दृष्ट्वा क्रतुवरं पश्चादयोध्यां गन्तुमर्हसि ।
इत्युक्त्वा प्रययौ गङ्गामुत्तर्तुं सहराघवः । तस्मिन्काले नाविकेन निषिद्धो रघुनन्दनः ॥ २ ॥

नाविक उवाच

क्षालयामि तव पादपङ्कजं नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम् ।
मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी ॥ ३ ॥
पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा पश्चात्परं तीरमहं नयामि ।
नोचेत्तरी सद्युवती मलेन स्याच्चेद्विभो विद्धि कुटुम्बहानिः ॥ ४ ॥
इत्युक्त्वा क्षालितौ पादौ परं तीरं ततो गताः । कौशिको रघुनाथेन सहितो मिथिलां ययौ ॥५॥
विदेहस्य पुरं प्रातर्ऋषिवाटं समाविशत् । प्राप्तं कौशिकमाकर्ण्य जनकोऽतिमुदान्वितः ॥ ६ ॥
पूजाद्रव्याणि संगृह्य सोपाध्यायः समाययौ । दण्डवत्प्रणिपत्याथ पूजयामास कौशिकम् ॥ ७ ॥
पप्रच्छ राघवौ दृष्ट्वा सर्वलक्षणसंयुतौ । द्योतयन्तौ दिशः सर्वाश्चन्द्रसूर्याविवापरौ ॥ ८ ॥

सूत जी बोले—इसके बाद विश्वामित्र जी ने लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी से बोले, हे वत्स! हमलोग राजा जनक द्वारा पालित मिथिलापुरी चलेंगे ॥ १ ॥ वहाँ यज्ञोत्सव देखने के बाद अयोध्या जा सकते हो, ऐसा कह कर दोनों भाइयों के साथ गङ्गाजी पार करने के लिए गंगा तट पर आये। उस समय मल्लाह ने श्रीरघुनाथजी को नाव पर चढ़ने से रोक दिया ॥ २ ॥

नाविक बोला—हे नाथ! यह बात प्रसिद्ध है कि आपके चरणों में मनुष्य बनाने वाला कोई चूर्ण है। (आपने पत्थर की शिला से स्त्री बना दी है, पुनः) शिला और लकड़ी में अन्तर ही क्या है? इसलिए मैं आपके चरणकमलों को धोऊँगा ॥ ३ ॥ आपके चरणारविन्द को निर्मल कर मैं आपको श्री गंगाजी के उस पार ले चलूँगा। नहीं तो हे विभो! आपके चरण-रज से मेरी नौका सुन्दर युवती बन गयी तो मेरे परिवार के भरण-पोषण की आजीविका ही समाप्त हो जायेगी ॥ ४ ॥ यह कहकर उनका चरण धोकर गङ्गाजी के पार ले गया। इसके बाद श्रीरघुनाथ जी के साथ मिथिलापुरी के लिये प्रस्थान किये ॥ ५ ॥ प्रातःकाल होते ही विदेहपुर (जनकपुर) में पहुँच कर ऋषियों के निवास स्थान में ठहर गये। श्री विश्वामित्र जी आये यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्नचित्त जनक जी पूजन सामग्री लेकर अपने पुरोहित के साथ विश्वामित्र जी के पास आये और साष्टांग-दण्डवत् कर उन्होंने श्रीविश्वामित्रजी की पूजा की ॥ ६-७ ॥

पुनः सूर्य और चन्द्रमा के समान अपने तेज से दिशाओं को देदीप्यमान करते हुए उन सर्वलक्षण

कस्यैतौ नरशार्दूलौ पुत्रौ देवसुतोपमौ । मनः प्रीतिकरौ मेऽद्य नरनारायणाविव ॥ ९ ॥
प्रत्युवाच मुनिः प्रीतो हर्षयन् जनकं तदा । पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१०॥
मखसंरक्षणार्थाय मयानीतौ पितुः पुरात् । आगच्छन् राघवो मार्गे ताटकां विश्वघातिनीम् ॥११॥
शरेणैकेन हतवान्नोदितो मेऽतिविक्रमः । ततो ममाश्रमं गत्वा मम यज्ञविहिंसकान् ॥१२॥
सुबाहुप्रमुखान्हत्वा मारीचं सागरेऽक्षिपत् । ततो गङ्गातटे पुण्ये गौतमस्याश्रमे शुभे ॥१३ ॥
गत्वा तत्र शिलारूपा गौतमस्य वधूः स्थिता । पादपङ्कजसंस्पर्शात्कृता मानुषरूपिणी ॥१४ ॥
दृष्ट्वाऽहल्यां नमस्कृत्य तया सम्यक् प्रपूजितः । इदानीं द्रष्टुकामस्ते गृहे माहेश्वरं धनुः ॥१५॥
पूजितं राजभिः सर्वैर्दृष्टमित्यनुशुश्रुवे ।
अतो दर्शय राजेन्द्र शैवं चापमनुत्तमम् । दृष्ट्वायोध्यां जिगमिषुः पितरं द्रष्टुमिच्छति ॥१६॥
इत्युक्तो मुनिना राजा पूजार्हाविति पूजया । पूजयामास धर्मज्ञो विधिदृष्टेन कर्मणा ॥१७॥
ततः संप्रेषयामास मन्त्रिणं बुद्धिमत्तरम् ।

जनक उवाच

शीघ्रमानय विश्वेशचापं रामाय दर्शय ॥१८॥

सम्पन्न राजकुमारों को देखकर पूछे ॥ ८ ॥ देवपुत्रों के समान ये दोनों नरशार्दूल किसके पुत्र हैं, ये आज मेरे हृदय में नर और नारायण के समान प्रीति उत्पन्न कर रहे हैं ॥ ९ ॥ उस समय मुनिवर विश्वामित्र जी ने महाराज जनक को आनन्दित करते हुए प्रसन्नतापूर्वक बोले—'ये दोनोंभाई राम और लक्ष्मण राजा दशरथ के पुत्र हैं ॥ १० ॥ मैं अपनी यज्ञ की रक्षा के लिये अयोध्या से लाया था। मार्ग में आते समय मेरी प्रेरणा से अति पराक्रमी रघुनाथ जी ने एक ही बाण से विश्वघातिनी ताटका का बध किया। पुनः मेरे आश्रम में पहुँच कर मेरा यज्ञ विध्वंस करने वाले सुबाहु आदि राक्षसों को मार डाला तथा मारीच को समुद्र में फेंक दिया। इसके बाद गंगा तट पर महर्षि गौतम जी के पुनीत आश्रम में आये, वहाँ शिलारूप से स्थित गौतम की वधू को देखकर अपने चरणारविन्द के स्पर्श से मनुष्य बना दिया ॥ ११-१४ ॥

अहल्या को देखकर रामजी ने नमस्कार किया, और अहल्या से विधिवत् पूजित होकर इस समय आपके यहाँ शंकर जी का धनुष देखने के लिये आये हैं ॥ १५ ॥ हमने सुना है उस धनुष की पूजा होती है और अनेक राजा लोग उसे देख गये हैं। इसलिये हे राजेन्द्र। आप शंकरजी के धनुष को दिखा दीजिये, ये उसे देखकर शीघ्र ही अपने माता-पिता से मिलने अयोध्या जाना चाहते हैं ॥ १६ ॥ मुनिवर विश्वामित्र जी के इस प्रकार कहने पर धर्मज्ञ राजा-जनक ने पूजनीय समझ कर राम और लक्ष्मण की विधिवत् पूजा की ॥ १७ ॥ पुनः बुद्धिमान् मन्त्री को श्रीविश्वेश्वर का धनुष लाकर श्रीरामचन्द्र को दिखाओ यह कहकर भेजे ॥ १८ ॥

ततो गते मन्त्रिवरे राजा कौशिकमब्रवीत् । यदि रामो धनुर्धृत्वा कोट्यामारोपयेद्गुणम् ॥१९॥
तदा मयाऽत्मजा सीता दीयते राघवाय हि । तथेति कौशिकोऽप्याह रामं संवीक्ष्यसस्मितम्२०
शीघ्रं दर्शय चापाग्र्यं रामायामिततेजसे । एवं ब्रुवति मौनीश आगताश्चापवाहकाः ॥२१॥
चापं गृहीत्वा बलिनः पञ्चसाहस्रसङ्ख्यकाः । घण्टाशतसमायुक्तं मणिवज्रादिभूषितम् ॥२२॥
दर्शयामास रामाय मन्त्री मन्त्रयतां वरः । दृष्ट्वा रामः प्रहृष्टात्मा बुद्ध्वा परिकरं दृढम् ॥२३॥
गृहीत्वा वामहस्तेन लीलया तोलयन् धनुः । आरोपयामास गुणं पश्यत्स्वखिलराजसु ॥२४॥
ईषदाकर्षयामास पाणिना दक्षिणेन सः । बभञ्जाखिलहृत्सारो दिशः शब्देन पूरयन् ॥२५॥
दिशश्च विदिशश्चैव स्वर्गं मर्त्यं रसातलम् । तदद्भुतमभूत्तत्र देवानां दिवि पश्यताम् ॥२६॥
आच्छादयन्तः कुसुमैर्देवाः स्तुतिभिरीडिरे । देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥२७॥
द्विधा भग्नं धनुर्दृष्ट्वा राजालिङ्ग्य रघूद्वहम् । विस्मयं लेभिरे सीतामातरोऽन्तः पुराजिरे ।२८।
सीता स्वर्णमयीं मालां गृहीत्वा दक्षिणे करे । स्मितवक्त्रा स्वर्णवर्णा सर्वाभरणभूषिता ॥२९॥
मुक्ताहारैः कर्णपत्रैः क्वणच्चरणनूपुरा । दुकूलपरिसंवीता वस्त्रान्तर्व्यञ्जितस्तनी ॥३०॥

मन्त्री के चले जाने पर राजाजनक श्रीविश्वामित्र जी से बोले—यदि रामचन्द्रजी धनुष को लेकर उसके कोटियों पर रौदा चढ़ा देंगे तो मैं निश्चय ही सीता का विवाह श्रीरामचन्द्र से कर दूँगा । विश्वामित्र जी ने रामजी की ओर देखते हुए मुस्कराकर बोले "तथा इति" (ठीक है) ॥ १९-२० ॥ हे राजन् । आप शीघ्र ही उस धनुष को अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्र को दिखाइये । इस प्रकार मुनीश्वर विश्वामित्र जी के कहते ही बलवान् पाँच हजार धनुषग्राहक उस धनुष को लेकर वहाँ आ गये, वह धनुष सैकड़ों घण्टा एवं हीरा और मणि आदि रत्नों से विभूषित था ॥ २१-२२ ॥

तदनन्तर मन्त्रियों में श्रेष्ठ मन्त्री ने राम को धनुष दिखाया । प्रसन्न-हृदय श्रीरामचन्द्र ने धनुष को देखते ही दृढ़ता से कमरकस कर खेल-खेल में ही उसको उठाकर हाथ में ले लिया और सब राजाओं के देखते-देखते ही उस पर प्रत्यञ्चा (डोरी) चढ़ा दिया ॥ २३-२४ ॥ पुनः सम्पूर्ण प्राणियों के सर्वस्व भगवान् रामने अपने दाहिने हाथ से उस धनुष को थोड़ा खींचा और दिशाओं के शब्दायमान करते हुए तोड़ डाला ॥ २५ ॥ दिशा, विदिशा, स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और रसातल आदि समस्त पाताल शब्दायमान हो गये । स्वर्गलोक में देवताओं के देखते-देखते ही यह एक बड़ा आश्चर्य ही हो गया ॥ २६ ॥ देवगण पुष्पों की वर्षा से भगवान् को आच्छादित कर दिये और दुन्दुभि आदि वाद्यों को बजाकर उनकी स्तुति की, तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥ २७ ॥ धनुष का दो टुकड़ा देखकर महाराज जनक जी ने श्री रघुनाथ जी का आलिङ्गन किया और अन्तःपुर में स्थित सीताजी की माताएँ अतिविस्मित हुईं ॥ २८ ॥ तदनन्तर सम्पूर्ण आभूषणों से विभूषित, सुवर्ण के समान वर्णवाली श्री सीताजी अपने दाहिने हाथ में स्वर्णमयी माला लेकर मन्द-मन्द मुस्कराती हुई वहाँ आयीं ॥ २९ ॥

वे मुक्ताहार, कर्णफूल झंकार करते हुए नूपुर आदि आभूषणों से सुशोभित उत्तमवस्त्र धारण किये

रामस्योपरि निक्षिप्य स्मयमाना मुदं ययौ। ततो मुमुदिरे सर्वे राजदाराः स्वलङ्कृतम् ॥३१॥
गवाक्षजालरन्ध्रेभ्यो दृष्ट्वा लोकविमोहनम्। ततोऽब्रवीन्मुनिं राजा सर्वशास्त्रविशारदः ॥३२॥
भो कौशिक मुनिश्रेष्ठ पत्रं प्रेषय सत्वरम्। राजा दशरथः शीघ्रमागच्छतु सपुत्रकः ॥३३॥
विवाहार्थं कुमाराणां सदारः सहमन्त्रिभिः। तथेति प्रेषयामास दूतांस्त्वरितविक्रमान् ॥३४॥
ते गत्वा राजशार्दूलं रामश्रेयो न्यवेदयन्। श्रुत्वा रामकृतं राजा हर्षेण महताप्लुतः ॥३५॥
मिथिलागमनार्थाय त्वरयामास मन्त्रिणः। गच्छन्तु मिथिलां सर्वे गजाश्वरथपत्तयः ॥३६॥
रथमानय मे शीघ्रं गच्छाम्यद्यैव मा चिरम्। वसिष्ठस्त्वग्रतो यातु सदारः सहितोऽग्निभिः ॥३७॥
राममातृः समादाय मुनिर्मे भगवान् गुरुः। एवं प्रस्थाप्य सकलं राजर्षिर्विपुलं रथम् ॥३८॥
महत्या सेनया सार्धमारुह्य त्वरितो ययौ। आगतं राघवं श्रुत्वा राजा हर्षसमाकुलः ॥३९॥
प्रत्युज्जगाम जनकः शतानन्दपुरोधसा। यथोक्तपूजया पूज्यं पूजयामास सत्कृतम् ॥४०॥
रामस्तु लक्ष्मणेनाशु ववन्दे चरणौ पितुः। ततो हृष्टो दशरथो रामं वचनमब्रवीत् ॥४१॥
दिष्ट्या पश्यामि ते राम मुखं फुल्लाम्बुजोपमम्। मुनेरनुग्रहात्सर्वं सम्पन्नं मम शोभनम् ॥४२॥

हुए थीं, जिसमें पीन-पयोधर लक्षित हो रहे थे ॥ ३० ॥ नम्रतापूर्वक मुस्कराते हुये श्रीसीताजी जयमाल श्रीरामचन्द्रजी के गले में पहनाकर प्रसन्न हुईं। उस समय सर्वालङ्कार विभूषित श्रीरामचन्द्र जी के भुवन-मोहन रूप को खिड़की से देखकर समस्त रानियाँ अति आनन्दित हुईं। पुनः सर्वशास्त्रज्ञ महाराज जनक ने मुनिवर विश्वामित्र से कहा ॥ ३१-३२ ॥ मुनिवर कौशिक जी! आप शीघ्र ही राजा दशरथ के पास पत्र प्रेषित कीजिये, कुमारों के विवाह के लिये शीघ्र ही पुत्र दारा और मन्त्रियों के साथ यहाँ पधारें। "तथा इति" यह कहकर विश्वामित्र जी ने शीघ्रगामी दूतों को राजादशरथ के पास भेजा ॥ ३३-३४ ॥

दूतगण जाकर राजशार्दूल राजादशरथ से रामचन्द्र का कुशल-क्षेम कहे। दूतों के द्वारा श्रीरामचन्द्र-जी के अद्भुत कृत्य को सुनकर महाराज परमानन्द में मग्न हो गये ॥ ३५ ॥ पुनः मिथिलापुरी जाने के लिये शीघ्रता करते हुए मन्त्रियों से कहा—आपलोग हाथी, घोड़े, रथ, पदातियों सहित मिथिलापुरी चलिये ॥३६॥ अविलम्ब मेरा भी रथ लाओ, विलम्ब मत करो मैं भी आजही चलूँगा। अग्नियों और अरुन्धती के सहित मेरे गुरुप्रवर मुनिश्रेष्ठ भगवान् वशिष्ठजी राम के माताओं को लेकर आगे चलें।

इस प्रकार सबको प्रस्थान करने के अनन्तर विशाल रथ पर चढ़कर राजर्षि दशरथ जी अपने दल-बल के साथ शीघ्रतापूर्वक मिथिलापुरी को प्रस्थान किये। रघुवंश शिरोमणि दशरथ जी को आये हुए सुनकर महाराज जनक ने हर्षपूर्वक अपने पुरोहित शतानन्दजी को लेकर उन्हें आगवानी करने गये और उन पूजनीय राजा दशरथ का यथोचित विधि से सत्कार पूर्वक पूजन किये ॥ ३७-४० ॥

पुनः शीघ्र ही लक्ष्मण सहित राम ने पिता के चरणों की वन्दना की। तब राजा दशरथ प्रसन्नता पूर्वक राम से बोले ॥ ४१ ॥ राम! बड़े भाग्य से प्रफुल्लित कमल के समान तुम्हारा मुख देख रहा हूँ;

इत्युक्त्वाघ्राय मूर्धानमालिङ्ग्य च पुनः पुनः । हर्षेण महताऽऽविष्टो ब्रह्मानन्दं गतो यथा ॥४३॥
ततो जनकराजेन मन्दिरे सन्निवेशितः । शोभने सर्वभोगाढ्ये सदारः ससुतः सुखी ॥४४॥
ततः शुभे दिने लग्ने सुमुहूर्ते रघूत्तमम् । आनयामास धर्मज्ञो रामं सभ्रातृकं तदा ॥४५॥
रत्नस्तम्भसुविस्तारे सुविताने सुतोरणे । मण्डपे सर्वशोभाढ्ये मुक्तापुष्पफलान्विते ॥४६॥
वेदविद्भिः सुसम्बाधे ब्राह्मणैः स्वर्णभूषितैः । सुवासिनीभिः परितो निष्ककण्ठीभिरावृते ॥४७॥
भेरीदुन्दुभिनिर्घोषैर्गीतनृत्यैः समाकुले । दिव्यरत्नाञ्चिते स्वर्णपीठे रामं न्यवेशयत् ॥४८॥
वसिष्ठं कौशिकं चैव शतानन्दः पुरोहितः । यथाक्रमं पूजयित्वा रामस्योभयपार्श्वयोः ॥४९॥
स्थापयित्वा स तत्राग्निं ज्वालयित्वा यथाविधि । सीतामानीय शोभाढ्यां नानारत्नविभूषिताम् ५०
सभार्यो जनकः प्रायाद्रामं राजीवलोचनम् । पादौ प्रक्षाल्य विधिवत्तदपो मूर्ध्न्यधारयत् ॥५१॥
या धृता मूर्ध्नि शर्वेण ब्रह्मणा मुनिभिः सदा । ततः सीतां करे धृत्वा साक्षतोदकपूर्वकम् ॥५२॥
रामाय प्रददौ प्रीत्या पाणिग्रहविधानतः । सीता कमलपत्राक्षी स्वर्णमुक्तादिभूषिता ॥५३॥
दीयते मे सुता तुभ्यं प्रीतो भव रघूत्तम । इति प्रीतेन मनसा सीतां रामकरेऽर्पयन् ॥५४॥

मुनिवर की कृपा से सब प्रकार से मेरा कल्याण हुआ ॥ ४२ ॥ यह कहकर उनका आलिङ्गन कर मस्तक सूँघ कर अत्यन्त हर्षपूर्वक ब्रह्मानन्द की भाँति आनन्दमग्न हो गये ॥ ४३ ॥ तदनन्तर राजा जनक ने उन्हें रानियों और राजकुमारों सहित सम्पूर्ण भोग सामग्रियों से परिपूर्ण परम सुन्दर महल में सुखपूर्वक ठहराया ॥ ४४ ॥ पुनः शुभदिन, शुभमुहूर्त और शुभलग्न में धर्मज्ञ जनकजी ने भाइयों सहित श्रीरामचन्द्र को बुलाया ॥४५॥ सर्वशोभासम्पन्न रत्न से जड़े हुए स्तम्भ, सुन्दर वितान, सुन्दर वन्दनवार (तोरण) मोती तथा फूल एवं फलों से सुसज्जित विशाल मण्डप में जिसमें वैदिक ब्राह्मणों की भीड़ और सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये हुए निष्क-कण्ठी (सुहागिन) नारियाँ थीं उसमें श्रीरामचन्द्र जी को रत्नजटित दिव्यसुवर्णसिंहासन पर बैठाये । उस समय भेरी, दुन्दुभि आदि वाद्यों और नृत्य-गीतों से अत्यधिक कोलाहल था ॥ ४६-४८ ॥ तदनन्तर पुरोहित शतानन्दजी श्रीवशिष्ठजी और विश्वामित्र जी का यथाक्रम पूजन कर श्रीरामचन्द्र के दोनों तरफ बैठा दिये ॥ ४९ ॥ वहाँ पर अग्नि की स्थापना एवं विधि पूर्वक उसे प्रज्वलित कर अनेक रत्नों से विभूषित सीता को साथ लेकर महारानी सहित महाराज जनक जी कमलनयन श्रीरामचन्द्र के पास आये । 'श्रीरामचन्द्र का विधिवत् चरणों को धोकर चरणोदक को अपने शिर पर रखे जिसे शिव ब्रह्मा तथा मुनिजन सदा अपने मस्तक पर धारण करते हैं ॥ ५०-५१ ॥

पुनः अपने हाथ में जल अक्षत और सीताजी का हाथ लेकर पाणिग्रहण संस्कार की विधि से प्रीति पूर्वक श्रीरामचन्द्रजी के कर-कमलों में दिये और बोले रघुश्रेष्ठ ! मैं सुवर्ण और मुक्ता आदि से विभूषित कमललोचना अपनी पुत्री सीता को आपको समर्पण करता हूँ, आप प्रसन्न होइये" । जिस प्रकार क्षीरसागर श्रीलक्ष्मी को विष्णुभगवान को समर्पण कर आनन्दित हुआ था, उसीप्रकार राजा जनक सीताजी को प्रसन्नता

मुमोद जनको लक्ष्मीं क्षीराब्धिरिव विष्णवे । ऊर्मिलां चौरसीं कन्यां लक्ष्मणाय ददौ मुदा ॥५५॥
तथैव श्रुतकीर्तिं च माण्डवीं भ्रातृकन्यके । भरताय ददावेकां शत्रुघ्नायापरां ददौ ॥५६॥
चत्वारो दारसम्पन्ना भ्रातरः शुभलक्षणाः । विरेजुः प्रभया सर्वे लोकपाला इवापरे ॥५७॥
ततोऽब्रवीद्वसिष्ठाय विश्वामित्राय मैथिलः । जनकः स्वसुतोदन्तं नारदेनाभिभाषितम् ॥५८॥
यज्ञभूमिविशुद्ध्यर्थं कर्षतो लाङ्गलेन मे । सीतामुखात्समुत्पन्ना कन्यका शुभलक्षणा ॥५९॥
तामद्राक्षमहं प्रीत्या पुत्रिकाभावभाविताम् । अर्पिता प्रियभार्यायै शरच्चन्द्रनिभानना ॥६०॥
एकदा नारदोऽभ्यागाद्विविक्ते मयि संस्थिते । रणयन्महतीं वीणां गायन्नारायणं विभुम् ॥६१॥
पूजितः सुखमासीनो मामुवाच सुखान्वितः । शृणुष्व वचनं गुह्यं तवाभ्युदयकारणम् ॥६२॥
परमात्मा हृषीकेशो भक्तानुग्रहकाम्यया । देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं रावणस्य वधाय च ॥६३॥
जातो राम इति ख्यातो मायामानुषवेषधृक् । आस्ते दाशरथिर्भूत्वा चतुर्धा परमेश्वरः ॥६४॥
योगमायाऽपि सीतेति जाता वै तव वेश्मनि । अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः ॥६५॥
नान्येभ्यः पूर्वभार्यैषा रामस्य परमात्मनः । इत्युक्त्वा प्रययौ देवगतिं देवमुनिस्तदा ॥६६॥

पूर्वक श्रीरामचन्द्र को समर्पण कर आनन्दित हुए। पुनः अपनी औरसी पुत्री उर्मिला का विवाह श्रीलक्ष्मणजी से कर दिये ॥ ५२-५५ ॥ तदनन्तर अपने भाई की कन्या माण्डवी और श्रुतिकीर्ति का विवाह क्रमशः भरत और शत्रुघ्न से कर दिये ॥ ५६ ॥

इस प्रकार सुलक्षण-सम्पन्न चारो भाई दूसरे लोकपालों की भाँति अपनी पत्नियों के सहित प्रकाश से सुशोभित हुए ॥ ५७ ॥ इसके बाद मिथिलापति राजा जनक श्रीवसिष्ठ और विश्वामित्रजी से अपनी पुत्री सीता के विषय में श्रीनारदजी का कहा हुआ वृत्तान्त सुनाये ॥ ५८ ॥

राजा जनक बोले—एक समय यज्ञभूमि की शुद्धि के लिए मैं हल जोत रहा था, उस समय हल के सीता (अग्रभाग) से शुभलक्षणा कन्या उत्पन्न हुई ॥ ५९ ॥ उस समय मैंने इसे देखा और इसमें पुत्री जैसी प्रीति हुई, इसलिए मैं इस शरद् चन्द्रमुखी को अपनी पत्नी को सौंप दिया ॥ ६० ॥ एक समय एकान्त में मैं बैठा था। उस समय महर्षिनारदजी अपनी महती वीणा को बजाते हुए सर्वव्यापक श्रीहरि का गुणगान करते आये ॥ ६१ ॥ मेरे पूजा सत्कार के अनन्तर सुखपूर्वक बैठकर प्रसन्नचित होकर मुझसे बोले—हे राजन्! एक गुप्त बात सुनो, यह आपके अभ्युदय करनेवाला है ॥ ६२ ॥ परमात्मा हृषिकेश भक्तों पर अनुग्रह की कामना, देवताओं के कार्य की सिद्धि और रावण का वध करने के लिए माया-मनुष्य के रूप में अवतरित होकर "राम" से विख्यात हुए हैं। वे परमेश्वर चार अंशों से दशरथ के पुत्र होकर स्थित हैं ॥ ६३-६४ ॥ योगमाया तुम्हारे घर सीता के रूप में उत्पन्न हुई है। अतः प्रयत्नपूर्वक सीता का विवाह श्रीरघुनाथजी से करना अन्य किसी से नहीं, क्योंकि यह पूर्वकाल से ही परमात्मा की भार्या हैं। ऐसा कह कर महर्षिनारदमुनि आकाशमार्ग से चले गये ॥ ६५-६६ ॥ उस समय से मैं सीता को विष्णु-

तदारभ्य मया सीता विष्णोर्लक्ष्मीर्विभाव्यते । कथं मया राघवाय दीयते जानकी शुभा ।६७।।
इति चिन्तासमाविष्टः कार्यमेकमचिन्तयम् । मत्पितामहगेहे तु न्यासभूतमिदं धनुः ॥ ६८ ॥
ईश्वरेण पुरा क्षिप्तं पुरदाहादनन्तरम् । धनुरेतत्पणं कार्यमिति चिन्त्य कृतं तथा ॥ ६९ ॥
सीतापाणिग्रहार्थाय सर्वेषां माननाशनम् । त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ रामो राजीवलोचनः ॥ ७० ॥
आगतोऽत्र धनुर्द्रष्टुं फलितो मे मनोरथः । अद्य मे सफलं जन्म राम त्वां सह सीतया ।। ७१ ॥
एकासनस्थं पश्यामि भ्राजमानं रविं यथा । त्वत्पादाम्बुधरो ब्रह्मा सृष्टिचक्रप्रवर्तकः ॥ ७२ ॥
बलिस्त्वत्पादसलिलं धृत्वाऽभूद्दिविजाधिपः । त्वत्पादपांसुसंस्पर्शादहल्या भर्तृशापतः ॥ ७३ ॥
सद्य एव विनिर्मुक्ता कोऽन्यस्त्वत्तोऽधिरक्षिता ॥ ७४ ॥

यत्पादपङ्कजपरागसुरागयोगिवृन्दैर्जितं भवभयं जितकालचक्रैः ।
यन्नामकीर्तनपरा जितदुःखशोका देवास्तमेव शरणं सततं प्रपद्ये ॥ ७५ ॥

इति स्तुत्वा नृपः प्रादाद्राघवाय महात्मने । दीनाराणां कोटिशतं रथानामयुतं तदा ॥ ७६ ॥
अश्वानां नियुतं प्रादाद्गजानां षट्शतं तथा । पत्तीनां लक्षमेकं तु दासीनां त्रिशतं ददौ ॥७७॥
दिव्याम्बराणि हारांश्च मुक्तारत्नमयोज्ज्वलान् । सीतायै जनकः प्रादात्प्रीत्या दुहितृवत्सलः ।७८।

भगवान की भार्या लक्ष्मी समझता हूँ। किस प्रकार शुभलक्षणा जानकी को श्रीराघव को दूँ, यह विचार करते-करते एक युक्ति सोची। भगवान् शंकर त्रिपुरासुर को भस्म करने के अनन्तर इस धनुष को मेरे पितामह के पास रखे थे। उस समय से यह धनुष धरोहर के रूप में विद्यमान है। "सबका गर्वनाशक इस धनुष को सीता के पाणिग्रहण के लिए प्रण (बाजी) के रूप में रखना चाहिए", यह सोचकर वैसा ही किया। हे मुनिश्रेष्ठ ! आपकी कृपा से यहाँ राजीवलोचन रामजी धनुष देखने के लिए आये; इससे मेरा मनोरथ सिद्ध हुआ। हे राम ! आज मेरा जन्म सफल हो गया जो मैं सूर्य के समान देदीप्यमान तथा सीता के साथ एक आसन पर विराजमान आपको देख रहा हूँ। हे प्रभो ! आपके चरणोदक अपने शिर पर धारणकर ब्रह्मा जी सृष्टि-प्रवर्त्तक हैं ।। ६७-७२ ।।

आपके चरणोदक को धारण कर बलि इन्द्र का पद प्राप्त किये और आपकी चरण-धूलि के स्पर्श से अहल्या अपने पति के शाप से मुक्त हो गयी। आपसे बड़ा मेरा रक्षक कौन है ॥ ७३-७४ ।। आपके चरण कमल के पराग के रसिक योगिजन कालचक्र को जीतने वाले भवभय को भी जीत लिए हैं और आपके नाम कीर्तन में लगे रहकर देवगण दुःख और शोक को जीत लेते हैं, मैं आपका निरन्तर शरणागत हूँ ।। ७५ ।।

महाराजा जनक जी महात्मा रघुनाथ जी की इस प्रकार स्तुति कर दहेज में सौ करोड़ दीनार (सुवर्णमुद्रा), दस हजार रथ, दस लाख घोड़े, छः सौ हाथी, एक लाख पदाति सेना और तीन सौ दासियाँ दिये ।। ७६-७७ ॥ तदनन्तर सीताजी को भी पुत्रीवत्सल जनकजी प्रेमपूर्वक अनेक दिव्यवस्त्र तथा मोती

वसिष्ठादीन्सुसंपूज्य भरतं लक्ष्मणं तथा । पूजयित्वा यथान्यायं तथा दशरथं नृपम् ॥ ७९ ॥
प्रस्थापयामास नृपो राजानं रघुसत्तमम् । सीतामालिङ्ग्य रुदतीं मातरः साश्रुलोचनाः ॥८०॥
श्वश्रूशुश्रूषणपरा नित्यं राममनुव्रता । पातिव्रत्यमुपालम्ब्य तिष्ठ वत्से यथासुखम् ८१॥
प्रयाणकाले रघुनन्दनस्य भेरीमृदङ्गानकतूर्यघोषः ।
स्वर्गासिभेरीघनतूर्यशब्दैः सम्मूर्छितो भूतभयङ्करोऽभूत् ॥८२॥

॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥६॥

सप्तमसर्ग

परशुरामजी से भेंट

सूत उवाच

अथ गच्छति श्रीरामे मैथिलाद्योजनत्रयम् । निमित्तान्यतिघोराणि ददर्श नृपसत्तमः ॥१॥
नत्वा वसिष्ठं पप्रच्छ किमिदं मुनिपुङ्गव । निमित्तानीह दृश्यन्ते विषमाणि समन्ततः ॥२॥
वसिष्ठस्तमथ प्राह भयमागामि सूच्यते । पुनरप्यभयं तेऽद्य शीघ्रमेव भविष्यति ॥३॥

और रत्नजटित उज्ज्वल हार दिये ॥ ७८ ॥ तत्पश्चात् वे वसिष्ठजी आदि की पूजा किये, पुनः भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और राजा दशरथ जी को धन-दानादि से यथोचित-सत्कार कर रघुश्रेष्ठ महाराज दशरथजी को विदा किये। पुनः माताएँ रोतीं हुईं सीताजी को गले लगाकर नेत्रों में आनन्दाश्रु भरकर बोलीं ॥ ७९-८० ॥ वत्से ! तुम सास की सेवा करती हुई सदा श्रीरामचन्द्रजी की अनुगामिनी रह पातिव्रत्य धर्म का अवलम्बन कर सुखपूर्वक रहना ॥ ८१ ॥ तत्पश्चात् रघुकुलतिलक श्रीरघुनाथजी के प्रस्थान करते समय भेरी, मृदङ्ग, आनक तूर्य आदि बाजों का घोष, और आकाश में देवताओं के बजाये हुए भेरी, झाँझ, और तूर्य आदि का शब्द मिलकर प्राणियों को भय उत्पन्न करनेवाला हुआ ॥ ८२ ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितया भाषाटीकयासहितः षष्ठसर्गः परिपूर्णः ॥ ६ ॥

सूतजी बोले—श्रीरामचन्द्रजी के मिथिलापुरी से तीन योजन चले जाने पर नृपश्रेष्ठ राजा दशरथ अतिघोर अपशकुन देखे ॥ १ ॥ उन्होंने वसिष्ठजी से पूछा—मुनिपुङ्गव ! सर्वत्र भयंकर अपशकुन दिखायी पड़ रहे हैं, इसका कारण क्या है ? ॥ २ ॥ वसिष्ठजी बोले—इन अपशकुनों के द्वारा आगामी भय की

मृगाः प्रदक्षिणं यान्ति पश्य त्वां शुभसूचकाः । इत्येवं वदतस्तस्य ववौ घोरतरोऽनिलः ॥४॥
मुष्णंश्चक्षूंषि सर्वेषां पांसुवृष्टिभिरर्दयन् । ततो व्रजन्ददर्शाग्रे तेजोराशिमुपस्थितम् ॥५॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं विद्युत्पुञ्जसमप्रभम् । तेजोराशिं ददर्शाथ जामदग्न्यं प्रतापवान् ॥६॥
नीलमेघनिभं प्रांशुं जटामण्डलमण्डितम् । धनुःपरशुपाणिं च साक्षात्कालमिवान्तकम् ॥७॥
कार्तवीर्यान्तकं रामं दृप्तक्षत्रियमर्दनम् । प्राप्तं दशरथस्याग्रे कालमृत्युमिवापरम् ॥८॥
तं दृष्ट्वा भयसन्त्रस्तो राजा दशरथस्तदा । अर्घ्यादिपूजां विस्मृत्य त्राहि त्राहीति चाब्रवीत् ।९।
दण्डवत्प्रणिपत्याह पुत्रप्राणं प्रयच्छ मे । इति ब्रुवन्तं राजानमनादृत्य रघूत्तमम् ॥१०॥
उवाच निष्ठुरं वाक्यं क्रोधात्प्रचलितेन्द्रियः । त्वं राम इति नाम्ना मे चरसि क्षत्रियाधम ।११।
द्वन्द्वयुद्धं प्रयच्छाशु यदि त्वं क्षत्रियोऽसि वै । पुराणं जर्जरं चापं भङ्क्त्वा त्वं कत्थसे मुधा १२
अस्मिंस्तु वैष्णवे चाप आरोपयसि चेद्गुणम् । तदा युद्धं त्वया सार्धं करोमि रघुवंशज ॥१३॥
नो चेत्सर्वान्हनिष्यामि क्षत्रियान्तकरो ह्यहम् । इति ब्रुवति वै तस्मिंश्चचाल वसुधा भृशम् ॥१४॥
अन्धकारो बभूवाथ सर्वेषामपि चक्षुषाम् । रामो दाशरथिर्वीरो वीक्ष्य तं भार्गवं रुषा ॥१५॥

सूचना होती है। साथ ही शीघ्रही अभय होगा यह भी सूचित होता है ॥ ३ ॥ मृगगण आपके दायें तरफ जारहे हैं, जो शुभसूचक हैं। इसप्रकार वशिष्ठजी के कहते ही अतिप्रचण्ड वायु चलने लगा ॥४॥ धूलिवर्षा के कारण सबके नेत्र बन्द हो गये। पुनः उन्होंने चलते-चलते एक तेजपुञ्ज को अपने सम्मुख उपस्थित देखा ॥ ५ ॥ पुनः उन्होंने कोटिसूर्य के समान तेजस्वी, विद्युत् पुञ्ज के समान प्रभासम्पन्न, महाप्रतापी, तेजोराशि, नीलमेघ की द्युतिवाले, उन्नतकाय, जटा-जूट धारण किये हुए, हाथ में धनुष और परशु लिये, प्राणियों का नाश करने वाले साक्षात् काल के समान परशुरामजी को आते देखा ॥ ६-७ ॥ राजा दशरथ कार्तवीर्य का वध करने वाले और गर्वीले क्षत्रियों के मान को मर्दन करने वाले, अपर यमराज के समान परशुरामजी को अपने सामने खड़े देखे ॥ ८ ॥

उन्हें देखते ही भय से भयभीत होकर अर्घ्यादि द्वारा उनकी पूजा करना भूलकर त्राहि-त्राहि कहकर पुकारने लगे ॥ ९ ॥ उन्हें दण्डवत् प्रमाम कर "मुझे पुत्र के प्राणों का दान दीजिये" यह राजादशरथ बोले। वे प्रार्थना करते हुये राजा पर ध्यान न देकर क्रोध से व्याकुल होकर कठोर वाणी से रघूत्तम श्रीरामचन्द्र-जी से बोले—"अरे क्षत्रियाधम ! मेरे समान "राम" नाम से विख्यात होकर तू पृथिवी में विचरण करता है ॥ १०-११ ॥ यदि तू वास्तव में क्षत्रिय है तो मेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध कर; पुराने धनुष को तोड़कर तू व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर रहा है ॥ १२ ॥ अरे रघुकुलोत्पन्न ! यदि तू इस वैष्णव धनुष पर रौंदा चढ़ा देगा तो मैं तेरे साथ युद्ध करूँगा ॥ १३ ॥ यदि तू ऐसा नहीं किया तो मैं सबको मार दूँगा; क्षत्रियों का नाश करना तो मेरा काम ही है। परशुरामजी के इस प्रकार कहने पर पृथ्वी बारम्बार काँपने लगी ॥ १४ ॥ सबके सामने अँधेरा छा गया। तदनन्तर दशरथनन्दन वीरवर रामने परशुराम जी की ओर

धनुराच्छिद्य तद्धस्तादारोप्य गुणमञ्जसा । तूणीराद्बाणमादाय सन्धायाकृष्य वीर्यवान् ॥१६॥
उवाच भार्गवं रामं शृणु ब्रह्मन्वचो मम । लक्ष्यं दर्शय बाणस्य ह्यमोघो मम सायकः ॥१७॥
लोकान्पादयुगं वापि वद शीघ्रं ममाज्ञया । अयं लोकः परो वाथ त्वया गन्तुं न शक्यते ।१८।
एवं त्वं हि प्रकर्तव्यं वद शीघ्रं ममाज्ञया । एवं वदति श्रीरामे भार्गवो विकृताननः ॥१९॥
संस्मरन्पूर्ववृत्तान्तमिदं वचनमब्रवीत् । राम राम महाबाहो जाने त्वां परमेश्वरम् ।२०॥
पुराणपुरुषं विष्णुं जगत्सर्गलयोद्भवम् । बाल्येऽहं तपसा विष्णुमाराधयितुमञ्जसा ॥२१॥
चक्रतीर्थं शुभं गत्वा तपसा विष्णुमन्वहम् । अतोषयं महात्मानं नारायणमनन्यधीः ॥२२॥
ततः प्रसन्नो देवेशः शङ्खचक्रगदाधरः । उवाच मां रघुश्रेष्ठ प्रसन्नमुखपङ्कजः ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठ तपसो ब्रह्मन्फलितं ते तपो महत् । मच्चिदंशेन युक्तस्त्वं जहि हैहयपुङ्गवम् ॥२४॥
कार्तवीर्यं पितृहणं यदर्थं तपसः श्रमः । ततस्त्रिःसप्तकृत्वस्त्वं हत्वा क्षत्रियमण्डलम् ॥२५॥
कृत्स्नां भूमिं कश्यपाय दत्त्वा शान्तिमुपावह । त्रेतामुखे दाशरथिर्भूत्वा रामोऽहमव्ययः ॥२६॥
उत्पत्स्ये परया शक्त्या तदा द्रक्ष्यसि मां ततः । मत्तेजः पुनरादास्ये त्वयि दत्तं मया पुरा ।२७।

क्रोधपूर्वक देखते हुए उनके हाथ से धनुष ले लिया और उसपर बिना प्रयास ही रौंदा चढ़ाकर अपने तरकस से बाण निकालकर उसपर रख उसे खींचकर परशुराम जी से बोले—"ब्रह्मन्! मेरी बात सुनिये, बाण का लक्ष्य दिखाइये, क्योंकि मेरा बाण अमोघ है ॥ १५-१७ ॥ पुण्य के द्वारा प्राप्त लोक अथवा अपना चरण दोनों में से एक शीघ्र ही मेरी आज्ञा से दिखाइये। इसके बाद तुम इस लोक अथवा परलोक में कहीं नहीं जा सकोगे ॥ १८ ॥

मेरी आज्ञा से शीघ्र ही बताइये कि तुम्हारे साथ मैं क्या करूँ। इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजी के कहने पर परशुरामजी का मुख मलिन हो गया ॥ १९ ॥ पुनः वे अपने पूर्ववृत्तान्त को स्मरण कर बोले—हे राम! हे राम! हे महाबाहो! आप परमेश्वर को मैं जान लिया ॥ २० ॥ आप साक्षात् संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के आदि कारण पुराणपुरुष भगवान् विष्णु हैं। मैं बाल्यकाल में तपस्या के द्वारा भगवान् विष्णु की आराधना करने के लिये सहसा चक्रतीर्थ में गया। वहाँ प्रतिदिन अनन्यभाव से तपस्या करते हुए मैंने परमात्मा नारायण भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया ॥ २१-२२ ॥ हे रघुश्रेष्ठ! उस समय शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करने वाले देवेश्वर विष्णु ने मुझसे कहा ॥ २३ ॥

श्री भगवान् बोले—हे ब्रह्मन्! आपकी तपस्या पूरी हुई, तपस्या छोड़कर उठो। तुम मेरे चिदंश से युक्त होकर, उस पितृघाती हैहयपुङ्गव कार्तवीर्य का वध करो, जिसके लिये तपस्या करने का तुमने कष्ट किया है। पुनः इक्कीस बार समस्त क्षत्रियों को मार सम्पूर्ण पृथिवी कश्यपजी को देकर शान्ति प्राप्त करो। मैं अविनाशी त्रेतायुग में दशरथजी के पुत्र राम नाम से जन्म ग्रहण करूँगा ॥ २४-२६ ॥ उस समय मेरी परम

तदा तपश्चरँल्लोके तिष्ठ त्वं ब्रह्मणो दिनम् । इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तथा सर्वं कृतं मया ॥२८॥
स एव विष्णुस्त्वं राम जातोऽसि ब्रह्मणार्थितः । मयि स्थितं तु त्वत्तेजस्त्वयैव पुनराहृतम् ॥२९॥
अद्य मे सफलं जन्म प्रतीतोऽसि मम प्रभो । ब्रह्मादिभिरलभ्यस्त्वं प्रकृतेः पारगो मतः ॥३०॥
त्वयि जन्मादिषड्भावा न सन्त्यज्ञानसम्भवाः । निर्विकारोऽसि पूर्णस्त्वं गमनादिविवर्जितः ॥३१॥
यथा जले फेनजालं धूमो वह्नौ तथा त्वयि । त्वदाधारा त्वद्विषया माया कार्यं सृजत्यहो ॥३२॥
यावन्मायावृता लोकास्तावत्त्वां न विजानते । अविचारितसिद्धैषाऽविद्या विद्याविरोधिनी ॥३३॥
अविद्याकृतदेहादिसंघाते प्रतिबिम्बिता । चिच्छक्तिर्जीवलोकेऽस्मिन् जीव इत्यभिधीयते ॥३४॥
यावद्देहमनः प्राणबुद्ध्यादिष्वभिमानवान् । तावत्कर्तृत्वभोक्तृत्वसुखदुःखादिभाग्भवेत् ॥३५॥
आत्मनः संसृतिर्नास्ति बुद्धेर्ज्ञानं न जात्विति । अविवेकाद्द्वयं युङ्क्त्वा संसारीति प्रवर्तते ॥३६॥
जडस्य चित्समायोगाच्चित्त्वं भूयाच्चितेस्तथा । जडसङ्गाज्जडत्वं हि जलाग्न्योर्मेलनं यथा ॥३७॥
यावत्त्वत्पादभक्तानां सङ्गसौख्यं न विन्दति । तावत्संसारदुःखौघान्न निवर्तेन्नरः सदा ॥३८॥

शक्ति (सीता) के साथ मुझे देखोगे। इससमय दिया हुआ अपना तेज मैं पुनः वापस ले लूँगा ॥ २७ ॥ तदनन्तर तपस्या करते हुए कल्पान्तपर्यन्त तुम पृथ्वी पर रहोगे। इसप्रकार कहकर विष्णुभगवान् अन्तर्ध्यान हो गये, मैं उनके कथनानुसार आचरण किया ॥ २८ ॥ हे राम! आप वही विष्णु हैं। आप ब्रह्मा की प्रार्थना से प्रादुर्भूत हुए हैं। मुझमें स्थित अपना तेज पुनः आप वापस ले लिये ॥ २९ ॥ हे प्रभो! आज मैं आपको पहचान लिया मेरा जन्म सफल हो गया, क्योंकि आप ब्रह्मा आदि से अलभ्य और प्रकृति से परे माने गये हैं ॥ ३० ॥ आपमें अज्ञानजन्य जन्मादि छः विकार नहीं हैं, आप गमनादि से रहित निर्विकार और पूर्ण हैं ॥ ३१ ॥

अहो! जिस प्रकार जल में फेनसमूह और अग्नि में धूआँ है, उसी प्रकार आपके आश्रित रहने-वाली तथा आपको विषय करने वाली माया विचित्रकार्यों का सृजन करती है ॥ ३२ ॥ मनुष्य जबतक माया से आवृत्त रहते हैं, तबतक आपको नहीं जानते। विद्या-विरोधिनी यह माया जब तक वास्तविक चिन्तन नहीं होता तभी तक रहती है ॥ ३३ ॥ अविद्या के द्वारा देहादि संघातों में प्रतिबिम्बित होने वाली चित् शक्ति इस जीव-लोक में "जीव" कहलाती है ॥ ३४ ॥ यह जीव देह, मन, प्राण और बुद्धि में जबतक अहंभाव रखता है, तभी तक कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख, दुःख आदि का भोग करने वाला होता है ॥ ३५ ॥ वस्तुतः आत्मा में जन्ममरणादि विकार किसी भी अवस्था में नहीं है और बुद्धि में ज्ञान शक्ति नहीं है। अविवेक के द्वारा इन दोनों को मिलाकर मैं "संसारी" हूँ यह मानकर जीव कर्मों में प्रवृत्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ जल और अग्नि के संयोग से जल में उष्णता तथा अग्नि में शितलता उत्पन्न होती है, उसी प्रकार जड़ (बुद्धि) का चेतन (आत्मा) के साथ संयोग होने से बुद्धि में चेतनता तथा चेतन आत्मा में कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि जडता उत्पन्न हो जाती है ॥ ३७ ॥

हे राम जबतक प्राणी आपके चरणारविन्दों के भक्तों का सङ्गसुख प्राप्त नहीं करता तबतक संसार

तत्सङ्गलब्धया भक्त्या यदा त्वां समुपासते । तदा माया शनैर्याति तानवं प्रतिपद्यते ॥३९॥
ततस्त्वज्ज्ञानसम्पन्नः सद्गुरुस्तेन लभ्यते । वाक्यज्ञानं गुरोर्लब्ध्वा त्वत्प्रसादाद्विमुच्यते ॥४०॥
तस्मात्त्वद्भक्तिहीनानां कल्पकोटिशतैरपि । न मुक्तिशङ्का विज्ञानशङ्का नैव सुखं तथा ।४१॥
अतस्त्वत्पादयुगले भक्तिर्मे जन्मजन्मनि । स्यात्त्वद्भक्तिमतां सङ्गोऽविद्या याभ्यां विनश्यति ।४२।
लोके त्वद्भक्तिनिरतास्त्वद्धर्मामृतवर्षिणः । पुनन्ति लोकमखिलं किं पुनः स्वकुलोद्भवान् ॥४३॥
नमोऽस्तु जगतां नाथ नमस्ते भक्तिभावन । नमः कारुणिकानन्त रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ।४४॥
देव यद्यत्कृतं पुण्यं मया लोकजिगीषया । तत्सर्वं तव बाणाय भूयाद्राम नमोऽस्तु ते ॥४५॥
ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः करुणामयः । प्रसन्नोऽस्मि तव ब्रह्मन्यत्ते मनसि वर्तते ॥४६॥
दास्ये तदखिलं कामं मा कुरुष्वात्र संशयम् । ततः प्रीतेन मनसा भार्गवो राममब्रवीत् ॥४७॥
यदि मेऽनुग्रहो राम तवास्ति मधुसूदन । त्वद्भक्तसङ्गस्त्वत्पादे दृढा भक्तिः सदाऽस्तु मे ॥४८॥
स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु भक्तिहीनोऽपि सर्वदा । त्वद्भक्तिस्तस्य विज्ञानं भूयादन्ते स्मृतिस्तव ।।४९॥

के दुःखों से निवृत्त नहीं होता ॥ ३८ ॥ जब जीव भक्तों के संग से प्राप्त भक्ति के द्वारा आपकी उपासना करता है, तब आपकी माया धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है ॥ ३९ ॥ पुनः साधक को आपके ज्ञान से सम्पन्न सद्गुरु प्राप्त होते हैं, तथा उनके द्वारा महावाक्य का ज्ञान प्राप्तकर आपकी कृपा से वह मुक्त हो जाता है ॥ ४० ॥ अत एव आपकी भक्ति से रहित पुरुषों को सौकरोड़ कल्पों में भी मुक्ति अथवा आत्मज्ञान होने की संभावना नहीं है। अतएव उन्हें वास्तविक सुख भी प्राप्त होने की सम्भावना नहीं है ॥ ४१ ॥ इसलिये मैं यह चाहता हूँ कि आपके चरणयुगल में जन्मजन्मान्तर तक मेरी भक्ति हो और मुझे आपके भक्तों की संगति प्राप्त हो, क्योंकि इन दोनों साधनों के द्वारा ही अविद्या का नाश होता है ॥ ४२ ॥ संसार में आपकी भक्ति में लीन और भगवद्धर्मरूप अमृतकी वर्षा करने वाले भक्तगण सम्पूर्ण लोकों को पवित्र करते हैं, अपने कुल में उत्पन्न पुरुषों को पवित्र करने में सन्देह ही क्या है ॥ ४३ ॥ हे जगन्नाथ ! आपको नमस्कार है। हे करुणामय ! हे अनन्त ! आपको नमस्कार है। हे रामचन्द्र ! आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ४४ ॥

हे देव ! पुण्यलोक प्राप्ति के लिये किये गये मेरे पुण्यकर्म आपके इस बाण के लक्ष्य हों। हे राम ! आपको नमस्कार है ॥ ४५ ॥ तत्पश्चात् करुणामय भगवान् श्रीरामचन्द्र प्रसन्न होकर बोले–हे ब्रह्मन् ! मैं प्रसन्न हूँ, जो जो आपके मन में इच्छा है; उनसभी को मैं पूर्ण करूँगा इसमें सन्देह न करें। तब प्रसन्न होकर परशुरामजी श्रीरामचन्द्र से बोले ॥ ४६-४७ ॥ हे मधुसूदन राम ! यदि मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है तो आपके भक्तों की संगति और आपके चरणारविन्द में मेरी सुदृढ़ भक्ति सदा बनी रहे ॥ ४८ ॥ जो व्यक्ति भक्तिभाव से रहित होनेपर भी इस स्तोत्र का पाठ करे तो उसे सर्वथा आपकी भक्ति और ज्ञान प्राप्त हो तथा अन्त में आपकी स्मृति रहे ॥ ४९ ॥ श्रीरघुनाथजी के "तथा इति" ऐसा कहने पर पशुरामजो

तथेति राघवेणोक्तः परिक्रम्य प्रणम्य तम् । पूजितस्तदनुज्ञातो महेन्द्राचलमन्वगात् ॥५०॥
राजा दशरथो हृष्टो रामं मृतमिवागतम् । आलिङ्ग्यालिङ्ग्य हर्षेण नेत्राभ्यां जलमुत्सृजत् ॥५१॥
ततः प्रीतेन मनसा स्वस्थचित्तः पुरं ययौ ।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता देवसंमिताः । स्वां स्वां भार्यामुपादाय रेमिरे स्वस्वमन्दिरे ॥५२॥
मातापितृभ्यां संहृष्टो रामः सीतासमन्वितः । रेमे वैकुण्ठभवने श्रिया सह यथा हरिः ॥५३॥
युधाजिन्नाम कैकेयीभ्राता भरतमातुलः । भरतं नेतुमागच्छत्स्वराज्यं प्रीतिसंयुतः ॥५४॥
प्रेषयामास भरतं राजा स्नेहसमन्वितः । शत्रुघ्नं चापि संपूज्य युधाजितमरिन्दमः ॥५५॥
कौसल्या शुशुभे देवी रामेण सह सीतया । देवमातेव पौलोम्या शच्या शक्रेण शोभना ॥५६॥
साकेते लोकनाथप्रथितगुणगणो लोकसङ्गीतकीर्तिः
श्रीरामः सीतयास्तेऽखिलजननिकरानन्दसन्दोहमूर्तिः ।
नित्यश्रीर्निर्विकारो निरवधिविभवो नित्यमायानिरासो
मायाकार्यानुसारी मनुज इव सदा भाति देवोऽखिलेशः ॥५७॥
इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥७॥ श्लोकसंख्या ३६० ।

उनकी परिक्रमा कर उन्हें प्रणाम किये और उनसे पूजित हो उनकी आज्ञा से महेन्द्रपर्वत पर चले गये ॥५०॥ राम को मृत्यु के मुख से लौटा समझकर राजादशरथ अत्यन्त हर्षपूर्वक बार-बार श्रीरामचन्द्र का आलिङ्गन किये और नेत्रों से आनन्दाश्रुओं की वर्षा करने लगे ॥ ५१ ॥

तत्पश्चात् प्रसन्न मन अपनी अयोध्यापुरी में आये । अयोध्या में राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न अपनी-अपनी भार्या के साथ देवताओं के समान अपने-अपने महलों में रमण करने लगे ॥ ५२ ॥ सीता के साथ रामचन्द्रजी अपने माता-पिता को आनन्द बढ़ाते हुए वैकुण्ठ में भगवान् विष्णु और लक्ष्मी की भाँति रमण करने लगे ॥ ५३ ॥ कैकेयी का भाई भरतजी के मामा युधाजित भरतजी को प्रीतिपूर्वक अपने यहाँ ले जाने के लिये आये ॥ ५४ ॥ शत्रुदमन महाराज दशरथ युधाजित का सत्कार कर स्नेहवश भरत और शत्रुघ्न को उनके साथ भेज दिये ॥ ५५ ॥ तत्पश्चात् देवी कौसल्या राम और सीता के सहित पुलोम पुत्री शची और इन्द्र के सहित देवमाता अदिति की भाँति सुशोभित हुई ॥ ५६ ॥ जिनके गुणगण ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण लोकपालों में प्रसिद्ध हैं, जिनकी कीर्ति सम्पूर्ण लोकों में गायी जाती है, जो सम्पूर्ण प्राणियों के आनन्द समूह के मूर्ति हैं, जो नित्य शोभाधाम, निर्विकार अनन्त-वैभव सम्पन्न और मायातीत होकर माया के कार्यों का अनुसरण करते हुए सदा मनुष्य के समान प्रतीत होते हैं, वे अखिलेश्वर देव-श्रीराम सीताजी के साथ साकेतपुरी (अयोध्या) में सुशोभित हो रहने लगे ॥ ५७ ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितयाभाषा
टीकयासहितःसप्तमसर्गः परिपूर्णः ॥ ७ ॥

ॐ

अध्यात्मरामायण

अयोध्याकाण्ड

प्रथमसर्ग

भगवान् राम के पास नारदजी का आना

श्रीमहादेव उवाच

एकदा सुखमासीनं रामं स्वान्तःपुराजिरे । सर्वाभरणसंपन्नं रत्नसिंहासने स्थितम् ॥१॥
नीलोत्पलदलश्यामं कौस्तुभामुक्तकन्धरम् । सीतया रत्नदण्डेन चामरेणाथ वीजितम् ॥२॥
विनोदयन्तं ताम्बूलचर्वणादिभिरादरात् । नारदोऽवतरद्द्रष्टुमम्बराद्यत्र राघवः ॥३॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशः शरच्चन्द्र इवामलः । अतर्कितमुपायातो नारदो दिव्यदर्शनः ॥४॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय रामः प्रीत्या कृताञ्जलिः । ननाम शिरसा भूमौ सीतया सह भक्तिमान् ॥५॥
उवाच नारदं रामः प्रीत्या परमया युतः । संसारिणां मुनिश्रेष्ठ दुर्लभं तव दर्शनम् ।
अस्माकं विषयासक्तचेतसां नितरां मुने ॥६॥
अवाप्तं मे पूर्वजन्मकृतपुण्यमहोदयैः । संसारिणापि हि मुने लभ्यते सत्समागमः ॥७॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति। एक समय सभी अलङ्कारों से सुसज्जित श्रीरामचन्द्रजी अन्तःपुर के आँगन में एक रत्नसिंहासन पर सुखपूर्वक बैठे थे ॥ १ ॥ नीले कमल के समान श्यामवर्ण कौस्तुभ-मणि से सुसज्जित श्रीरघुनाथजी पर श्रीसीताजी रत्नदण्डयुक्त चामर झल रही थीं ॥ २ ॥ वे आदरपूर्वक दिये गये ताम्बूलचर्वणादि से आनन्दित हो रहे थे, उसी समय श्रीराघवजी को देखने के लिये आकाशमार्ग से देवर्षि नारदजी उतरे ॥ ३ ॥ शुद्धस्फटिकमणि के समान स्वच्छ तथा शरदृतु के चन्द्रमा के समान निर्मल दिव्यमूर्ति श्रीनारदजी को अचानक आते हुए देखकर भगवान राम सहसा उठकर श्रीसीताजी के सहित प्रेम और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ पृथ्वी पर शिर रखकर उन्हें प्रणाम किये ॥ ४-५ ॥

पुनः परम प्रीतिपूर्वक श्रीनारदजी से श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! हम जैसे विषयासक्त सांसारिक पुरुषों का आपका दर्शन दुर्लभ है। हे मुने ! आज अपने पूर्वजन्मकृतपुण्यपुञ्ज के उदय होने के कारण ही मुझे आपका दर्शन हुआ है, क्योंकि पुण्योदय होने पर सांसारिक पुरुषों को भी सत्सङ्ग की

अतस्त्वद्दर्शनादेव कृतार्थोऽस्मि मुनीश्वर। किं कार्यं ते मया कार्यं ब्रूहि तत्करवाणि भोः ॥८॥
अथ तं नारदोऽप्याह राघवं भक्तवत्सलम्। किं मोहयसि मां राम वाक्यैर्लोकानुसारिभिः ॥९॥
संसार्यहमिति प्रोक्तं सत्यमेतत्त्वया विभो। जगतामादिभूता या सा माया गृहिणी तव ॥१०॥
त्वत्सन्निकर्षाज्जायन्ते तस्यां ब्रह्मादयः प्रजाः।
त्वदाश्रया सदा भाति माया या त्रिगुणात्मिका ॥११॥
सूतेऽजस्रं शुक्लकृष्णलोहिताः सर्वदा प्रजाः। लोकत्रयमहागेहे गृहस्थस्त्वमुदाहृतः ॥१२॥
त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः शिवस्त्वं जानकी शिवा।
ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी सूर्यस्त्वं जानकी प्रभा ॥१३॥
भवान् शशाङ्कः सीता तु रोहिणी शुभलक्षणा।
शक्रस्त्वमेव पौलोमी सीता स्वाहानलो भवान् ॥१४॥
यमस्त्वं कालरूपश्च सीता संयमिनी प्रभो। निर्ऋतिस्त्वं जगन्नाथ तामसी जानकी शुभा ॥१५॥
राम त्वमेव वरुणो भार्गवी जानकी शुभा। वायुस्त्वं राम सीता तु सदागतिरितीरिता ॥१६॥
कुबेरस्त्वं राम सीता सर्वसम्पत्प्रकीर्तिता। रुद्राणी जानकी प्रोक्ता रुद्रस्त्वं लोकनाशकृत् ॥१७॥

प्राप्ति होती है ॥ ६-७ ॥ अतः हे मुनीश्वर! आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हूँ। आपका क्या कार्य है मुझे बतलाइये, जिसे मैं पूर्ण करूँ ॥ ८ ॥ इसके बाद नारदजी ने भक्तवत्सल भगवान् राम से कहा—हे राम! आप सामान्य मनुष्यों जैसे इन वाक्यों से मुझे क्यों मोहित करते हैं ॥ ९ ॥ हे विभो! "मैं संसारी हूँ" यह आपकी उक्ति यथार्थ ही है, क्योंकि सम्पूर्ण संसार की आदिकारण माया आपकी गृहिणी है ॥ १० ॥ हे प्रभो! आपकी सन्निधिमात्र से माया के द्वारा ब्रह्मा आदि सभी प्रजायें उत्पन्न होती हैं, वह सत्त्व-रज-तम-रूपात्मिका त्रिगुणात्मिका माया आपके आश्रित होकर भासित होती है, तथा अपने गुण के अनुरूप शुक्ल, लोहित और कृष्ण वर्ण की प्रजा उत्पन्न करती है। इस त्रिलोकी महागृह के आप गृहस्थ कहे जाते हैं ॥ ११-१२ ॥

हे राम! आप भगवान् विष्णु हैं, तथा जानकीजी लक्ष्मीजी हैं, आप शिव हैं और जानकीजी पार्वती हैं, आप ब्रह्मा हैं और जानकीजी सरस्वती हैं, आप सूर्यदेव हैं तथा जानकीजी प्रभा हैं ॥ १३ ॥ आप चन्द्रमा हैं तथा शुभलक्षणसम्पन्ना सीताजी रोहिणी हैं, आप इन्द्र हैं और सीताजी पुलोम-कन्या शची हैं, आप अग्नि हैं और सीताजी स्वाहा हैं ॥ १४ ॥

हे प्रभो! आप सबके कालरूप यम हैं और सीताजी संयमिनी हैं। हे जगन्नाथ! आप निर्ऋति हैं तथा जानकी जी भृगुकन्या वारुणी हैं, आप वायु हैं और सीताजी सदागति हैं ॥ १६ ॥ हे राम! आप कुबेर हैं और सीताजी उनकी सर्वसम्पत्ति हैं, आप लोकको संहार करनेवाले रुद्र हैं तथा सीताजी रुद्राणी

लोके स्त्रीवाचकं यावत्तत्सर्वं जानकी शुभा । पुन्नामवाचकं यावत्तत्सर्वं त्वं हि राघव ॥१८॥
तस्माल्लोकत्रये देव युवाभ्यां नास्ति किञ्चन ॥१९॥
त्वदाभासोदिताज्ञानमव्याकृतमितीर्यते । तस्मान्महांस्ततः सूत्रं लिङ्गं सर्वात्मकं ततः ॥२०॥
अहङ्कारश्च बुद्धिश्च पञ्चप्राणेन्द्रियाणि च । लिङ्गमित्युच्यते प्राज्ञैर्जन्ममृत्युसुखादिमत् ॥२१॥
स एव जीवसंज्ञश्च लोके भाति जगन्मयः । अवाच्यानाद्यविद्यैव कारणोपाधिरुच्यते ॥२२॥
स्थूलं सूक्ष्मं कारणाख्यमुपाधित्रितयं चितेः । एतैर्विशिष्टो जीवः स्याद्वियुक्तः परमेश्वरः ॥२३॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ताख्या संसृतिर्या प्रवर्तते । तस्या विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रस्त्वं रघूत्तम ॥२४॥
त्वत्त एव जगज्जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । त्वय्येव लीयते कृत्स्नं तस्मात्त्वं सर्वकारणम् ।२५॥
रज्जावहिमिवात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं भवेत् । परात्माहमिति ज्ञात्वा भयदुःखैर्विमुच्यते ॥२६॥
चिन्मात्रज्योतिषा सर्वाः सर्वदेहेषु बुद्धयः । त्वया यस्मात्प्रकाश्यन्ते सर्वस्यात्मा ततो भवान् ।२७
अज्ञानान्न्यस्यते सर्वं त्वयि रज्जौ भुजङ्गवत् । त्वज्ज्ञानाल्लीयते सर्वं तस्माज्ज्ञानं सदाभ्यसेत् ।२८।

कही गई हैं ॥ १७ ॥ हे राघव ! निश्चय ही संसार में पुरुषवाचक पदार्थ आप हैं और सब स्त्रीवाचक-पदार्थ श्रीजानकी जी हैं । अतः हे देव ! त्रिलोकी में आप दोनों से भिन्न कुछ भी नहीं है ॥ १८-१९ ॥ आपके आभास से उत्पन्न अज्ञान अव्याकृत कहा जाता है, उससे महान् एवं महान् (महत्तत्त्व) से सूत्र (सूत्रात्मा) तथा सूत्रात्मा से लिङ्ग शरीर उत्पन्न होता है ॥ २० ॥ प्राज्ञजन अहंकार, बुद्धि, पञ्चप्राण और दस इन्द्रियाँ इन सबको मिलाकर जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख आदि का कर्त्ता भोक्ता लिङ्ग शरीर कहते हैं ॥ २१ ॥ वह (लिङ्ग शरीराभिमानी चेतनाभास) ही संसार में तन्मय हुआ जीव नाम से विख्यात है । अनिर्वचनीया, अनादि अविद्या इस जीवकी कारण उपाधि संज्ञिका हैं ॥ २२ ॥

शुद्ध चेतन की तीन उपाधियाँ हैं; स्थूल, सूक्ष्म और कारण । इन उपाधियों से युक्त रहने पर चिदंश जीव कहा जाता है और इससे रहित होने पर वह परमेश्वर कहा जाता है ॥ २३ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! जाग्रत, स्वप्न और सुसुप्ति ये तीन प्रकार की सृष्टि से आप विलक्षण हैं और इसके चेतन मात्र साक्षी हैं ॥ २४ ॥ यह सम्पूर्ण विश्व आपसे उत्पन्न हुआ है और आप में ही इसकी स्थिति है तथा आपमें ही लीन होता है । अतः आप सबके कारण हैं ॥ २५ ॥ रज्जु में सर्प का आभास के समान अपने को जीव समझने से मनुष्य को भय होता है । मैं ही परमात्मा हूँ यह जब उसे बोध होता है तब सम्पूर्ण भय और दुःखों से रहित हो जाता है ॥ २६ ॥

चिन्मात्र ज्योतिः स्वरूप आप ही सबके शरीरों में स्थित होकर उनके बुद्धियों को प्रकाशित करते हैं, इसलिये आप सबके आत्मा हैं ॥ २७ ॥ रज्जु में सर्प का भ्रम के समान अज्ञान से ही आपके सम्पूर्ण जगत् की कल्पना होती है । आपका ज्ञान होने पर सम्पूर्ण जगत् आप में लीन हो जाता है । अतः मनुष्य को सदा ज्ञान का अभ्यास करना चाहिये ॥ २८ ॥

त्वत्पादभक्तियुक्तानां विज्ञानं भवति क्रमात् । तस्मात्त्वद्भक्तियुक्ता ये मुक्तिभाजस्त एव हि ।२९।
अहं त्वद्भक्तभक्तानां तद्भक्तानां च किङ्करः । अतो मामनुगृह्णीष्व मोहयस्व न मां प्रभो ॥३०॥
त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा मे जनकः प्रभो । अतस्तवाहं पौत्रोऽस्मि भक्तं मां पाहि राघव ।३१।
इत्युक्त्वा बहुशो नत्वा स्वानन्दाश्रुपरिप्लुतः । उवाच वचनं राम ब्रह्मणा नोदितोऽस्म्यहम् ।३२।
रावणस्य वधार्थाय जातोऽसि रघुसत्तम । इदानीं राज्यरक्षार्थं पिता त्वामभिषेक्ष्यति ॥३३॥
यदि राज्याभिसंसक्तो रावणं न हनिष्यसि । प्रतिज्ञा ते कृता राम भूभारहरणाय वै ॥३४॥
तत्सत्यं कुरु राजेन्द्र सत्यसन्धस्त्वमेव हि । श्रुत्वैतद्गदितं रामो नारदं प्राह सस्मितम् ॥३५॥
शृणु नारद मे किंचिद्विद्यतेऽविदितं क्वचित् । प्रतिज्ञातं च यत्पूर्वं करिष्ये तन्न संशयः ॥३६॥
किन्तु कालानुरोधेन तत्तत्प्रारब्धसंक्षयात् । हरिष्ये सर्वभूभारं क्रमेणासुरमण्डलम् ॥३७॥
रावणस्य विनाशार्थं श्वो गन्ता दण्डकाननम् । चतुर्दश समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक् ॥३८॥
सीतामिषेण तं दुष्टं सकुलं नाशयाम्यहम् । एवं रामे प्रतिज्ञाते नारदः प्रमुमोद ह ॥३९॥
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य तम् । अनुज्ञातश्च रामेण ययौ देवगतिं मुनिः ॥४०॥

आपके चरणारविन्द में भक्ति करने वाले को क्रमशः ज्ञान प्राप्त होता है। अतः जो आपकी भक्ति करते हैं वे ही वास्तव में मुक्ति के पात्र (अधिकारी) हैं ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! मैं आपके भक्तों के जो भक्त हैं उनके भक्त का दास हूँ। अतः आप मुझे मोहित न कर मुझ पर अनुग्रह कीजिये ॥ ३० ॥ हे प्रभो ! आपके नाभि से उत्पन्न कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी मेरे पिता हैं, अतः मैं आपका पौत्र हूँ। हे राघव ! आप मुझ भक्त की रक्षा कीजिये ॥ ३१ ॥

इस प्रकार बारम्बार प्रणाम कर आनन्दाश्रु से परिपूर्ण नेत्रों वाले नारद जी बोले—हे रघुश्रेष्ठ ! मुझे ब्रह्माजी आपके पास भेजे हैं। रावण का वध करने के लिये आपका अवतार हुआ है, किन्तु राज्य की रक्षा के लिये आपके पिताजी आपको अभिषिक्त करने वाले हैं ॥ ३२-३३ ॥ हे राम ! राज्य में आसक्त होकर यदि रावण को नहीं मारेंगे तो भूभार हरण के लिये आपकी प्रतिज्ञा का क्या होगा ? ॥ ३४ ॥ अतः हे राजेन्द्र ! उस प्रतिज्ञा को आप सत्य कीजिये, क्योंकि आप सत्य प्रतिज्ञ हैं। नारद जी की बात सुनकर श्रीरामचन्द्र जी मुस्कुराकर बोले ॥ ३५ ॥ नारदजी ! सुनिये, मुझसे अज्ञात भी कोई बात है ? मैंने पहले जो प्रतिज्ञा की है, उसे पूर्ण करूँगा ॥ ३६ ॥ किन्तु कालक्रम के अनुसार जिनका प्रारब्ध क्षीण होता जायेगा, उन-उन राक्षसों का बधकर मैं क्रमशः पृथ्वी का भारहरण करूँगा ॥ ३७ ॥ रावण का वध करने के लिये मैं कल दण्डकारण्य जाऊँगा। वहाँ चौदहवर्ष मुनि का वेष धारण कर रहूँगा ॥ ३८ ॥ सीता हरण के बहाने उस दुष्ट को मैं सपरिवार नष्ट कर दूँगा। श्रीरामचन्द्रजी की यह प्रतिज्ञा सुनकर नारदजी अति प्रसन्न हुए ॥ ३९ ॥ पुनः नारदजी ने श्रीरामचन्द्र जी की तीन प्रदक्षिणा कर उन्हें दण्डवत् प्रणाम की और उनकी आज्ञा लेकर आकाश मार्ग से देवलोक को चले गये ॥ ४० ॥

संवादं पठति शृणोति संस्मरेद्वा यो नित्यं मुनिवररामयोः स भक्त्या।
संप्राप्नोत्यमरसुदुर्लभं विमोक्षं कैवल्यं विरतिपुरःसरं क्रमेण ॥४१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥१॥

द्वितीयसर्ग

राज्याभिषेक की तैयारी तथा वशिष्ठजी एवं रामचन्द्रजी का संवाद

श्रीमहादेव उवाच

अथ राजा दशरथः कदाचिद्रहसि स्थितः। वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमाहूयेदमभाषत ॥१॥
भगवन् राममखिलाः प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः। पौराश्च निगमा वृद्धा मन्त्रिणश्च विशेषतः ॥२॥
ततः सर्वगुणोपेतं रामं राजीवलोचनम्। ज्येष्ठं राज्येऽभिषेक्ष्यामि वृद्धोऽहं मुनिपुङ्गव ॥३॥
भरतो मातुलं द्रष्टुं गतः शत्रुघ्नसंयुतः। अभिषेक्ष्ये श्व एवाशु भवांस्तच्चानुमोदताम् ॥४॥
संभाराः संभ्रियन्ता च गच्छ मन्त्रय राघवम्। उच्छ्रीयन्तां पताकाश्च नानावर्णाः समन्ततः ॥५॥
तोरणानि विचित्राणि स्वर्णमुक्तामयानि वै। आहूय मन्त्रिणं राजा सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तमम् ॥६॥

जो व्यक्ति नारदजी और श्रीरामचन्द्रजी के इस संवाद को नित्य प्रति भक्ति पूर्वक पढ़ता है, श्रवण अथवा स्मरण करता है, वह वैराग्यपूर्वक क्रमशः देव दुर्लभ कैवल्य मोक्ष-पद प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितयाभाषा टीकयासहितः प्रथमसर्गः परिपूर्णः ॥ ७ ॥

श्रीमहादेव जी बोले—एक समय एकान्त में बैठे हुये राजा दशरथ ने अपने कुल के आचार्य श्रीवशिष्ठजी को बुलाकर कहा ॥ १ ॥ भगवान् सभी पुरवासी, निगमागम के ज्ञाता विज्ञजन, बड़े बूढ़े और मन्त्रीगण विशेषतः राम की बार-बार प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥ अतः हे मुनिपुङ्गव! सर्वगुणसम्पन्न ज्येष्ठपुत्र कमल-लोचन राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करना चाहता हूँ, क्योंकि मैं वृद्ध हो गया हूँ ॥ ३ ॥ भरत शत्रुघ्न के साथ अपने मातुल (मामा) से भेंट करने के लिये गया है, तथापि कल शीघ्र ही मैं राम का राज्याभिषेक करना चाहता हूँ। आप इसका अनुमोदन कीजिये ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! अभिषेक की सामग्री एकत्रित कराइये तथा रघुनाथजी के पास जाकर उचित सम्मति दीजिये। इस समय सभी तरफ रंग-बिरंगों की झण्डियाँ लगानी चाहिये ॥ ५ ॥ चित्र-विचित्र सुवर्ण और मोतियों के तोरण सजावट होनी चाहिये। राजा

आज्ञापयति यद्यत्त्वां मुनिस्तत्तत्समानय । यौवराज्येऽभिषेक्ष्यामि श्वोभूते रघुनन्दनम् ॥७॥
तथेति हर्षात्स मुनिं किं करोमीत्यभाषत । तमुवाच महातेजा वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः ॥८॥
श्वः प्रभाते मध्यकक्षे कन्यकाः स्वर्णभूषिताः । तिष्ठन्तु षोडश गजः स्वर्णरत्नादिभूषितः ॥९॥
चतुर्दन्तः समायातु ऐरावतकुलोद्भवः । नानातीर्थोदकैः पूर्णाः स्वर्णकुम्भाः सहस्रशः ॥१०॥
स्थाप्यन्तां नव वैयाघ्रचर्माणि त्रीणि चानय । श्वेतच्छत्रं रत्नदण्डं मुक्तामणिविराजितम् ॥११॥
दिव्यमाल्यानि वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च । मुनयः सत्कृतास्तत्र तिष्ठन्तु कुशपाणयः ॥१२॥
नर्तक्यो वारमुख्याश्च गायका वेणुकास्तथा । नानावादित्रकुशला वादयन्तु नृपाङ्गणे ॥१३॥
हस्त्यश्वरथपादाता बहिस्तिष्ठन्तु सायुधाः । नगरे यानि तिष्ठन्ति देवतायतनानि च ॥१४॥
तेषु प्रवर्ततां पूजा नानाबलिभिरावृता । राजानः शीघ्रमायान्तु नानोपायनपाणयः ॥१५॥
इत्यादिश्य मुनिः श्रीमान् सुमन्त्रं नृपमन्त्रिणम् । स्वयं जगाम भवनं राघवस्यातिशोभनम् ॥१६॥
रथमारुह्य भगवान्वसिष्ठो मुनिसत्तमः । त्रीणि कक्षाण्यतिक्रम्य रथात्क्षितिमवातरत् ॥१७॥
अन्तः प्रविश्य भवनं स्वाचार्यत्वादवारितः । गुरुमागतमाज्ञाय रामस्तूर्णं कृताञ्जलिः ॥१८॥

मन्त्रिश्रेष्ठ सुमन्त्र को बुलाकर आज्ञा दिये कि मैं कल रघुनाथजी को युवराज पद पर अभिषिक्त करूँगा, अतः वसिष्ठजी जो आज्ञा दें उसे एकत्रित करो ॥ ६-७ ॥

"तथा इति" यह राजादशरथ से कहकर सुमन्त्र वशिष्ठजी से बोले कि मैं क्या करूँ ? तत्पश्चात् ज्ञानियों में श्रेष्ठ महातेजस्वी वशिष्ठजी सुमन्त्र से बोले ॥ ८ ॥ कल प्रातःकाल मध्यद्वारपर स्वर्णाभरणभूषित सोलह कन्यायें रहनी चाहिये, ऐरावत कुलोत्पन्न चार दातों वाला हाथी स्वर्णरत्नादि से विभूषित आना चाहिये, और अनेक तीर्थों के जलों से परिपूरित हजारों सुवर्ण-कलश आना चाहिये ॥ ९-१० ॥ तीन नवीन व्याघ्रचर्म लाकर रखिये और मुक्तामणि-सुशोभित रत्नदण्डयुक्त एक श्वेत छत्र लाइये ॥ ११ ॥ अनेकों दिव्य मालाएँ, वस्त्र और दिव्य आभूषण रखिये, तथा च अभिषेक स्थल पर सम्मानित मुनिजन हाथ में कुशा लेकर उपस्थित रहें ॥ १२ ॥ नर्तकियाँ, मुख्य-मुख्य वाराङ्गनाएँ, गायक, वेणुवादक तथा वाद्यों में कुशल वादक महाराज दशरथ के आँगन में गाना-बजाना करें ॥ १३ ॥ अभिषेक स्थान से बाहर हाथी, घोड़े, रथ और पदाति चतुरङ्गिणी सेना आयुध के साथ खड़ी रहे । नगर के सभी देवालयों में विविध बलि-सामग्री से देवताओं की पूजा हो, तथा राजागण शीघ्र नानाप्रकार की भेंट सामग्री लेकर आवें ॥ १४-१५ ॥ इस प्रकार राज मन्त्री सुमन्त्र को आज्ञा देकर श्रीमान् वशिष्ठजी स्वयं रघुनाथ जी के अति सुन्दर महल में गये ॥ १६ ॥

मुनिपुङ्गव भगवान् वशिष्ठजी रथ पर चढ़कर महल के तीन कक्षाओं को पार कर रथ से भूमिपर उतरे ॥ १७ ॥ ततः आचार्य होने से विना किसी रुकावट के ही अन्तःपुर में प्रवेश किये । उस समय गुरुजी आये यह देखकर रामचन्द्र जी तुरन्त हाथजोड़कर स्वागत कर भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम किये ।

प्रत्युद्गम्य नमस्कृत्य दण्डवद्भक्तिसंयुतः । स्वर्णपात्रेण पानीयमानिनायाशु जानकी ॥१९॥
रत्नासने समावेश्य पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः । तदपः शिरसा धृत्वा सीतया सह राघवः ॥२०॥
धन्योऽस्मीत्यब्रवीद्रामस्तव पादाम्बुधारणात् । श्रीरामेणैवमुक्तस्तु प्रहसन्मुनिरब्रवीत् ॥२१॥
त्वत्पादसलिलं धृत्वा धन्योऽभूद्गिरिजापतिः । ब्रह्मापि मत्पिता ते हि पादतीर्थहताशुभः ॥२२॥
इदानीं भाषसे यत्त्वं लोकानामुपदेशकृत् । जनामि त्वां परात्मानं लक्ष्म्या संजातमीश्वरम् ॥२३॥
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं भक्तानां भक्तिसिद्धये । रावणस्य वधार्थाय जातं जानामि राघव ॥२४॥
तथाऽपि देवकार्यार्थं गुह्यं नोद्घाटयाम्यहम् । यथा त्वं मायया सर्वं करोषि रघुनन्दन ।२५॥
तथैवानुविधास्येऽहं शिष्यस्त्वं गुरुरप्यहम् । गुरुर्गुरूणां त्वं देव पितॄणां त्वं पितामहः ॥२६॥
अन्तर्यामी जगद्यात्रावाहकस्त्वमगोचरः । शुद्धसत्त्वमयं देहं धृत्वा स्वाधीनसम्भवम् ॥२७॥
मनुष्य इव लोकेऽस्मिन् भासि त्वं योगमाया । पौरोहित्यमहं जाने विगर्ह्यं दूष्यजीवनम् ॥२८॥
इक्ष्वाकूणां कुले रामः परमात्मा जनिष्यते । इति ज्ञातं मया पूर्वं ब्रह्मणा कथितं पुरा ॥२९॥
ततोऽहमाशया राम तव संबन्धकाङ्क्षया । अकार्षं गर्हितमपि तवाचार्यत्वसिद्धये ॥३०॥

उस समय सीताजी सुवर्ण के पात्र में शीघ्र जल लेकर आयीं ॥ १८-१९ ॥ रघुनाथजी गुरुवर को रत्नसिंहासन पर बैठाकर उनके चरणों को धोये और सीताजी के सहित अपने सिर पर चरणोदक रखकर बोले—हे मुने ! मैं आपके चरणोदक को धारणकर धन्य हो गया । श्रीरामचन्द्र के इस प्रकार कहने पर मुनिवर वशिष्ठजी हँसकर बोले ॥ २०-२१ ॥

हे राम ! आपके चरणोदक को शिर पर धारण कर गिरिजापति कृत्-कृत्य हो गये तथा मेरे पिता ब्रह्माजी आप के पादतीर्थ से पाप रहित हो गये हैं ॥ २२ ॥ इस समय संसार के उपदेश के लिये आप इस तरह कह रहें हैं कि गुरुजन के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये । आप लक्ष्मी के सहित प्रकट हुये साक्षात् ईश्वर हैं, यह मैं जानता हूँ ॥ २३ ॥ हे राघव ! देवताओं के कार्य सिद्धि, भक्तों के मनोकामना पूर्ण करने तथा रावण का वध करने लिये आप अवतरित हैं, यह मैं जानता हूँ ॥ २४ ॥ तथापि देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये मैं इस रहस्य का उद्घाटन नहीं करता हूँ । हे रघुनन्दन ! जिस प्रकार अपनी माया से सम्पूर्ण कार्य करेंगे, उसी प्रकार मैं गुरु हूँ और आप शिष्य हैं इस सम्बन्ध के अनुसार मैं व्यवहार करूँगा । परन्तु हे देव ! आप गुरुओं के गुरु और पितरों के भी पितामह हैं ॥ २५-२६ ॥ आप अन्तर्यामी जगद् व्यवहार के प्रवर्त्तक अगोचर, शुद्ध सत्वमय स्वेच्छा से शरीर धारण करने वाले हैं ॥ २७ ॥ आप अपनी योगमाया के साथ मनुष्य के समान संसार में प्रतीत हो रहें हैं । पौरोहित्यकर्म अति निन्दित और दूषित जीविका है, यह मैं जानता हूँ । परन्तु पूर्व समय में ब्रह्माजी के कहने पर मुझे ज्ञात हुआ कि इक्ष्वाकुवंश में परमात्मा राम अवतार लेंगे ॥ २८-२९ ॥

तब से हे राम ! आपसे सम्बन्ध की आकांक्षा से आपके आचार्य होने की इच्छा से इस निन्दनीय

ततो मनोरथो मेऽद्य फलितो रघुनन्दन। त्वदधीना महामाया सर्वलोकैकमोहिनी ॥३१॥
मां यथा मोहयेन्नैव तथा कुरु रघूद्वह। गुरुनिष्कृतिकामस्त्वं यदि देह्येतदेव मे ॥३२॥
प्रसङ्गात्सर्वमप्युक्तं न वाच्यं कुत्रचिन्मया। राज्ञा दशरथेनाहं प्रेषितोऽस्मि रघूद्वह ॥३३॥
त्वामामन्त्रयितुं राज्ये श्वोऽभिषेक्ष्यति राघव। अद्य त्वं सीतया सार्धमुपवासं यथाविधि ॥३४॥
कृत्वा शुचिर्भूमिशायी भव राम जितेन्द्रियः। गच्छामि राजसान्निध्यं त्वं तु प्रातर्गमिष्यसि ३५
इत्युक्त्वा रथमारुह्य ययौ राजगुरुर्द्रुतम्। रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥३६॥
सौमित्रे यौवराज्ये मे श्वोभिषेको भविष्यति। निमित्तमात्रमेवाहं कर्त्ता भोक्ता त्वमेव हि ॥३७॥
मम त्वं हि बहिःप्राणो नात्र कार्या विचारणा। ततो वसिष्ठेन यथा भाषितं तत्तथाकरोत् ।३८॥
वसिष्ठोऽपि नृपं गत्वा कृतं सर्वं न्यवेदयत्। वसिष्ठस्य पुरोराज्ञा ह्युक्तं रामाभिषेचनम् ॥३९॥
यदा तदैव नगरे श्रुत्वा कश्चित्पुमान् जगौ। कौसल्यायै राममात्रे सुमित्रायै तथैव च ॥४०॥
श्रुत्वा ते हर्षसंपूर्णे ददतुर्हारमुत्तमम्। तस्मै ततः प्रीतमनाः कौसल्या पुत्रवत्सला ॥४१॥
लक्ष्मीं पर्यचरद्देवीं रामस्यार्थप्रसिद्धये। सत्यवादी दशरथः करोत्येव प्रतिश्रुतम् ॥४२॥
कैकेयीवशगः किन्तु कामुकः किं करिष्यति। इति व्याकुलचित्ता सा दुर्गां देवीमपूजयत् ॥४३॥

कर्म को भी मैंने स्वीकार किया ॥ ३० ॥ हे रघुनन्दन! आज मेरा मनोरथ सफल हुआ। अब आप यदि गुरु-ऋण से मुक्त होना चाहते हों तो आपके आश्रित रहने वाली सर्वलोक विमोहिनी महामाया मुझे मोहित न करे यह आप कीजिये ॥ ३१-३२ ॥ हे रघुश्रेष्ठ! प्रसङ्गवश मैंने सभी बातें आपसे कही है, अन्यत्र कहीं भी मैं नहीं कहूँगा। हे राघव! कल आपका राज्याभिषेक होगा। अतः आवश्यक निर्देश के लिये राजा दशरथ आपके पास मुझे भेजे हैं। आज सीता के साथ आप विधिपूर्वक उपवास, शुद्ध तथा जितेन्द्रिय होकर पृथ्वी पर शयन करें, मैं राजा के पास जाता हूँ। आप कल प्रातः काल राजा के पास पधारेंगे ॥ ३३-३५ ॥ ऐसा कहकर राजगुरु वसिष्ठजी रथ पर सवार होकर शीघ्र ही चले गये। तब रामचन्द्रजी लक्ष्मण को देखकर हँसते हुये बोले ॥ ३६ ॥

हे सौमित्र! युवराज के पद पर कल मेरा अभिषेक होगा। मैं तो केवल निमित्त मात्र हूँ, कर्त्ता-भोक्ता तो तुमहीं हो ॥ ३७ ॥ तुम मेरे बाह्य प्राण हो, इसमें विशेष विचार नहीं करना है। ततः वशिष्ठजी के आदेशानुसार रघुनाथजी किये ॥ ३८ ॥ वशिष्ठजी ने राजा दशरथ के पास आकर सब कुछ कह दिया। राजा दशरथ से राम के राज्याभिषेक की चर्चा करते हुये कोई पुरुष सुनकर सम्पूर्ण नगर में कह दिया और राम माता कौसल्या तथा सुमित्रा से भी यह बात कह दी ॥ ३९-४० ॥ उन दोनों ने सुनकर हर्षपूर्वक उत्तमहार उसे दे दिया। ततः पुत्रवत्सला कौसल्या ने रामचन्द्र की इष्ट सिद्धि के लिये लक्ष्मी देवी की पूजा की। राजा दशरथ सत्यवादी हैं वे अपनी प्रतिज्ञा पालन करते हैं यह प्रसिद्ध है ॥ ४१-४२ ॥ परन्तु वे कामुक

एतस्मिन्नन्तरे देवा देवीं वाणीमचोदयन् । गच्छ देवि भुवो लोकमयोध्यायां प्रयत्नतः ॥४४॥
रामाभिषेकविघ्नार्थं यतस्व ब्रह्मवाक्यतः । मन्थरां प्रविशस्वादौ कैकेयीं च ततः परम् ॥४५॥
ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे । तथेत्युक्त्वा तथा चक्रे प्रविवेशाथ मन्थराम् ॥४६॥
सापि कुब्जा त्रिवक्रा तु प्रासादाग्रमथारुहत् । नगरं परितो दृष्ट्वा सर्वतः समलंकृतम् ॥४७॥
नानातोरणसंबाधं पताकाभिरलंकृतम् । सर्वोत्सवसमायुक्तं विस्मिता पुनरागतम् ॥४८॥
धात्रीं पप्रच्छ मातः किं नगरं समलंकृतम् । दानोत्सवसमायुक्ता कौसल्या चातिहर्षिता ॥४९॥
ददाति विप्रमुख्येभ्यो वस्त्राणि विविधानि च । तामुवाच तदा धात्री रामचन्द्राभिषेचनम् ॥५०॥
श्वो भविष्यति तेनाद्य सर्वतोऽलंकृतं पुरम् । तच्छ्रुत्वा त्वरितं गत्वा कैकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥५१॥
पर्यङ्कस्थां विशालाक्षीमेकान्ते पर्यवस्थिताम् । किं शेषे दुर्भगे मूढे महद्भयमुपस्थितम् ॥५२॥
न जानीषेऽतिसौन्दर्यमानिनी मत्तगामिनी ॥५३॥
रामस्यानुग्रहाद्राज्ञः श्वोऽभिषेको भविष्यति । तच्छ्रुत्वा सह सोत्थाय कैकेयी प्रियवादिनी ५४॥
तस्यै दिव्यं ददौ स्वर्णनूपुरं रत्नभूषितम् । हर्षस्थाने किमिति मे कथ्यते भयमागतम् ॥५५॥

और कैकेयी के वशीभूत हैं ऐसी स्थिति में वे इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करेंगे ? इस प्रकार की चिन्ता से व्याकुल होकर वह दुर्गा देवी का पूजन करने लगीं ॥ ४३ ॥

इसी समय देवगण सरस्वती देवी से निवेदन किये कि हे देवी ! तुम प्रयत्न पूर्वक भूलोक में अयोध्यापुरी में जाओ और वहाँ ब्रह्माजी की आज्ञा से रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक में विघ्न उपस्थित होने के लिये प्रयत्न करो। तुम मन्थरा में पहले प्रवेश करना तथा बाद में कैकेयी में प्रवेश करना ॥ ४५ ॥ हे शुभे ! विघ्न उपस्थित हो जाने पर पुनः स्वर्ग में चली आना। इसके बाद सरस्वती ने "तथा इति" यह कहकर वैसा ही किया और मन्थरा में प्रवेश किया ॥ ४६ ॥ वह तीन स्थानों से टेढ़ी कुब्जा मन्थरा प्रासाद की अट्टालिका पर चढ़कर सर्वतः सुसज्जित सम्पूर्ण नगर को देखी ॥ ४७ ॥ उसमें अनेक प्रकार के तोरण लगे हुये हैं, रंग-विरंगी पताकाएँ सुशोभित हो रही हैं तथा सर्वत्र उत्सव हो रहे हैं। यह देख विस्मित हो वह नीचे आयी और धात्री से पूछी—हे मातः ! नगर क्यों समलकृत है और कौसल्या अति हर्षित हो श्रेष्ठ ब्राह्मणों को विविध वस्त्र दान दे रही हैं तथा उत्सव मना रही हैं।

यह सुनकर धात्री ने मन्थरा से कहा कि कल श्रीरामचन्द्र का राज्याभिषेक होगा। अतः आज नगर सब ओर से सजाया गया है। यह सुनकर वह शीघ्र ही कैकेयी के पास जाकर कही ॥ ४९-५१ ॥ उस समय विशालाक्षी कैकेयी एकान्त में पलंग पर बैठी थी, उससे मन्थरा बोली—अयि दुर्भगे मूढ़े ! कैसे सो रही हो ? तुम्हारे लिए बड़ा भारी संकट उपस्थित है ॥ ५२ ॥ हे अति सौन्दर्यमानिनी, मतगामिनी ! तुम नहीं जानती हो ? राजा कि कृपा से कल राम का अभिषेक होगा। यह सुनकर प्रिववादिनी कैकेयी सहसा उठकर उसे दिव्य रत्नजटित सुवर्ण नूपुर देकर बोली—यह तो हर्ष की बात है, इसमें भय उपस्थित हुआ यह कैसे

भरतादधिको रामः प्रियकृन्मे प्रियंवदः। कौसल्यां मां समं पश्यन् सदा शुश्रूषते हि माम् ।५६।
रामाद्भयं किमापन्नं तव मूढे वदस्व मे। तच्छ्रुत्वा विषसादाथ कुब्जाकारणवैरिणी ।५७।
शृणु मद्वचनं देवि यथार्थं ते महद्भयम्। त्वां तोषयन् सदा राजा प्रियवाक्यानि भाषते ।५८।
कामुकोऽतथ्यवादी च त्वां वाचा परितोषयन्। कार्यं करोति तस्या वै राममातुः सुपुष्कलम् ५९
मनस्येतन्निधायैव प्रेषयामास ते सुतम्। भरतं मातुलकुले प्रेषयामास सानुजम् ॥६०॥
सुमित्रायाः समीचीनं भविष्यति न संशयः। लक्ष्मणो राममन्वेति राज्यं सोऽनुभविष्यति ।६१।
भरतो राघवस्याग्रे किङ्करो वा भविष्यति। विवास्यते वा नगरात्प्राणैर्वा हाप्यतेऽचिरात् ॥६२।
त्वं तु दासीव कौसल्यां नित्यं परिचरिष्यसि। ततोऽपि मरणं श्रेयो यत्सपत्न्याः पराभवः ॥६३॥
अतः शीघ्रं यतस्वाद्य भरतस्याभिषेचने। रामस्य वनवासार्थं वर्षाणि नव पञ्च च ॥६४॥
ततो रूढोऽभये पुत्रस्तव राज्ञि भविष्यति। उपायं ते प्रवक्ष्यामि पूर्वमेव सुनिश्चितम् ॥६५॥
पुरा देवासुरे युद्धे राजा दशरथः स्वयम्। इन्द्रेण याचितो धन्वी सहायार्थं महारथः ॥६६॥
जगाम सेनया सार्धं त्वया सह शुभानने। युद्धं प्रकुर्वतस्तस्य राक्षसैः सह धन्विनः ॥६७॥

कहती हो ? ॥ ५३-५५ ॥ भरत की अपेक्षा राम मेरा अधिक प्रिय करने वाला तथा प्रियवादी है, वह कौसल्या तथा मुझे समभाव से देखता हुआ सदा ही मेरी सेवा करता है ॥ ५६ ॥ अरी मूढे ! राम से क्या भय उपस्थित है यह तू बताओ ? यह सुनकर अकारण वैर करने वाली कुब्जा (मन्थरा) विषाद करने लगी, और बोली—हे देवि ! मेरी बात सुनो, निश्चय ही तुम्हारे लिए महद्भय उपस्थित है। तुम्हें सन्तुष्ट रखने के लिए राजा सदा तुमसे प्रिय बातें बोलते हैं ॥ ५८ ॥

वे कामुक और मिथ्यावादी हैं, तुम्हें केवल वाणी से सन्तुष्ट कर राम के माता की इच्छा से सम्पूर्ण कार्य करते हैं ॥ ५९ ॥ अपने मन में निश्चय कर वे अनुज सहित तुम्हारे पुत्र भरत को नौनिहाल भेज दिये हैं ॥ ६० ॥ सुमित्रा के लिये सब कुछ ठीक होगा इसमें सन्देह नहीं है, क्योंकि लक्ष्मण राम के अनुगामी हैं। अतः वे राज्य का भोग करेंगे ॥ ६१ ॥ परन्तु भरत राम के आगे दास होंगे अथवा नगर से निकाले जायेंगे, अथवा शीघ्र ही उनका प्राणाघात किया जायगा ॥ ६२ ॥ तुम दासी के समान नित्य कौसल्या की सेवा करोगी। सौत से अपमानित होकर जीने से तो मरना श्रेष्ठ है ॥ ६३ ॥ अतः शीघ्र ही भरत का राज्याभिषेक और राम का चौदह वर्ष के लिये वनवास हो, यह प्रयत्न करो ॥ ६४ ॥ हे रानी ! ऐसा होने पर तुम्हारे पुत्र भरत भयरहित युवराज पद पर अभिषिक्त होंगे। इसके लिये मैं उपाय बतलाती हूँ, जिसे मैंने पहले ही सोच रखी है ॥ ६५ ॥ पूर्व समय में देवासुर संग्राम में धनुर्धर महारथी राजा दशरथ से स्वयं इन्द्र ने अपनी सहायता के लिये याचना की थी ॥ ६६ ॥ हे शुभानने ! उस समय सेना के साथ तुम्हें भी साथ लेकर वे गये। राक्षसों के साथ युद्ध करते समय धनुर्धारी राजा दशरथ के रथ की कील उनके जाने बिना ही टूट कर गिर गयी। उस समय तुमने अत्यन्त धैर्यपूर्वक अपना हाथ उस कील के छिद्र में लगा

'तदाक्षकीलो न्यपतच्छिन्नस्तस्य न वेद सः । त्वं तु हस्तं समावेश्य कीलरन्ध्रेऽतिधैर्यतः ॥६८॥
स्थितवत्यसितापाङ्गी पतिप्राणपरीप्सया । ततो हत्वाऽसुरान्सर्वान् ददर्श त्वामरिंदमः ॥६९॥
आश्चर्यं परमं लेभे त्वामालिङ्ग्य मुदान्वितः । वृणीष्व यत्ते मनसि वाञ्छितं वरदोऽस्म्यहम् ॥७०॥
वरद्वयं वृणीष्व त्वमेवं राजाऽवदत्स्वयम् । त्वयोक्तो वरदो राजन्यदि दत्तं वरद्वयम् ॥७१॥
त्वय्येव तिष्ठतु चिरं न्यासभूतं ममानघ । यदा मेऽवसरो भूयात्तदा देहि वरद्वयम् ॥७२॥
तथेत्युक्त्वा स्वयं राजा मन्दिरं व्रज सुव्रते । त्वत्तः श्रुतं मया पूर्वमिदानीं स्मृतिमागतम् ॥७३॥
अतः शीघ्रं प्रविश्याद्य क्रोधागारं रुषान्विता । विमुच्य सर्वाभरणं सर्वतो विनिकीर्य च ।'
भूमावेव शयाना त्वं तूष्णीमातिष्ठ भामिनि ।७४॥
यावत्सत्यं प्रतिज्ञाय राजाऽभीष्टं करोति ते । श्रुत्वा त्रिवक्रयोक्तं तत्तता केकयनन्दिनी ॥७५॥
तथ्यमेवाखिलं मेने दुःसङ्गाहितविभ्रमा । तामाह कैकयी दुष्टा कुतस्ते बुद्धिरीदृशी ।७६॥
एवं त्वां बुद्धिसंपन्नां न जाने वक्रसुन्दरि । भरतो यदि राजा मे भविष्यति सुतः प्रियः ।७७॥
ग्रामान् शतं प्रदास्यामि मम त्वं प्राणवल्लभा । इत्युक्त्वा कोपभवनं प्रविश्य सहसा रुषा ॥७८॥
विमुच्य सर्वाभरणं परिकीर्य समन्ततः । भूमौ शयाना मलिना मलिनाम्बरधारिणी ॥७९॥

दिया ॥ ६६-६८ ॥ हे कृष्णाक्षि ! पति के प्राणों की रक्षा के लिये तुम इसी स्थिति में रही । समस्त राक्षसों के मारने के बाद शत्रुदमन महाराज दशरथ तुम्हें देखे ॥ ६९ ॥ यह देखकर उन्हें परम आश्चर्य हुआ, तुम्हें प्रसन्नता पूर्वक आलिङ्गन कर बोले—मैं वर देना चाहता हूँ, तुम्हारे मन में जो हो उसे माँग लो ॥ ७० ॥ तुम दो वरदान माँगो, स्वयं राजा तुमसे कहे। राजा के यह कहने पर तुम बोली कि हे राजन् ! यदि आप वर देना चाहते हैं ॥ ७०-७१ ॥ तो हे अनघ ! ये वरदान धरोहर के रूप में आपके पास रहें। जिस समय मेरा अवसर होगा, उस समय दोनों वर मुझे दीजियेगा ॥ ७२ ॥ "तथा इति" यह कहकर राजा तुमसे बोले—हे सुव्रते ! घर चलो । आपसे ही पहले मैं सम्पूर्ण वृतान्त सुनी थी, इस समय मुझे स्मृति हो गयी है ॥ ७३ ॥ अतः हे भामिनि ! आज शीघ्र ही रोषपूर्वक कोपभवन में प्रवेश कीजिये। अपने सम्पूर्ण आभूषणों को यत्र-तत्र बिखेर दें तथा जब तक सत्य प्रतिज्ञा पूर्वक राजा आपके अभीष्ट कार्य करने के लिये तैयार न हों तब तक चुपचाप पृथ्वी पर पड़ी रहें।

त्रिवक्रा मन्थरा की बातें सुनकर दुःसङ्ग से भ्रष्ट बुद्धि होने के कारण दुष्टा कैकेयी ने उसका कथन ठीक मान लिया और उससे बोली—तुममें इस तरह की बुद्धि कहाँ से आयी ? ॥ ७४-७६ ॥ अरी वक्र-सुन्दरी ! तुम इतनी बुद्धिमती हो यह मैं नहीं जानती थी। मेरा प्रिय पुत्र भरत यदि राजा होगा तो तुम्हें सौ गाँव दूँगी, तूँ मुझे प्राणों के समान प्यारी हो। यह कह कर कैकेयी ने रोषपूर्वक सहसा कोप भवन में प्रवेश किया ॥ ७७-७८ ॥ अपने सम्पूर्ण आभूषण उतार कर यत्र-तत्र बिखेर दिये और मलिन वस्त्र पहनकर

प्रोवाच शृणु मे कुब्जे यावद्रामो वनं व्रजेत् । प्राणांस्त्यक्ष्येऽथ वा वक्रे शयिष्ये तावदेव हि ॥८०॥
निश्चयं कुरु कल्याणि कल्याणं ते भविष्यसि । इत्युक्त्वा प्रययौ कुब्जा गृहं साऽपि तथाऽकरोत् ८१

धीरोऽत्यन्तदयान्वितोऽपि सगुणाचारान्वितो वाऽथवा
नीतिज्ञो विधिवाददेशिकपरो विद्याविवेकोऽथवा ।
दुष्टानामतिपापभावितधियां सङ्गं सदा चेद्भजे-
त्तद्बुद्ध्या परिभावितो व्रजति तत्साम्यं क्रमेण स्फुटम् ॥८२॥

अतः सङ्गः परित्याज्यो दुष्टानां सर्वदैव हि । दुःसङ्गी च्यवते स्वार्थाद्यथेयं राजकन्यका ॥८३॥

॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥२॥

तृतीयसर्गः

राजा दशरथ का कैकेयी को वर देना

श्रीमहादेव उवाच

ततो दशरथो राजा रामाभ्युदयकारणात् । आदिश्य मन्त्रिप्रकृतीः सानन्दो गृहमाविशत् ॥१॥

अति मलीन दशा में जमीन पर शयन कर बोली—अरी कुब्जे ! सुन, जब तक राम वन नहीं जायेंगे, तब तक मैं इसी प्रकार रोषपूर्वक पड़ी रहूँगी, भले ही मेरे प्राण छूट जायँ ॥ ७९-८० ॥

हे कल्याणि ! तुम ऐसा ही करो, इसमें तुम्हारा कल्याण होगा; यह कह कर कुब्जा अपने घर चली गयी और कैकेयी ने भी कुब्जा के कथनानुसार ही किया ॥ ८१ ॥

कोई व्यक्ति अत्यन्त धैर्यवान्, दयालु, सद्गुणी, सदाचारी, नीतिज्ञ, कर्तव्य परायण, गुरु-भक्त अथवा विद्या-विवेक-सम्पन्न क्यों न हो यदि निरन्तर दुष्टों का संग करेगा तो क्रमशः उनकी बुद्धि से प्रभावित होकर उनके समान आचरण वाला हो जायगा यह सत्य ही है ॥ ८२ ॥ अतः हमेशा दुष्टों का सङ्ग छोड़ना चाहिये, क्योंकि दुष्टों के संग से इस राजकन्यका (कैकेयी) के समान स्वार्थ से च्युत हो जाता है ॥ ८३ ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः द्वितीयसर्गः परिपूर्णः ॥ २ ॥

श्री महादेव जी बोले—इसके बाद महाराज दशरथ रामजी के अभ्युदय के लिए मन्त्रीगण और प्रजाओं को (आवश्यक कार्य करने हेतु) आज्ञा देकर आनन्दपूर्वक अपने रनिवास में प्रवेश किये ॥ १ ॥

तत्रादृष्ट्वा प्रियां राजा किमेतदिति विह्वलः । या पुरा मन्दिरं तस्याः प्रविष्टे मयि शोभना ॥२॥
हसन्ती मामुपायाति सा किं नैवाद्य दृश्यते । इत्यात्मन्येव संचिन्त्य मनसाऽतिविदूयता ॥३॥
पप्रच्छ दासीनिकरं कुतो वः स्वामिनी शुभा । नायाति मां यथापूर्वं मत्प्रिया प्रियदर्शना ॥४॥
ता ऊचुः क्रोधभवनं प्रविष्टा नैव विद्महे । कारणं तत्र देव त्वं गत्वा निश्चेतुमर्हसि ॥५॥
इत्युक्तो भयसंत्रस्तो राजा तस्याः समीपगः । उपविश्य शनैर्देहं स्पृशन्वै पाणिनाब्रवीत् ॥६॥
किं शेषे वसुधापृष्ठे पर्यङ्कादीन् विहाय च । मां त्वं खेदयसे भीरु यतो मां नावभाषसे ॥७॥
अलङ्कारं परित्यज्य भूमौ मलिनवाससा । किमर्थं ब्रूहि सकलं विधास्ये तव वाञ्छितम् ॥८॥
को वा तवाहितं कर्ता नारी वा पुरुषोऽपि वा । स मे दण्ड्यश्च वध्यश्च भविष्यति न संशयः ॥९॥
ब्रूहि देवि यथा प्रीतिस्तदवश्यं ममाग्रतः । तदिदानीं साधयिष्ये सुदुर्लभमपि क्षणात् ॥१०॥
जानासि त्वं मम स्वान्तं प्रियं मा स्ववशे स्थितम् । तथापि मां खेदयसे वृथा तव परिश्रमः ॥११॥
ब्रूहि कं धनिनं कुर्यां दरिद्रं ते प्रियङ्करम् । धनिनं क्षणमात्रेण निर्धनं च तवाहितम् ॥१२॥
ब्रूहि कं वा वधिष्यामि वधार्हो वा विमोक्ष्यसे । किमत्र बहुनोक्तेन प्राणान्दास्यामि ते प्रिये ॥१३॥

वहाँ अपनी प्रिया कैकेयी को न देखकर अत्यन्त विह्वल होकर आश्चर्यपूर्वक मन ही मन कहने लगे कि पहले अपने महल में आते ही सदा हँसती हुई मेरे सामने आती थी और आज नहीं दिखायी पड़ रही है, क्या कारण है ? वे अपने मनमें अत्यन्त दुःख मानकर यह सोचते-सोचते अपने दासियों से पूछे—आज तुम्हारी शुभलक्षणा स्वामिनी कहाँ है ? वह प्रियदर्शना मेरी प्रिया पूर्ववत् मेरे सामने क्यों नहीं आती ॥ २-४ ॥

दासियाँ बोलीं—देव ! हमलोग कारण नहीं जानती, किन्तु वे कोपभवन में गयी हैं; आप स्वयं वहाँ जाकर कारण जान लीजिये ॥ ५ ॥ दासियों के इस प्रकार कहने पर भयभीत होकर राजा रानी कैकेयी के पास गये और वहाँ पास बैठकर उसके शरीर को धीरे-धीरे हाथ से स्पर्श करते हुए बोले ॥ ६ ॥ अयि भीरु ! पलंग आदि को छोड़ कर तुम इस प्रकार पृथ्वी पर क्यों पड़ी हो ? मुझसे तुम बोलती नहीं, हमें अति खेद हो रहा है ॥ ७ ॥ तुम सभी आभूषणों को छोड़कर मलिन वस्त्र धारण कर पृथ्वी पर क्यों पड़ी हो ? तुम्हारी क्या इच्छा है ? मैं सब कुछ पूर्ण करूँगा ॥ ८ ॥ तुम्हारा अहित करने वाला स्त्री अथवा पुरुष कौन है ? वह निःसन्देह मेरे दण्ड का पात्र होगा और उसका बध भी हो सकता है ॥ ९ ॥ हे देवि ! जिस प्रकार तुम्हारी प्रसन्नता हो वह मुझसे अवश्य कहो। वह अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी क्षणभर में पूर्ण करूँगा ॥ १० ॥ तुम मेरे अन्तःकरण को जानती हो कि मैं तुम्हारा प्रिय और तुम्हारे वशीभूत हूँ। तथापि तुम मुझे खिन्न करती हो ? तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ है ॥ ११ ॥ तुम्हारा प्रिय करने वाला किस दरिद्र को धनी तथा तुम्हारा अप्रिय करने वाला किस धनिक को क्षण भर में निर्धन बना दूँ, यह मुझे बताओ ॥ १२ ॥ बताओ, किसका वध कर दूँ अथवा किस मारने योग्य को छोड़ दूँ। प्रिये ! अधिक क्या कहूँ, मैं तुम्हें अपना प्राण भी दे सकता हूँ ॥ १३ ॥

मम प्राणात्प्रियतरो रामो राजीवलोचनः । तस्योपरि शपे ब्रूहि त्वद्धितं तत्करोम्यहम् ॥१४॥
इति ब्रुवाणं राजानं शपन्तं राघवोपरि । शनैर्विमृज्य नेत्रे सा राजानं प्रत्यभाषत ॥१५॥
यदि सत्यप्रतिज्ञोऽसि शपथं कुरुषे यदि । याञ्चां मे सफलां कर्तुं शीघ्रमेव त्वमर्हसि ॥१६॥
पूर्वं देवासुरे युद्धे मया त्वं परिरक्षितः । तदा वरद्वयं दत्तं त्वया मे तुष्टचेतसा ॥१७॥
तद्द्वयं न्यासभूतं मे स्थापितं त्वयि सुव्रत । तत्रैकेन वरेणाशु भरतं मे प्रियं सुतम् ॥१८॥
एभिः संभृतसंभारैर्यौवराज्येऽभिषेचय । अपरेण वरेणासु रामो गच्छतु दण्डकान् ॥१९॥
मुनिवेषधरः श्रीमान् जटावल्कलभूषणः । चतुर्दश समास्तत्र कन्दमूलफलाशनः ॥२०॥
पुनरायातु तस्यान्ते वने वा तिष्ठतु स्वयम् ! प्रभाते गच्छतु वनं रामो राजीवलोचनः ॥२१॥
यदि किंचिद्विलम्बेत प्राणांस्त्यक्ष्ये तवाग्रतः । भव सत्यप्रतिज्ञस्त्वमेतदेव मम प्रियम् ॥२२॥
श्रुत्वैतद्दारुणं वाक्यं कैकेय्या रोमहर्षणम् । निपपात महीपालो वज्राहत इवाचलः ॥२३॥
शनैरुन्मील्य नयने विमृज्य परया भिया । दुःस्वप्नो वा मया दृष्टो ह्यथवा चित्तवभ्रमः ॥२४॥
इत्यालोक्य पुरः पत्नीं व्याघ्रीमिव पुरः स्थिताम् । किमिदं भाषसे भद्रे मम प्राणहरं वचः ॥२५॥

राजीव लोचन राम मेरे प्राणों से अधिक प्रिय हैं। मैं उनका शपथ लेकर कहता हूँ कि तुम्हारा जो प्रिय हो मैं वही करूँगा ॥ १४ ॥ राजा दशरथ के श्रीरामचन्द्र का शपथ लेकर कहने पर कैकेयी धीरे-धीरे आँखों के आँसू पोछकर राजा से बोली ॥ १५ ॥ राजन्! यदि आप सत्य प्रतिज्ञ हैं और यदि आप शपथ लेकर कहते हैं तो आप शीघ्र जो मैं माँगूँ, उसे पूर्ण कर सकते हैं ॥ १६ ॥ पूर्व समय में देवासुर संग्राम में मैं आपकी रक्षा की थी, उस समय प्रसन्नमन आप मुझे दो वरदान देने को कहे थे ॥ १७ ॥ हे सुव्रत! मेरे वे दोनों वरदान आपके पास धरोहर हैं। उनमें से एक वर के द्वारा शीघ्र ही मेरे प्रिय पुत्र भरत को इस एकत्रित सामग्री से युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिये और दूसरे वर से शीघ्र ही राम को दण्डकारण्य में भेज दीजिये ॥ १८-१९ ॥ वहाँ श्रीमान् राम जटा-वल्कलादि धारण कर कंद-मूल-फल खाकर मुनिवेष धारण कर चौदह वर्ष तक रहें ॥ २० ॥ तदनन्तर अपनी ईच्छानुसार अयोध्या आवें अथवा वन में रहे किन्तु कमलनयन राम कल प्रातः अवश्य वन में चले जायँ ॥ २१ ॥

यदि इसमें कुछ देरी होगी तो आपके सामने ही अपने प्राणों को मैं छोड़ दूँगी। आप अपनी प्रतिज्ञा सत्य कीजिये, मेरा प्रिय कार्य केवल यही है ॥ २२ ॥ कैकेयी का यह रोमाञ्चकारी कठोर वचन सुनकर महाराज दशरथ वज्राहत पर्वत के समान गिर पड़े ॥ २३ ॥ तदनन्तर धीरे-धीरे नेत्र खोलकर अति भयपूर्वक आँसू पोंछे और मन-ही-मन कहने लगे—'मैंने यह कोई दुःस्वप्न देखा है अथवा मेरे चित्त को भ्रम हो गया है ? ॥ २४ ॥

इसी समय अपने सामने सिंहिनी के समान बैठी हुई रानी कैकेयी को देखकर कहने लगे—"हे भद्रे! मेरे प्राणों को हरनेवाले तुम ये क्या वचन बोल रही हो ? ॥ २५ ॥ कमलनयन राम ने तुम्हारा

-रामः कमपराधं ते कृतवान्कमलेक्षणः। ममाग्रे राघवगुणान्वर्णयस्यनिशं शुभान् ॥२६॥
कौसल्यां मां समं पश्यन् शुश्रूषां कुरुते सदा। इति ब्रुवन्ती त्वं पूर्वमिदानीं भाषसेऽन्यथा ॥२७॥
राज्यं गृहाण पुत्राय रामस्तिष्ठतु मन्दिरे। अनुगृह्णीष्व मां वामे रामान्नास्ति भयं तव ॥२८॥
इत्युक्त्वाऽश्रुपरीताक्षः पादयोर्निपपात ह। कैकेयी प्रत्युवाचेदं साऽपि रक्तान्तलोचना ॥२९॥
राजेन्द्र किं त्वं भ्रान्तोऽसि उक्तं तद्भाषसेऽन्यथा। मिथ्या करोषि चेत्स्वीयं भाषितं नरको भवेत् ॥३०॥
वनं न गच्छेद्यदि रामचन्द्रः प्रभातकालेऽजिनचीरयुक्तः।
उद्बन्धनं वा विषभक्षणं वा कृत्वा मरिष्ये पुरतस्तवाहम् ॥३१॥
सत्यप्रतिज्ञोऽहमितीह लोके विडम्बसे सर्वसभान्तरेषु।
रामोपरि त्वं शपथं च कृत्वा मिथ्याप्रतिज्ञो नरकं प्रयाहि ॥३२॥
इत्युक्तः प्रियया दीनो मग्नो दुःखार्णवे नृपः। मूर्च्छितः पतितो भूमौ विसंज्ञो मृतको यथा ॥३३॥
एवं रात्रिगता तस्य दुःखात्संवत्सरोपमा। अरुणोदयकाले तु वन्दिनो गायका जगुः ॥३४॥
निवारयित्वा तान् सर्वान्कैकेयी रोषमास्थिता। ततः प्रभातसमये मध्यकक्षमुपस्थिताः ॥३५॥

क्या अपराध किया है? तुम तो अहर्निश मेरे सामने राम के शुभ गुण गाया करती थी ॥ २६ ॥ तुम तो पहले कहा करती थी कि 'राम मुझे और कौसल्या को समान जान कर सदा ही मेरी सेवा किया करते हैं।' फिर इस समय तुम यह बिपरीत बातें कैसे कह रही हो? ॥ २७ ॥ तुम अपने पुत्र के लिये राज्य ले लो, किन्तु राम को घर ही रहने दो। हे वामे! तुम मुझ पर कृपा करो, राम से तुम्हें कोई भय नहीं है" ॥ २८ ॥

ऐसा कह कर महाराज दशरथ नेत्रों में जल भर कर कैकेयी के चरणों में गिर पड़े। तब वह कैकेयी आँखें लाल कर बोली—॥ २९ ॥ 'राजेन्द्र! क्या तुम्हारी बुद्धि में भ्रम हो गया है, जो अपने कथन के विपरीत बोल रहे हो; याद रखो, यदि तुमने अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग कर दी तो तुम्हें नरक भोगना पड़ेगा ॥ ३० ॥ सुनो, यदि कल प्रातःकाल ही मृगचर्म और वल्कल-वस्त्र धारण कर राम वन को न गये तो मैं तुम्हारे सामने ही फाँसी लगा कर या विष खाकर मर जाऊँगी ॥ ३१ ॥ तुम संसार में सभी सभाओं में 'मैं सत्यप्रतिज्ञ हूँ, यह कहकर लोगों को धोखे में डाला करते हो, अब तुम राम की शपथ करके की हुई प्रतिज्ञा को भी तोड़ रहे हो, अतः तुम्हें नरक में जाना ही पड़ेगा" ॥ ३२ ॥

अपनी प्रिया के ऐसे कठोर वचन सुन कर महाराज दशरथ दुःख-समुद्र में डूबकर बड़े व्याकुल हो गये, और मृतक के समान मूर्च्छित और संज्ञाशून्य होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ३३ ॥ इस प्रकार अत्यन्त दुःख के कारण उनकी वह रात्रि एक वर्ष के समान बीती। इधर अरुणोदय होते ही गायक और वन्दीजन स्तुतिगान करने लगे ॥ ३४ ॥ परन्तु कैकेयी उन सबको रोक कर क्रोध से बैठी हुई थी। तदनन्तर प्रातःकाल होने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और ऋषिगण, कन्याएँ, दिव्य छत्र और चँवर तथा हाथी और

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ऋषयः कन्यकास्तथा । छत्रं च चामरं दिव्यं गजो वाजी तथैव च ।३६।
अन्याश्च वारमुख्या याः पौरजानपदास्तथा । वसिष्ठेन यथाऽऽज्ञप्तं तत्सर्वं तत्र संस्थितम् ॥३७।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च रात्रौ निद्रां न लेभिरे । कदा द्रक्ष्यामहे रामं पीतकौशेयवाससम् ॥३८॥
सर्वाभरणसम्पन्नं किरीटकटकोज्ज्वलम् । कौस्तुभाभरणं श्यामं कन्दर्पशतसुन्दरम् ॥३९॥
अभिषिक्तं समायातं गजारूढं स्मिताननम् । श्वेतच्छत्रधरं तत्र लक्ष्मणं लक्षणान्वितम् ॥४०॥
रामं कदा वा द्रक्ष्यामः प्रभातं वा कदा भवेत् । इत्युत्सुकधियः सर्वे बभूवुः पुरवासिनः ॥४१॥
नेदानीमुत्थितो राजा किमर्थं चेति चिन्तयन् । सुमन्त्रः शनकैः प्रायाद्यत्र राजाऽवतिष्ठते ।४२।
वर्धयन् जयशब्देन प्रणमन्शिरसा नृपम् । अतिखिन्नं नृपं दृष्ट्वा कैकेयीं समपृच्छत ॥४३॥
देवि कैकेयि वर्धस्व किं राजा दृश्यतेऽन्यथा । तमाह कैकयी राजा रात्रौ निद्रां न लब्धवान् ४४
राम रामेति रामेति राममेवानुचिन्तयन् ।
प्रजागरेण वै राजा ह्यस्वस्थ इव लक्ष्यते । राममानय शीघ्रं त्वं राजा द्रष्टुमिहेच्छति ॥४५॥

सुमन्त्र उवाच

अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि । तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत् ४६

घोड़े आदि सभी अभिषेकोपयोगी वस्तुएँ मध्य द्वार पर उपस्थित की गयीं ॥ ३५-३६ ॥ इनके अतिरिक्त वसिष्ठजी के आज्ञानुसार मुख्य-मुख्य वाराङ्गनायें तथा पुरवासी और जनपद्वासी भी वहाँ उपस्थित हो गये ॥ ३७ ॥ उस रात स्त्री, बालक और वृद्ध किसी को भी नींद नहीं आयी। सभी को यह आकांक्षा लगी रही कि हम रेशमी पीताम्बर पहने भगवान् राम को कब देखेंगे ॥ ३८ ॥ जो समस्त आभूषणों से सुसज्जित, उज्ज्वल किरीट और कटक पहने हुए हैं तथा कौस्तुभमणि से विभूषित और सैकड़ों कामदेवों के समान सुन्दर श्यामवर्ण हैं । इस प्रकार सर्व-सुलक्षण-सम्पन्न श्रीलक्ष्मणजी जिनके ऊपर श्वेत छत्र लगा रखे हैं, ऐसे श्रीराम को राज्याभिषेक के अनन्तर मन्द मुसकान के सहित हाथी पर चढ़ कर आते हुए हम कब देखेंगे ? वह मङ्गल प्रभात कब होगा ? इस प्रकार सभी पुरवासियों का चित्त अति उत्कण्ठित हो रहा था ॥ ३९–४१ ॥

इसी समय मन्त्रिवर सुमन्त यह सोच कर कि 'महाराज अभी तक कैसे नहीं उठे' धीरे से जहाँ राजा दशरथ थे, वहाँ गये ॥ ४२ ॥ वहाँ पहुंच कर उन्होंने जय-जयकार कर राजा को शिर झुका कर प्रणाम किया और उन्हें अत्यन्त खिन्न देख कर कैकेयी से पूछा—॥ ४३ ॥ "देवि कैकेयी ! आपका अभ्युदय हो, कहिये, आज महाराज अनमने कैसे दिखायी देते हैं ?" इस पर कैकेयी ने कहा—"आज महाराज को रात्रि में बिलकुल नींद नहीं आयी ॥ ४४ ॥ रात्रि भर राम का चिन्तन करते हुए 'राम राम राम' ही रटते रहे हैं । इस प्रकार जागते रहने के कारण ही राजा कुछ अस्वस्थ से दिखायी देते हैं । महाराज राम को यहाँ देखना चाहते हैं, इसलिए तुम शीघ्र ही उन्हें बुलाओ ॥ ४५ ॥

सुमन्त्र बोले—भामिनि ! महाराज की आज्ञा पाये बिना मैं कैसे जा सकता हूँ ? मन्त्री का यह वचन सुन

सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम् । इत्युक्तस्त्वरितं गत्वा सुमन्त्रो राममन्दिरम् ।४७
अवारितः प्रविष्टोऽयं त्वरितं राममब्रवीत् । शीघ्रमागच्छ भद्रं ते राम राजीवलोचन ॥४८॥
पितुर्गेहं मया सार्धं राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति । इत्युक्तो रथमारुह्य संभ्रमात्त्वरितो ययौ ॥४९॥
रामः सारथिना सार्धं लक्ष्मणेन समन्वितः । मध्यकक्षे वसिष्ठादीन् पश्यन्नेव त्वरान्वितः ॥५०॥
पितुः समीपं संगम्य ननाम चरणौ पितुः । राममालिङ्गितुं राजा समुत्थाय ससंभ्रमः ॥ ५१॥
बाहू प्रसार्य रामेति दुःखान्मध्ये पपात ह । हाहेति रामस्तं शीघ्रमालिङ्ग्याङ्के न्यवेशयत् ।५२
राजानं मूर्च्छितं दृष्ट्वा चुक्रुशुः सर्वयोषितः । किमर्थं रोदनमिति वसिष्ठोऽपि समाविशत् ॥५३॥
रामः पप्रच्छ किमिदं राज्ञो दुःखस्य कारणम् । एवं पृच्छति रामे सा कैकेयी राममब्रवीत् ।५४॥
त्वमेव कारणं ह्यत्र राज्ञो दुःखोपशान्तये । किञ्चित्कार्यं त्वया राम कर्तव्यं नृपतेर्हितम् ॥५५॥
कुरु सत्यप्रतिज्ञस्त्वं राजानं सत्यवादिनम् । राज्ञा वरद्वयं दत्तं मम सन्तुष्टचेतसा ॥५६॥
त्वदधीनं तु तत्सर्वं वक्तुं त्वां लज्जते नृपः । सत्यपाशेन संबद्धं पितरं त्रातुमर्हसि ॥५७॥

कर महाराज बोले—॥ ४६ ॥ "सुमन्त्र ! मैं मनोहर मूर्ति राम को देखूँगा । तुम उन्हें शीघ्र ही ले आओ ।" राजा के ऐसा कहते ही सुमन्त्र शीघ्र ही राम के महल में गये ॥ ४७ ॥ वहाँ बिना रोक टोक के तुरन्त भीतर जाकर राम से बोले—"कमलनयन राम ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम शीघ्र ही मेरे साथ पिताजी के घर चलो, महाराज तुम्हें देखना चाहते हैं ।" यह सुनते ही राम चकित होकर शीघ्र ही रथ पर चढ़कर चल दिये ॥ ४८–४९ ॥ सारथी और लक्ष्मण के सहित भगवान् राम ने मध्य द्वार पर विराजमान वसिष्ठादि गुरुजनों का केवल दर्शन मात्र से ही सत्कार कर जल्दी से पिताजी के पास पहुंच कर उनके चरणों में प्रणाम किया । उस समय राम को गले लगाने के लिए ज्योंही उठ कर महाराज दशरथ आवेग के साथ हाथ बढ़ाये कि वे बीच ही में दुःखपूर्वक 'हा राम ! हा राम !' कहते हुए गिर पड़े । तब रामचन्द्रजी ने हाहाकार करते हुए अति शीघ्रता से उन्हें गले लगाकर अपनी गोद में बैठा लिया ॥ ५०–५२ ॥

महाराज को मूर्च्छित देख कर रनिवास की समस्त महिलायें रोने लगीं । तब यह सोच कर कि "यह रुदन क्यों हो रहा है ?" वहाँ वसिष्ठ जी भी चले आये ॥ ५३ ॥

भगवान् राम ने कैकेयी से पूछा—"महाराज के इस दुःख का क्या कारण है ?" उनके इस प्रकार पूछने पर कैकेयी बोली—॥ ५४ ॥ "हे राम ! महाराज के इस दुःख के कारण तुमही हो, तुम्हें उनके दुःख को शान्त करने के लिए उनका कुछ प्रिय कार्य करना होगा ॥ ५५ ॥ तुम सत्य प्रतिज्ञ हो, महाराज को सत्यवादी बनाओ ! उन्होंने प्रसन्न होकर मुझे दो वर दिये हैं ॥ ५६ ॥ किन्तु उनकी सफलता तुम्हारे ही अधीन है । महाराज को तो तुमसे कहने में संकोच मालूम होता है; किन्तु तुम्हें सत्यपाश में बँधे हुए अपने पिताजी की अवश्य रक्षा करनी चाहिए ॥ ५७ ॥ क्योंकि 'पुत्र' शब्द का अर्थ ही यह है कि जो पिता की नरक से रक्षा करता है ।"

पुत्रशब्देन चैतद्धि नरकात्त्रायते पिता। रामस्तयोदितं श्रुत्वा शूलेनाभिहतो यथा ॥५८॥
व्यथितः कैकयीं प्राह किं मामेवं प्रभाषसे। पित्रर्थे जीवितं दास्ये पिबेयं विषमुल्वणम् ॥५९॥
सीतां त्यक्ष्येऽथ कौसल्यां राज्यं चापि त्यजाम्यहम्। अनाज्ञप्तोऽपि कुरुते पितुः कार्यं स उत्तमः६०
उक्तः करोति यः पुत्रः स मध्यम उदाहृतः। उक्तोऽपि कुरुते नैव स पुत्रो मल उच्यते ॥६१॥
अतः करोमि तत्सर्वं यन्मामाह पिता मम। सत्यं सत्यं करोम्येव रामो द्विर्नाभिभाषते ॥६२॥
इति रामप्रतिज्ञां सा श्रुत्वा वक्तुं प्रचक्रमे। राम त्वदभिषेकार्थं संभाराः संभृताश्च ये ॥६३॥
तैरेव भरतोऽवश्यमभिषेच्यः प्रियो मम। अपरेण वरेणाशु चीरवासा जटाधरः ॥६४॥
वनं प्रयाहि शीघ्रं त्वमद्यैव पितुराज्ञया। चतुर्दश समास्तत्र वस मुन्यन्नभोजनः ।६५॥
एतदेव पितुस्तेऽद्य कार्यं त्वं कर्तुमर्हसि। राजा तु लज्जते वक्तुं त्वामेवं रघुनन्दन ॥६६॥

श्रीराम उवाच

भारतस्यैव राज्यं स्यादहं गच्छामि दण्डकान्। किंतु राजा न वक्तीह मां न जानेऽत्र कारणम् ६७
श्रुत्वैतद्रामवचनं दृष्ट्वा रामं पुरः स्थितम्। प्राह राजा दशरथो दुःखितो दुःखितं वचः ॥६८॥

कैकेयी की बातें सुन कर श्रीराम शूल से विद्ध हुए के समान व्यथित होकर बोले—"मातः! आज हमसे ऐसी बातें क्यों करती हो? पिताजी के लिए मैं जीवन भी दे सकता हूँ, भयंकर विष पी सकता हूँ ॥ ५८–५९ ॥ तथा च सीता, कौसल्या और राज्य को भी छोड़ सकता हूँ। जो पुत्र पिता की आज्ञा के विना ही उनका अभीष्ट कार्य करता है, वह उत्तम पुत्र है ॥ ६० ॥ जो पुत्र पिता के कहने पर कार्य करता है वह मध्यम और जो पुत्र कहने पर भी नहीं करता है वह तो मल के समान है ॥ ६१ ॥ अतः पिताजी ने मेरे लिए जो कुछ आज्ञा दी है उसे मैं अवश्य पूर्ण करूँगा, यह सर्वथा सत्य है; राम दो बात कभी नहीं कहता" ॥ ६२ ॥

राम की यह प्रतिज्ञा सुनकर कैकेयी बोली—हे राम! तुम्हारे अभिषेक के लिये जो सामग्री एकत्रित की गयी है, उसके द्वारा मेरे प्रिय पुत्र भरत का अभिषेक हो; यह मेरा प्रथम वर तथा अपनी पिता की आज्ञा से आज शीघ्र ही तुम वल्कल-वस्त्र और जटा धारण कर वन को जाओ यह मेरा द्वितीय वर है। वहाँ तुम मुनिजनोचित भोजन करते हुए चौदह वर्ष तक रहो ॥ ६४-६५ ॥

तुम्हारे पिता का केवल यही कार्य है, जिसे तुम्हें पूर्ण करना चाहिये। इन सबबातों को राजा तुमसे कहने में संकोच करते हैं ॥ ६६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—मातः! इस राज्य का उपभोग भरत आनन्दपूर्वक करें मैं अभी दण्डकारण्य जाता हूँ। परन्तु महाराज मुझसे क्यों नहीं कहते, इसका कारण ज्ञात नहीं होता ॥ ६७ ॥ दुःखातुर महाराज दशरथ राम का यह वचन सुनकर उन्हें अपने सामने बैठे देख दुःखपूर्ण वचन बोले ॥ ६८ ॥

स्त्रीजितं भ्रान्तहृदयमुन्मार्गपरिवर्तिनम् । निगृह्य मां गृहाणेदं राज्यं पापं न तद्भवेत् ॥६९॥
एवं चेदनृतं नैव मां स्पृशेद्रघुनन्दन । इत्युक्त्वा दुःखसंतप्तो विललाप नृपस्तदा ॥७०॥
हा राम हा जगन्नाथ हा मम प्राणवल्लभ । मां विसृज्य कथं घोरं विपिनं गन्तुमर्हसि ॥७१॥
इति रामं समालिङ्ग्य मुक्तकण्ठो रुरोद ह । विसृज्य नयने रामः पितुः सजलपाणिना ॥७२॥
आश्वासयामास नृपं शनैः स नयकोविदः । किमत्र दुःखेन विभो राज्यं शासतु मेऽनुजः ॥७३॥
अहं प्रतिज्ञां निस्तीर्य पुनर्यास्यामि ते पुरम् । राज्यात्कोटिगुणं सौख्यं मम राजन्वने सतः ॥७४
त्वत्सत्यपालनं देवकार्यं चापि भविष्यति । कैकेय्याश्च प्रियो राजन्वनवासो महागुणः ॥७५॥
इदानीं गन्तुमिच्छामि व्येतु मातुश्च हृज्ज्वरः । सम्भाराश्चोपह्रीयन्तामभिषेकार्थमाहृताः ॥७६॥
मातरं च समाश्वास्य अनुनीय च जानकीम् । आगत्य पादौ वन्दित्वा तव यास्ये सुखं वनम् ७७
इत्युक्त्वा तु परिक्रम्य मातरं द्रष्टुमाययौ । कौसल्याऽपि हरेः पूजां कुरुते रामकारणात् ॥७८॥
होमं च कारयामास ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् । ध्यायते विष्णुमेकाग्रमनसा मौनमास्थिता ॥७९॥

हे राम ! स्त्रीके वशिभूत, भ्रमित बुद्धिवाला, कुमार्गगामी पापात्मा को बाँधकर यह राज्य लेलो; इसमें तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा ॥ ६९ ॥ हे राम ! ऐसा होने पर मुझे भी असत्य नहीं छू सकेगा। यह कहकर राजा दशरथ दुःखी होकर विलाप करने लगे ॥ ७० ॥

हेराम ! हा जगन्नाथ ! हा प्राणवल्लभ ! मुझे छोड़कर तुम घोरजंगल में जाना उचित कैसे समझ रहे हो ॥ ७१ ॥

यह कर राम को गले लगाकर मुक्त कण्ठ से रुदन करने लगे। तदनन्तर राम हाथ में जल लेकर पिता के अश्रुजल को पोंछे ॥ ७२ ॥ नीतिकुशल श्रीरामचन्द्र ने धीरे-धीरे राजा को धैर्य धारण कराया। वे बोले—प्रभो ! मेरे लघुभ्राता शासन करें इसमें दुःख क्या है ? ॥ ७३ ॥ मैं प्रतिज्ञा को पालन कर आपके समीप अयोध्या लौट आऊँगा। हे राजन् ! जंगल में रहने पर मुझे राज्य से भी कोटि गुणा अधिक सुख प्राप्त होगा ॥ ७४ ॥

इसमें आपके सत्य की रक्षा, देवताओं के कार्य की सिद्धि और कैकेयी का भी प्रिय होगा। अतः हे राजन् ! बन में निवास करने में सब प्रकार महान् गुण है ॥ ७५ ॥ माता कैकेयी की अन्तःकरण की व्यथा शान्त हो, मैं शीघ्र ही जाना चाहता हूँ। अभिषेक के लिये सम्पूर्ण सामग्री अलग रख दी जाय ॥७६॥ माता कौसल्या को शान्त्वना देकर और जानकी जी को आश्वस्त कर मैं आकर आपके चरणों की वन्दना कर आनन्द पूर्वक वन को जाता हूँ ॥ ७७ ॥ यह कर पिता की परिक्रमा कर माता से मिलने के लिये आये। इस समय माता कौसल्या राम के मङ्गल के लिये श्री विष्णुभगवान् की पूजा कर रहीं थीं ॥ ७८ ॥ वे कुछ पहले हवन कराकर ब्राह्मणों को अत्यधिक धन दान की थीं और उस समय वह मौन धारण कर एकाग्रचित्त हो श्रीविष्णुभगवान् का ध्यान कर रहीं थीं ॥ ७९ ॥ अपने हृदय में अन्तर्यामी, चिद्घनस्वरूप,

अन्तःस्थमेकं घनचित्प्रकाशं निरस्तसर्वातिशयस्वरूपम् ।
विष्णुं सदानन्दमयं हृदब्जे सा भावयन्ती न ददर्श रामम् ॥८०॥

॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥३॥

चतुर्थसर्ग

भगवान् रामका माता से विदा होना तथा सीता और लक्ष्मण के साथ वन गमन की तैयारी करना

श्रीमहादेव उवाच

ततः सुमित्रा दृष्ट्वैनं रामं राज्ञीं ससंभ्रमा । कौसल्यां बोधयामास रामोऽयं समुपस्थितः ॥ १ ॥
श्रुत्वैव रामनामैषा बहिर्दृष्टिप्रवाहिता । रामं दृष्ट्वा विशालाक्षमालिङ्ग्याङ्के न्यवेशयत् ॥ २ ॥
मूर्ध्न्यवघ्राय पस्पर्श गात्रं नीलोत्पलच्छवि । भुङ्क्ष्व पुत्रेति च प्राह मिष्टमन्नं क्षुधार्दितः । ३ ॥
रामः प्राह न मे मातर्भोजनावसरः कुतः । दण्डकागमने शीघ्रं मम कालोऽद्यनिश्चितः ॥ ४ ॥
कैकेयीवरदानेन सत्यसन्धः पिता मम । भरताय ददौ राज्यं ममाप्यारण्यमुत्तमम् ॥ ५ ॥

तेजोमय, निरतिशयस्वरूप, सदानन्दमय भगवान् विष्णु का ध्यान करती रहने के कारण वे श्रीरामचन्द्रजी को नहीं देख सकीं ॥ ८० ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः तृतीयसर्गः परिपूर्णः ॥ ३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती ! उस समय महारानी सुमित्रा ने रामको देखकर सम्भ्रमपूर्वक महारानी कौसल्या को सचेत् कर बताया कि यह राम खड़े हैं ॥ १ ॥ राम का नाम सुनकर कौसल्या की वहिर्दृष्टि हुई और वे विशाल लोचन श्रीराम को देखकर आलिङ्गन कर गोद बैठाकर उनका सिर सूँघकर उनके नीलकमल तुल्य श्यामल गातपर हाथ फेर कर बोलीं—बेटा ! भूख लगी होगी, कुछ मिष्टान्न खा लो ॥ २-३ ॥ श्रीरामजी बोले कि मातः मुझे भोजन करने का समय कहाँ है; क्योंकि मुझे आज शीघ्र दण्कारण्य जाने का समय निश्चित है ॥ ४ ॥ कैकेयी को वरदान देकर सत्यसन्ध मेरे पिता भरत को राज्य और मेरे लिये अत्युत्तम वनवास दिये हैं ॥ ५ ॥

चतुर्दश समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक् । आगमिष्ये पुनः शीघ्रं न चिन्तां कर्तुमर्हसि ॥ ६ ॥
तच्छ्रुत्वा सहसोद्विग्ना मूर्च्छिता पुनरुत्थिता । आह रामं सुदुःखार्ता दुःखसागरसम्प्लुता ॥७॥
यदि राम वनं सत्यं यासि चेन्नय मामपि । त्वद्विहीना क्षणार्धं वा जीवितं धारये कथम् ॥ ८ ।
यथा गौर्बालकं वत्सं त्यक्त्वा तिष्ठेन्न कुत्रचित् । तथैव त्वां न शक्नोमि त्यक्तुं प्राणात्प्रियं सुतम् ।९
भरताय प्रसन्नश्चेद्राज्यं राजा प्रयच्छतु । किमर्थं वनवासाय त्वामाज्ञापयति प्रियम् ॥१०॥
कैकेय्या वरदो राजा सर्वस्वं वा प्रयच्छतु । त्वया किमपराद्धं हि कैकेय्या वा नृपस्य वा ।११।
पिता गुरुर्यथा राम तवाहमधिका ततः । पित्राऽऽज्ञप्तो वनं गन्तुं वारयेयमहं सुतम् ॥१२॥
यदि गच्छसि मद्वाक्यमुल्लङ्घ्य नृपवाक्यतः । तदा प्राणान्परित्यज्य गच्छामि यमसादनम् ।१३।
लक्ष्मणोऽपि ततः श्रुत्वा कौसल्यावचनं रुषा । उवाच राघवं वीक्ष्य दहन्निव जगत्त्रयम् ॥१४॥
उन्मत्तं भ्रान्तमनसं कैकेयीवशवर्तिनम् । बद्ध्वा निहन्मि भरतं तद्बन्धून्मातुलानपि ॥१५॥
अद्य पश्यन्तु मे शौर्यं लोकान्प्रदहतः पुरा । राम त्वमभिषेकाय कुरु यत्नमरिंदम ॥१६॥
धनुष्पाणिरहं तत्र निहन्यां विघ्नकारिणः । इति ब्रुवन्तं सौमित्रिमालिङ्ग्य रघुनन्दनः ॥१७॥

वहाँ पर मुनिका वेष धारण कर मैं चौदह बर्ष निवास कर शीघ्र ही लौटकर आऊँगा, आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें ॥ ६ ॥ एकाएक यह सुनकर माता कौसल्या दुःख से मूर्च्छित हो गयीं और मूर्च्छा समाप्त होने पर दुःख सागर में डूबती-उतराती दुःख से व्याकुल होकर राम से बोलीं ॥ ७ ॥ हे राम ! यदि सचमुच तुम वन जाते हो तो अपने साथ मुझे भी ले चलो, तुम्हारे विना मैं आधा क्षण भी कैसे जीवित रह सकती हूँ ॥ ८ ॥ जिस प्रकार अपने छोटे बछड़े को छोड़कर गौ अन्यत्र नहीं रह सकती, उसी प्रकार अपने प्राणप्रिय पुत्र तुमको छोड़कर मैं नहीं रह सकती ॥ ९ ॥ राजा यदि भरत पर प्रसन्न हैं तो उन्हें राज्य दें किन्तु तुझे प्रिय पुत्र को जंगल में निवास की आज्ञा क्यों देते हैं ॥ १० ॥ कैकेयी को वरदान देकर महाराज अपना सर्वस्व दे दें, किन्तु तुम राजा अथवा कैकेयी का क्या अहित किये हो अर्थात् तुम्हारा क्या अपराध है जो तुझे वनवास श्री अनुमति दे रहे हैं ॥ ११ ॥

हे राम ! पिता जिस प्रकार तुम्हारे गुरु हैं, उसी प्रकार उनसे अधिक मैं तुम्हारा गुरु हूँ। पिता ने तुझे वनगमन के लिए कहा है, तो मैं तुम्हें वन जाने से रोकती हूँ ॥ १२ ॥ तुम मेरे वाक्य की अवहेलना (उल्लंघन) कर राजा की आज्ञा मानकर वन में चले जाओगे तो मैं अपने प्राणों का परित्याग कर यमपुर को चली जाऊँगी ॥ १३ ॥ तदनन्तर कौशल्या की बात सुनकर रामजी की ओर देखकर लक्ष्मण रोषपूर्वक त्रिलोकी को दग्ध करते हुए जैसा बोले ॥ १४ ॥ मैं उन्मत्त, भ्रान्तचित्त और कैकेयी के वशवर्त्ती राजा दशरथ को बाँधकर भरत को उनके सहायक बन्धु एवं मामा आदि को मार डालूँगा ॥ १५ ॥ आज सम्पूर्ण लोकों को जलाने वाले कालानल के समान मेरे पौरुष को पहले सब लोग देख लें। हे अरिन्दम राम ! आप अभिषेक के लिए तैयारी कीजिये। इस कार्य में विघ्न करने वालों को मैं हाथ में धनुष बाण

शूरोऽसि रघुशार्दूल ममात्यन्तहिते रतः । जानामि सर्वं ते सत्यं किंतु तत्समयो नहि ॥१८॥
यदिदं दृश्यते सर्वं राज्यं देहादिकं च यत् । यदि सत्यं भवेत्तत्र आयासः सफलश्च ते ॥१९॥
भोगा मेघवितानस्थविद्युल्लेखेव चञ्चलाः । आयुरप्यग्निसन्तप्तलोहस्थजलबिन्दुवत् ॥२०॥
यथा व्यालगलस्थोऽपि भेको दंशानपेक्षते । तथा कालाहिना ग्रस्तो लोको भोगानशाश्वतान्॥२१
करोति दुःखेन हि कर्मतन्त्रं शरीरभोगार्थमहर्निशं नरः ।
देहस्तु भिन्नः पुरुषात्समीक्ष्यते को वात्र भोगः पुरुषेण भुज्यते ॥२२॥
पितृमातृसुतभ्रातृदारबन्ध्वादिसङ्गमः । प्रपायामिव जन्तूनां नद्यां काष्ठौघवच्चलः ॥२३॥
छायेव लक्ष्मीश्चपला प्रतीता तारुण्यमम्बूर्मिवदध्रुवं च ।
स्वप्नोपमं स्त्रीसुखमायुरल्पं तथापि जन्तोरभिमान एषः ॥२४॥
संसृतिः स्वप्नसदृशी सदा रोगादिसंकुला । गन्धर्वनगरप्रख्या मूढस्तामनुवर्तते ॥२५॥
आयुष्यं क्षीयते यस्मादादित्यस्य गतागतैः । दृष्ट्वाऽन्येषां जरामृत्यू कथंचिन्नैव बुध्यते ॥२६॥
स एव दिवसः सैव रात्रिरित्येव मूढधीः । भोगाननुपतत्येव कालवेगं न पश्यति ॥२७॥

लेकर मार डालूँगा। इसप्रकार लक्ष्मण के कहने पर श्रीरघुनाथजी उन्हें आलिङ्गन कर बोले ॥१६-१७॥ रघुश्रेष्ठ ! तुम शूरवीर और मेरे परम हितकारी हो। तुम जो भी कहते हो वह सब मैं सत्य मानता हूँ, किन्तु यह समय वैसा नहीं है ॥ १८ ॥ यह जो राज्य और देश दिखाई पड़ते हैं, वे सब सत्य होते तो तुम्हारा परिश्रम सफल होता ॥ १९ ॥ परन्तु ये भोग मेघ रूपी वितान में चमकती हुई विद्युत के समान चञ्चल हैं, तथा आयु भी अग्नि में सन्तप्त लोहे पर पड़ी हुई जल-कण के समान क्षणिक है ॥ २० ॥ जिस प्रकार सर्प के मुख में (आहार रूप से) पड़ा हुआ मेढक मच्छरों को खाने के लिए देखता रहता है उसी प्रकार काल रूप सर्प से ग्रस्त हुआ प्राणी भी नाशवान भोगों को चाहता रहता है ॥ २१ ॥

यह कैसा आश्चर्य है कि शरीर के भोगों के लिए प्राणी अहर्निश अत्यन्त कष्टों का सहन कर अनेक प्रकार की क्रियायें करता है। यह यदि समझ हो कि शरीर आत्मा से भिन्न है तो पुनः पुरुष किस प्रकार किसी भोग को भोग सकता है ? ॥ २२ ॥ पिता, माता, पुत्र, भाई, स्त्री और बन्धु-बान्धवों का संयोग तो पनघट (प्याऊ=प्रपा) पर एकत्रित हुए जीवों अथवा नदी प्रवाह से एकत्रित हुई लकड़ियों की भाँति चञ्चल है ॥ २३ ॥ निःसन्देह यह दिखाई पड़ता है कि छाया के समान लक्ष्मी चञ्चला और यह यौवन जल-तरङ्ग के समान अनित्य है, स्त्री सुख स्वप्न के समान मिथ्या और आयु अत्यल्प है। इस पर भी प्राणियों का इन भोगों में कितना अभिमान है ॥ २४ ॥ यह संसार सदा रोगादि की संसृति तथा स्वप्न एवं गन्धर्व नगर के समान मिथ्या है, मूढजन इसको सत्य समझ कर इसका अनुवर्तन करते हैं ॥ २५ ॥ नित्य प्रति सूर्य के उदयास्त से आयु क्षीण हो रही है, तथा च नित्य दूसरों की वृद्धावस्था और मृत्यु देखी जाती है; फिर भी मूढ़जनों को किसी प्रकार की चेतना नहीं होती ॥ २६ ॥ नित्य उसी प्रकार दिन और रात्रि होते हैं, परन्तु मूढ़धी प्राणी भोगों के पीछे दौड़ते रहते हैं। काल की गति को कोई नहीं देखता ॥२७॥

प्रतिक्षणं क्षरत्येतदायुरामघटाम्बुवत् । सपत्ना इव रोगौघाः शरीरं प्रहरन्त्यहो ॥२८॥
जरा व्याघ्रीव पुरतस्तर्जयन्त्यवतिष्ठते । मृत्युः सहैव यात्येष समयं संप्रतीक्षते ॥२९॥
देहेऽहंभावमापन्नो राजाऽहं लोकविश्रुतः । इत्यस्मिन्मनुते जन्तुः कृमिविड्भस्मसंज्ञिते ॥३०॥
त्वगस्थिमांसविण्मूत्ररेतोरक्तादिसंयुतः । विकारी परिणामी च देह आत्मा कथं वद ॥३१॥
यमास्थाय भवाँल्लोकं दग्धुमिच्छति लक्ष्मण । देहाभिमानिनः सर्वे दोषाः प्रादुर्भवन्ति हि ॥३२।
देहोऽहमिति यो बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता । नाहं देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्येति भण्यते ॥३३॥
अविद्या संसृतेर्हेतुर्विद्या तस्या निवर्तिका । तस्माद्यत्नः सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभिः ।
कामक्रोधादयस्तत्र शत्रवः शत्रुसूदन ॥३४॥
तत्रापि क्रोध एवालं मोक्षविघ्नाय सर्वदा । येनाविष्टः पुमान्हन्ति पितृभ्रातृसुहृत्सखीन् ॥३५॥
क्रोधमूलो मनस्तापः क्रोधः संसारबन्धनम् । धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्क्रोधं परित्यज ॥३६॥
क्रोध एष महान् शत्रुस्तृष्णा वैतरणी नदी । संतोषो नन्दनवनं शान्तिरेव हि कामधुक् ।३७॥
तस्माच्छान्तिं भजस्वाद्य शत्रुरेवं भवेन्न ते । देहेन्द्रियमनःप्राणबुद्ध्यादिभ्यो विलक्षणः ॥३८॥
आत्मा शुद्धः स्वयंज्योतिरविकारी निराकृतिः । यावद्देहेन्द्रियप्राणैर्भिन्नत्वं नात्मनो विदुः ।३९।

कच्चे घड़े में जल भरने के समान प्रतिक्षण आयु क्षीण हो रही है तथा रोगसमूह शत्रुओं के समान शरीर को कष्ट कर रहे हैं ॥ २८ ॥ वृद्धावस्था व्याघ्री के समान तर्जना करती हुई सामने खड़ी है और मृत्यु भी उसके साथ ही चलती हुई समय की प्रतीक्षा कर रही है ॥ २९ ॥ परन्तु शरीर में अहं भाव करने वाला जीव इस कृमि, विष्ठा और भस्मरूप शरीर को मैं लोक प्रसिद्ध राजा हूँ यह मानता है ॥ ३० ॥ हे लक्ष्मण ! तुम सोच समझ कर बताओ कि जिसके द्वारा तुम संसार को भस्म करना चाहते हो, वह त्वचा, अस्थि, मांस, शुक्र, विष्ठा, मूत्र तथा रुधिर आदि से निर्मित विकारी और परिणामी यह देह आत्मा किस प्रकार हो सकता है ? हे भाई ! इस देह में अभिमान रखने वाले पुरुष में ही सम्पूर्ण दोष प्रकट होते हैं ॥ ३१-३२ ॥ मैं देह हूँ, इस तरह की बुद्धि का नाम अविद्या है; तथा मैं देह नहीं चेतन आत्मा हूँ इसको ही विद्या कहते हैं ॥ ३३ ॥ इस जन्म मरण रूप संसार का अविद्या ही कारण है और विद्या उसको निवृत्त करने वाली होती है । अत-एव मोक्षार्थियों को हमेशा विद्या उपार्जित करने का प्रयास करना चाहिये । हे शत्रुसूदन ! काम, क्रोध आदि इस साधन में विघ्न करने वाले शत्रु हैं ॥ ३४ ॥ काम-क्रोधादि में मोक्ष में बाधा करने के लिये तो केवल क्रोध ही पर्याप्त है, जिसका आवेश होने से प्राणी पिता, माता, सुहृद, बन्धु-बान्धव आदि का भी वध कर देता है ॥ ३५ ॥ मन के सन्ताप का मूल कारण क्रोध ही है । क्रोध ही संसार का बन्धन तथा धर्म का नाश करने वाला है । अत-एव तुम क्रोध का त्याग करो ॥ ३६ ॥ यह क्रोध महान् शत्रु है, तृष्णा वैतरणी नदी, सन्तोष नन्दनवन तथा शान्ति ही कामधेनु है ॥ ३७ ॥ अतएव तुम शान्ति धारण करो, इससे क्रोध रूपी शत्रु का कोई प्रभाव तुम पर नहीं होगा । यह आत्मा देह,

तावत्संसारदुःखौघैः पीड्यन्ते मृत्युसंयुताः । तस्मात्त्वं सर्वदा भिन्नमात्मानं हृदि भावय ॥४०॥
बुद्ध्यादिभ्योबहिः सर्वमनुवर्तस्व मा खिदः । भुञ्जन्प्रारब्धमखिलं सुखं वा दुःखमेव वा ॥४१॥
प्रवाहपतितं कार्यं कुर्वन्नपि न लिप्यसे । बाह्ये सर्वत्र कर्तृत्वमावहन्नपि राघव ॥४२॥
अन्तःशुद्धस्वभावस्त्वं लिप्यसे न च कर्मभिः । एतन्मयोदितं कृत्स्नं हृदि भावय सर्वदा ॥४३॥
संसारदुःखैरखिलैर्बाध्यसे न कदाचन । त्वमप्यम्ब मायाऽऽदिष्टं हृदि भावय नित्यदा ।४४॥
समागमं प्रतीक्षस्व न दुःखैः पीड्यसे चिरम् । न सदैकत्र संवासः कर्ममार्गानुवर्तिनाम् ॥४५॥
यथा प्रवाहपतितप्लवानां सरितां तथा । चतुर्दशसमासंख्या क्षणार्धमिव जायते ॥४६॥
अनुमन्यस्व मामम्ब दुःखं संत्यज्य दूरतः । एवं चेत्सुखसंवासो भविष्यति वने मम ॥४७॥
इत्युक्त्वा दण्डवन्मातुः पादयोरपतच्चिरम् । उत्थाप्याङ्के समावेश्य अशीभिरभिनन्दयत् ॥४८।
सर्वे देवाः सगन्धर्वा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । रक्षन्तु त्वां सदा यान्तं तिष्ठन्तं निद्रया युतम् ॥४९॥
इति प्रस्थापयामास समालिङ्ग्य पुनः पुनः । लक्ष्मणोऽपि तदा रामं नत्वा हर्षाश्रुगद्गदः ।५०।

इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि आदि से पृथक् तथा शुद्ध, स्वयं प्रकाश अविकारी और निराकार है। जब तक प्राणी देह, इन्द्रिय और प्राण आदि से आत्मा को पृथक् नहीं जानते तब तक वे मृत्यु के जाल में बंधकर सांसारिक दुःखों से प्रपीड़ित होते रहते हैं। अतएव तुम सर्वदा अपने हृदय में बुद्धि आदि से आत्मा को भिन्न अनुभव करो, इस सम्पूर्ण बाह्य जगत् व्यवहार का अनुवर्तन करो और सुख तथा दुःख प्रारब्ध के अनुसार भोगते हुए मन में दुःख मत समझो ॥ ३८–४१ ॥

हे रघुपुत्र! बाहर से कर्तृत्व प्रकट करते हुए प्रारब्धवश उपस्थित कार्य को करते रहने से तुम बन्धन में नहीं रहोगे ॥ ४२ ॥ अन्तःकरण से रागद्वेष रहित और शुद्ध स्वभाव रहने के कारण तुम कर्मों से लिप्त नहीं होगे। इन बातों पर तुम सर्वदा अपने हृदय में विचार करो ॥ ४३ ॥ यह करने पर तुम सम्पूर्ण सांसारिक दुःखों से कभी बाधित नहीं होगे। हे मात! तुम भी इस कथन पर नित्य विचार करना और मेरे पुनः मिलने की प्रतीक्षा करती रहना। तुमको अधिक समय दुःख नहीं होगा। कर्म के बन्धन में फँसे हुए जीवों का सदा एक ही साथ रहना-सहना नहीं हुआ करता ॥ ४३–४५ ॥ नदी के प्रवाह में पड़ी हुई बहती नौका सदा साथ-साथ नहीं चलतीं। हे मातः! यह चतुर्दश वर्ष की अवधि आधे क्षण के समान व्यतीत हो जायेगी। अब आप दुःख दूर करके हमें वन जाने की अनुमति दीजिये। आपके ऐसा करने से मैं वन में सुखपूर्वक रह सकूँगा ॥ ४६-४७ ॥

यह कह कर श्रीरामचन्द्र जी बहुत देर तक दण्ड के समान माता के चरणों में पड़े रहे। तत्पश्चात् माता ने उन्हें उठाकर गोद में बैठा लिया और आशीर्वाद देकर उनकी प्रशंसा की ॥ ४८ ॥ वे बोलीं— तुम्हारे चलते, बैठते अथवा सोते समय गन्धर्वों सहित ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सम्पूर्ण देवगण तुम्हारी सर्वदा रक्षा करें ॥ ४९ ॥ इस प्रकार बारम्बार हृदय से लगाकर माता ने श्रीराम को विदा किया।

आह राम ममान्तस्थः संशयोऽयं त्वया हृतः। यास्यामि पृष्ठतो राम सेवां कर्तुं तदादिश ।५१॥
अनुगृह्णीष्व मां राम नोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् । तथेति राघवोऽप्याह लक्ष्मणं याहि माचिरम्५२
प्रतस्थे तां समाधातुं गतः सीतापतिर्विभुः । आगतं पतिमालोक्य सीता सुस्मितभाषिणी ।५३।
स्वर्णपात्रस्थसलिलैः पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः । पप्रच्छ पतिमालोक्य देव किं सेनया विना ।.५४॥
आगतोऽसि गतः कुत्र श्वेतच्छत्रं च ते कुतः । वादित्राणि न वाद्यन्ते किरीटादिविवर्जितः ॥५५॥
सामन्तराजसहितः संभ्रमान्नागतोऽसि किम् । इति स्म सीतया पृष्टो रामः सस्मितमब्रवीत् ।५६।
राज्ञा मे दण्डकारण्ये राज्यं दत्तं शुभेऽखिलम् । अतस्तत्पालनार्थाय शीघ्रं यास्यामि भामिनि ५७
अद्यैव यास्यामि वनं त्वं तु श्वश्रूसमीपगा । शुश्रूषां कुरु मे मातुर्न मिथ्यावादिनो वयम् ।५८।
इति ब्रुवन्तं श्रीरामं सीता भीताऽब्रवीद्वचः । किमर्थं वनराज्यं ते पित्रा दत्तं महात्मना ॥५९॥
तामाह रामः कैकेय्यै राजा प्रीतो वरं ददौ । भरताय ददौ राज्यं वनवासं ममानघे ॥६०॥
चतुर्दश समास्तत्र वासो मे किल याचितः । तया देव्या ददौ राजा सत्यवादी दयापरः ॥६१॥

तदनन्तर लक्ष्मण जी श्रीरामजी से आँखों में आनन्दाश्रु भर कर गद्गद् वाणी से बोले—हे राम ! आप मेरा आन्तरिक सन्देह दूर कर दिये । अब मैं आपकी सेवा करने के लिये आपके पीछे-पीछे चलूँगा । यह करने के लिये मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ५०-५१॥ हे प्रभो ! आप मुझ पर कृपा कीजिये, नहीं तो मैं प्राण छोड़ दूँगा । तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी ने लक्ष्मणजी से बोले बहुत अच्छा, चलो देर न करो ॥ ५२ ॥ पुनः सीतापति भगवान् राम सीताजी को समझाने के लिये चले और अपने महल में गये । तब मधुर मुस्कानपूर्वक बोलने वाली श्रीसीताजी पतिदेव को आते देखकर एक सुवर्ण पात्र में जल लेकर भक्तिपूर्वक उनके चरणों को धोयीं और स्वामीजी की ओर देखते हुए पूछीं—देव ! इस समय सेना के बिना ही आप कैसे आये हैं ? आप प्रातःकाल कहाँ गये थे ? आपका श्वेत छत्र कहाँ है ? बाजों का बजना क्यों बन्द हो गया है ? आप किरीटादि राजोचित आभूषणों से रहित क्यों हैं ? ॥ ५३-५५ ॥ आप मन्त्री और राजाओं के साथ बड़े ठाट-बाट से क्यों नहीं आये ? सीताजी के यह प्रश्न पूछने पर श्रीरामचन्द्र जी मुसकराकर बोले ॥ ५६ ॥

हे शुभे ! पिताजी मुझे दण्डकारण्य का सम्पूर्ण राज्य दे दिये हैं, अतः हे भामिनि ! मैं शीघ्र ही उसका पालन करने के लिये वहाँ जाऊँगा ॥ ५७ ॥ आज ही मैं वन जाऊँगा । तुम अपनी सास के पास जाकर उनकी सेवा शुश्रूषा में रहो । मैं असत्य नहीं बोलता ॥ ५८ ॥ रामचन्द्रजी के इस प्रकार कहने पर सीता जी भयभीत होकर बोलीं—आपके महात्मा पिताजी ने आपको वन का राज्य क्यों दिया है ?॥ ५९ ॥

तब रामचन्द्रजी उनसे बोले—हे अनघ ! महाराज प्रसन्नता पूर्वक कैकेयी को वर देकर भरत को अयोध्या का राज और मुझे वनवास दिये हैं ॥ ६० ॥ देवी कैकेयी मेरे लिये चौदह वर्ष तक वन में रहना माँगा था, उसे सत्यवादी दयालु महाराज देना स्वीकार कर लिए हैं ॥ ६१ ॥ अत-एव हे भामिनि ! मैं शीघ्र

अतः शीघ्रं गमिष्यामि मा विघ्नं कुरु भामिनी। श्रुत्वा तद्रामवचनं जानकी प्रीतिसंयुता ॥६२॥
अहमग्रे गमिष्यामि वनं पश्चात्त्वमेष्यसि। इत्याह मां विना गन्तुं तव राघव नोचितम् ॥६३॥
तामाह राघवः प्रीतः स्वप्रियां प्रियवादिनीम्। कथं वनं त्वां नेष्येऽहं बहुव्याघ्रमृगाकुलम् ।६४।
राक्षसा घोररूपाश्च सन्ति मानुषभोजिनः। सिंहव्याघ्रवराहाश्च सञ्चरन्ति समन्ततः ॥६५॥
कट्वम्लफलमूलानि भोजनार्थं सुमध्यमे। अपूपानि व्यञ्जनानि विद्यन्ते न कदाचन ॥६६॥
काले काले फलं वाऽपि विद्यते कुत्र सुन्दरि। मार्गो न दृश्यते क्वापि शर्कराकण्टकान्वितः ॥६७।
गुहागह्वरसम्बाधं झिल्लीदंशादिभिर्युतम्। एवं बहुविधं दोषं वनं दण्डकसंज्ञितम् ॥६८॥
पादचारेण गन्तव्यं शीतवातातपादिमत्। राक्षसादीन्वने दृष्ट्वा जीवितं हास्यसेऽचिरात् ॥६९॥
तस्माद्भद्रे गृहे तिष्ठ शीघ्रं द्रक्ष्यसि मां पुनः। रामस्य वचनं श्रुत्वा सीता दुःखसमन्विता।७०॥
प्रत्युवाच स्फुरद्वक्त्रा किञ्चित्कोपसमन्विता। कथं मामिच्छसे त्यक्तुं धर्मपत्नीं पतिव्रताम् ।७१॥
त्वदनन्यामदोषां मां धर्मज्ञोऽसि दयापरः। त्वत्समीपे स्थितां राम को वा मां धर्षयेद्वने ॥७२॥
फलमूलादिकं यद्यत्तव भुक्तावशेषितम्। तदेवामृततुल्यं मे तेन तुष्टा रमाम्यहम् ॥७३॥

ही वहाँ जाऊँगा। तुम इसमें किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित न करो। रामचन्द्रजी के यह कहने पर सीताजी प्रसन्नतापूर्वक बोलीं—मैं पहले वन जाऊँगी, उसके बाद आप आयें। हे राघव! मुझे छोड़कर आपको वन में जाना उचित नहीं है ॥ ६२-६३ ॥ तदनन्तर श्री रघुनाथ जी प्रसन्नता पूर्वक अपनी प्रिया प्रियवादिनी जानकी से बोले—मैं तुम्हें अनेकों व्याघ्रादि वन्य पशुओं से पूर्ण जङ्गल में कैसे साथ ले चलूँ ॥ ६४ ॥ वहाँ पर मनुष्यों को खाने वाले भयङ्कर राक्षस रहते हैं और सब ओर सिंह, व्याघ्र तथा शूकर आदि हिंसक जन्तु फिरते रहते हैं ॥ ६५ ॥

हे सुन्दर कटिवाली सीते! वहाँ भोजन के लिये कटु एवं कषाय स्वाद वाले फल-मूलादि मिलते हैं, किसी प्रकार के अपूप (पूआ) एवं व्यञ्जन वहाँ कभी नहीं मिलते ॥ ६६ ॥ हे सुन्दरि! वे फल भी कभी-कभी नहीं मिलते। कहीं-कहीं धूल और काँटों से आच्छादित रहने के कारण मार्ग भी दिखायी नहीं देते ॥ ६७ ॥ इस प्रकार दण्डकारण्य अनेक दोषों से भरा है। उसमें अनेक गुफाएँ और गड्ढे हैं और वह झिल्ली तथा दंश आदि से परिपूर्ण है ॥ ६८ ॥ इस प्रकार के वन में शीत, वायु और धूप आदि के समय भी पैदल चलना पड़ता है। तुम वन में भयङ्कर राक्षसादिकों को देखकर अपना प्राण त्याग दोगी, यह मुझे संदेह है ॥ ६९ ॥ अत-एव हे भद्रे! तुम घर पर हीं रहो, मुझे शीघ्र ही तुम पुनः देख सकोगी। रामकी यह वाणी सुनकर क्रोध से कम्पित अधर वाली दुःख से व्याकुल होकर क्रोध से सीता बोली—आप मुझ पतिव्रता धर्मपत्नी को घर छोड़ना क्यों चाहते हैं? ॥ ७०-७१ ॥ आप धर्म को जानने वाले और दयालु हैं, पुनः अपनी अनन्या भक्ता, दोषहीन पत्नी को क्यों छोड़ना चाहते हैं? हे राम! वन में भी आपके समीप रहने पर मेरा कोई कुछ भी विगाड़ नहीं सकता ॥ ७२ ॥ आपके भोजन से अवशिष्ट जो भी फल मूलादि होंगे वे मेरे लिये अमृत के समान होंगे। उनसे सन्तुष्ट होकर मैं आनन्दपूर्वक रहूँगी ॥ ७३ ॥

त्वया सह चरन्त्या मे कुशाः काशाश्च कण्टकाः । पुष्पास्तरणतुल्या मे भविष्यन्ति न संशयः ७४
अहं त्वां क्लेशये नैव भवेयं कार्यसाधिनी । बाल्ये मां वीक्ष्य कश्चिद्वै ज्योतिःशास्त्रविशारदः ।७५
प्राह ते विपिने वासः पत्या सह भविष्यति । सत्यवादी द्विजो भूयाद्गमिष्यामि त्वया सह ७६
अन्यत्किञ्चित्प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा मां नय काननम् । रामायणानि बहुशः श्रुतानि बहुभिर्द्विजैः ७७
सीतां विना वनं रामो गतः किं कुत्रचिद्वद । अतस्त्वया गमिष्यामि सर्वथा त्वत्सहायिनी ७८
यदि गच्छसि मां त्यक्त्वा प्राणांस्त्यक्ष्यामि तेऽग्रतः । इति तं निश्चयं ज्ञात्वा सीताया रघुनन्दनः
अब्रवीद्देवि गच्छ त्वं वनं शीघ्रं मया सह । अरुन्धत्यै प्रयच्छाशु हारानाभरणानि च ॥८०॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं सर्वं दत्त्वा गच्छामहे वनम् । इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनाशु द्विजानाहूय भक्तितः ।८१
ददौ गवां वृन्दशतं धनानि वस्त्राणि दिव्यानि विभूषणानि ।
कुटुम्बवद्भ्यः श्रुतशीलवद्भ्यो मुदा द्विजेभ्यो रघुवंशकेतुः ॥८२॥
अरुन्धत्यै ददौ सीता मुख्यान्याभरणानि च । रामो मातुः सेवकेभ्यो ददौ धनमनेकधा ॥८३॥
स्वकान्तःपुरवासिभ्यः सेवकेभ्यस्तथैव च । पौरजानपदेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यः सहस्रशः ॥८४॥
लक्ष्मणोऽपि सुमित्रां तु कौसल्यायै समर्पयत् । धनुष्पाणिः समागत्य रामस्याग्रे व्यवस्थितः ।८५

आपके साथ रहते हुए कुश कण्टकादि भी मेरे लिये फूलों के विस्तर के समान होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ७४ ॥ मैं आपको कोई कष्ट नहीं दूँगी, किन्तु आपके कर्म में सहायिका होऊँगी। बाल्यकाल में एक ज्योतिष शास्त्र के वेत्ता महात्मा मुझसे बताये थे कि तुम अपने पति के साथ बन में रहोगी। उनकी बात सत्य हो, मैं आपके साथ अवश्य वन में चलूंगी ॥ ७५-७६ ॥

और भी मैं कुछ कहती हूँ, जिसे सुनकर मुझे आप जंगल में ले चलें। आप अनेकों ब्राह्मणों द्वारा अनेक रामायण सुने होंगे ॥ ७७ ॥ क्या सीता के विना भी राम कभी जंगल में गये हैं ? आप बताइये। अतः मैं आपकी सर्वथा सहायिनी रहकर अवश्य आपके साथ वन में चलूँगी ॥ ७८ ॥ आप यदि मुझे छोड़कर चले जायेंगे तो मैं तत्क्षण आपके सामने अपने प्राणों को छोड़ दूँगी। इसप्रकार सीताजी का दृढ़निश्चय देखकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—देवि ! तुम शीघ्र ही मेरे साथ वन में चलो; ये हार आदि आभूषण वसिष्ठजीकी पत्नी अरुन्धती को दे दो ॥ ७९–८० ॥ हम अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को देकर वन को चलेंगे।

यह कहकर भगवान् राम लक्ष्मण जी द्वारा भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को बुलाये और रघुकुलकेतु भगवान् राम प्रसन्नतापूर्वक सैकड़ों गौओं के समूह विपुल धन, दिव्य वस्त्र और आभूषण कुटुम्बियों, विद्वान् एवं शीलसम्पन्न ब्राह्मणों को दिये ॥ ८१-८२ ॥ सीताजी अपना मुख्य-मुख्य आभूषण अरुन्धती को दे दीं, राम अपनी माँ के सेवकों को भी बहुत धन दिये ॥ ८४ ॥

श्रीलक्ष्मणजी अपनी माता सुमित्रा को कौसल्याजी को सुपुर्द कर स्वयं हाथ में धनुष धारण कर

रामः सीता लक्ष्मणश्च जग्मुः सर्वे नृपालयम् ॥८६॥

श्रीरामः सह सीतया नृपपथे गच्छन् शनैः सानुजः
पौरान् जानपदान्कुतूहलदृशः सानन्दमुद्वीक्षयन् ॥
श्यामः कामसहस्रसुन्दरवपुः कान्त्या दिशो भासयन्
पादन्यासपवित्रिताऽखिलजगत्प्रापालय तत्पितुः ॥८७॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमसर्ग

भगवान् का वनगमन

श्रीमहादेव उवाच

आयान्तं नागरा दृष्ट्वा मार्गे रामं सजानकिम् । लक्ष्मणेन समं वीक्ष्य ऊचुः सर्वे परस्परम् ॥ १ ॥
कैकेय्या वरदानादि श्रुत्वा दुःखसमावृताः । बत राजा दशरथः सत्यसन्धं प्रियं सुतम् ॥ २ ॥
स्त्रीहेतोरत्यजत्कामी तस्य सत्यवता कुतः । कैकेयी वा कथं दुष्टा रामं सत्यं प्रियङ्करम् ॥ ३ ॥
विवासयामास कथं क्रूरकर्माऽतिमूढधीः । हे जना नात्र वस्तव्यं गच्छामोऽद्यैव काननम् ॥ ४ ॥

श्री राम के सामने आकर उपस्थित हो गये। तत्पश्चात् राम सीता और लक्ष्मण महाराज दशरथ के पास चले ॥ ८५-८६ ॥ कोटि कामदेव के समान सुन्दर श्यामल गात भगवान् राम, सीता और अनुज लक्ष्मण के साथ अपनी द्युति से दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए राजमार्ग पर धीरे-धीरे चल दिये (कुतूहलवश आनन्दमयी दृष्टि से देखते हुये) उस समय अन्तःपुरवासी और नगरवासी के देखते हुए तथा अपने चरण रज से सम्पूर्ण संसार को पवित्र करते हुए वे अपने पिता के घर में पहुँच गये ॥ ८७ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रत-पाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया सहितः चतुर्थसर्गः परिपूर्णः ॥ २ ॥

—※—

श्रीमहादेवजी बोले—श्री जानकी और लक्ष्मण के साथ श्रीरामचन्द्रजी को मार्ग में आते देख तथा कैकेयी के वरदान की बातें सुनकर सभी नगरवासी दुःख से व्याकुल होकर आपस में कहने लगे—हाय ! काम के वशीभूत होकर राजादशरथ अपने सत्यपरायण प्रियपुत्र को स्त्री कारण छोड़ दिये। अतएव राजा की सत्यपरायणता कैसे रही ? तथा च दुष्टा कैकेयी भी सत्यवादी और प्रिय करने वाले राम को वनवास

यत्र रामः सभार्यश्च सानुजो गन्तुमिच्छति । पश्यन्तु जानकीं सर्वे पादचारेण गच्छतीम् ॥ ५ ॥
पुंभिः कदाचिद्दृष्टा वा जानकी लोकसुन्दरी । साऽपि पादेन गच्छन्ती जनसंघेष्वनावृता ॥ ६ ॥
रामोऽपि पादचारेण गजाश्वादिविवर्जितः । गच्छति द्रक्ष्यथ विभुं सर्वलोकैकसुन्दरम् ॥ ७ ॥
राक्षसी कैकयीनाम्नी जाता सर्वविनाशिनी । रामस्यापि भवेद्दुःखं सीतायाः पादयानतः । ८ ॥
बलवान्विधिरेवात्र पुंप्रयत्नो हि दुर्बलः । इति दुःखाकुले वृन्दे साधूनां मुनिपुङ्गवः ॥ ९ ॥
अब्रवीद्वामदेवोऽथ साधूनां साङ्घमध्यगः । मानुशोचथ रामं वा सीतां वा वच्मि तत्त्वतः ॥१०॥
एष रामः परो विष्णुरादिनारायणः स्मृतः । एषा सा जानकी लक्ष्मीर्योगमायेति विश्रुता ॥११॥
असौ शेषस्तमन्वेति लक्ष्मणाख्यश्च साम्प्रतम् । एष मायागुणैर्युक्तस्तत्तदाकारवानिव ॥१२॥
एष एव रजोयुक्तो ब्रह्माऽभूद्विश्वभावनः । सत्त्वाविष्टस्तथा विष्णुस्त्रिजगत्प्रतिपालकः ॥१३॥
एष रुद्रस्तामसोऽन्ते जगत्प्रलयकारणम् । एष मत्स्यः पुरा भूत्वा भक्तं वैवस्वतं मनुम् ॥१४॥
नाव्यारोप्य लयस्यान्ते पालयामास राघवः । समुद्रमथने पूर्वं मन्दरे सुतलं गते ॥१५॥

क्यों दी ? यह कैकेयी क्रूर कर्म करने वाली और हतबुद्धि वाली कैसे हो गयी ? बन्धुओं हमें अब यहाँ नहीं रहना चाहिये; हम लोग भी आज ही वन में चलेंगे, जहाँ पर अनुज एवं स्त्री के साथ श्रीरामजी जाना चाहते हैं। यह तो देखो कि जानकीजी आज पैदल ही चल रहीं हैं ॥ १–५ ॥ हाय ! त्रिलोक सुन्दरी जानकी को शायद ही पहले कभी कोई पुरुष देखा हो, वे आज विना किसी आवरण के जनसमूह में पैदल ही चल रहीं हैं ॥ ६ ॥

बन्धुओं ! सर्वलोक सुन्दर भगवान् राम के तरफ भी देखो, ये भी विना हाथी-घोड़ा आदि के आज पैदल ही जा रहे हैं ॥ ७ ॥ यह कैकेयी नामकी राक्षसी सबका नाश करने के लिये जन्म ली है। हे भाई ! इन सीताजी के पैदल चलने से रामजी भी दुःखी होंगे ॥ ८ ॥ परन्तु क्या किया जा सकता है ? इनमें दैव ही बलवान हैं, पुरुष का सर्वप्रयत्न दुर्बल है। इस प्रकार साधुओं को दुःखी देखकर मुनि पुङ्गव वामदेव जी उनलोगों के बीच में जाकर बोले—आपलोग राम और सीता के लिये किसी प्रकार की चिन्ता न करें, मैं आपलोगों को वास्तविक तत्त्व बतलाता हूँ ॥ ९-१० ॥ ये राम आदि नारायण भगवान् श्रीविष्णु हैं और ये जानकी योगमाया नाम से विख्यात श्रीलक्ष्मीजी हैं ॥ ११ ॥ सम्प्रति जो लक्ष्मण नाम धारण कर इनका अनुगमन करते हैं वे श्रीशेषजी हैं। ये पुरुषोत्तम भगवान् माया के गुणों से युक्त होकर विभिन्न आकार जैसे प्रतीत होते हैं ॥ १२ ॥ ये रजोगुण से युक्त होकर ही विश्व की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा जी हुए हैं और सत्त्वगुण युक्त होकर ये ही त्रिलोक के रक्षा करने वाले भगवान् विष्णु होते हैं ॥ १३ ॥ तथाच कल्प के अन्त में तमोगुण विशिष्ट जगत् का प्रलय करने वाले रुद्र होते हैं। पूर्वसमय में ये रघुनाथजी मत्स्य का रूप धारणकर अपने भक्त वैवस्वत मनु को नौका में बैठाकर प्रलयकाल के समय उनकी रक्षा किये थे। समुद्र मन्थन के समय जब मन्दराचल पाताल लोक में जाने लगा तब ये ही श्री-

अधारयत्स्वपृष्ठेऽद्रिं कूर्मरूपी रघूत्तमः । मही रसातलं याता प्रलये सूकरोऽभवत् ॥१६॥
तोलयामास दंष्ट्राग्रे तां क्षोणीं रघुनन्दनः । नारसिंहं वपुः कृत्वा प्रह्लादवरदः पुरा ॥१७॥
त्रिलोककण्टकं रक्षः पाटयामास तन्नखैः । पुत्रराज्यं हृतं दृष्ट्वा ह्यदित्या याचितः पुरा ।१८॥
वामनत्वमुपागम्य याच्ञया चाहरत्पुनः । दुष्टक्षत्रियभूभारनिवृत्त्यै भार्गवोऽभवत् ॥१९॥
स एव जगतां नाथ इदानीं रामतां गतः । रावणादीनि रक्षांसि कोटिशो निहनिष्यति ॥२०॥
मानुषेणैव मरणं तस्य दृष्टं दुरात्मनः । राज्ञा दशरथेनापि तपसाराधितो हरिः ॥२१॥
पुत्रत्वाकांक्षया विष्णोस्तदा पुत्रोऽभवद्धरिः । स एव विष्णुः श्रीरामो रावणादिवधाय हि ॥२२॥
गन्ताऽद्यैव वनं रामो लक्ष्मणेन सहायवान् । एषा सीता हरेर्माया सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥२३॥
राजा वा कैकयी वाऽपि नात्र कारणमण्वपि । पूर्वेद्युर्नारदः प्राह भूभारहरणाय च ।२४॥
रामोऽप्याह स्वयं साक्षाच्छ्वो गमिष्याम्यहं वनम् ।
अतो रामं समुद्दिश्य चिन्तां त्यजत बालिशाः ।।२५॥
रामरामेति ये नित्यं जपन्ति मनुजा भुवि । तेषां मृत्युभयादीनि न भवन्ति कदाचन ॥२६॥

रघुनाथजी कूर्म का रूप धारणकर उसे अपनी पीठ पर धारण किये थे। प्रलय के समय जब पृथ्वी रसातल को चली गयी तब ये शूकर का रूप धारण किये ॥ १४-१६ ॥

उस पृथ्वी को अपनी दाढ़ों पर उठा लिये। इसी प्रकार एक समय प्रह्लाद को वर देने के लिये ये नृसिंह रूप धारण किये और तीनों लोकों के कण्टकस्वरूप दैत्यराज हिरण्यकशिपु को अपने नखों से फाड़ दिये। एक समय अपने पुत्र इन्द्र का राज्य गया हुआ देखकर अदिति ने जब इनसे प्रार्थना की तब ये वामन रूप धारण कर याचना कर उसे पुनः इन्द्र को लौटा दिये। ये पृथ्वी के भारभूत क्षत्रियों को नष्ट करने के लिये भृगुपुत्र परशुरामजी का रूप धारण किए ॥ १९ ॥ वे ही जगत्प्रभु इस समय श्रीरामरूप से प्रकट हुए हैं, अब ये रावण आदि करोड़ों राक्षसों का वध करेंगे ॥ २० ॥ उस दुरात्मा की मृत्यु मनुष्य के हाथ निश्चित है। महाराज दशरथ पूर्वजन्म में तपस्या के द्वारा भगवान् विष्णु को इसीलिये आराधना किये थे कि उनके यहाँ पुत्ररूप से भगवान् अवतार लें। अतएव इससमय भगवान् इनके पुत्र हुए हैं। वे श्रीविष्णु-भगवान् ही श्रीरामचन्द्रजी हैं। इस समय ये रावण के वध के लिये लक्ष्मण सहित वन को जायेंगे। ये श्रीसीताजी जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करने वाली साक्षात् भगवान् की माया हैं ॥ २१-२३ ॥ इनके वन जाने में राजा अथवा कैकेयी अणुमात्र भी कारण नहीं हैं। कल ही नारदजी इनसे पृथ्वी का भार हरण करने के लिये प्रार्थना किये थे ॥ २४ ॥

उस समय स्वयं श्रीराम उनसे यह कहे कि कल मैं वन में जाऊँगा। अतएव भोले बन्धुओं! आप लोग राम की चिन्ता न करें ॥ २५ ॥ संसार में जो व्यक्ति अहर्निश राम-राम का जप करते हैं, उनको भी किसी समय मृत्यु आदि का भय नहीं होता ॥ २६ ॥ पुनः उन महामना राम के लिये दुःख की आशङ्का

का पुनस्तस्य रामस्य दुःखशंका महात्मनः । रामनाम्नैव मुक्तिः स्यात्कलौ नान्येन केनचित् २७
मायामानुषरूपेण विडम्बयति लोककृत् । भक्तानां भजनार्थाय रावणस्य वधाय च ॥२८॥
राज्ञश्चाभीष्टसिद्ध्यर्थं मानुषं वपुराश्रितः । इत्युक्त्वा विरराम्राथ वामदेवो महामुनिः ॥२९॥
श्रुत्वा तेऽपि द्विजाः सर्वे रामं ज्ञात्वा हरिं विभुम् । जहुर्हृत्संशयग्रन्थिं राममेवान्वचिन्तयन् ॥३०॥
य इदं चिन्तयेन्नित्यं रहस्यं रामसीतयोः । तस्य रामे दृढा भक्तिर्भवेद्विज्ञानपूर्विका ॥३१॥
रहस्यं गोपनीयं वो यूयं वै राघवप्रियाः । इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रस्तेऽपि रामं परं विदुः ॥३२॥
ततो रामः समाविश्य पितृगेहमवारितः । सानुजः सीतया गत्वा कैकयीमिदमब्रवीत् ।३३॥
आगताः स्मो वयं मातस्त्रयस्ते संमतं वनम् । गन्तुं कृतधियः शीघ्रमाज्ञापयतु नः पिता ।३४॥
इत्युक्ता सहसोत्थाय चीराणि प्रददौ स्वयम् । रामाय लक्ष्मणायाथ सीतायै च पृथक् पृथक् ।३५॥
रामस्तु वस्त्राण्युत्सृज्य वन्यचीराणि पर्यधात् । लक्ष्मणोऽपि तथा चक्रे सीता तन्न विजानती ।३६॥
हस्ते गृहीत्वा रामस्य लज्जया मुखमैक्षत । रामो गृहीत्वा तच्चीरमंशुके पर्यवेष्टयत् ॥३७॥
तद्दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वे राजदाराः समंततः । वसिष्ठस्तु तदाकर्ण्य रुदितं भर्त्सयन् रुषा ॥३८॥

ही कैसे सम्भव है ? कलियुग में तो केवल रामनाम से ही मुक्ति हो सकती है, अन्य किसी उपाय से नहीं ॥ २७ ॥ ये जगत्स्रष्टा भगवान् भक्तों को गुण कीर्त्तन-भजन के लिये तथा रावण को मारने के लिये और इससमय केवल राजा दशरथ की मनोकामना सिद्धि के लिये ये यह मानव शरीर धारण किये हैं। ऐसा कहकर महामुनि वामदेवजी चुप हो गये ॥ २८-२९ ॥

यह सुनकर वहाँ एकत्रित हुए द्विजगणों ने भी भगवान् राम को सर्वव्यापक श्रीविष्णु भगवान् जाना और वे अपने हृदयका सन्देह छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी का ही स्मरण करने लगे ॥ ३० ॥ जो पुरुष नित्यप्रति राम और सीता के इस रहस्य का मनन करेगा, उसकी भगवान् राम में विज्ञान के सहित दृढ़ भक्ति होगी ॥ ३१ ॥ आप सब लोग राम के परम प्रिय हैं, अतएव इस रहस्य को सदा गुप्त रक्खें, ऐसा कहकर विप्रवर वामदेवजी वहाँ से चले गये और पुरजनों ने भी जाना कि राम परमात्मा हैं ॥ ३२ ॥ तदनन्तर रामजी विना किसी रोक-टोक के पिता के महल में प्रवेश किये और लक्ष्मण तथा सीता के सहित वहाँ पहुँचकर कैकेयी से बोले ॥ ३३ ॥ "माताजी ! आपके कथनानुसार हम तीनों वन को जाने के लिये तैयार होकर आ गये हैं, अब शीघ्र ही पिताजी हमें आज्ञा दें" ॥ ३४ ॥

राम के ऐसा कहने पर कैकेयी ने सहसा उठकर स्वयं ही राम, लक्ष्मण और सीता को अलग-अलग वल्कल-वस्त्र दिये ॥ ३५ ॥ तब रामचन्द्रजी ने अपने राजोचित वस्त्रों को उतारकर वनवासियों जैसा वस्त्र धारण किये; लक्ष्मणजी ने भी ऐसा ही किया, किंतु सीताजी उन्हें पहनना नहीं जानती थीं ॥ ३६ ॥ अतः उन वस्त्रों को हाथ में लेकर वे लज्जापूर्वक रामजी की ओर देखने लगीं । तब रामचन्द्रजी ने उस चीर को लेकर सीताजी के वस्त्रों पर ही लपेट दिया ॥ ३७ ॥ यह देखकर रनिवास की सभी स्त्रियाँ रोने लगीं । तब

कैकयीं प्राह दुर्वृत्ते राम एव त्वया वृतः । वनवासाय दुष्टे त्वं सीतायै किं प्रयच्छसि ॥३९॥
यदि रामं समन्वेति सीता भक्त्या पतिव्रता । दिव्याम्बरधरा नित्यं सर्वाभरणभूषिता ॥४०॥
रमयत्वनिशं रामं वनदुःखनिवारिणी । राजा दशरथोऽप्याह सुमन्त्रं रथमानय ॥४१॥
रथमारुह्य गच्छन्तु वनं वनचरप्रियाः । इत्युक्त्वा राममालोक्य सीतां चैव सलक्ष्मणम् ॥४२॥
दुःखान्निपतितो भूमौ रुरोदाश्रुपरिप्लुतः । आरुरोह रथं सीता शीघ्रं रामस्य पश्यतः ॥४३॥
रामः प्रदक्षिणं कृत्वा पितरं रथमारुहत् । लक्ष्मणः खड्गयुगलं धनुस्तूणीयुगं तथा ॥४४॥
गृहीत्वा रथमारुह्य नोदयामास सारथिम् । तिष्ठ तिष्ठ सुमन्त्रेति राजा दशरथोऽब्रवीत् ॥४५॥
गच्छ गच्छेति रामेण नोदितोऽचोदयद्रथम् । रामे दूरं गते राजा मूर्च्छितः प्रापतद्भुवि ॥४६॥
पौरास्तु बालवृद्धाश्च वृद्धा ब्राह्मणसत्तमाः । तिष्ठतिष्ठेति रामेति क्रोशन्तो रथमन्वयुः ॥४७॥
राजा रुदित्वा सुचिरं मां नन्यतु गृहं प्रति । कौसल्याया राममातुरित्याह परिचारकान् ॥४८॥
किंचित्कालं भवेत्तत्र जीवनं दुःखितस्य मे । अत ऊर्ध्वं न जीवामि चिरं रामं विना कृतः ॥४९॥
ततो गृहं प्रविश्यैव कौसल्यायाः पपात ह । मूर्च्छितश्च चिराद्बुद्ध्वा तूष्णीमेवावतस्थिवान् ॥५०॥

वसिष्ठजी ने उनके रोने का शब्द सुनकर क्रोधित हो कैकेयी को डाँटते हुए बोले—"अयि दुःशीले! तूने तो केवल रामके वन जाने का ही वर माँगा है? फिर तू सीता को भी वन के वस्त्र कैसे देती हो? ॥३८-३९॥ यदि पतिव्रता सीता भक्तिवश राम के साथ जाना चाहती है, तो वह समस्त आभूषणों से विभूषित और दिव्य वस्त्र धारण किये हुए ही जाय ॥ ४० ॥

और नित्यप्रति राम के वनवास—दुःख को दूर करती हुई उनको आनन्दित करे!" तब महाराज दशरथ ने सुमन्त्र से कहा—"सुमन्त्र! तुम रथ ले आओ ॥ ४१ ॥ वनवासियों के प्रिय ये राम आदि रथपर चढ़कर ही वन को जायेंगे"। ऐसा कह ये सीता और लक्ष्मण के सहित राम को देखकर दुःख से पृथिवी पर गिर पड़े और आँखों में आँसू भरकर रोने लगे। तब रामजी के देखते-देखते शीघ्र ही सीताजी रथपर चढ़ीं ॥ ४२-४३ ॥ फिर रामचन्द्रजी पिता की परिक्रमा कर रथारूढ़ हुए और उनके पीछे दो खड्ग तथा दो धनुष और तरकस लेकर लक्ष्मणजी सवार हुए और सारथि से रथ हाँकने के लिये बोले। तब राजा दशरथ कहने लगे—'सुमन्त्र! ठहरो, ठहरो' ॥ ४४-४५ ॥ किंतु रामचन्द्रजी 'चलो, चलो कहकर शीघ्रता करने के लिये बोले। इसलिये सुमन्त्र ने रथ हाँक दिया। राम के दूर निकल जानेपर महाराज मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ४६ ॥ तदनन्तर समस्त पुरवासी, बालक-वृद्ध और वयवृद्ध मुनिगण 'हे राम! रूको, मत जाओ' इस प्रकार चिल्लाते हुए रथ के पीछे-पीछे चले ॥ ४७ ॥ राजा दशरथ बहुत देर तक रोते रहे, फिर उन्होंने अपने सेवकों से कहा—"मुझे राम की माता कौसल्या के घर ले चलो ॥ ४८ ॥ मुझ दुखिया का वहाँ रहकर कुछ काल जीना हो सकता है; किंतु राम से रहित होकर अब मैं अधिक काल जीवित नहीं रह सकूँगा" ॥ ४९ ॥

तब कौसल्या के घर पहुँचते ही राजा अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े; फिर बहुत देर पीछे चेत होने

रामस्तु तमसातीरं गत्वा तत्रावसत्सुखी । जलं प्राश्य निराहारो वृक्षमूलेऽस्वपद्विभुः ॥५१॥
सीतया सह धर्मात्मा धनुष्पाणिस्तु लक्ष्मणः । पालयामास धर्मज्ञः सुमंत्रेण समन्वितः ॥५२॥
पौराः सर्वे समागत्य स्थितास्तस्याविदूरतः । शक्ता रामं पुरं नेतुं नो चेद्गच्छामहे वनम् ॥५३॥
इति निश्चयमाज्ञाय तेषां रामोऽतिविस्मितः । नाहं गच्छामि नगरमेते वै क्लेशभागिनः ॥५४॥
भविष्यन्तीति निश्चित्य सुमन्त्रमिदमब्रवीत् । इदानीमेव गच्छामः सुमन्त्र रथमानय ॥५५॥
इत्याज्ञप्तः सुमन्त्रोऽपि रथं वाहैरयोजयत् । आरुह्य रामः सीता च लक्ष्मणोऽपि ययुर्द्रुतम् ॥५६॥
अयोध्याभिमुखं गत्वा कश्चिद्दूरं ततो ययुः । तेऽपि राममदृष्ट्वैव प्रातरुत्थाय दुःखिताः ॥५७॥
रथनेमिगतं मार्गं पश्यन्तस्ते पुरं ययुः । हृदि रामं ससीतं ते ध्यायन्तस्तस्थुरन्वहम् ॥५८॥
सुमन्त्रोऽपि रथं शीघ्रं नोदयामास सादरम् । स्फीतान् जनपदान्पश्यन् रामः सीतासमन्वितः ५९
गङ्गातीरं समागच्छच्छृङ्गवेराविदूरतः । गङ्गां दृष्ट्वा नमस्कृत्य स्नात्वा सानन्दमानसः ॥६०॥
शिंशपावृक्षमूले स निषसाद रघूत्तमः । ततो गुहो जनैः श्रुत्वा रामागममहोत्सवम् ॥६१॥
सखायं स्वामिनं द्रष्टुं हर्षात्तूर्णं समापतत् । फलानि मधुपुष्पादि गृहीत्वा भक्तिसंयुतः ॥६२॥
रामस्याग्रे विनिक्षिप्य दण्डवत्प्रापतद्भुवि । गुहमुत्थाप्य तं तूर्णं राघवः परिषस्वजे ॥६३॥

पर वे चुपचाप बैठे रहे ॥ ५० ॥ इधर श्रीरामचन्द्रजी तमसा नदी के तट पर पहुँचकर वहाँ सुखपूर्वक रहे और रात्रि के समय बिना कुछ आहार किये केवल जल पीकर सीताजी के सहित वृक्ष के नीचे सो गये। तथा सुमन्त्र के सहित धर्मात्मा लक्ष्मणजी धनुष लेकर उनकी रक्षा करने लगे ॥ ५१-५२ ॥ उनके पास ही सभी पुरवासी आकर ठहर गये। उन्होंने निश्चय किया कि हम या तो राम को अयोध्या लौटा ले चलेंगे, नहीं तो हम भी इनके साथ वन को ही चले जायेंगे, ॥ ५३ ॥ रामचन्द्रजी को उनके इस निश्चय का पता चलने पर अति विस्मय हुआ और उन्होंने यह सोचकर कि मैं तो अयोध्या को लौटूँगा नहीं, ये व्यर्थ जंगल में क्लेश सहेंगे, सुमन्त्र को बुलाकर कहा—"सुमन्त्र ! तुम रथ ले आओ हम अभी चलेंगे" ॥ ५४–५५ ॥

राम की ऐसी आज्ञा होने पर सुमन्त्र रथ में घोड़े जोत दिये। तब राम, लक्ष्मण और सीता उस पर चढ़कर शीघ्रता से चले ॥ ५६ ॥ उन्होंने अपना रथ कुछ दूर अयोध्या की ओर ले जाकर फिर वन की ओर बढ़ाया। प्रातःकाल होने पर पुरवासियों ने उठकर जब राम को न देखा, तो वे अत्यन्त दुःखी हुए ॥ ५७ ॥ और रथ के पहियों की लीक को देखते हुए वे अयोध्यापुरी में लौट आये तथा प्रतिदिन हृदय में राम और सीता का ध्यान करते हुए वहाँ रहने लगे ॥ ५८ ॥

इधर सुमन्त्र ने भी शीघ्र ही आदर पूर्वक अपना रथ बढ़ाया। तब सीता के सहित श्रीरामचन्द्रजी विस्तृत देशों को देखते हुए शृङ्गवेरपुर के पास गङ्गाजी के तट पर पहुँचे। गङ्गाजी को देखकर उन्होंने प्रसन्न चित्त से नमस्कार करके स्नान किया ॥ ५९–६० ॥ और फिर रघुश्रेष्ठ रामजी शिंशपा (सीसम) के वृक्ष की छाया में बैठे। इसी समय निषादराज गुहने लोगों के मुख से रामजी के आने का मंगल समाचार सुना ॥ ६१ ॥ यह सुनते ही वह तुरन्त अपने एकमात्र सखा और स्वामी श्रीरघुनाथजी को देखने के लिए प्रसन्नचित्त से भक्तिपूर्वक फल, शहद और पुष्पादि लेकर वहाँ आया ॥ ६२ ॥ और वह भेंट की सामग्री

संपृष्टकुशलो रामं गुहः प्राञ्जलिरब्रवीत् । धन्योऽहमद्य मे जन्म नैषादं लोकपावन ॥६४॥
बभूव परमानन्दः स्पृष्ट्वा तेऽङ्गं रघूत्तम । नैषादराज्यमेतत्ते किङ्करस्य रघूत्तम ॥६५॥
त्वदधीनं वसन्नत्र पालयास्मान् रघूद्वह । आगच्छ यामो नगरं पावनं कुरु मे गृहम् ॥६६॥
गृहाण फलमूलानि त्वदर्थं सञ्चितानि मे । अनुगृह्णीष्व भगवन् दासस्तेऽहं सुरोत्तम ॥६७॥
रामस्तमाह सुप्रीतो वचनं शृणु मे सखे । न वेक्ष्यामि गृहं ग्रामं नव वर्षाणि पञ्च च ॥६८॥
दत्तमन्येन नो भुञ्जे फलमूलादि किञ्चन । राज्यं ममैतत्तं सर्वं त्वं सखा मेऽतिवल्लभः ॥६९॥
वटक्षीरं समानाय्य जटामुकुटमादरात् । बबन्ध लक्ष्मणेनाथ सहितो रघुनन्दनः ॥७०॥
जलमात्रं तु संप्राश्य सीतया सह राघवः । आस्तृतं कुशपर्णाद्यैः शयनं लक्ष्मणेन हि ॥७१॥
उवास तत्र नगरप्रासादाग्रे यथा पुरा । सुष्वाप तत्र वैदेह्या पर्यङ्क इव संस्कृते ॥७२॥

ततोऽविदूरे परिगृह्य चापं सबाणतूणीरधनुः स लक्ष्मणः ।
ररक्ष रामं परितो विपश्यन् गुहेन सार्धं सशरासनेन ॥७३॥

॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥५॥

राम के आगे डालकर दण्ड के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब श्रीरघुनाथजी उसे तुरन्त ही उठाकर गले से लगा लिये ॥ ६३ ॥

पुनः रामजी के कुशल पूछनेपर गुहने हाथ जोड़कर कहा—"हे लोकपावन ! मैं धन्य हूँ, आज मेरा निषाद-जातिमें जन्म लेना सफल हो गया ॥ ६४ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आपके अङ्ग-सङ्गसे मुझे परम आनन्द प्राप्त हुआ है। हे रघुवर ! आपके दास यह नैषादराज्य आपही का है इसलिये हे रघुनाथजी ! आप यहाँ रहकर हमलोगों की रक्षा कीजिये। चलिये, नगरमें पधारकर मेरा घर पवित्र कीजिये ॥६५-६६॥ हे भगवन् ! आपके लिये मैंने जो कुछ फल-मूलादि एकत्रित किये हैं उन्हें स्वीकार कीजिये। हे सुरश्रेष्ठ ! मैं आपका दास हूँ, आप मुझपर कृपा कीजिये" ॥ ३७ ॥

तब रामचन्द्रजीने अति प्रसन्न होकर उससे कहा—"मित्र ! सुनो, मैं चौदह वर्षतक किसी घर या गाँवमें नहीं जा सकता ॥ ६८ ॥ और न किसी और के दिये हुए फल-मूलादि ही खा सकता हूँ। मित्र ! तुम्हारा यह सम्पूर्ण राज्य मेरा ही है और तुम भी मेरे अत्यन्त प्रिय सखा हो" ॥६९॥

तदन्तर रघुनाथजीने वटका दूध मँगाकर लक्ष्मण के सहित भली प्रकार सँवारकर जटजूटबाँधे ॥७० ॥ लक्ष्मणजीने कुश और पत्तोंकी एक शय्या बना दी, उसीपर केवल जल पीकर सीताके सहित श्रीरघुनाथजी विराजमान हुए और पहले जिस प्रकार अयोध्यापुरीके महलमें जनकनन्दिनीके सहित सुसज्जित शय्यापर पौढ़ते थे, उसी प्रकार सो गये ॥ ७१-७२ ॥ उनके पास ही धनुष, बाण और तरकस लिये हुए श्रीलक्ष्मणजी धनुषधारी गुह के सहित धनुष चढ़ाकर इधर-उधर देखते हुए श्रीरामचन्द्रजी की रखवाली करने लगे ॥७३॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितयाभाषा-
टीकयासहितः पञ्चमसर्गः परिपूर्णः ॥ ५ ॥

षष्ठ सर्ग

गङ्गोत्तरण तथा भरद्वाज और वाल्मीकिजी से भेंट

श्रीमहादेव उवाच

सुप्तं रामं समालोक्य गुहः सोऽश्रुपरिप्लुतः । लक्ष्मणं प्राह विनयाद्भ्रातः पश्यसि राघवम् ।१॥
शयानं कुशपत्रौघसंस्तरे सीतया सह । यः शेते स्वर्णपर्यङ्के स्वास्तीर्णे भवनोत्तमे ॥२॥
कैकेयी रामदुःखस्य कारणं विधिना कृता । मन्थराबुद्धिमास्थाय कैकेयी पापमाचरत् ॥३॥
तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणः प्राह सखे शृणु वचो मम । कः कस्य हेतुर्दुःखस्य कश्च हेतुः सुखस्य वा ॥४॥
स्वपूर्वार्जितकर्मैव कारणं सुखदुःखयोः ॥५॥
सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ।
अहं करोमीति वृथाऽभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥६॥
सुहृन्मित्रार्युदासीनद्वेष्यमध्यस्थबान्धवाः । स्वयमेवाचरन्कर्म तथा तत्र विभाव्यते ॥७॥
सुखं वा यदि वा दुःखं स्वकर्मवशगो नरः । यद्यद्यथागतं तत्तद्भुक्त्वा स्वस्थमना भवेत् ॥८॥
न मे भोगागमे वाञ्छा न मे भोगविवर्जने । आगच्छत्वथ मागच्छत्वभोगवशगो भवेत् ॥९॥
यस्मिन् देशे च काले च यस्माद्वा येन केन वा । कृतं शुभाशुभं कर्म भोज्यं तत्तत्र नान्यथा ॥१०॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती ! उस समय शयन करते हुए श्रीरामजी को देखकर गुह सजल नेत्र हो नम्रतापूर्वक लक्ष्मणजी से बोला—भाई ! देखते हो, जो श्रीरामजी उत्तम भवन में सुन्दर विस्तर युक्त सुवर्ण निर्मित पलंग पर शयन करते थे, वे ही आज श्रीसीताजी के साथ कुश और पत्तों से बनी साथरी पर शयन किये हैं ॥ १–२ ॥ विधाता ने श्रीरामजी के दुःख का कारण कैकेयी को बना दिया। मन्थरा की बुद्धि पर विश्वास कर कैकेयी ने पाप का कार्य किया ॥ ३ ॥ यह सुनकर लक्ष्मणजी बोले—भाई ! मेरी बात सुनो ! कौन किसके दुःख अथवा कौन किसके सुख का कारण है ? अपना पूर्वजन्म का अर्जित कर्म ही सुख-दुःख का कारण है ॥ ४–५ ॥ कोई भी सुख और दुःख का दाता नहीं है; कोई दूसरा सुख-दुःख देता है, यह समझना कुबुद्धि है। मैं कार्य करता हूँ यह व्यर्थ का अभिमान है, क्योंकि संसार अपने कर्म के रज्जु से बँधा हुआ है ॥ ६ ॥ मनुष्य अपने आप विभिन्न आचरण कर अपने आचरण के अनुसार सुहृद्, मित्र, शत्रु, उदासीन, द्वेष्य, मध्यस्थ तथा बन्धु मानता है और उसके साथ वैसा आचरण करता है ॥ ७ ॥ सुख अथवा दुःख अपने कर्म के अनुसार व्यक्ति को जो भी प्राप्त हो, उसे भोगते हुए प्रसन्न मन रहना चाहिये ॥ ८ ॥ हमें भोगों की प्राप्ति अथवा भोगों का त्याग किसी की ईच्छा नहीं है। भोग आयें या न आवें भोगों के अधीन हम नहीं हैं। जिस देश अथवा काल में जिस किसी के द्वारा जिस किसी भी प्रकार का शुभाशुभ कर्म किया जाता है, उसे निश्चय ही उसी प्रकार भोगना पड़ता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९–१० ॥

अलं हर्षविषादाभ्यां शुभाशुभफलोदये। विधात्रा विहितं यद्यत्तदलङ्घ्यं सुरासुरैः ॥११॥
सर्वदा सुखदुःखाभ्यां नरः प्रत्यवरुध्यते। शरीरं पुण्यपापाभ्यामुत्पन्नं सुखदुःखवत् ॥१२॥
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्। द्वयमेतद्धि जन्तूनामलङ्घ्यं दिनरात्रिवत् ॥१३॥
सुखमध्ये स्थितं दुःखं दुःखमध्ये स्थितं सुखम्। द्वयमन्योऽन्यसंयुक्तं प्रोच्यते जलपङ्कवत् ॥१४॥
तस्माद्धैर्येण विद्वांस इष्टानिष्टोपपत्तिषु। न हृष्यन्ति न मुह्यन्ति सर्वं मायेति भावनात् ॥१५॥
गुहलक्ष्मणयोरेवं भाषतोर्विमलं नभः। बभूव रामः सलिलं स्पृष्ट्वा प्रातः समाहितः ॥१६॥
उवाच शीघ्रं सुदृढां नावमानय मे सखे। श्रुत्वा रामस्य वचनं निषादाधिपतिर्गुहः ॥१७॥
स्वयमेव दृढां नावमानिनाय सुलक्षणाम्। स्वामिन्नारुह्यतां नौकां सीतया लक्ष्मणेन च ॥१८॥
वाहये ज्ञातिभिः सार्धमहमेव समाहितः। तथेति राघवः सीतामारोप्य शुभलक्षणाम् ॥१९॥
गुहस्य हस्तावालम्ब्य स्वयं चारोहदच्युतः। आयुधादीन् समारोप्य लक्ष्मणोऽप्यारुरोह च ॥२०॥
गुहस्तान्वाहयामास ज्ञातिभिः सहितः स्वयम्। गङ्गामध्ये गतां गङ्गां प्रार्थयामास जानकी ।२१।
देवि गङ्गे नमस्तुभ्यं निवृत्ता वनवासतः। रामेण सहिताहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजये ॥२२॥

अत एव शुभ अथवा अशुभ कर्मफल उपस्थित होने पर हर्ष अथवा दुःख करना व्यर्थ है; क्योंकि दैव की गति देव या दैत्य कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता है ॥ ११ ॥ दुःख और सुख से सर्वदा मनुष्य आवृत्त रहता है; क्योंकि पाप और पुण्य से उत्पन्न मानव शरीर सुख-दुःख मय ही है। सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख आता है। ये दोनों दिन और रात्रि के समान प्राणियों द्वारा अलङ्घ्य हैं ॥ १३ ॥ सुख के मध्य में दुःख और दुःख के मध्य में सुख रहता ही है। ये दोनों जल एवं कीचड़ की भाँति आपस में संयुक्त हैं ॥ १४ ॥ अत एव सब कुछ माया ही है इस प्रकार की भावना से विद्वान् लोग इष्ट अथवा अनिष्ट की प्राप्ति में हर्ष अथवा शोक नहीं करते ॥ १५ ॥ गुह और लक्ष्मण के इस प्रकार वार्तालाप करते-करते आकाश विमल (उजाला) हो गया, तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी जल से आचमन कर प्रातः कृत्य किये ॥ १६ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—मित्र ! मेरे लिए एक सुदृढ़ नौका शीघ्र लाओ। श्रीरामचन्द्रजी की यह वाणी सुनकर निषादराज गुह ने स्वयं ही सुलक्षण सम्पन्न सुदृढ़ नौका लाया और बोला—स्वामिन् ! सीता और लक्ष्मण के साथ नौका पर चढ़ जाइये ॥ १७–१८ ॥ मैं स्वयं अपने जाति बान्धवों के साथ सावधानी पूर्वक चलाऊँगा। 'ऐसा ही हो' यह कहकर श्रीरघुनाथजी शुभलक्षणा श्रीसीताजी को नौका पर चढ़ाये। पुनः गुह का हाथ पकड़कर स्वयं अच्युत भगवान् श्रीराम चढ़े। तत्पश्चात् अपने आयुधों को रखकर लक्ष्मणजी नौका पर आरूढ़ हुए ॥ २० ॥ तदनन्तर गुह अपने जाति-बान्धवों के साथ स्वयं नौका चलाया। गंगा के मध्य में जाकर श्रीजानकी जी गंगा की प्रार्थना की। हे देवि गङ्गे ! मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ।

१ । इत्युक्त्वा परकूलं तौ शनैरुत्तीर्य जग्मतुः ॥२३॥
गुहोऽपि राघवं प्राह गमिष्यामि त्वया सह । अनुज्ञां देहि राजेन्द्र नोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।२४।
श्रुत्वा नैषादिवचनं श्रीरामस्तमथाब्रवीत् । चतुर्दश समाः स्थित्वा दण्डके पुनरप्यहम् । २५॥
आयास्याम्युदितं सत्यं नासत्यं रामभाषितम् । इत्युक्त्वालिङ्ग्य तं भक्तं समाश्वास्य पुनः पुनः ।२६
निवर्तयामास गुहं सोऽपि कृच्छ्राद्ययौ गृहम् । २ ॥२७।
३ । ततो रामस्तु वैदेह्या लक्ष्मणेन समन्वितः ॥२८॥
भरद्वाजाश्रमपदं गत्वा बहिरुपस्थितः । तत्रैकं बटुकं दृष्ट्वा रामः प्राह च हे बटो । २९॥
रामो दाशरथिः सीतालक्ष्मणाभ्यां समन्वितः । आस्ते बहिर्वनस्येति ह्युच्यतां मुनिसन्निधौ ।३०।
तच्छ्रुत्वा सहसा गत्वा पादयोः पतितो मुनेः । स्वामिन् रामः समागत्य वनाद्बहिरवस्थितः ।३१।
सभार्यः सानुजः श्रीमानाह मां देवसन्निभः । भरद्वाजाय मुनये ज्ञापयस्व यथोचितम् ॥३२॥
तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय भरद्वाजो मुनीश्वरः । गृहीत्वार्घ्यं च पाद्यं च रामसामीप्यमाययौ ॥३३॥
दृष्ट्वा रामं यथान्यायं पूजयित्वा सलक्ष्मणम् । आह मे पर्णशालां भो राम राजीवलोचन ॥३४॥

बनवास से लौटने पर मैं राम और लक्ष्मण के सहित आपकी पूजा करूँगी । यह प्रार्थना कर वे लोग धीरे-धीरे गंगा पार उतर कर आगे चलने लगे ॥ २१–२३ ॥

तत्पश्चात् गुह श्रीरघुनाथ जी से बोला—हे राजेन्द्र ! मैं भी आपके साथ चलूँगा, आप मुझे आज्ञा दीजिये, नहीं तो मैं प्राणों को छोड़ दूँगा ॥ २४ ॥ निषाद पुत्र का यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बोले "मैं चौदहवर्ष दण्डकवन में रहकर यहाँ पुनः आऊँगा। यह सर्वथा सत्य है। राम कभी असत्य नहीं कहता"। यह कहकर श्रीरामचन्द्र भक्त गुह को शान्त्वना देकर उसे पुनः-पुनः आलिङ्गन कर विदा किये। तत्पश्चात् निषादराज कठिनाई से अपने घर लौटे ॥ २५-२७ ॥

तदनन्तर जानकीजी तथा लक्ष्मणजी के सहित श्रीरामचन्द्रजी भरद्वाज मुनि के आश्रम के समीप पहुँचकर बाहर उपस्थित हो गये। वहाँ एक ब्रह्मचारी को देखकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे बटो ! मुनिवर से जाकर कहिये कि सीता और लक्ष्मण के सहित दशरथ पुत्र राम आश्रम के बाहर खड़ा है ॥ २८ ३० ॥ रघुनाथजी की यह वाणी सुनकर ब्रह्मचारी शीघ्र ही मुनिवर के पास जाकर उनके चरणों में नतमस्तक होकर बोला—"भगवन् ! अपनी पत्नी एवं अनुज के साथ श्रीरामचन्द्रजी आकर आश्रम के बाहर खड़े हैं। देवतुल्य श्रीमान् रामचन्द्र मुझसे कहे हैं कि मुनिवर भरद्वाज को यथोचित जानकारी दो" ॥ ३१-३२ ॥ यह सुनकर मुनीश्वर भरद्वाजजी सहसा उठकर अर्घ्य-पाद्य लेकर राम के समीप आये ॥ ३३ ॥ श्रीराम को देखकर वे लक्ष्मण जी सहित उनका यथोचित पूजा किये और बोले—हे राम ! हे कमलनयन रघुनन्दन !

१ पुस्तकान्तरे—सुरामांसोपहारैश्च नानाबलिभिरादृता । २ पुस्त०—तत्र मेध्यं मृगं हत्वा पक्त्वा हुत्वा च ते त्रयः ।
३ „ —भुक्त्वा वृक्षदले सुप्त्वा सुखमासत तां निशाम् ।

आगच्छ पादरजसा पुनीहि रघुनन्दन । इत्युक्त्वोटजमानीय सीतया सह राघवौ ॥३५॥
भक्त्या पुनः पूजयित्वा चकारातिथ्यमुत्तमम् । अद्याहं तपसः पारं गतोऽस्मि तव सङ्गमात् ॥३६॥
ज्ञातं राम तवोदन्तं भूतं चागामिकं च यत् । जानामि त्वां परात्मानं मायया कार्यमानुषम् ।।३७।
यदर्थमवतीर्णोऽसि प्रार्थितो ब्रह्मणा पुरा । यदर्थं वनवासस्ते यत्करिष्यसि वै पुरः ॥३८॥
जानामि ज्ञानदृष्ट्याहं जातया त्वदुपासनात् । इतः परं त्वां किं वक्ष्ये कृतार्थोऽहं रघूत्तम ॥३९॥
यस्त्वां पश्यामि काकुत्स्थं पुरुषं प्रकृतेः परम् । रामस्तमभिवाद्याह सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥४०॥
अनुग्राह्यास्त्वया ब्रह्मन्वयं क्षत्रियबान्धवाः । इति संभाष्य तेऽन्योन्यमुषित्वा मुनिसन्निधौ ॥४१॥
प्रातरुत्थाय यमुनामुत्तीर्य मुनिदारकैः । कृताप्लवेन मुनिना दृष्टमार्गेण राघवः ॥४२॥
प्रययौ चित्रकूटाद्रिं वाल्मीकेर्यत्र चाश्रमः । गत्वा रामोऽथ वाल्मीकेराश्रमं ऋषिसंकुलम् ॥४३॥
नानामृगद्विजाकीर्णं नित्यपुष्पफलाकुलम् । तत्र दृष्ट्वा समासीनं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ॥४४॥
ननाम शिरसा रामो लक्ष्मणेन च सीतया । दृष्ट्वा रामं रमानाथं वाल्मीकिर्लोकसुन्दरम् ॥४५॥

आप अपने चरणारविन्द से मेरी पर्णशाला को पवित्र कीजिये"। यह कहकर वे श्रीसीताजी के सहित दोनों रघुकुमारों को अपनी पर्णशाला में लाये ॥ ३४-३५ ॥

पुनः उनकी भक्तिपूर्वक पूजाकर उत्तम आतिथ्यसत्कार किये। तत्पश्चात् मुनिवर बोले—हे राम! आज आपके समागम से मेरी तपस्या पूर्ण हो गयी ॥ ३६ ॥ हे रघुनन्दन! मैं आपका भूत और आगामी (भविष्यत्) सम्पूर्ण वृत्तान्त जानता हूँ। आप परमात्मा हैं और कार्य सिद्धि हेतु माया मानुषरूप अवितरित हैं ।! ३७ ॥ पूर्वसमय में ब्रह्मा की प्रार्थना से जिसलिये आप अवतार ग्रहण किये हैं तथा जिसलिए आपको वनवास हुआ है और भविष्य में जो आप करेंगे वह सबकुछ मैं आपकी उपासना द्वारा प्राप्त ज्ञान दृष्टि से जानता हूँ। हे रघुश्रेष्ठ! अधिक मैं क्या कहूँ? मैं कृत-कृत्य हो गया, जो मुझे आज प्रकृति से परे परम पुरुष ककुत्स्थनन्दन आपको मैं साक्षात् देख रहा हूँ। तदनन्तर सीता और लक्ष्मण के सहित श्रीरामचन्द्रजी उन्हें प्रणाम किये और बोले—"ब्रह्मन्। हम क्षत्रिय कुलोत्पन्न होने से आप की कृपा के पात्र हैं"! इस प्रकार परस्पर सम्भाषण के अनन्तर मुनि के आश्रम पर वे रूक गये ॥ ३८-४१ ॥ प्रातःकाल उठकर मुनियों द्वारा निर्मित नौका द्वारा यमुना पार किये और मुनिवर द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से चित्रकूट पर्वत की ओर चले; जहाँ पर श्रीवाल्मीकिजी का आश्रम था। ऋषिसमूह से परिपूर्ण नाना मृग, पक्षी समाकुल नित्य पुष्प, फलादि युत श्रीवाल्मीकि जी के आश्रम में जाकर मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि जी बैठे हैं यह श्रीरामचन्द्रजी देखे ॥ ४२-४४ ॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीता के साथ उन्हें शिर झुकाकर प्रणाम किये। तत्पश्चात् श्रीवाल्मीकि जी सुन्दर कमल के समान नयन वाले, कामदेव की आकृति वाले, जटा-मुकुट-धारण किये हुए, त्रिलोक विमोहन लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजी को सीता और लक्ष्मण के सहित देखे ॥ ४४-४५ ॥

जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम् । कन्दर्पसदृशाकारं कमनीयाम्बुजेक्षणम् ॥४६॥
दृष्ट्वैव सहसोत्तस्थौ विस्मयानिमिषेक्षणः । आलिङ्ग्य परमानन्दं रामं हर्षाश्रुलोचनः ॥४७॥
पूजयित्वा जगत्पूज्यं भक्त्याघ्यादिभिरादृतः । फलमूलैः समधुरैर्भोजयित्वा च लालितः ॥४८॥
राघवः प्राञ्जलिः प्राह वाल्मीकिं विनयान्वितः । पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डकानागता वयम् ॥४९॥
भवन्तो यदि जानन्ति किं वक्ष्यामोऽत्र कारणम् । यत्र मे सुखवासाय भवेत्स्थानं वदस्व तत् ॥५०॥
सीतया सहितः कालं किंचित्तत्र नयाम्यहम् । इत्युक्तो राघवेणासौ मुनिः सस्मितमब्रवीत् ॥५१॥
त्वमेव सर्वलोकानां निवासस्थानमुत्तमम् । तवापि सर्वभूतानि निवाससदनानि हि ॥५२॥
एवं साधारणं स्थानमुक्तं ते रघुनन्दन । सीतया सहितस्येति विशेषं पृच्छतस्तव ॥५३॥
तद्वक्ष्यामि रघुश्रेष्ठ यत्ते नियतमन्दिरम् । शान्तानां समदृष्टीनामद्वेष्टॄणां च जन्तुषु ।
त्वामेव भजतां नित्यं हृदयं तेऽधिमन्दिरम् ॥५४॥
धर्माधर्मान्परित्यज्य त्वामेव भजतोऽनिशम् । सीतया सह ते राम तस्य हृत्सुखमन्दिरम् ॥५५॥
त्वन्मन्त्रजापको यस्तु त्वामेव शरणं गतः । निर्द्वन्द्वो निःस्पृहस्तस्य हृदयं ते सुमन्दिरम् ॥५६॥
निरहङ्कारिणः शान्ता ये रागद्वेषवर्जिताः । समलोष्टाश्मकनकास्तेषां ते हृदयं गृहम् ॥५७॥

उन्हें देखते ही बाल्मीकि जी सहसा उठकर खड़ा हुए और आश्चर्य पूर्वक निर्निमेष आनन्दाश्रुपूर्ण नयन हो परमानन्द स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी का आलिङ्गन किये ॥ ४७ ॥ तथाच अत्यन्त भक्तिपूर्वक जगत्पूज्य भगवान् रामकी अर्घ्यादि से आदरपूर्वक पूजाकर मीठे-मीठे फल-मूलादि भोजन करा उनका लालन किये ॥ ४८ ॥ तदनन्तर श्रीरघुनाथजी अति विनयपूर्वक हाथ जोड़कर श्रीवाल्मीकिजी से बोले—"हम पिताजी की आज्ञा से दण्डकवन में आये हैं ॥ ४९ ॥ आपतो सबकुछ जानते ही हैं । अतएव हम इसका कारण क्या कहें ? जहाँ मैं सुखपूर्वक रह सकूँ, ऐसा मुझे कोई स्थान बताइये ॥५०॥ उस स्थान पर सीता के साथ मैं कुछ समय व्यतीत करूँगा । श्रीरघुनाथजी के इस प्रकार कहने पर मुनिवर मुस्कराकर बोले—हे राम ! आपही सम्पूर्ण प्राणियों के उत्तम निवास स्थान हैं तथा सम्पूर्ण जीव भी आपके निवास सदन (गृह) हैं ॥ ५१-५२ ॥

हे रघुनन्दन ! इस प्रकार मैं आपका साधारण निवास स्थान बताया, किन्तु आप सीता सहित अपने रहने योग्य स्थान विशेषरूप से पूछे हैं, अतएव हे रघुश्रेष्ठ ! आपके निश्चित गृह को मैं बतलाता हूँ। जो प्राणी शान्त, समदर्शी, सम्पूर्ण जीवों के प्रति द्वेष रहित और अहर्निश आपके भजन करने में संलग्न रहते हैं, उनका हृदय आपका उत्तम निवास-स्थान है ॥ ५३-५४ ॥ हे राम ! जो प्राणी धर्म एवं अधर्म दोनों का त्यागकर निरन्तर आपका भजन करता है, उसके हृदय मन्दिर में आप सीता सहित सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥ ५५ ॥ जो प्राणी आपके मन्त्र का जप करने वाला आपके चरण में रहने वाला निर्द्वन्द्व और निःस्पृह है, उसका हृदय आपका सुन्दर मन्दिर है ॥ ५६ ॥

जो प्राणी अहङ्कार रहित, शान्त स्वभाव, रागद्वेष रहित, मृत-पिण्ड पाषाण और सुवर्ण में समदृष्टि

त्वयि दत्तमनोबुद्धिर्यः सन्तुष्टः सदा भवेत् । त्वयि संत्यक्तकर्मा यस्तन्मनस्ते शुभं गृहम् ॥५८॥
यो न द्वेष्ट्यप्रियं प्राप्य प्रियं प्राप्य न हृष्यति । सर्वं मायेति निश्चित्य त्वां भजेत्तन्मनो गृहम् ५९॥
षड्भावादिविकारान्यो देहे पश्यति नात्मनि । क्षुत्तृट् सुखं भयं दुःखं प्राणबुद्ध्योर्निरीक्षते ॥६०॥
संसारधर्मैर्निर्मुक्तस्तस्य ते मानसं गृहम् ॥६१॥

पश्यन्ति ये सर्वगुहाशयस्थं त्वां चिद्घनं सत्यमनन्तमेकम् ।
अलेपकं सर्वगतं वरेण्यं तेषां हृदब्जे सह सीतया वस ॥६२॥
निरन्तराभ्यासदृढीकृतात्मनां त्वत्पादसेवापरिनिष्ठितानाम् ।
त्वन्नामकीर्त्या हतकल्मषाणां सीतासमेतस्य गृहं हृदब्जे ॥६३॥

राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम् । यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान् ॥६४॥
अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वर्धितः । जन्ममात्रद्विजत्वं मे शूद्राचाररतः सदा ॥६५॥
शूद्रायां बहवः पुत्रा उत्पन्ना मेऽजितात्मनः । ततश्चोरैश्च संगम्य चौरोऽहमभवं पुरा ॥६६॥
धनुर्बाणधरो नित्यं जीवानामन्तकोपमः । एकदा मुनयः सप्त दृष्टा महति कानने ॥६७॥

वाले हैं उनका हृदय आपका निवास स्थान है ॥ ५७ ॥ जो प्राणी आप में मन और बुद्धि रखकर सदा सन्तुष्ट रहता हो तथा अपना सम्पूर्ण कर्म आपको समर्पण करता हो, उसका मन आपका शुभ घर है ॥ ५८ ॥ जो प्राणी अप्रिय को प्राप्तकर न द्वेष करता है और न प्रिय को प्राप्त कर हर्षित होता है तथा अखिल प्रपञ्च मायामात्र है, यह निश्चय कर आपका भजन करता है; उसका मन आपका गृह है ॥ ५९ ॥ जो प्राणी षड्विकार (सत्ता, जन्मलेना, बड़ा होना, बलदना, क्षीण होना और नाश होना) को शरीर में ही देखता है, आत्मा में नहीं और क्षुधा, तृष्णा, सुख, दुःख और भय आदि सब प्राण और बुद्धि का विकार समझता है तथा स्वयं सांसारिक धर्मों से निर्मुक्त है, उसका हृदय आपका गृह है ॥ ६०-६१ ॥

जो प्राणी चिद्घन, सत्यस्वरूप, अनन्त, एकनिर्लेप, सर्वगत, वरेण्य आपको समस्त भूतों के अन्तः करण में स्थित देखते है । उनके हृत्कमल में आप सीताजी सहित निवास कीजिये ॥ ६२ ॥ निरन्तर अभ्यास के द्वारा जो अपने चित्त को दृढ़कर लिये है; तथा जो आपके चरणारविन्द की सेवा में तल्लीन रहते हैं, और आपके नाम संकीर्त्तन से जिनका सम्पूर्ण कलमष समाप्त हो गया है उनका हृत्कमल सीताजी सहित आपका निवास गृह है ॥ ६३ ॥ हे राम ! आपके नाम की महिमा का वर्णन किस प्रकार किया जाय जिसके प्रभाव से मैं ब्रह्मर्षि पद प्राप्त कियां ॥ ६४ ॥

पूर्व समय में मैं किरातों के साथ रहता था और उन लोगों के साथ बड़ा हुआ । मैं केवल जन्म मात्र से ब्राह्मण किन्तु आचरण से सदा शूद्र था ॥ ६५ ॥ मुझ अजितेन्द्रिय से शूद्रा से अनेक पुत्र उत्पन्न हुए । उस समय मैं चोरों के संग में रहने से चोर हो गया ॥ ६६ ॥ मैं नित्य प्रति धनुष वाण लिए हुए प्राणी को मारने वाले यमराज के समान था, मैंने एक समय एक घोर जङ्गल में सप्तर्षियों को देखा ॥ ६७ ॥

साक्षान्मया प्रकाशन्तोज्वलनार्कसमप्रभाः । तानन्वधावं लोभेन तेषां सर्वपरिच्छदान् ॥६८॥
ग्रहीतुकामस्तत्राहं तिष्ठतिष्ठेति चाब्रुवम् । दृष्ट्वा मां मुनयो पृच्छन्किमायासि द्विजाधम ॥६९॥
अहं तानब्रवं किञ्चिदादातुं मुनिसत्तमाः । पुत्रदारादयः सन्ति बहवो मे बुभुक्षिताः ॥७०॥
तेषां संरक्षणार्थाय चरामि गिरिकानने । ततो मामूचुरव्यग्रा पृच्छ गत्वा कुटुम्बकम् ॥७१॥
यो यो मया प्रतिदिनं क्रियते पापसंचयः । यूयं तद्भागिनः किं वा नेति वेति पृथक्-पृथक् ॥७२॥
वयं स्थास्यामहे तावदागमिष्यसि निश्चयः । तथेत्युक्त्वा गृहं गत्वा मुनिभिर्यदुदीरितम् ॥७३॥
आपृच्छं पुत्रदारादींस्तैरुक्तोऽहं रघूत्तम । पापं तवैव तत्सर्वं वयं तु फलभागिनः । ७४॥
तच्छ्रुत्वा जातनिर्वेदो विचार्य पुनरागमम् । मुनयो यत्र तिष्ठन्ति करुणापूर्णमानसाः ॥७५॥
मुनीनां दर्शनादेव शुद्धान्तःकरणोऽभवम् । धनुरादीन्परित्यज्य दण्डवत्पतितोऽस्म्यहम् ॥७६॥
रक्षध्वं मां मुनिश्रेष्ठा गच्छन्तं निरयार्णवम् । इत्यग्रे पतितं दृष्ट्वा मामूचुर्मुनिसत्तमाः ॥७७॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते सफलः सत्समागमः । उपदेक्ष्यामहे तुभ्यं किञ्चित्तेनैव मोक्ष्यसे ॥
परस्परं समालोच्य दुर्वृत्तोऽयं द्विजाधमः ॥७८॥

वे अपनी प्रभा से साक्षात् अग्नि और सूर्य के समान प्रकाशमान थे। मैं उनका सर्वस्व अपहरण करने के लोभ से उनके पीछे दौड़ा और बोला ठहरो, ठहरो! तदनन्तर मुनीश्वर मुझे देखकर पूछे—"हे द्विजाधम! तुम क्यों आ रहे हो? ॥ ६८–६९ ॥ मैंने बोला—हे मुनिगण! मेरे अनेक पुत्र-कलत्रादि भूख से वुभुक्षित हैं। अत-एव उनके भरण-पोषण के लिए कुछ लेने आ रहा हूँ ॥ ७० ॥ उनलोगों का ही संरक्षण हेतु मैं गिरि-कानन में भ्रमण करता हूँ। तदनन्तर मुनीश्वर निर्भयता पूर्वक बोले—तुम अपने कुटुम्बियों के पास जाकर प्रत्येक बन्धुओं से पृथक्-पृथक् पूछो कि जो मैं प्रतिदिन पाप सञ्चय करता हूँ, आपलोग भी उसके भागी हैं या नहीं? ॥ ७१–७२ ॥ निश्चय ही जबतक तुम लौटकर नहीं आओगे तब तक हम यहीं रहेंगे। "तथा इति" यह कहकर मैं घर गया और जिस प्रकार मुझसे मुनीश्वर कहे थे उस प्रकार मैं अपने पुत्र-स्त्री आदि से पूछा। हे रघुश्रेष्ठ! तदनन्तर वे बोले, "वह सम्पूर्ण पाप तुम्हें ही होगा, हमलोग तो फल (द्रव्यादि) के भागी होंगे ॥ ७३–७४ ॥ यह सुनकर मुझे वैराग्य उत्पन्न हुआ और मैं विचार करता हुआ करुणा से पूर्ण हृदय वाले मुनीश्वर जहाँ थे वहाँ आया ॥ ७५ ॥ तत्पश्चात् उन मुनिगणों के दर्शनमात्र से ही मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया और मैं धनुष बाणादि का त्यागकर दण्डवत् पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ७६ ॥

"हे मुनिश्रेष्ठ! इस पापरूपी समुद्र में जाते हुए मेरी रक्षा कीजिये"—इस प्रकार मुझे अपने सामने पड़ा देखकर मुनीश्वर मुझसे बोले—"उठो, उठो! सत्समागम सफल हो गया, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हें हम कुछ उपदेश देते हैं उससे तूँ मुक्त हो जाओगे"। वे आपस में विचार किये कि यह ब्राह्मणाधम दुराचारी है।

उपेक्ष्य एव सद्वृत्तस्तथापि शरणं गतः। रक्षणीयः प्रयत्नेन मोक्षमार्गोपदेशतः ॥७९॥
इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम्। एकाग्रमनसाऽत्रैव मरेति जप सर्वदा ॥८०॥
आगच्छामः पुनर्यावत्तावदुक्तं सदा जप। इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे मुनयो दिव्यदर्शनाः ॥८१॥
अहं यथोपदिष्टं तैस्तथाऽकरवमञ्जसा। जपन्नेकाग्रमनसा बाह्यं विस्मृतवानहम् ॥८२॥
एवं बहुतिथे काले गते निश्चलरूपिणः। सर्वसङ्गविहीनस्य वल्मीकोऽभून्ममोपरि ॥८३॥
ततो युगसहस्रान्ते ऋषयः पुनरागमन्। मामूचुर्निष्क्रमस्वेति तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थितः ॥८४॥
वल्मीकान्निर्गतश्चाहं नीहारादिव भास्करः। मामप्याहुर्मुनिगणा वाल्मीकिस्त्वं मुनीश्वर ॥८५॥
वल्मीकात्संभवो यस्माद्द्वितीयं जन्म तेऽभवत्। इत्युक्त्वा ते ययुर्दिव्यगतिं रघुकुलोत्तम ॥८६॥
अहं ते राम नाम्नश्च प्रभावादीदृशोऽभवम्। अद्य साक्षात्प्रपश्यामि ससीतं लक्ष्मणेन च ॥८७॥
रामं राजीवपत्राक्षं त्वां मुक्तो नात्र संशयः। आगच्छ राम भद्रं ते स्थलं वै दर्शयाम्यहम् ॥८८॥
एवमुक्त्वा मुनिः श्रीमाँल्लक्ष्मणेन समन्वितः। शिष्यैः परिवृतो गत्वा मध्ये पर्वतगङ्गयोः ॥८९॥
तत्र शालां सुविस्तीर्णां कारयामास वासभूः। प्राक्पश्चिमं दक्षिणोदक् शोभनं मन्दिरद्वयम् ॥९०॥

अत-एव सदाचारियों के लिए उपेक्ष्य है, किन्तु यह शरणागत है, अतएव मोक्षमार्ग के उपदेश द्वारा यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ७८–७९ ॥ हे राम! यह सोचकर वे आपके नामाक्षरों को व्यस्त (मरा) कर मुझसे बोले कि तुम इस स्थान पर एकाग्रचित हो "मरा-मरा" सदा जप करो ॥ ८० ॥

"हम पुनः लौटकर जब तक आवें तब तक तुम सर्वदा मेरे निर्दिष्ट विधि से जप करो"। यह कहकर वे दिव्य दर्शन मुनीश्वर चले गये ॥ ८१ ॥ तत्पश्चात् मैं उनके उपदेशानुसार किया। इस प्रकार निरन्तर एकाग्रचित्त होकर जप करते-करते मुझे बाह्य ज्ञान विस्मृत हो गया। इस प्रकार बहुत काल तक निश्चलता-पूर्वक रहने से सर्वसङ्गविहीन मेरे ऊपर वल्मीक (दीमक का ढेर) बन गया ॥ ८३ ॥ तत्पश्चात् एक हजार युग व्यतीत होने पर वे मुनीश्वर पुनः आये और मुझसे बोले—"निकल आओ" यह सुनकर मैं खड़ा हो गया और जिस प्रकार कुहरे को पार कर भास्कर निकलते हैं, उस प्रकार मैं वल्मीक के अन्दर से निकल आया। तब मुनीश्वर मुझसे बोले—हे मुनिवर! तुम वाल्मीकि हो ॥ ८५ ॥ इस समय वल्मीक से निकलने के कारण यह तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ है। हे रघुश्रेष्ठ! यह कहकर वे दिव्यलोक को चले गये ॥ ८६ ॥

हे राम! आपके नाम के प्रभाव से मैं ऐसा हो गया जो आज सीता और लक्ष्मण के साथ साक्षात् कमलनयन आपको देख रहा हूँ। आह! मैं निःसन्देह मुक्त हो गया। हे राम! आपका मङ्गल हो, आप आइये, आपके रहने योग्य मैं स्थान दिखाता हूँ ॥ ८७–८८ ॥ यह कह कर शिष्यों से चारों ओर से घिरे हुए श्रीमान् मुनिवर वाल्मीकिजी लक्ष्मण के सहित गङ्गा और पर्वत के मध्य स्थल में जाकर भगवान् राम के रहने योग्य एक सुविशाल शाला बनाये, उसमें एक पूर्व-पश्चिम और दूसरा उत्तर-

जानक्या सहितो रामो लक्ष्मणेन समन्वितः । तत्र ते देवसदृशा ह्यवसन् भवनोत्तमे ॥९१॥
वाल्मीकिना तत्र सुपूजितोऽयं रामः ससीतः सह लक्ष्मणेन ।
देवैर्मुनीन्द्रैः सहितो मुदाऽऽस्ते स्वर्गे यथा देवपतिः सशच्या ॥९२॥
इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमसर्ग

सुमन्त्र का लौटकर आना, राजा दशरथ का स्वर्गवास तथा भरतजी का नौनिहाल से आना और श्रीवसिष्ठजी के आदेश से पिता का अन्त्येष्टि-संस्कार करना ।

श्रीमहादेव उवाच

सुमन्त्रोऽपि तदायोध्यां दिनान्तेप्र विवेश ह । वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य बाष्पाकुलितलोचनः ॥१॥
बहिरेव रथं स्थाप्य राजानं द्रष्टुमाययौ । जयशब्देन राजानं स्तुत्वा तं प्रणनाम ह ॥२॥
ततो राजा नमन्तं तं सुमन्त्रं विह्वलोऽब्रवीत् । सुमन्त्र रामः कुत्रास्ते सीतया लक्ष्मणेन च ॥३॥
कुत्र त्यक्तस्त्वया रामः किं मां पापिनमब्रवीत् । सीता वा लक्ष्मणो वाऽपि निर्दयं मां किमब्रवीत् ४
हा राम हा गुणनिधे हा सीते प्रियवादिनि । दुःखार्णवे निमग्नं मां म्रियमाणं न पश्यसि ॥५॥

दक्षिण दो सुन्दर घर बनाये ॥ ८९-९० ॥ उस दिव्य भवन में जानकीजी के साथ श्रीराम और लक्ष्मण देवताओं के समान रहने लगे ॥ ९१ ॥ श्रीवाल्मीकिजी से विधिवत् सम्मानित हो देवता और मुनिगणों सहित श्रीरामचन्द्रजी वहाँ सीता और लक्ष्मण के साथ स्वर्गलोक में इन्द्राणी (शची) के साथ देवराज इन्द्र के रहने की भाँति रहने लगे ॥ ९२ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंबादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः षष्ठसर्गः परिपूर्णः ॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—सुमन्त्रजी भी सन्ध्या समय में वस्त्र से मुख ढंककर सजलनेत्र हो अयोध्यापुरी में प्रवेश किये ॥ १ ॥ वे रथ को बाहर रखकर राजा को देखने के लिये अन्तःपुर में गये और जयध्वनि से उनकी स्तुतिकर राजा को प्रणाम किये ॥ २ ॥ राजा दशरथ नमस्कार करते हुए सुमन्त्र को देखकर दुःख से विह्वल होकर बोले—"सुमन्त्र ! सीता और लक्ष्मण के सहित रामजी कहाँ हैं ? ॥ ३ ॥ आपने राम को कहाँ छोड़ा है ? वे मुझ पापी को क्या कहे हैं ? तथा च सीता और लक्ष्मण ने भी मुझ निर्दयी को क्या कहा है ? ॥ ४ ॥ हा राम ! हा गुणनिधे ! हा प्रियवादिनि सीते ! क्या मुझको दुःख सागर में डूबकर

विलप्यैवं चिरं राजा निमग्नो दुःखसागरे । एवं मन्त्री रुदन्तं तं प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥६॥
रामः सीता च सौमित्रिर्मया नीता रथेन ते । शृङ्गवेरपुराभ्याशे गङ्गाकूले व्यवस्थिताः ॥७॥
गुहेन किंचिदानीतं फलमूलादिकं च यत् । स्पृष्ट्वा हस्तेन संप्रीत्या नाग्रहीद्विससर्ज तत् ॥८॥
वटक्षीरं समानाय्य गुहेन रघुनन्दनः । जटामुकुटमाबद्ध्य मामाह नृपते स्वयम् ॥९॥
सुमन्त्र ब्रूहि राजानं शोकस्तेऽस्तु न मत्कृते । साकेतादधिकं सौख्यं विपिने नो भविष्यति ॥१०॥
मातुर्मे वन्दनं ब्रूहि शोकं त्यजतु मत्कृते । आश्वासयतु राजानं वृद्धं शोकपरिप्लुतम् ॥११॥
सीता चाश्रुपरीताक्षी मामाह नृपसत्तम । दुःखगद्गदया वाचा रामं किंचिदवेक्षती ॥१२॥
साष्टाङ्गं प्रणिपातं मे ब्रूहि श्वश्र्वोः पदाम्बुजे । इति प्ररुदती सीता गता किंचिदवाङ्मुखी ॥१३॥
ततस्तेऽश्रुपरीताक्षा नावमारुरुहुस्तदा । यावद्गङ्गां समुत्तीर्य गतास्तावदहं स्थितः ॥१४॥
ततो दुःखेन महता पुनरेवाहमागतः । ततो रुदन्ती कौसल्या राजानमिदमब्रवीत् ॥१५॥
कैकेय्यै प्रियभार्यायै प्रसन्नो दत्तवान्वरम् । त्वं राज्यं देहि तस्यैव मत्पुत्रः किं विवासितः १६॥
कृत्वा त्वमेव तत्सर्वमिदानीं किं नु रोदिषि । कौसल्यावचनं श्रुत्वा क्षते स्पृष्ट इवाग्निना ॥१७॥

मरते हुए तुम नहीं देखते हो" ? ॥ ५ ॥ इस प्रकार बहुत देर तक विलाप कर राजा दुःख समुद्र में डूब गये । उन्हें इसप्रकार रुदन करते हुए देखकर मन्त्री हाथ जोड़कर बोले—महाराज ! मैं राम, सीता और लक्ष्मण को आपके रथ में बैठाकर ले गया । वे शृङ्गवेर पुर के समीप गङ्गाजी के किनारे विश्राम किये ॥ ६–७ ॥ वहाँ पर निषादराज गुह फलमूलादि कुछ ले आया, किन्तु रामजी उन्हें प्रतिपूर्वक हाथ से ही स्पर्शकर छोड़ दिये, उनमें से कुछ भी ग्रहण नहीं किये ॥ ८ ॥ तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी निषाद-राज गुह से वट का दूध मँगाकर अपनी जटाओं का मुकुट बनाये और मुझसे बोले ॥ ९ ॥ "सुमन्त्रजी ! महाराज से निवेदन कीजियेगा कि वे मेरे लिये शोक मत करेंगे । हम लोगों को साकेत से भी अधिक सुख वन में प्राप्त होगा ॥ १० ॥

माता से मेरा प्रणाम निवेदन कर कहिएगा कि मेरे लिये शोक करना छोड़ दें । महाराज वृद्ध और शोक से व्याकुल हैं उन्हें आश्वस्त करना" ॥ ११ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् सजालनेत्र हो राम के तरफ किञ्चित् देखती हुई सीता दुःख पूर्वक गद्गद्वाणी से मुझसे बोली; दोनों सासुओं के चरण कमलों में मेरा प्रणाम कहियेगा । यह कहकर थोड़ा सिर झुकाकर रोती हुई वहाँ से चली गयी ॥ १२–१३ ॥ तत्पश्चात् वे सब सजलनेत्र हो नावपर आरूढ़ हुए । जबतक वे लोग गङ्गाजी के उस पार पहुँचे, तब तक मैं वहीं स्थित था । तदनन्तर मैं वहाँ से चलकर बड़े दुःख से यहाँ आया हूँ । तत्पश्चात् रोती हुई कौसल्या राजा से यह बोली कि हे राजन् ! यदि आप प्रसन्न होकर अपनी प्रिया कैकयी को वर दिये तो आप उसी के पुत्र को ही राज्य दिये होते, किन्तु मेरे पुत्र को आप देश से क्यों निकाल दिये ॥ १५–१६ ॥ तथाच यह सब अपने आप करके रोते क्यों हैं ? कौसल्या की ये बातें सुनकर ऐसी वेदना हुई जैसे घाव में अग्नि का स्पर्श से होता है ॥१७॥

पुनः शोकाश्रुपूर्णाक्षः कौसल्यामिदमब्रवीत् । दुःखेन म्रियमाणं मां किं पुनर्दुःखयस्यलम् ॥१८॥
इदानीमेव मे प्राणा उत्क्रमिष्यन्ति निश्चयः । शप्तोऽहं बाल्यभावेन केनचिन्मुनिना पुरा ॥१९॥
पुराहं यौवने दृप्तश्चापबाणधरो निशि । अचरं मृगयासक्तो नद्यास्तीरे महावने ॥२०॥
तत्रार्धरात्रसमये मुनिः कश्चित्तृषार्दितः । पिपासार्दितयोः पित्रोर्जलमानेतुमुद्यतः ॥
अपूरयज्जले कुम्भं तदा शब्दोऽभवन्महान् ।२१॥
गजः पिबति पानीयमिति मत्वा महानिशि । बाणं धनुषि सन्धाय शब्दवेधिनमक्षिपम् ॥२२॥
हा हतोऽस्मीति तत्राभूच्छब्दो मानुषसूचकः । कस्यापि न कृतो दोषो मया केन हतो विधे २३
प्रतीक्षते मां माता च पिता च जलकाङ्क्षया । तच्छ्रुत्वा भयसंत्रस्तस्ततोऽहं पौरुषं वचः ॥२४॥
शनैर्गत्वाथ तत्पार्श्वं स्वामिन् दशरथोऽस्म्यहम् । अजानता मया विद्धस्त्रातुमर्हसि मां मुने ॥२५॥
इत्युक्त्वा पादयोस्तस्य पतितो गदगदाक्षरः । तदा मामाह स मुनिर्मा भैषीर्नृपसत्तम ॥२६॥
ब्रह्महत्या स्पृशेन्न त्वां वैश्योऽहं तपसि स्थितः । पितरौ मां प्रतीक्षेते क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडितौ ॥२७॥
तयोस्त्वमुदकं देहि शीघ्रमेवाविचारयन् । न चेत्त्वां भस्मसात्कुर्यात्पिता मे यदि कुप्यति २८

तदनन्तर महाराज शोकाश्रुपूर्ण नेत्र हो कौसल्या से बोले—मैं तो स्वयं दुःख से मर रहा हूँ, पुनः इस प्रकार मुझे क्यों दुःख देती हो ? इससे क्या लाभ है ? ॥ १८ ॥

निःसन्देह मेरे प्राण अभी निकलने वाले हैं । पूर्वसमय में मेरी मूर्खता के कारण एक मुनीश्वर शाप दिये थे ॥ १९ ॥ (वह कथा इस प्रकार है) मैं पहले एक समय युवावस्था के मद से उन्मत्त हो मृगया में आसक्त हो रात्रि के समय हाथ में धनुष-बाण लेकर घोर जंगल में नदी के किनारे भ्रमण कर रहा था ॥२०॥ उस आधी रात के समय कोई प्यासा मुनि अपने प्यासे माता-पिता के लिये जल लेने हेतु नदी में घड़ा डुबाये । घड़ा डुबाते समय महान् शब्द हुआ ॥ २१ ॥ कोई हाथी पानी पी रहा है, यह सोचकर मैं धनुष पर बाण चढ़ाकर शब्दवेधी बाण छोड़ा ॥ २२ ॥ वहाँ पर मनुष्य सूचक शब्द हुआ कि हा ! मैं मारा गया । हे विधे ! मैंने तो किसी का कोई अपराध नहीं किया था, पुनः मुझको किसने मारा ? ॥ २३ ॥ हाय ! मेरे माता-पिता भी जल के लिये मेरा रास्ता देख रहे होंगे । "यह मनुष्य का वचन सुनकर मैं अत्यन्त भयभीत हुआ और धीरे-धीरे उनके पास जाकर बोला"—प्रभो ! मैं दशरथ हूँ, मैंने ही विना जाने यह बाण छोड़ा है । हे मुने ! आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ २४-२५ ॥

यह कहकर मैं गद्गद् कण्ठ होकर उनके चरणों में गिर गया । तदनन्तर वे मुनीश्वर मुझसे बोले—हे नृपश्रेष्ठ ! डरो मत ॥ २६ ॥ तुम्हें ब्रह्महत्या नहीं लगेगी, क्योंकि मैं तपस्या में स्थित वैश्य हूँ । मेरे माता-पिता भूख और प्यास से व्याकुल होकर मेरी बाट देखते होंगे ॥ २६ ॥ अतएव विना कुछ विचार किये ही अब तुम शीघ्र जल दे आओ, नहीं तो मेरे पिता कुपित हो गये तो तुम्हें भस्म कर डालेंगे ॥ २८ ॥

जलं दत्त्वा तु तौ नत्वा कृतं सर्वं निवेदय । शल्यमुद्धर मे देहात्प्राणांस्त्यक्ष्यामि पीडितः ।२९।
इत्युक्तो मुनिना शीघ्रं बाणमुत्पाट्य देहतः । सजलं कलशं धृत्वा गतोऽहं यत्र दम्पती ॥३०॥
अतिवृद्धावन्धदृशौ क्षुत्पिपासार्दितौ निशि । नायाति सलिलं गृह्य पुत्रः किं वाऽत्र कारणम् ।३१।
अनन्यगतिकौ वृद्धौ शोच्यौ तृटपरिपीडितौ । आवामुपेक्षते किं वा भक्तिमानावयोः सुतः ॥३२॥

इति चिन्ताव्याकुलौ तौ मत्पादन्यासजं ध्वनिम् ।
श्रुत्वा प्राह पिता पुत्र किं विलम्बः कृतस्त्वया ॥३३

देह्यावयोः सुपानीयं पिब त्वमपि पुत्रक । इत्येवं लपतोर्भीत्या सकाशमगमं शनैः ॥३४॥
पादयोः प्रणिपत्याहमब्रुवं विनयान्वितः । नाहं पुत्रस्त्वयोध्याया राजा दशरथोऽस्म्यहम् ३५
पापोऽहं मृगयासक्तो रात्रौ मृगविहिंसकः । जलावताराद्दूरेऽहं स्थित्वा जलगतं ध्वनिम् ॥३६॥
श्रुत्वाहं शब्दवेधित्वादेकं बाणमथात्यजम् । हतोस्मीति ध्वनिं श्रुत्वा भयात्तत्राहमागतः ॥३७॥
जटा विकीर्य पतितं दृष्ट्वाहं मुनिदारकम् । भीतो गृहीत्वा तत्पादौ रक्षरक्षेति चाब्रवम् ।।३८॥
माभैषीरिति मां प्राह ब्रह्महत्याभयं न ते । मत्पित्रोः सलिलं दत्त्वा नत्वा प्रार्थय जीवितम् ३९॥

उन्हें जल देकर और नमस्कार कर अपना सारा कृत्य सुना देना। मुझे अत्यन्त पीड़ा हो रही है। तुम मेरे शरीर में से बाण निकाल दो, तब मैं प्राण त्याग करूँगा ॥ २९ ॥ मुनि के यह कहने पर मैं शीघ्र ही उनके शरीर से बाण निकाल दिया और जल का घड़ा लेकर उनके माता-पिता के पास गया ॥ ३० ॥ उनके माता-पिता कह रहे थे कि हम अत्यन्तवृद्ध और नेत्रहीन हैं और भुख प्यास से पीड़ित हो रहे हैं इस रात्रि के समय मेरा पुत्र अबतक जल लेकर नहीं आया, इसमें क्या कारण है ? ॥ ३१ ॥ हम दोनों अनन्यगतिक हैं, अर्थात् कोई दूसरा सहारा नहीं है, हम वृद्ध, शोचनीय और प्यास से अत्यन्त पीडित हैं। हमलोगों का भक्त पुत्र हम लोगों की उपेक्षा क्यों कर रहा है ? ॥ ३२ ॥

इस प्रकार चिन्ता से व्याकुल हो रहे मेरे पैरों की ध्वनि सुनकर पिता ने पूछा—बेटा ! आज तू इतनी विलम्ब क्यों किया ॥ ३३ ॥ हमें पवित्रजल दो और तुम भी जल पीओ। उनके इस प्रकार कहने पर मैं डरकर धीरे से उनके पास गया ॥ ३४ ॥ उनके चरणों में प्रणाम कर नम्रता पूर्वक बोला—मैं आपका पुत्र नहीं हूँ, बल्कि अयोध्या का राजा दशरथ हूँ ॥ ३५ ॥ मैं पापी मृगया में आसक्ति से रात्रि के समय पशुओं का वध करता फिरता था। जलाशय से मैं दूर था, किन्तु जल में ध्वनि को सुनकर शब्दवेधी होने से मैं एकबाण छोड़ा। परन्तु "मैं मारा गया" यह शब्द जब मैं सुना तो डरता हुआ वहाँ आया ॥ ३६–३७ ॥

मैं वहाँ आकर जटा फैलाये पड़े एक मुनिकुमार को देखा तो भय से उनके चरण पकड़ लिया और 'मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' यह कहने लगा ॥ ३८ ॥ तब वे बोले डरो मत, तुन्हें ब्रह्महत्या का डर नहीं है। मेरे माता-पिता को जल देकर उन्हें प्रणाम कर जीवनदान केलिये प्रार्थना करो ॥ ३९ ॥ मुनिकुमार के यह

इत्युक्तो मुनिना तेन ह्यागतो मुनिहिंसकः । रक्षेतां मां दयायुक्तौ युवां हि शरणागतम् ॥४०॥
इति श्रुत्वा तु दुःखार्तौ विलप्य बहुशोच्य तम् । पतितौ नौ सुतो यत्र नय तत्राविलम्बयन् ॥४१॥
ततो नीतौ सुतो यत्र मया तौ वृद्धदम्पती । स्पृष्ट्वा सुतं तौ हस्ताभ्यां बहुशोऽथ विलेपतुः ।४२
हाहेति क्रंदमानौ तौ पुत्रपुत्रेत्यवोचताम् । जलं देहीति पुत्रेति किमर्थं न ददास्यलम् ॥४३॥
ततो मामूचतुः शीघ्रं चितिं रचय भूपते । मया तदैव रचिता चितिस्तत्र निवेशिताः ॥
त्रयस्तत्राग्निरुत्सृष्टो दग्धास्ते त्रिदिवं ययुः ॥४४॥
तत्र वृद्धः पिता प्राह त्वमप्येवं भविष्यसि । पुत्रशोकेन मरणं प्राप्स्यसे वचनान्मम ॥४५॥
स इदानीं मम प्राप्तः शापकालोऽनिवारितः । इत्युक्त्वा विललापाथ राजा शोकसमाकुलः ।४६॥
हा राम पुत्र हा सीते हा लक्ष्मण गुणाकर । त्वद्वियोगादहं प्राप्तो मृत्युं कैकेयिसम्भवम् ॥४७॥
वदन्नेवं दशरथः प्राणांस्त्यक्त्वा दिवं गतः । कौसल्या च सुमित्रा च तथान्या राजयोषितः ४८
चुक्रुशुश्च विलेपुश्च उरस्ताडनपूर्वकम् । वसिष्ठः प्रययौ तत्र प्रातर्मन्त्रिभिरावृतः ॥४९॥
तैलद्रोण्यां दशरथं क्षिप्त्वा दूतानथाब्रवीत् । गच्छत त्वरितं साश्वा युधाजिन्नगरं प्रति ॥५०॥
तत्रास्ते भरतः श्रीमाञ्छत्रुघ्नसहितः प्रभुः । उच्यतां भरतः शीघ्रमागच्छेति ममाज्ञया ।।५१॥

कहने पर यह मुनिहिंसक आप के समीप आया है । आपदोनों बड़े दयावान् हैं, आपदोनों शरणागत की रक्षा कीजिये ॥ ४० ॥ यह सुनकर वे दोनों दुःख से व्याकुल हो उनके लिये बहुत शोच और विलाप करते हुये पृथ्वीपर गिर पड़े। वे बोले—"जहाँ हमारा पुत्र है, वहाँ हमें ले चलो" ॥ ४१ ॥ तत्पश्चात् उनके पड़े हुए लड़के के पास उन वृद्ध दम्पत्ति को मैं लेगया और वे उसे हाथों से छूकर अति विलाप करने लगे ।। ४२ ।। "हा पुत्र ! हा पुत्र ! यह कहते हुए वे रोते हुए बोले —'बेटा ! हमें जल दो, हमें जल दो । आज जल क्यों नहीं देते हो ? ।। ४३ ।। पुनः वे मुझसे बोले -राजन् ! शीघ्र चिता बनाओ । मैं शीघ्र ही चिता बना दिया। वे तीनों उस पर चढ़ गये और अग्नि लगाने पर उसमें भस्म होकर स्वर्गलोक को चले गये ।। ४४ ।। उस समय वृद्ध पिता बोले मुझसे बोले कि तुम्हें भी ऐसा ही होगा। मेरे वचन से तुम्हारा भी पुत्र शोक से ही मरण होगा ।। ४५ ।। वह अपरिहार्य शापकाल मेरे लिये उपस्थित हुआ है । यह कहकर राजा दशरथ अतिशोकाकुल हो विलाप करने लगे ।। ४६ ।। "हा पुत्र राम ! हा सीते ! हा गुणाकर लक्ष्मण ! तुम्हारे वियोग से मैं कैकेयी के द्वारा उपस्थित मृत्यु को प्राप्त कर रहा हूँ ।। ४७ ।। यह कहते हुए महाराज दशरथ प्राणों को छोड़कर स्वर्गलोक चले गये। उस समय कौसल्या- सुमित्रा और अन्यान्य रानियाँ छाती पीट-पीट कर रोने तथा विलाप करने लगीं। प्रातः काल होने पर मन्त्रियों के साथ वहाँ वसिष्ठजी आये ।। ४८-४९ ।। तैलपूर्ण द्रोणी (नौका) में राजा दशरथ के शव को रखवाकर दूतों से बोले—तुमलोग शीघ्र ही घोड़ों पर सवार होकर युधाजित् की राजधानी जाओ ।। ५० ।।

वहाँ पर शत्रुघ्न के साथ श्रीमान् महाराज भरत विराजमान हैं। मेरी आज्ञा से उनसे यह कहना

अयोध्यां प्रति राजानं कैकेयीं चापि पश्यतु । इत्युक्तास्त्वरितं दूता गत्वा भरतमातुलम् ॥५२॥
युधाजितं प्रणम्योचुर्भरतं सानुजं प्रति । वसिष्ठस्त्वब्रवीद्राजन् भरतः सानुजः प्रभुः ॥५३॥
शीघ्रमागच्छतु पुरीमयोध्यामविचारयन् । इत्याज्ञप्तोऽथ भरतस्त्वरितं भयविह्वलः ॥५४॥
आययौ गुरुणादिष्टः सह दूतैस्तु सानुजः । राज्ञो वा राघवस्यापि दुःखं किञ्चिदुपस्थितम् ॥५५॥
इति चिन्तापरो मार्गे चिन्तयन्नगरं ययौ । नगरं भ्रष्टलक्ष्मीकं जनसम्बाधवर्जितम् ॥५६॥
उत्सवैश्च परित्यक्तं दृष्ट्वा चिन्तापरोऽभवत् । प्रविश्य राजभवनं राजलक्ष्मीविवर्जितम् ॥५७॥
अपश्यत्कैकयीं तत्र एकामेवासने स्थिताम् । ननाम शिरसा पादौ मातुर्भक्तिसमन्वितः ॥५८॥
आगतं भरतं दृष्ट्वा कैकयी प्रेमसम्भ्रमात् । उत्थायालिङ्ग्य रभसा स्वाङ्कमारोप्य संस्थिता ५९
मूर्ध्न्यवघ्राय पप्रच्छ कुशलं स्वकुलस्य सा । पिता मे कुशली भ्राता माता च शुभलक्षणा ।६०।
दिष्ट्या त्वमद्य कुशली मया दृष्टोऽसि पुत्रक। इति पृष्टः स भरतो मात्रा चिन्ताकुलेन्द्रियः ।६१।
दूयमानेन मनसा मातरं समपृच्छत । मातः पिता मे कुत्रास्ते एका त्वमिह संस्थिता ६२
त्वया विना न मे तातः कदाचिद्रहसि स्थितः । इदानीं दृश्यते नैव कुत्र तिष्ठति मे वद ।६३।
अदृष्ट्वा पितरं मेऽद्य भयं दुःखं च जायते । अथाह कैकयी पुत्रं किं दुःखेन तवानघ ॥६४॥

कि भरत शीघ्र ही अयोध्यापुरी में आकर महाराज दशरथ और कैकेयी का दर्शन करें । "वसिष्ठजी के यह कहने पर दूत गण शीघ्र ही जाकर भरत के मामा युधाजित् और अनुज शत्रुघ्न सहित भरत को प्रणाम कर बोले—"राजन् ! वसिष्ठजी कहे हैं कि अनुज शत्रुघ्न सहित महाराज भरत शीघ्र ही बिना कुछ सोच विचार किये अयोध्यापुरी में चले आवें" । यह आज्ञा सुनकर भरतजी भय से व्याकुल होकर शीघ्र ही गुरुजी के आदेश से अनुज सहित दूतों के साथ चले और यह सोच रहे थे कि अवश्य ही महाराज या श्रीरघुनाथजी पर कोई घोर संकट उपस्थित हुआ है ॥ ५१–५५ ॥ मन ही मन रास्ते में चिन्ता करते हुए नगर में पहुँचे । वे नगर में पहुँचकर नगर को लक्ष्मीहीन, जन समूह से रहित, तथा उत्सवहीन देखे। यह देखकर वे अत्यन्त चिन्तित हुए । राज्यलक्ष्मी रहित राज्य भवन में जाकर वहाँ अकेली कैकेयी को एक आसन पर बैठे हुए देखे । माता को देखकर वे भक्तिपूर्वक चरणों में सिर रखकर प्रणाम किये ॥ ५६–५८ ॥ आये हुए भरतजी को देखकर कैकेयी प्रेमवश शीघ्रता से उठकर उन्हें हृदय लगायी और अपनी गोद में बैठाकर उनका सिर सूँघकर अपने कुल की कुशलता पूछी । वह बोली—"मेरे पिता, भाई और शुभलक्षणा माताजी कुशलपूर्वक तो हैं ? ॥ ६० ॥

बेटा ! आज बड़े भाग्य से मैं तुम्हें सकुशल देख रही हूँ । इस प्रकार माता के पूछने पर चिन्ता से व्याकुल एवं दुःखी होकर भरतजी ने माता से पूछा—माँ ! पिताजी कहाँ हैं, जो तुम यहाँ अकेली बैठी हो ? ६१–६२ ॥ हे मातः ! तुम्हारे विना पिताजी कभी भी एकान्त में नहीं रहते थे लेकिन इस समय वे दिखायी नहीं पड़ते, यह बताओ कि वे कहाँ हैं ? ॥ ६३ ॥ पिताजी को नहीं देखने से मुझे आज अत्यन्त

या गतिर्धर्मशीलानामश्वमेधादियाजिनाम् । तां गतिं गतवानद्य पिता ते पितृवत्सल ॥६५॥
तच्छ्रुत्वा निपपातोर्व्यां भरतः शोकविह्वलः । हा तात क्व गतोऽसि त्वं त्यक्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥
असमर्प्यैव रामाय राज्ञे मां क्व गतोऽसि भो । इति विलपितं पुत्रं पतितं मुक्तमूर्धजम् ॥६७॥
उत्थाप्यामृज्य नयने कैकेयी पुत्रमब्रवीत् । समाश्वसिहि भद्रं ते सर्वं सम्पादितं मया ॥६८॥
तामाह भरतस्तातो म्रियमाणः किमब्रवीत् । तमाह कैकयी देवी भरतं भयवर्जिता ॥६९॥
हा राम रामस ीतेति लक्ष्मणेति पुनःपुनः । विलपन्नेव सुचिरं देहं त्यक्त्वा दिवं ययौ ॥७०॥
तामाह भरतो हेऽम्ब रामः सन्निहितो न किम् । तदानीं लक्ष्मणो वापि सीता वा कुत्रते गताः ७१

कैकेय्युवाच

रामस्य यौवराज्यार्थं पिता ते सम्भ्रमः कृतः । तव राज्यप्रदानाय तदाऽहं विघ्नमाचरम् ॥७२॥
राज्ञा दत्तं हि मे पूर्वं वरदेन वरद्वयम् । याचितं तदिदानीं मे तयोरेकेन तेऽखिलम् ॥७३॥
राज्यं रामस्य चैकेन वनवासो मुनिव्रतम् । ततः सत्यपरो राजा राज्यं दत्त्वा तदैव हि ॥७४॥
रामं संप्रेषयामास वनमेव पिता तव । सीताप्यनुगता रामं पातिव्रत्यमुपाश्रिता ॥७५॥

भय और दुःख हो रहा है। यह सुनकर कैकेयी बोली—"हे अनघ! तुम्हारे दुःख की क्या बात है"? ॥ ६४ ॥ हे पितृ वत्सल! अश्वमेधादि यज्ञ करने वाले धर्म परायण पुरुषों की जो गति होती है; आज तुम्हारे पिता उस गति को प्राप्त किये हैं? ॥ ६५ ॥ यह सुनते ही भरत शोकाकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े और बोले—"हा तात! हा तात! मुझे दुःख सागर में छोड़कर आप कहाँ चले गये? ॥ ६६ ॥ हाय! महाराज राम को मुझे बिना समर्पण किये ही आप कहाँ चले गये" इस प्रकार विलाप करते हुए बिखरे हुए केशों वाले पृथ्वी पर पड़े अपने पुत्र को उठाकर कैकेयी भरत के आँखों की आँसू पोछकर बोली—बेटा! धैर्य धारण करो! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हारे लिये सब कुछ सम्पादित करली हूँ ॥ ६७-६८ ॥ यह सुनकर भरत जी पूछे—मरते समय महाराज क्या कहे थे? यह सुनकर कैकेयी देवी निर्भय होकर भरत-जी से बोली ॥ ६९ ॥

वे हा राम! हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण! इस प्रकार बहुत देर तक बारम्बार विलाप करते हुए अपना शरीर त्याग कर स्वर्ग को चले गये" ॥ ७० ॥ तदनन्तर भरत जी पूछे—"हे मातः! उस समय राम, सीता और लक्ष्मण भी उनके पास नहीं थे क्या? उस समय वे कहाँ गये थे"? ॥ ७१ ॥ कैकेयी बोली—तुम्हारे पिता राम को युवराज के लिये तैयारी किये थे। उस समय तुमको राज्य दिलाने हेतु मैंने उसमें विघ्न उपस्थित कर दिया ॥ ७२ ॥ पूर्व समय में प्रसन्न होकर वरदाता राजा मुझे दो वरदान देने के लिये कहे थे। उस समय उनमें से मैं एक वरदान के द्वारा तुम्हारे लिये सम्पूर्ण राज्य और दूसरे वर से राम के लिये मुनिव्रत धारण पूर्वक वनवास माँगी। अतएव तुम्हारे पिता सत्यसन्ध महाराज दशरथ तुमको राज्य एवं राम को वनवास देकर राम को वन में भेज दिये। पातिव्रत्य परायण सीता भी राम के साथ ही वन में चली गयी ॥ ७३-७५ ॥

सौभ्रात्रं दर्शयन्राममनुयातोऽपि लक्ष्मणः। वनं गतेषु सर्वेषु राजा तानेव चिन्तयन् ॥७६॥
प्रलपन् रामरामेति ममार नृपसत्तमः। इति मातुर्वचः श्रुत्वा वज्राहत इव द्रुमः ॥७७॥
पपात भूमौ निःसंज्ञस्तं दृष्ट्वा दुःखिता तदा। कैकेयी पुनरप्याह वत्स शोकेन किं तव ॥७८॥
राज्ये महति संप्राप्ते दुःखस्यावसरः कुतः। इति ब्रुवन्तीमालोक्य मातरं प्रदहन्निव ॥७९॥
असंभाष्यासि पापे मे घोरे त्वं भर्तृघातिनी।
पापे त्वद्गर्भजातोऽहं पापवानस्मि साम्प्रतम्। अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि विषं वा भक्षयाम्यहम् ८०।
खड्गेन वाथ चात्मानं हत्वा यामि यमक्षयम्। भर्तृघातिनि दुष्टे त्वं कुम्भीपाकं गमिष्यसि ८१
इति निर्भर्त्स्य कैकेयीं कौसल्याभवनं ययौ। साऽपि तं भरतं दृष्ट्वा मुक्तकण्ठा रुरोद ह ॥८२॥
पादयोः पतितस्तस्या भरतोऽपि तदारुदत्। आलिङ्ग्य भरतं साध्वी राममाता यशस्विनी ८३
कृशाऽतिदीनवदना साश्रुनेत्रेदमब्रवीत्।
पुत्र त्वयि गते दूरमेवं सर्वमभूदिदम्। उक्तं मात्रा श्रुतं सर्वं त्वया ते मातृचेष्टितम् ॥८४॥
पुत्रः सभार्यो वनमेव यातः सलक्ष्मणो मे रघुरामचन्द्रः।
चीराम्बरो बद्धजटाकलापः सन्त्यज्य मां दुःखसमुद्रमग्नाम् ॥८५॥

लक्ष्मण भी भ्रातृस्नेह से राम के पीछे-पीछे चल दिये। सबके वन चले जाने पर उन लोगों का स्मरण करते हुए तथा राम! राम! रटते विलाप करते हुए नृपश्रेष्ठ महाराज शरीर त्याग दिये"। माता के ये वचन सुनकर भरत जी वज्राहत पड़े के समान अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े। भरत जी को ऐसी स्थिति में देखकर दुःखी होकर कैकेयी बोली--बेटा! तुम शोक क्यों करते हो? ॥ ७६-७८॥ यह महान् राज्य प्राप्त करने के बाद दुःख का अवसर ही कहाँ रहता? इस प्रकार माता को कहते हुए देखकर क्रोध से जलते हुए माता से बोले॥ ७९॥

"अरी पापिनी! तुम बात करने योग्य नहीं हो। अरी घोरे! तुम अपने पति घातिनी हो। अरि पापे! तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होने के कारण मैं भी प्रत्यक्ष महापापी हूँ या तो मैं अग्नि में प्रवेश करूँगा अथवा विष खा लूँगा, अथवा खड्ग से आत्महत्या कर यमपुर को चला जाऊँगा। हे भर्तृघातिनि! हे दुष्टे! तुम भी कुम्भीपाक नामक नरक में पड़ोगी" ॥ ८१ ॥ इस प्रकार कैकेयी को डाँट-फटकार कर कौसल्या के घर गये। भरत को देखते ही माता कौसल्या मुक्तकण्ठ से रुदन करने लगीं॥ ८२॥ भरतजी उनके चरणों पर गिरकर रोने लगे। उन्हें गले लगाकर महादुर्बल और अति दीनवदना यशस्विनी राममाता कौसल्या सजल नेत्र हो बोली॥ ८३ ॥ बेटा! तुम्हारे दूर चले जाने पर ये सब अनर्थ हुए हैं, अपनी माता से तुमने सब कुछ सुन ही ली होगी॥ ८४ ॥ मेरा पुत्र रघुश्रेष्ठ रामचन्द्र अपनी पत्नी सीता और लक्ष्मण के साथ चीरवस्त्र धारणकर तथा जटा जूटबाँधकर मुझे दुःख समुद्र में छोड़कर वन को चला गया ॥ ८५ ॥ हा राम! हा मेरे रघुवंश

हा राम हा मे रघुवंशनाथ जातोऽसि मे त्वं परतः परात्मा।
तथापि दुःखं न जहाति मां वै विधिर्बलीयानिति मे मनीषा ॥८६॥

स एवं भरतो वीक्ष्य विलपन्तीं भृशं शुचा। पादौ गृहीत्वा प्राहेदं शृणु मातर्वचो मम ॥८७॥
कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्याभिषेचने। अन्यद्वा यदि जानामि सा मया नोदिता यदि ८८
पापं मेऽस्तु तदा मातर्ब्रह्महत्याशतोद्भवम्। हत्वा वसिष्ठं खड्गेन अरुन्धत्या समन्वितम् ।८९।
भूयात्तत्पापमखिलं मम जानामि यद्यहम्। इत्येवं शपथं कृत्वा रुरोद भरतस्तदा ॥९०॥
कौसल्या तमथालिङ्ग्य पुत्र जानामि मा शुचः। एतस्मिन्नन्तरे श्रुत्वा भरतस्य समागमम्। ९१॥
वसिष्ठो मन्त्रिभिः सार्धं प्रययौ राजमन्दिरम्। रुदन्तं भरतं दृष्ट्वा वसिष्ठः प्राह सादरम्। ९२॥
वृद्धो राजा दशरथो ज्ञानी सत्यपराक्रमः। भुक्त्वा मर्त्यसुखं सर्वमिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः ।९३॥
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्लब्ध्वा रामं सुतं हरिम्। अन्ते जगाम त्रिदिवं देवेन्द्रार्द्धासनं प्रभुः ॥९४।
तं शोचसि वृथैव त्वमशोच्यं मोक्षभाजनम्। आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्धो जन्मनाशादिवर्जितः
शरीरं जडमत्यर्थमपवित्रं विनश्वरम्। विचार्यमाणे शोकस्य नावकाशः कथञ्चन ।९६।
पिता वा तनयो वाऽपि यदि मृत्युवशं गतः। मूढास्तमनुशोचन्ति स्वात्मताडनपूर्वकम्। ९७॥
निःसारे खलु संसारे वियोगो ज्ञानिनां यदा। भवेद्वैराग्यहेतुः स शान्तिसौख्यं तनोति च ।९८

शिरोमणि! आप साक्षात् परम पुरुष परमात्मा मेरे गर्भ से जन्म लिए, परन्तु दुःख ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। अतएव विधाता ही प्रबल है, यह मेरा विचार है ॥ ८६ ॥ उन्हें शोक से इस प्रकार विलाप करते देखकर भरतजी उनका चरण पकड़कर बोले—हे माता! मेरी बात सुनिये—श्रीरामचन्द्रजी के राज्याभिषेक के समय कैकेयी ने जो कुछ किया है उसमें मेरी सम्मति हो अथवा मैं जानता होऊँ तो मुझे सौ ब्रह्महत्याओं का पाप लगे अथवा अरुन्धती और वसिष्ठजी को खड्ग से मारने से जो पाप होता है वह मुझे लगे। इस प्रकार शपथ कर भरतजी रोने लगे ॥ ८७–९० ॥ तब कौसल्या भरत जी को हृदय से लगाकर बोली—बेटा! मैं यह सब कुछ जानती हूँ, तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो। इसी समय ही भरत जी का समागम सुनकर मन्त्रियों के साथ वसिष्ठ जी राजभवन में आये और रोते हुए भरत को देखकर आदर पूर्वक बोले ॥ ९१–९२ ॥ महाराज दशरथ वृद्ध, ज्ञानी, और सत्य पराक्रमी थे। वे मर्त्यलोक के सम्पूर्ण सुख-भोगकर भरपूर दक्षिणा देकर अश्वमेधादि यज्ञों द्वारा भगवान् का भजन कर और साक्षात् विष्णुभगवान् को ही अपने पुत्र रामचन्द्र के रूप में प्राप्तकर स्वर्गलोक में देवराज इन्द्र के अर्ध आसन के अधिकारी हुए हैं ॥ ९३–९४ ॥ वे सर्वथा अशोचनीय और मोक्ष के पात्र हैं, उनके लिये शोच करना व्यर्थ ही है। आत्मा नित्य, अव्यय, शुद्ध और जन्म मृत्यु आदि रहित हैं ॥ ९५ ॥ यह शरीर जड़, अति अपवित्र और नाशवान है। विचार करने पर तो शोक के लिये कोई स्थान नहीं है ॥ ९६ ॥ यदि कोई पिता अथवा पुत्र मर जाता है तो मूढ़प्राणी ही अपनी छाती पीट-पीटकर शोक करते हैं ॥९७ ॥ यदि इस संसार में ज्ञानिजनों

जन्मवान्यदि लोकेऽस्मिंस्तर्हि तं मृत्युरन्वगात् । तस्मादपरिहार्योऽयं मृत्युर्जन्मवतां सदा ॥९९।
स्वकर्मवशतः सर्वजन्तूनां प्रभवाप्ययौ । विजानन्नप्यविद्वान्यः कथं शोचति बान्धवान्
ब्रह्माण्डकोटयो नष्टाः सृष्टयो बहुशो गताः । शुष्यन्ति सागराः सर्वे कैवास्था क्षणजीविते
चलपत्रान्तलग्नाम्बुबिन्दुवत्क्षणभङ्गुरम् । आयुस्त्यजत्यवेलायां कस्तत्र प्रत्ययस्तव १०२
देही प्राक्तनदेहोत्थकर्मणा देहवान्पुनः । तद्देहोत्थेन च पुनरेवं देहः सदात्मनः ॥१०३॥
यथा त्यजति वै जीर्णं वासो गृह्णाति नूतनम् । तथा जीर्णं परित्यज्य देही देहं पुनर्नवम् ॥१०४
भजत्येव सदा तत्र शोकस्यावसरः कुतः । आत्मा न म्रियते जातु जायते न च वर्धते १०५
षड्भावरहितोऽनन्तः सत्यप्रज्ञानविग्रहः । आनन्दरूपो बुद्ध्यादिसाक्षी लयविवर्जितः १०६
एक एव परो ह्यात्मा ह्यद्वितीयः समः स्थितः । इत्यात्मानं दृढं ज्ञात्वा त्यक्त्वा शोकं कुरु क्रियाम्
तैलद्रोण्याः पितुर्देहमुद्धृत्य सचिवैः सह । कृत्यं कुरु यथान्यायमस्माभिः कुलनन्दन १०८
इति संबोधितः साक्षाद्गुरुणा भरतस्तदा । विसृज्याज्ञानजं शोकं चक्रे स विधिवत्क्रियाम्

का किसी से वियोग होता है तो वह वियोग उनके लिये वैराग्य का कारण होता है और वह सुख-शान्ति का विस्तार ही करता है ॥ ९८ ॥ इस लोक में जन्म लेने वालों के लिये मृत्यु सर्वदा अनिवार्य है ॥ ९९ ॥

अपने कर्मवश सम्पूर्ण प्राणियों का जन्म-मृत्यु होते ही हैं, यह जानकर भी अविद्वान् पुरुष अपने बन्धु-बान्धवों के लिये कैसे शोक करते हैं ॥ १०० ॥ करोड़ों ब्रह्माण्ड नष्ट हो गये, अनेकों सृष्टियाँ व्यतीत हो गयीं, एकदिन सम्पूर्ण समुद्र सूख जायेंगे। पुनः इस क्षणिक जीवन में क्या आस्था की जाय ? ॥ १०१ ॥ हिलते हुए पत्ते के नोकपर लटकती हुई जल बूंद के समान यह जीवन क्षणभङ्गुर है, असमय ही आयु छोड़कर चली जाती है, उसका विश्वास क्यों करते हो ? ॥ १०२ ॥ यह जीवात्मा अपने पूर्व जन्म के शरीर से उत्पन्न कर्मों के अनुसार शरीर धारण किया है। पुनः इस शरीर के कर्मों से यह दूसरा शरीर धारण करेगा। इस प्रकार आत्मा को हमेशा (बार-बार) शरीर की प्राप्ति होती है ॥ १०३ ॥ जिस प्रकार मनुष्य अपने पुराने वस्त्र को छोड़कर नवीन वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार देहधारी जीव पुराने शरीर को छोड़कर नवीन शरीर धारण कर लेता है। अतएव इसमें शोक का कारण ही क्या है ? आत्मा तो न कभी मरता है न कभी जन्म लेता है और न कभी बढ़ता ही है ॥ १०४–१०५ ॥ आत्मा षड्भाव विकारों से रहित, अनन्त सच्चित्स्वरूप, आनन्द स्वरूप, बुद्धि आदि का साक्षी तथा अविनाशी है ॥ १०६ ॥

वह परमात्मा एक अद्वितीय और समभाव से स्थित है। इसप्रकार आत्मा को दृढ़ ज्ञान प्राप्तकर शोक रहित होकर सम्पूर्ण कार्य करो ॥ १०७ ॥ हे कुलनन्दन भरत ! अपने पिता का शरीर तैल की नौका में से निकालकर मन्त्रिगण और हमसब ऋषिगण के साथ उनकी विधिवत् अन्त्येष्टि-संस्कार करो ॥ १०८ ॥ गुरुजी के यह समझाने पर भरतजी अज्ञान जन्य शोक से मुक्त हो विधिवत् राजा का अन्त्येष्टि संस्कार किये ॥ १०९ ॥ गुरुजी की आज्ञानुसार अग्निहोत्री की अन्तिम संस्कार जैसा विधिपूर्वक

गुरुणोक्तप्रकारेण आहिताग्नेर्यथाविधि । संस्कृत्य स पितुर्देहं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥११०
एकादशेऽहनि प्राप्ते ब्राह्मणान्वेदपारगान् । भोजयामास विधिवच्छतशोऽथ सहस्रशः १११॥
उद्दिश्य पितरं तत्र ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु । ददौ गवां सहस्राणि ग्रामान् रत्नाम्बराणि च११२
अवसत्स्वगृहे यत्र राममेवानुचिन्तयन् । वसिष्ठेन सह भ्रात्रा मन्त्रिभिः परिवारितः ॥११३

रामेऽरण्यं प्रयाते सह जनकसुतालक्ष्मणाभ्यां सुघोरं
माता मे राक्षसीव प्रदहति हृदयं दर्शनादेव सद्यः ।
गच्छाम्यारण्यमद्य स्थिरमतिरखिलं दूरतोऽपास्य राज्यं
रामं सीतासमेतं स्मितरुचिरमुखं नित्यमेवानुसेवे ॥११४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे सप्तमसर्गः ॥ ७ ॥

पिता के शरीर का शास्त्रविधि से संस्कार सम्पादित कर एकादशाह के दिन सैकड़ों और हजारों वैदिक ब्राह्मणों को विधिवत् भोजन कराये ॥ ११०–१११ ॥ तथा च पिता के निमित्त ब्राह्मणों को विपुल धन, हजारों गौ अनेकों गाँव और रत्न तथा वस्त्र दान किये ॥ ११२ ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करते हुए वशिष्ठजी भाई और मन्त्रियों के साथ घर में रहने लगे ॥ ११३ ॥ जनकनन्दिनी सीता और लक्ष्मण के सहित श्रीरामचन्द्रजी के घोर जंगल में चले जाने से मेरी माता कैकेयी दर्शन से ही राक्षसी के समान मेरे हृदय में दाह उत्पन्न करती है । अतएव मैं निःसन्देह अब शीघ्र ही सम्पूर्ण राज्य छोड़कर वन में जाऊँगा और मधुरमुस्कान से सुशोभित मुख मण्डल वाले श्रीराम और सीता का नित्यप्रति सेवा करूँगा यह भरतजी घर में रहते हुए सोचते रहते थे ॥ ११४ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
सप्तमसर्गः परिपूर्णः ॥ ७ ॥

अष्टमसर्ग

भरतजी का वन के लिये प्रस्थान, मार्ग में गुह और भरद्वाजजी से भेंट तथा चित्रकूट का दर्शन

श्रीमहादेव उवाच

वसिष्ठो मुनिभिः सार्धं मन्त्रिभिः परिवारितः। राज्ञः सभां देवसभासन्निभामविशद्विभुः ॥१॥
तत्रासने समासीनश्चतुर्मुख इवापरः। आनीय भरतं तत्र उपवेश्य सहानुजम् ॥२॥
अब्रवीद्वचनं देशकालोचितमरिन्दमम्। वत्स राज्येऽभिषेक्ष्यामस्त्वामद्य पितृशासनात् ३॥
कैकेय्या याचितं राज्यं त्वदर्थे पुरुषर्षभ। सत्यसन्धो दशरथः प्रतिज्ञाय ददौ किल।४॥
अभिषेको भवत्वद्य मुनिभिर्मन्त्रपूर्वकम्। तच्छ्रुत्वा भरतोऽप्याह मम राज्येन किं मुने ॥५॥
रामो राजाधिराजश्च वयं तस्यैव किङ्कराः। श्वः प्रभाते गमिष्यामो राममानेतुमञ्जसा ॥६॥
अहं यूयं मातरश्च कैकेयीं राक्षसीं विना। हनिष्याम्यधुनैवाहं कैकेयीं मातृगन्धिनीम् ॥७॥
किन्तु मां नो रघुश्रेष्ठः स्त्रीहन्तारं सहिष्यते। तच्छ्रोभूते गमिष्यामि पादचारेण दण्डकान् ॥८॥
शत्रुघ्नसहितस्तूर्णं यूयमायान्तु वा न वा। रामो यथा वने यातस्तथाऽहं वल्कलाम्बरः ॥९॥
फलमूलाकृताहारः शत्रुघ्नसहितो मुने। भूमिशायी जटाधारी यावद्रामो निवर्तते ॥१०॥
इति निश्चित्य भरतस्तूष्णीमेवावतस्थिवान्। साधुसाध्विति तं सर्वे प्रशशंसुर्मुदान्विताः ॥११॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! एक दिन मुनिगण सहित मन्त्रियों से घिरे हुए भगवान् वसिष्ठजी देवसभा के समान राजसभा में आये ॥ १ ॥ वहाँ पर द्वितीय ब्रह्माजी के समान आसन पर विराजमान श्रीवशिष्ठजी अनुज सहित भरतजी को बुलाकर आसन पर बैठाकर देशकालोचित वाक्य अरिन्दम भरतजी से बोले —वत्स ! तुम्हारे पिता के कथनानुसार आज राज्य पद पर हम तुम्हें अभिषिक्त करेंगे ॥ २-३ ॥ "हे पुरुषोत्तम ! तुम्हारे लिये कैकेयी राजादशरथ से राज्य की याचना की थी। सत्यसन्ध राजादशरथ प्रतिज्ञा करने से कैकेयी को बर दे दिये ॥ ४ ॥ अत एव मुनियों द्वारा मन्त्र च्चारणपूर्वक आज तुम्हारा अभिषेक होना चाहिये ॥" यह सुनकर भरतजी बोले—"हे मुनिवर ! राज्य से मेरा क्या प्रयोजन है ? ॥५॥ रामही राजाधिराज हैं और हमलोग उनके दास हैं। कल प्रातःकालः श्रीरामजी को लाने के लिये हम वन में जायेंगे ॥ ६ ॥ मैं,आप लोग एवं राक्षसी कैकेयी को छोड़कर सभी माताएँ वन को चलेंगे। मैं तो नाममात्र की माता कैकेयी को मार डालता, परन्तु श्रीरघुनाथजी मुझ स्त्री हत्यारे को क्षमा नहीं करेंगे। अत एव आपलोग जायें या ना जायँ किन्तु मैं शत्रुघ्न के साथ जिस प्रकार श्रीरामजी वन गये हैं उसी प्रकार वल्कलवस्त्रधारणकर पैदल ही दण्डकारण्य जाऊँगा ॥ ७-९ ॥ जब तक श्री रामजी लौट नहीं आते तब तक शत्रुघ्न के साथ फलमूलादि भोजन, जटाजूट धारण एवं भूमि पर शयन करूँगा ॥ १० ॥ यह निश्चितकर भरतजी मौन हो गये। यह सुन सब लोग प्रसन्न होकर साधु-साधु कहकर उनकी प्रसंशा किये ॥ ११ ॥

ततः प्रभाते भरतं गच्छन्तं सर्वसैनिकाः । अनुजग्मुः सुमन्त्रेण नोदिताः साश्वकुञ्जराः ॥१२॥
कौसल्याद्या राजदारा वसिष्ठप्रमुखा द्विजाः । छादयन्तो भुवं सर्वे पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ॥१३॥
शृङ्गवेरपुरं गत्वा गङ्गाकूले समन्ततः । उवास महती सेना शत्रुघ्नपरिचोदिता ॥१४॥
आगतं भरतं श्रुत्वा गुहः शङ्कितमानसः । महत्या सेनया सार्धमागतो भरतः किल ॥१५॥
पापं कर्तुं न वा याति रामस्याविदितात्मनः । गत्वा तद्धृदयं ज्ञेयं यदि शुद्धस्तरिष्यति ॥१६॥
गङ्गां नोचेत्समाकृष्य नावस्तिष्ठन्तु सायुधाः । ज्ञातयो मे समायत्ताः पश्यन्तः सर्वतोदिशम् १७
इति सर्वान्समादिश्य गुहो भरतमागतः । उपायनानि संगृह्य विविधानि बहून्यपि ॥१८॥
प्रययौ ज्ञातिभिः सार्धं बहुभिर्विविधायुधैः । निवेद्योपायनान्यग्रे भरतस्य समन्ततः ॥१९॥
दृष्ट्वा भरतमासीनं सानुजं सह मन्त्रिभिः । चीराम्बरं घनश्यामं जटामुकुटधारिणम् ॥२०॥
राममेवानुशोचन्तं रामरामेति वादिनम् । ननाम शिरसा भूमौ गुहोऽहमिति चाब्रवीत् ।२१॥
शीघ्रमुत्थाप्य भरतो गाढमालिङ्ग्य सादरम् । पृष्ट्वानामयमव्यग्रः सखायमिदमब्रवीत् ॥२२॥
भ्रातस्त्वं राघवेणात्र समेतः समवस्थितः । रामेणालिङ्गितः सार्द्रनयनेनामलात्मना ॥२३॥
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि यत्त्वया परिभाषितः । रामो राजीवपत्राक्षो लक्ष्मणेन च सीतया ॥२४॥

तत्पश्चात प्रातः काल होने पर भरतजी के प्रस्थान करते समय हाथी, घोड़े के साथ समस्त सैनिक सुमन्त्रजी के कहने से उनके साथ चले ॥ १२ ॥ कौसल्या आदि महारानियाँ तथा वसिष्ठ आदि द्विजगण यथायोग्य उनके आगे पीछे चारो ओर पृथिवी को आच्छादन कर चलने लगे ॥ १३ ॥ शृङ्गवेरपुर पहुँचने पर महान् सेना शत्रुघ्न की प्रेरणा से गङ्गातट पर यत्र-तत्र ठहर गयी ॥ १४ ॥

श्री भरतजी का आगमन सुनकर गुह को शङ्का हुई कि भरत महती सेना के साथ आये हैं, अत एव ये राम के अज्ञात में उनका कोई अनिष्ट करने जाते हों ? उनके पास जाकर उनका हृदय जानना चाहिए, उनका हृदय यदि शुद्ध हो तो वे गंगा पार जायँ ॥ १६-१५ ॥ यदि उनका शुद्ध हृदय न हो तो मेरे ज्ञाति-बान्धव अस्त्र-शस्त्र लेकर चारो ओर देखते रहें और सभी नौका को लेकर गंगा के मध्य स्थित कर दें ॥ १७ ॥ इस प्रकार सबको आदेश देकर विविध भेंट सामग्री के साथ आयुधबँद हो बन्धु-बान्धओं सहित भरतजी के पास आया। वहाँ उनके सामने सब सामग्री रखकर यत्र-तत्र देखते हुए गुह ने देखा कि मेघ के समान श्यामवर्ण वाले श्री भरतजी चीरवस्त्र धारण किये तथा जटाजूट हो छोटे भाई तथा मन्त्रियों के साथ बैठे हैं ॥१८-२०॥ वे राम-राम "यह जप करते श्री राम का ही स्मरण कर रहे हैं। यह देखकर उसने पृथिवी पर सिर रखकर भरतजी को प्रणाम कर बोला—मैं गुह हूँ ॥ २१ ॥ भरतजी ने उसे शीघ्र ही उठाकर आदर पूर्वक गाढ़ आलिङ्गन किया और प्रसन्न मुख हो उसकी कुशलक्षेम पूछकर सखा-भाव से उससे बोले—हे भाई ! तुम यहाँ श्रीरामचन्द्रजी के साथ रहे थे तथा निर्मल हृदय श्रीरामजी सजलनेत्र हो तुम्हारा आलिङ्गन किये थे ॥ २२-२३ ॥ सीता और लक्ष्मण के सहित कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी तुमसे बात-चीत किये थे।

यत्र रामस्त्वया दृष्टस्तत्र मां नय सुव्रत । सीतया सहितो यत्र सुप्तस्तद्दर्शयस्व मे ॥२५॥
त्वं रामस्य प्रियतमो भक्तिमानसि भाग्यवान् । इति संस्मृत्य संस्मृत्य रामं साश्रुविलोचनः॥२६॥
गुहेन सहितस्तत्र यत्र रामः स्थितो निशि । ययौ ददर्श शयनस्थलं कुशसमास्तृतम् ।२७॥
सीताभरणसँल्लग्नस्वर्णबिन्दुभिरर्चितम् । दुःखसन्तप्तहृदयो भरतः पर्यदेवयत् ॥२८॥
अहोऽतिसुकुमारी या सीता जनकनन्दिनी । प्रासादे रत्नपर्यङ्के कोमलास्तरणे शुभे ॥२९॥
रामेण सहिता शेते सा कथं कुशविष्टरे । सीता रामेण सहिता दुःखेन मम दोषतः ।३०॥
धिङ्मां जातोऽस्मि कैकेय्यां पापराशिसमानतः। मन्निमित्तमिदं क्लेशं रामस्य परमात्मनः ॥३१॥
अहोऽतिसफलं जन्म लक्ष्मणस्य महात्मनः । राममेव सदाऽन्वेति वनस्थमपि हृष्टधीः ॥३२॥
अहं रामस्य दासा ये तेषां दासस्य किङ्करः । यदि स्यां सफलं जन्म मम भूयान्न संशयः ॥३३॥
भ्रातर्जानासि यदि तत्कथयस्व ममाखिलम् । यत्र तिष्ठति तत्राहं गच्छाम्यानेतुमञ्जसा ॥३४॥
गुहस्तं शुद्धहृदयं ज्ञात्वा सस्नेहमब्रवीत् । देव त्वमेव धन्योऽसि यस्य ते भक्तिरीदृशी ।३५॥

अत एव तुम्हारा जीवन सफल है, तुम धन्य हो ॥ २४ ॥ हे सुव्रत ! जहाँ पर श्रीरामचन्द्रजी को तुम देखे थे वहाँ मुझे ले चलो । वे सीताजी के सहित जहाँ पर शयन किये थे वह स्थान मुझे दिखाओ ॥ २५ ॥ तुम राम के प्रियतम सखा और भक्तों में भाग्यवान् हो । बारम्बार श्रीराम का स्मरण करने से भरतजी के नेत्रों में जलभर गया ॥ २६ ॥ इस प्रकार विरह से व्याकुल हो वे गुह के साथ उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ पर श्रीरामजी रात्रि के समय निवास किये थे । वहाँ जाकर कुशा-बिछे हुए भगवान् के उस शयन स्थान को देखे ॥ २७ ॥

वह शयन स्थल श्रीसीताजी के सुवर्णाभूषणों से झड़े हुए सुवर्णकणों से सुशोभित था । उसे देखकर भरतजी का हृदय दुःख से विह्वल हो गया और वे विलाप करने लगे कि अहो ! अति सुकुमारी जनकनन्दिनी सीता राजमहल में कोमल बिस्तर युक्त रत्नपर्यङ्क पर श्रीरघुनाथजी के साथ शयन करतीं थीं वे ही मेरे दोषों से श्रीरामजी के साथ इस कुशों की साथरी पर किस प्रकार दुःख पूर्वक शयन करतीं होंगी ॥ २९-३० ॥ मुझे धिक्कार है । मैं कैकेयी के गर्भ से मूर्तिमान पापराशि के समान ही उत्पन्न हूँ । हाय ! परमात्मा राम को मेरे लिये क्लेश उठाना पड़ा ॥ ३१ ॥ ओह ! महात्मा लक्ष्मण का जन्म अतिसफल है, वे वन में भी भगवान् राम के साथ रहते हुए सदा प्रसन्न मन से उन्हीं का अनुसरण करते हैं ॥ ३२ ॥ मैं राम के दासों के दास का भी सेवक हो जाऊँ तो मेरा जन्म सफल हो जाय, इसमें संशय नहीं है ॥ ३३ ॥ हे भाई तुम्हें ज्ञात हो तो मुझे यह सबकुछ बताओ कि श्रीरामजी कहाँ हैं ? जहाँ कहीं भी वे होंगे मैं शीघ्र उन्हें लाने के लिये वही जाऊँगा ॥ ३४ ॥

गुह उनका हृदय शुद्ध देखकर स्नेह पूर्वक बोला—स्वामिन् ! श्रीरामजी, सीता और लक्ष्मण में आपकी इस प्रकार की विशुद्ध भक्ति है, अत एव आप ही धन्य हैं । अनुज लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजी चित्रकूट

रामे राजीवपत्राक्षे सीतायां लक्ष्मणे तथा। चित्रकूटाद्रिनिकटे मन्दाकिन्याविदूरतः ॥३६॥
मुनीनामाश्रमपदे रामस्तिष्ठति सानुजः। जानक्या सहितोऽनन्दात्सुखमास्ते किल प्रभुः ।३७
तत्र गच्छामहे शीघ्रं गङ्गां तर्तुमिहार्हसि। इत्युक्त्वा त्वरितं गत्वा नावः पञ्चशतानि ह ।३८।
समानयत्ससैन्यस्य तर्तुं गङ्गां महानदीम्। स्वयमेवानिनायैकां राजनावं गुहस्तदा ॥३९॥
आरोप्य भरतं तत्र शत्रुघ्नं राममातरम्। वसिष्ठं च तथान्यत्र कैकेयीं चान्ययोषितः ॥४०॥
तीर्त्वा गङ्गां ययौ शीघ्रं भरद्वाजाश्रमं प्रति। दूरे स्थाप्य महासैन्यं भरतः सानुजो ययौ ॥४१॥
आश्रमे मुनिमासीनं ज्वलन्तमिव पावकम्। दृष्ट्वा ननाम भरतः साष्टाङ्गमतिभक्तितः ॥४२॥
ज्ञात्वा दाशरथिं प्रीत्या पूजयामास मौनिराट्। पप्रच्छ कुशलं दृष्ट्वा जटावल्कलधारिणम् ।४३।
राज्यं प्रशासतस्तेऽद्य किमेतद्वल्कलादिकम्। आगतोऽसि किमर्थं त्वं विपनं मुनिसेवितम् ॥४४॥
भरद्वाजवचः श्रुत्वा भरतः साश्रुलोचनः। सर्वं जानासि भगवन् सर्वभूताशयस्थितः ॥४५॥
तथापि पृच्छसे किञ्चित्तदनुग्रह एव मे। कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्यविघातनम् ॥४६॥
वनवासादिकं वापि न हि जानामि किञ्चन। भवत्पादयुगं मेऽद्य प्रमाणं मुनिसत्तम ॥४७॥

पर्वत के समीप मन्दाकिनी नदी के पास मुनियों के आश्रम में रहते हैं। वहाँ जानकी जी के साथ भगवान् राम आनन्द और सुख पूर्वक विराजमान हैं ॥ ३५–३७ ॥ गङ्गा पार कर शीघ्र ही हमलोग वहाँ चलें। यह कहकर गुहने शीघ्र ही सेना के सहित भरतजी को महानदी गङ्गाजी को पार करने के लिये पाँच सौ नावें मँगवायी और स्वयं ही एक राजनौका लेकर आया ॥ ३८–३९ ॥ उस नौका पर भरत, शत्रुघ्न, रामकी माता कौसल्या और वसिष्ठजी को बैठाया, दूसरी नौका पर कैकेयी आदि अन्य राज-महिलाओं को चढ़ाया ॥ ४० ॥ इस प्रकार शीघ्र ही गङ्गाजी को पारकर वे लोग भरद्वाज मुनि के आश्रम के तरफ गये उस आश्रम के दूर ही अपनी महती सेना को छोड़कर वे भाई शत्रुघ्न के साथ आश्रम में गये और प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी मुनिवर भरद्वाज जी को आश्रम में बैठे हुए देखकर उन्हें अत्यन्त भक्ति से साष्टाङ्ग-प्रणाम किये ॥ ४१–४२ ॥ मुनीश्वर भरद्वाज जी को जब यह ज्ञात हुआ कि दशरथ कुमार भरत हैं तब वे प्रीतिपूर्वक उनकी पूजा किये और जटावल्कलादि धारण किये देख भरतजी से पूछे—भाई भरत राज्य का शासन करते हुये यह वल्कलादि धारणकर मुनिजन सेवित इस तपोवन में आज कैसे आये ॥ ४३–४४ ॥

श्रीभरद्वाज मुनि का यह वचन सुनकर भरतजी नेत्रों में जलभर कर बोले—"भगवन्! आप तो सब कुछ जानते ही हैं क्योंकि आप सर्वान्तर्यामी हैं ॥ ४५ ॥ पुनः आप जो पूछते हैं वह मेरे ऊपर आपका कुछ अनुग्रह ही है। कैकेयी श्रीरामचन्द्रजी के राज्याभिषेक में विघ्न और वनवास आदि के विषय में जो कार्य की है मैं आपके चरणारविन्दों का शपथ कर कहता हूँ कि उसमें मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं था ॥ ४६–४७ ॥

इत्युक्त्वा पादयुगलं मुनेः स्पृष्ट्वाऽऽर्तमानसः। ज्ञातुमर्हसि मां देव शुद्धो वाशुद्ध एव वा ॥४८॥
मम राज्येन किं स्वामिन् रामे तिष्ठति राजनि। किङ्करोऽहं मुनिश्रेष्ठ रामचन्द्रस्य शाश्वतः ॥४९॥
अतो गत्वा मुनिश्रेष्ठ रामस्य चरणान्तिके। पतित्वा राज्यसम्भारान्समर्प्यात्रैव राघवम् ।५०॥
अभिषेक्ष्ये वसिष्ठाद्यैः पौरजानपदैः सह। नेष्येऽयोध्यां रमानाथं दासः सेवेऽतिनीचवत् ।५१॥
इत्युदीरितमाकर्ण्य भरतस्य वचो मुनिः। आलिङ्ग्य मूर्ध्न्यवघ्राय प्रशशंस सविस्मयः ।५२॥
वत्स ज्ञातं पुरैवैतद्भविष्यं ज्ञानचक्षुषा। मा शुचस्त्वं परो भक्तः श्रीरामे लक्ष्मणादपि ।५३॥
आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि ससैन्यस्य तवानघ। अद्य भुक्त्वा ससैन्यस्त्वं श्वो गन्ता रामसन्निधिम् ५४
यथाज्ञापयति भवांस्तथेति भरतोऽब्रवीत्। भरद्वाजस्त्वपः स्पृष्ट्वा मौनी होमगृहे स्थितः ॥५५॥
दध्यौ कामदुघां कामवर्षिणीं कामदो मुनिः। असृजत्कामधुक् सर्वं यथाकाममलौकिकम् ॥५६॥
भरतस्य ससैन्यस्य यथेष्टं च मनोरथम्। यथा ववर्ष सकलं तृप्तास्ते सर्वसैनिकाः ॥५७॥
वसिष्ठं पूजयित्वाग्रे शास्त्रदृष्टेन कर्मणा। पश्चात्ससैन्यं भरतं तर्पयामास योगिराट् ॥५८॥
उषित्वा दिनमेकं तु आश्रमे स्वर्गसन्निभे। अभिवाद्य पुनः प्रातर्भरद्वाजं सहानुजः ॥

यह कहकर वे अत्यन्त आर्त्तचित्त होकर मुनि के दोनों पैर पकड़कर बोले—"भगवन्! आप तो स्वयं जान सकते हैं कि मैं दोषी अथवा निर्दोष क्या हूँ? ॥ ४८ ॥ हे स्वामिन्! महाराज रामके रहते हुए मुझे राज्य से क्या प्रयोजन है? हे मुनिश्रेष्ठ! मैं तो हमेशा ही श्रीरामचन्द्रजी का दास हूँ ॥ ४९ ॥ अतएव हे मुनिनाथ! मैं श्रीरामचन्द्रजी के पास जाकर उनके चरणारविन्दों में पड़कर यह सम्पूर्ण राज्य-पाट उन्हें यहीं पर सौंप दूँगा ॥ ५० ॥ तथा च वसिष्ठजी आदि नगरवासी और जनपदवासियों के साथ मिलकर श्रीरामचन्द्रजी का राज्याभिषेक कर अयोध्या को लौटाकर ले चलूँगा और अकिञ्चनदास की भाँति मैं उन लक्ष्मीपति की सेवा करूँगा ॥ ५१ ॥

मुनीश्वर भरद्वाजजी भरत की यह अभिलाषा सुनकर उन्हें आलिङ्गन किये और विस्मय से उनका सिर सूँघकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ५२ ॥ भरद्वाजजी बोले—हे वत्स! अपने ज्ञाननेत्रों से पहले ही मैं यह सब जान लिया था, तुम शोक न करो; तुम लक्ष्मण की तुलना में भी राम के परम भक्त हो ॥५३॥ हे अनघ! मैं सेना के साथ तुम्हारा आतिथ्य सत्कार करना चाहता हूँ। आज सेना सहित तुम यहीं भोजन करो और कल श्रीराम के पास जाना ॥ ५४ ॥ यह सुनकर भरतजी बोले—"आपकी जैसी आज्ञा होगी, वही होगा"। तदनन्तर मुनिवर भरद्वाजजी आचमन कर मौन हो यज्ञशाला में बैठे ॥ ५५ ॥ कामप्रद मुनीश्वर वहाँ बैठकर सम्पूर्ण कामनाओं को सिद्ध करने वाली कामधेनु का स्मरण किये। तदनन्तर वह कामधेनु इच्छानुसार सम्पूर्ण अलौकिक भोगसामग्री उपस्थित कर दी ॥ ५६ ॥ उसने सेना सहित भरतजी के सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण किया जिससे समस्त सैनिक सन्तुष्ट होगये ॥ ५७ ॥ पुनः वे योगिराज शास्त्रानुकूल प्रथम श्रीवसिष्ठजी की पूजा और तत्पश्चात् सेना सहित श्रीभरतजी को तृप्त किये ॥ ५८ ॥ इस

भरतस्तु कृतानुज्ञः प्रययौ रामसन्निधिम् ॥५९॥
चित्रकूटमनुप्राप्य दूरे संस्थाप्य सैनिकान् । रामसंदर्शनाकाङ्क्षी प्रययौ भरतः स्वयम् ॥६०॥
शत्रुघ्नेन सुमन्त्रेण गुहेन च परन्तपः । तपस्विमण्डलं सर्वं विचिन्वानो न्यवर्तत ॥६१॥
अदृष्ट्वा रामभवनमपृच्छदृषिमण्डलम् । कुत्रास्ते सीतया सार्धं लक्ष्मणेन रघूत्तमः ॥६२॥
ऊचुरग्रे गिरेः पश्चाद्गङ्गाया उत्तरे तटे । विविक्तं रामसदनं रम्यं काननमण्डितम् ॥६३॥
सफलैराम्रपनसैः कदलीखण्डसंवृतम् । चम्पकैः कोविदारैश्च पुन्नागैर्विपुलैस्तथा ॥६४॥
एवं दर्शितमालोक्य मुनिभिर्भरतोऽग्रतः । हर्षाद्ययौ रघुश्रेष्ठभवनं मन्त्रिणा सह ॥६५॥
ददर्श दूरादतिभासुरं शुभं रामस्य गेहं मुनिवृन्दसेवितम् ।
वृक्षाग्रसँल्लग्नसुवल्कलाजिनं रामाभिरामं भरतः सहानुजः ॥६६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥८॥

प्रकार उस स्वर्ग के समान आश्रम में एकदिन ठहरकर प्रातःकाल मुनिवर को प्रणाम कर उनकी आज्ञा से अनुज के सहित भरतजी श्रीरामचन्द्रजी के पास चले ॥ ५९ ॥

चित्रकूट के समीप पहुँचने पर वे सैनिकों को दूर रखकर स्वयं श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन की इच्छा से आगे चले ॥ ६० ॥ परन्तप श्रीभरतजी शत्रुघ्न, सुमन्त्र और गुह को साथ लेकर समस्त तपस्वियों के आश्रम में खोजते-खोजते लौट आये किन्तु कहीं भी श्रीरामचन्द्रजी की कुटी नहीं मिली। पुनः वे ऋषि-मण्डली से पूछे—सीता और लक्ष्मण के सहित श्रीरघुनाथजी कहाँ रहते हैं ॥ ६२ ॥ ऋषि बोले—सामने पर्वत के उस तरफ श्रीमन्दाकिनी के उत्तरीय तट पर वन लताओं से मण्डित श्रीराम की परम रमणीक एकान्त कुटी है ॥ ६३ ॥ सफल आम्रवृक्ष, पनस और कदली खण्ड से चारो ओर से घिरी हुई वह कुटी है। उसके चारो ओर बहुत से चम्पक, कचनार और नागकेशर के वृक्ष सुशोभित हैं ॥ ६४ ॥ मुनिगण द्वारा इस प्रकार बताने पर श्रीभरतजी प्रसन्नता पूर्वक मन्त्रियों सहित सबसे आगे श्रीरघुनाथजी के निवास स्थान के लिये चले ॥ ६५ ॥ आगे बढ़ने पर अनुज सहित भरतजी दूर से ही श्रीरामचन्द्रजी का मुनिजन सेवित अत्यन्त रमणीय और कान्तिमान सुन्दर भवन देखे। उसमें वृक्ष की शाखा पर वल्कलवस्त्र और मृगचर्म रखे हुए थे और श्रीरामचन्द्र जी के रहने के कारण वह परम रमणीय था ॥ ६६ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंबादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः अष्टम सर्गः परिपूर्णः ॥ ६ ॥

नवमसर्ग

भगवान् राम और भरत का मिलन, भरतजी का अयोध्यापुरी को लौटना और श्रीरामचन्द्रजी का अत्रिमुनि के आश्रम पर जाना।

श्रीमहादेव उवाच

अथ गत्वाश्रमपदसमीपं भरतो मुदा। सीतारामपदैर्युक्तं पवित्रमतिशोभनम् ॥ १ ॥

स तत्र वज्राङ्कुशवारिजाञ्चितध्वजादिचिह्नानि पदानि सर्वतः।

ददर्श रामस्य भुवोऽतिमङ्गलान्यचेष्टयत्पादरजःसु सानुजः ॥ २ ॥

अहो सुधन्योऽहममूनि रामपादारविन्दाङ्कितभूतलानि।

पश्यामि यत्पादरजो विमृग्यं ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्च नित्यम् ॥ ३ ॥

इत्यद्भुतप्रेमरसाप्लुताशयो विगाढचेता रघुनाथभावने।

आनन्दजाश्रुस्नपितस्तनान्तरः शनैरवापाश्रमसन्निधिं हरेः ॥ ४ ॥

स तत्र दृष्ट्वा रघुनाथमास्थितं दूर्वादलश्यामलमायतेक्षणम्।

जटाकिरीटं नववल्कलाम्बरं प्रसन्नवक्त्रं तरुणारुणद्युतिम् ॥ ५ ॥

विलोकयन्तं जनकात्मजां शुभां सौमित्रिणा सेवितपादपङ्कजम्।

तदाभिदुद्राव रघूत्तमं शुचा हर्षाच्च तत्पादयुगं त्वराग्रहीत् ॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! तत्पश्चात् श्रीभरतजी अत्यन्त मग्न मन से श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजी के चरणचिन्हों से सुशोभित आश्रम के समीप अत्यन्त रमणीय और पवित्र स्थल पर पहुँचे ॥ १ ॥ वहाँ वे सब ओर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के वज्र, अंकुश, कमल और ध्वजा आदि के चिन्हों से सुशोभित तथा पृथिवी के लिये अत्यन्त मङ्गलमय चरणचिन्ह देखे। उन्हें देखकर भाई शत्रुघ्न सहित वे उस चरणारविन्द में लोटने लगे और मन ही मन कहने लगे—"अहो! मैं परमधन्य हूँ, जो आज श्रीरामचन्द्रजी के चरणारविन्दों के चिन्हों से सुशोभित भूमि को देख रहा हूँ, जिन चरण रज को ब्रह्मा आदि देवगण और सम्पूर्ण श्रुतियाँ भी सदा अन्वेषण करती रहती हैं ॥ २-३ ॥

इसप्रकार जिनका हृदय अद्भुत प्रेमरस से भरा हुआ है, मन श्रीरघुनाथजी की भावना में डूबा है तथा जिनका वक्षःस्थल आनन्दाश्रओं से भीगा हुआ है; वे श्रीभरतजी धीरे-धीरे श्रीरामचन्द्रजी के आश्रम के समीप पहुँचे ॥ ४ ॥ उस स्थान पर दूर्वादल के समान श्यामवर्ण और विशाल नेत्रों वाले श्रीरघुनाथजी को वे बैठे हुए देखे, जो जटाओं का मुकुट और नवीन वल्कलवस्त्र धारण किये थे और प्रसन्नवदन तथा मध्याह्न सूर्य के समान प्रभायुक्त थे और शुभलक्षणा श्रीजनकनन्दिनी की ओर देख रहे थे तथा श्रीलक्ष्मणजी जिनके चरणारविन्दों की सेवा कर रहे थे। उन्हें देखते ही भरतजी दौड़कर हर्ष और शोकयुक्त होकर शीघ्र उनके दोनों चरण पकड़ लिये ॥ ५-६ ॥

रामस्तमाकृष्य सुदीर्घबाहुदोर्भ्यां परिष्वज्य सिषिञ्च नेत्रजैः ।
जलैरथाङ्कोपरि संन्यवेशयत्पुनः पुनः संपरिषस्वजे विभुः ॥ ७ ॥
अथ ता मातरः सर्वाः समाजग्मुस्त्वरान्विताः ।
राघवं द्रष्टुकामास्तास्तृषार्ता गौर्यथा जलम् ॥ ८ ॥
रामः स्वमातरं वीक्ष्य द्रुतमुत्थाय पादयोः । ववन्दे साश्रु सा पुत्रमालिङ्ग्यातीव दुःखिता ९।
इतराश्च तथा नत्वा जननी रघुनन्दनः । ततः समागतं दृष्ट्वा वसिष्ठं मुनिपुङ्गवम् ॥१०॥
साष्टाङ्गं प्रणिपत्याह धन्योऽस्मीति पुनः पुनः । यथार्हमुपवेश्याह सर्वानेव रघूद्वहः ॥११॥
पिता मे कुशली किं वा मां किमाहातिदुःखितः । वसिष्ठस्तमुवाचेदं पिता ते रघुनन्दन ॥१२॥
त्वद्वियोगाभितप्तात्मा त्वामेव परिचिन्तयन् । रामरामेति सीतेति लक्ष्मणेति ममार ह ॥१३॥
श्रुत्वा तत्कर्णशूलाभं गुरोर्वचनमञ्जसा । हा हतोऽस्मीति पतितो रुदन् रामः सलक्ष्मणः १४
ततोऽनुरुरुदुः सर्वा मातरश्च तथापरे । हा तात मां परित्यज्य क्व गतोऽसि घृणाकर ॥१५
अनाथोऽस्मि महाबाहो मां को वा लालयेदितः। सीता च लक्ष्मणश्चैव विलेपतुरतो भृशम् ॥१६॥
वसिष्ठः शान्तवचनैः शमयामास तां शुचम् । ततो मन्दाकिनीं गत्वा स्नात्वा ते वीतकल्मषाः ।१७

विशाल भुजावाले श्रीरामचन्द्रजी अपनी दोनों भुजाओं से उन्हें उठाकर आलिङ्गन किये और उन्हें गोद में बैठाकर अपने आँसुओं से सींचते हुए बारम्बार हृदय से लगाये ॥ ७ ॥ पुनः प्यासी गौएँ जिस प्रकार जल की ओर दौड़ती हैं; उस प्रकार कौसल्या आदि सभी माताएँ श्रीरघुनाथजी को देखने के लिये बड़ी शीघ्रता से चलीं ॥ ८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी अपनी माता को देखते ही शीघ्रता पूर्वक उठकर उनके चरणों की वन्दना किये, वे अत्यन्त दुःखी नेत्रों में जल भरकर पुत्र को हृदय से लगायीं ॥ ९ ॥ पुनः श्रीरघुनाथजी उसी प्रकार अन्य माताओं को भी प्रणाम किये। तत्पश्चात् मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी को आते देखकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर बारम्बार कहने लगे कि मैं "धन्य हूँ धन्य हूँ"। पुनः श्रीरघुनाथजी सबको यथायोग्य बैठाकर पूछे ॥ १०–११ ॥

हमारे पिताजी कुशल से तो हैं ? वे मेरे वियोग से अत्यन्त दुःखातुर होकर मेरे लिये क्या आज्ञा दिये हैं ? तब श्रीवसिष्ठजी बोले—"हे रघुनन्दन ! तुम्हारे पिताजी तुम्हारे वियोग से अतिसन्तप्त होकर "हे राम ! हे राम ! हे सीते ! हे लक्ष्मण ! इस प्रकार तुम्हारा ही चिन्तन करते-करते अपने प्राणों को छोड़ दिये ॥ १२–१३ ॥ शूल के समान कानों को लगने वाले गुरु के इन वचनों को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण 'हाय' ! 'हम मारे गये' इस प्रकार रोते हुए सहसा गिर गये ॥ १४ ॥ तब सभी माताएँ और अन्य सभी उपस्थित लोग रोने लगे। श्रीरामचन्द्रजी बारम्बार कहने लगे—"हा तात ! हे दयामय ! आप मुझे छोड़कर कहाँ चले गये ? ॥ १५ ॥ हे महाबाहो ! मैं अनाथ होगया, अब मुझे कौन लाड़-प्यार करेगा ॥१६॥ तदनन्तर वसिष्ठजी शान्तिमय वचनों द्वारा शोक शान्त किये और पुनः सब लोग मन्दाकिनी

राज्ञे ददुर्जलं तत्र सर्वे ते जलकाङ्क्षिणे । पिण्डान्निर्वापयामास रामो लक्ष्मणसंयुतः ॥१८॥
इङ्गुदीफलपिण्याकरचितान्मधुसंप्लुतान् । वयं यदन्नाः पितरस्तदन्नाः स्मृतिनोदिताः ॥१९॥
इति दुःखाश्रुपूर्णाक्षः पुनः स्नात्वा गृहं ययौ । सर्वे रुदित्वा सुचिरं स्नात्वा जग्मुस्तदाश्रमम् २०
तस्मिंस्तु दिवसे सर्वे उपवासं प्रचक्रिरे । ततः परेद्युर्विमले स्नात्वा मन्दाकिनीजले ॥२१॥
उपविष्टं समागम्य भरतो राममब्रवीत् । राम राम महाभाग स्वात्मानमभिषेचय ॥२२॥
राज्यं पालय पित्र्यं ते ज्येष्ठस्त्वं मे पिता तथा। क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रजापरिपालनम् ॥२३॥
इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैः पुत्रानुत्पाद्य तन्तवे । राज्ये पुत्रं समारोप्य गमिष्यसि ततो वनम् ॥२४॥
इदानीं वनवासस्य कालो नैव प्रसीद मे । मातुर्मे दुष्कृतं किञ्चित्स्मर्तुं नार्हसि पाहि नः ।२५।
इत्युक्त्वा चरणौ भ्रातुः शिरस्याधाय भक्तितः। रामस्य पुरतः साक्षाद्दण्डवत्पतितो भुवि ॥२६॥
उत्थाप्य राघवः शीघ्रमारोप्याङ्केऽतिभक्तितः । उवाच भरतं रामः स्नेहार्द्रनयनः शनैः ॥२७॥
शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि त्वयोक्तं यत्तथैव तत् । किन्तु मामब्रवीत्तातो नव वर्षाणि पञ्च च ॥२८॥
उषित्वादण्डकारण्ये पुरं पश्चात्समाविश । इदानीं भरतायेदं राज्यं दत्तं मयाखिलम् ॥२९॥

जाकर स्नान कर पवित्र हुए ॥ १७ ॥ वहाँ सबलोग जलाकांक्षी महाराज दशरथ को जलाञ्जली दिये और लक्ष्मणजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी पिण्डदान किये ॥ १८ ॥ हमारा अन्न हमारे पितरों को प्रिय होगा, यही स्मृति की आज्ञा है, ऐसा कहकर वे इङ्गुदीफल के पिण्ड बनाकर उसपर शहद डालकर उन्हें पिण्डदान किये ॥ १९ ॥ पुनः नेत्रों में शोकाश्रुभरे हुए वे पुनः स्नानकर आश्रम में आए । इस प्रकार और सबलोग भी बहुत देरतक विलाप कर अन्त में स्नान कर आश्रम में लौटे ॥ २० ॥ उसदिन सभीलोग उपवास किये । दूसरे दिन मन्दाकिनी के निर्मल जल में स्नान कर भरतजी ने आश्रम में बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी के पास आकर बोले—"हे राम ! हे राम ! हे महाभाग ! आप अपना अभिषेक कीजिये ॥ २१-२२ ॥ यह पैतृक राज्य आपका ही है, आप इसका पालन कीजिये, आप बड़े भाई हैं, अतएव पिता के तुल्य हैं । महाराज प्रजा का पालन करना यही क्षत्रियों का प्रधान धर्म है ॥ २३ ॥ अतएव आप विविध भाँति यज्ञों से यजन कर पुनः वंशवृद्धि के लिये पुत्र उत्पन्न कर उसे (बड़ा होने पर) राजसिंहासन पर बैठाकर बन को जायें ॥ २४ ॥

हे प्रभो ! इस समय वनवास का समय नहीं है; आप मुझपर प्रसन्न होइये । मेरी माता का जो कुछ भी अपराध है उसे भूलकर मेरी रक्षा कीजिये ॥ २५ ॥ यह कहकर वे भाई के चरणों पर भक्तिपूर्वक अपने मस्तक रख लिये और श्रीरामचन्द्रजी के सम्मुख दण्ड के समान पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ २६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी भरत को शीघ्रता से उठाकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक गोद में बैठा लिये और नेत्रों में प्रेमाश्रु भरकर धीरे-धीरे उनसे कहने लगे—"भाई । मैं जो कहता हूँ वह सुनो । तुम जो कहते हो वह बिल्कुल ठीक है । परन्तु पिताजी मुझे चौदह वर्षतक दण्डकारण्य में रहकर पुनः अयोध्या में आने के लिये आज्ञा दिये हैं ।

ततः पित्रैव सुव्यक्तं राज्यं दत्तं तवैव हि । दण्डकारण्यराज्यं मे दत्तं पित्रा तथैव च ॥३०॥
अतः पितुर्वचः कार्यमावाभ्यामतियत्नतः । पितुर्वचनमुल्लङ्घ्य स्वतन्त्रो यस्तु वर्तते ॥३१॥
स जीवन्नेव मृतको देहान्ते निरयं व्रजेत् । तस्माद्राज्यं प्रशाधि त्वं वयं दण्डकपालकाः ॥३२।
भरतस्त्वब्रवीद्रामं कामुको मूढधीः पिता ।
स्त्रीजितो भ्रान्तहृदय उन्मत्तो यदि वक्ष्यति । तत्सत्यमिति न ग्राह्यं भ्रान्तवाक्यं यथा सुधीः ।३३

श्रीराम उवाच

न स्त्रीजितः पिता ब्रूयान्न कामी नैवमूढधीः । पूर्वं प्रतिश्रुतं तस्य सत्यवादी ददौ भयात् ॥३४॥
असत्याद्भीतिरधिका महतां नरकादपि । करोमीत्यहमप्येतत्सत्यं तस्यै प्रतिश्रुतम् ॥३५॥
कथं वाक्यमहं कुर्यामसत्यं राघवो हि सन् । इत्युदीरितमाकर्ण्य रामस्य भरतोऽब्रवीत् ॥३६॥
तथैव चीरवसनो वने वत्स्यामि सुव्रत । चतुर्दश समास्त्वं तु राज्यं कुरु यथासुखम् ।३७॥

श्रीराम उवाच

पित्रा दत्तं तवैवैतद्राज्यं मह्यं वनं ददौ । व्यत्ययं यद्यहं कुर्यामसत्यं पूर्ववत् स्थितम् ॥३८॥

यह सम्पूर्ण राज्य मैं भरत को देता हूँ ॥ २८-२९ ॥ अतएव स्पष्ट ही पिताजी यह राज्य तुम्हें दिये हैं और वैसे ही मुझे वे दण्डकारण्य का राज्य दिये हैं ॥ ३० ॥

अतएव हम दोनों को प्रयत्न पूर्वक पिताजी के वचनों को सफल करना चाहिये । जो मनुष्य अपने पिता के वचनों का उल्लंघनकर स्वेच्छा पूर्वक आचरण करता है वह जीता हुआ भी मृतक के समान है और शरीर छोड़ने पर नरक को जाता है । अतएव तुम राज्य शासन करो, हम दण्डकारण्य की रक्षा करेंगे ॥ ३१-३२ ॥

तदनन्तर श्रीभरतजी श्रीरामचन्द्रजी से बोले—"पिताजी यदि कामी, मूढ़मति स्त्री के वश में होकर भ्रान्तचित्त और उन्मत्त होने के कारण इस प्रकार कह दिये तो भी उसे सत्य नहीं मानना चाहिये । जिस प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति भ्रान्तपुरुषों के कथन का आदर नहीं करते" ॥ ३३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—पिताजी स्त्रीवश, कामवश अथवा मूढ़धी होकर ऐसा नहीं बोले । वे सत्यवादी अपनी पूर्व-प्रतिज्ञा के अनुसार ही प्रतिज्ञा-भङ्ग के डर से ये वर दिये थे ॥ ३४ ॥ महान पुरुषों को नरक से भी अधिक भय असत्य से हुआ करता है । मैं भी "ऐसा करूँगा" उनसे सत्य प्रतिज्ञा कर चुका हूँ ॥ ३५ ॥ पुनः मैं रघुवंश में जन्म लेकर अपना वचन कैसे उलट सकता हूँ ? श्रीरामचन्द्रजी की यह वाणी सुनकर श्रीभरतजी बोले—हे सुव्रत ! पिताजी के आज्ञानुसार तो मैं आपके समान चौदह वर्ष तक वल्कल वस्त्र धारण कर वन में रहूँगा और आप सुखपूर्वक राज्य करें ॥३६-३७॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—पिताजी तुम्हें यह राज्य और मुझे वनवास दिये हैं । यदि मैं इसका विपरीत आचरण करूँ तो असत्य अपने स्थान पर बना रहेगा ॥३८॥ भरतजी बोले—(यदि

भरत उवाच

अहमप्यागमिष्यामि सेवे त्वां लक्ष्मणो यथा । नोचेत्प्रायोपवेशेन त्यजाम्येतत्कलेवरम् ॥३९॥
इत्येवं निश्चयं कृत्वा दर्भानास्तीर्य चातपे । मनसापि विनिश्चित्य प्राङ्मुखोपविवेश सः ॥४०॥
भरतस्यापि निर्बन्धं दृष्ट्वा रामोऽतिविस्मितः । नेत्रान्तसंज्ञां गुरवे चकार रघुनन्दनः ॥४१॥
एकान्ते भरतं प्राह वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः । वत्स गुह्यं शृणुष्वेदं मम वाक्यात्सुनिश्चितम् ॥४२॥
रामो नारायणः साक्षाद्ब्रह्मणा याचितः पुरा । रावणस्य वधार्थाय जातो दशरथात्मजः ॥४३॥
योगमायापि सीतेति जाता जनकनन्दिनी । शेषोऽपि लक्ष्मणो जातो राममन्वेति सर्वदा ॥४४॥
रावणं हन्तुकामास्ते गमिष्यन्ति न संशयः । कैकेय्या वरदानादि यद्यन्निष्ठुरभाषणम् ॥४५॥
सर्वं देवकृतं नोचेदेवं सा भाषयेत्कथम् । तस्मात्त्यजाग्रहं तात रामस्य विनिवर्तने ॥४६॥
निवर्तस्व महासैन्यैर्भ्रातृभिः सहितः पुरम् । रावणं सकुलं हत्वा शीघ्रमेवागमिष्यति ॥४७॥
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं भरतो विस्मयान्वितः । गत्वा समीपं रामस्य विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥४८॥
पादुके देहि राजेन्द्र राज्याय तव पूजिते । तयोः सेवां करोम्येव यावदागमनं तव ॥४९॥
इत्युक्त्वा पादुके दिव्ये योजयामास पादयोः । रामस्य ते ददौ रामो भरतायातिभक्तितः ॥५०॥

आप वन से लौटना नहीं चाहते तो मुझे भी आज्ञा दीजिये जिससे) मैं भी वन में रहकर लक्ष्मण के समान ही आपकी सेवा करूँ; नहीं तो अन्य जल का परित्याग कर मैं शरीर छोड़ दूँगा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार अपना दृढ़निश्चय प्रकट कर तथा मन में यह दृढ़कर वे धूप में कुशासन बिछाकर पूर्व दिशा की ओर मुखकर बैठ गये ॥ ४० ॥ भरतजी का यह हठ देखकर श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त विस्मित हो गुरु वसिष्ठजी को नेत्रों से संकेत किये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर ज्ञानियों में श्रेष्ठ श्रीवसिष्ठजी भरत को एकान्त में ले जाकर भरतजी से बोले—"वत्स ! मैं सुनिश्चित तुमसे गुह्य रहस्य कहता हूँ, सुनो—भगवान् श्रीराम साक्षात् नारायण हैं। पूर्व समय में ब्रह्माजी के प्रार्थना करने पर वे रावण को मारने के लिये दशरथ के यहाँ पुत्र रूप में अवतार लिये हैं ॥४२-४३॥ इसी प्रकार उनकी योगमाया जनकनन्दिनी सीता के रूप में अवतार ग्रहण की है और शेषजी लक्ष्मण के रूप में उत्पन्न होकर उनका अनुगमन कर रहे हैं। वे रावण को मारना चाहते हैं। अत एव निःसन्देह वन में ही रहेंगे। कैकेयी के वरदान और निष्ठुर भाषण आदि कार्य ये सब देवताओं की प्रेरणा से ही हुए हैं; नहीं तो इसप्रकार के वचन वह कैसे बोल सकती थी? अत-एव हे तात ! तुम रामको लौटाने का आग्रह छोड़ दो और माताओं तथा महती सेना के साथ अयोध्या को लौट चलो। श्रीराचन्द्रजी भी कुलसहित रावण का संहार कर शीघ्र ही अयोध्या लौट आयेंगे ॥४५-४७॥ गुरुजी का यह कथन सुनकर भरतजी को अत्यन्त विस्मय हुआ और वे आश्चर्य चकित होकर श्रीरामचन्द्रजी के पास जाकर बोले—हे राजेन्द्र ! आप मुझे राज्यशासन के लिये अपनी जगत् पूज्य चरणपादुकाएँ दीजिये। जबतक आप लौटकर आयेगें तब तक मैं उन्हीं की सेवा करता रहूँगा ॥ ४८-४९ ॥ यह कहकर भरतजी उनके चरणों में दो दिव्यपादुकाएँ पहना दिये।

गृहीत्वा पादुके दिव्ये भरतो रत्नभूषिते। रामं पुनः परिक्रम्य प्रणनाम पुनः पुनः ॥५१॥
भरतः पुनराहेदं भक्त्या गद्‌गदया गिरा। नवपञ्चसमान्ते तु प्रथमे दिवसे यदि ॥५२॥
नागमिष्यसि चेद्राम प्रविशामि महानलम्। बाढमित्येव तं रामो भरतं सन्यवर्तयत् ॥५३॥
ससैन्यः सवसिष्ठश्च शत्रुघ्नसहितः सुधीः। मातृभिर्मन्त्रिभिः सार्धं गमनायोपचक्रमे ॥५४॥
कैकेयी राममेकान्ते स्रवन्नेत्रजलाकुला। प्राञ्जलिः प्राह हे राम तव राज्यविघातनम् ॥५५॥
कृतं मया दुष्टधिया मायामोहितचेतसा। क्षमस्व मम दौरात्म्यं क्षमासारा हि साधवः ॥५६॥
त्वं साक्षाद्विष्णुरव्यक्तः परमात्मा सनातनः।
मायामानुषरूपेण मोहयस्यखिलं जगत्। त्वयैव प्रेरितो लोकः कुरुते साध्वसाधु वा ॥५७॥
त्वदधीनमिदं विश्वमस्वतन्त्रं करोति किम्। यथा कृत्रिमनर्तक्यो नृत्यन्ति कुहकेच्छया ॥५८॥
त्वदधीना तथा माया नर्तकी बहुरूपिणी। त्वयैव प्रेरिताऽहं च देवकार्यं करिष्यता ॥५९॥
पापिष्ठं पापमनसा कर्माचरमरिन्दम। अद्य प्रतीतोऽसि मम देवानामप्यगोचरः ॥६०॥
पाहि विश्वेश्वरानन्त जगन्नाथ नमोऽस्तु ते। छिन्धि स्नेहमयं पाशं पुत्रवित्तादिगोचरम् ॥६१॥

श्रीरामचन्द्रजी भरत का भक्तिभाव देखकर वे दिव्यपादुकाएँ उन्हें दे दिये ॥ ५० ॥ भरतजी उन रत्नजटित दिव्यपादुकाओं को लेकर श्रीरामचन्द्रजी की परिक्रमा किये और उन्हें बारम्बार प्रणाम किये ॥ ५१ ॥ पुनः वे भक्तिभाव से गद्‌गद्‌ वाणी से बोले —"हे राम ! आप यदि चौदहवर्ष के व्यतीत होने पर प्रथम ही दिन अयोध्या नहीं आये तो मैं महान् अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा"। तब श्रीरामचन्द्रजी बोले कि बहुत अच्छा, यह कह कर वे श्रीभरतजी को विदा किये ॥ ५२–५३ ॥ पुनः बुद्धिमान् भरतजी सम्पूर्ण सेना, वसिष्ठजी, शत्रुघ्न और समस्त माताओं तथा मन्त्रियों के साथ चलने की तैयारी किये ॥ ५४ ॥ इसी समय कैकेयी एकान्त स्थान में सजलनेत्र हो हाथजोड़कर श्रीरामचन्द्रजी से बोली—हे राम ! माया से मुग्धचित्त होजाने से मुझ कुबुद्धि ने तुम्हारे राज्याभिषेक में विघ्न डाल दिया, परन्तु तुम मेरी इस कुटिलता को क्षमा करना; क्योंकि साधुलोग सर्वदा क्षमाशील ही होते हैं ॥ ५५–५६ ॥

आप साक्षात् विष्णु भगवान्, अव्यक्त परमात्मा और सनातन पुरुष हैं। अपने मायामय मनुष्य रूप से सम्पूर्ण जगत् को आप मोहित कर रहे हैं। आपकी ही प्रेरणा से संसार के प्राणी शुभ अथवा अशुभकर्म करते हैं ॥ ५७ ॥ यह सम्पूर्ण संसार (विश्व) आपके ही अधीन है, परतन्त्र होने से यह स्वयं कुछ भी नहीं कर सकता है, जिस प्रकार कृत्रिमनर्तकियाँ कुहक (सूत्रधार) की इच्छा से ही नृत्यकरतीं हैं उसी प्रकार विविध आकार धारण करने वाली मायारूपिणी नटी आपके ही अधीन है। तथा च हे शत्रुदमन ! देवताओं का कार्य करने की इच्छा रखने वाले आपसे प्रेरित होकर मैं पापिनी अपनी दुष्टबुद्धि से यह पापकर्म की थी। आज मैं आपको जान ली, आप देवताओं के भी मन वाणी आदि से अगम्य हैं ॥ ५८–६० ॥ हे विश्वेश्वर ! हे अनन्त ! आप मेरी रक्षा कीजिये। हे जगन्नाथ ! आपको नमस्कार

त्वज्ज्ञानानलखड्गेन त्वामहं शरणं गता । कैकेय्या वचनं श्रुत्वा रामः सस्मितमब्रवीत् ।६२।
यदाह मां महाभागे नानृतं सत्यमेव तत् । मयैव प्रेरिता वाणी तव वक्त्राद्विनिर्गता ॥६३॥
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमत्र दोषः कुतस्तव । गच्छ त्वं हृदि मां नित्यं भावयन्ती दिवानिशम्६४
सर्वत्र विगतस्नेहा मद्भक्त्या मोक्ष्यसेऽचिरात् । अहं सर्वत्र समदृक् द्वेष्यो वा प्रिय एव वा ।६५।
नास्ति मे कल्पकस्येव भजतोऽनुभजाम्यहम् । मन्मायामोहितधियो मामम्ब मनुजाकृतिम् ।६६।
सुखदुःखाद्यनुगतं जानन्ति न तु तत्त्वतः । दिष्ट्या मद्गोचरं ज्ञानमुत्पन्नं ते भवापहम् ॥६७॥
स्मरन्ती तिष्ठ भवने लिप्यसे न च कर्मभिः । इत्युक्त्वा सा परिक्रम्य रामं सानन्दविस्मया ६८
प्रणम्य शतशो भूमौ ययौ गेहं मुदान्विता । भरतस्तु सहामात्यैर्मातृभिर्गुरुणा सह ॥६९॥
अयोध्यामगमच्छीघ्रं राममेवानुचिन्तयन् । पौरजानपदान्सर्वानयोध्यायामुदारधीः ॥७०॥
स्थापयित्वा यथान्यायं नन्दिग्रामं ययौ स्वयम् । तत्र सिंहासने नित्यं पादुके स्थाप्य भक्तितः ७१
पूजयित्वा यथा रामं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः । राजोपचारैरखिलैः प्रत्यहं नियतव्रतः ॥७२॥

है। हे प्रभो! मैं आपके शरण में हूँ। आप अपने ज्ञानाग्निरूप तलवार से मेरे पुत्र तथा धन आदि के स्नेह पाश को काट दीजिये। कैकेयी का यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी मुस्कुराकर बोले—हे महा-भागे! आप जो कुछ कही हैं वह ठीक ही है, मिथ्या नहीं है। मेरी ही प्रेरणा से देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये आपके मुख से ये शब्द निकले थे। इसमें आपका कोई दोष नहीं है। अतएव आप जायँ और अहर्निश निरन्तर हृदय में मेरी भावना करने से आप सर्वत्र स्नेह रहित होकर मेरी भक्ति द्वारा शीघ्र ही मुक्त हो जायेंगी। मैं सर्वत्र समदर्शी हूँ, मेरा कोई भी प्रिय अथवा अप्रिय नहीं है ॥ ६१–६५ ॥ माया करने वाला पुरुष जिस प्रकार अपनी माया से बनाये वस्तुओं में राग-द्वेष नहीं करता, उसी प्रकार मेरा भी किसी में राग-द्वेष नहीं है। जो पुरुष जिस भाँति मेरा भजन करता है; मैं वैसा ही उसका ध्यान रखता हूँ। हे मातः! मेरी माया से विमोहित होकर लोग मुझे सुख-दुःख के वशीभूत हुआ साधारण मनुष्य जानते हैं। वे मेरे वास्तविक रूप को नहीं जानते। आप अत्यन्त भाग्यशाली हैं जो संसार-भय से दूर करने वाला मेरा तत्त्वज्ञान आपको उत्पन्न हुआ ॥ ६६–६७ ॥

मेरा स्मरण करती हुई घर में रहो, इससे आप कर्मबन्धन से निर्लेप रहेंगी। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के कहने पर आनन्द और विस्मय पूर्वक श्रीरामचन्द्रजी की कैकेयी परिक्रमा की और पृथ्वी पर शिर रखकर उन्हें शतशः प्रणाम कर प्रसन्नता पूर्वक अपने घर को चली और भरतजी मन्त्रिगण माताओं और वसिष्ठजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करते हुए शीघ्रता से अयोध्या को लौट चले ॥ ६८–७० ॥ उदार बुद्धि वाले श्रीभरतजी सभी नगरवासियों और देशवासियों को यथायोग्य अयोध्यापुरी में रहने की व्यवस्था कर स्वयं नन्दिग्राम चले गये। उस स्थान पर सिंहासन पर उन दोनों चरणपादुकाओं को रखकर वे श्रीरामचन्द्रजी के समान उनकी नित्यप्रति भक्तिपूर्वक गन्ध पुष्प, अक्षतादि से सम्पूर्ण पूजन सामग्री से

फलमूलाशनो दान्तो जटावल्कलधारकः । अधःशायी ब्रह्मचारी शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥७३॥
राजकार्याणि सर्वाणि यावन्ति पृथिवीतले । तानि पादुकयोः सम्यङ्निवेदयति राघवः ॥७४॥
गणयन् दिवसान्नेव रामागमनकाङ्क्षया । स्थितो रामार्पितमनाः साक्षाद्ब्रह्ममुनिर्यथा ॥७५॥
रामस्तु चित्रकूटाद्रौ वसन्मुनिभिरावृतः । सीतया लक्ष्मणेनापि किञ्चित्कालमुपावसत् ॥७६॥
नागराश्च सदा यान्ति रामदर्शनलालसाः । चित्रकूटस्थितं ज्ञात्वा सीतया लक्ष्मणेन च ॥७७॥
दृष्ट्वा तज्जनसम्बाधं रामस्तत्याज तं गिरिम् । दण्डकारण्यगमने कार्यमप्यनुचिन्तयन् ॥७८॥
अन्वगात्सीतया भ्राता ह्यत्रेराश्रममुत्तमम् । सर्वत्र सुखसंवासं जनसम्बाधवर्जितम् ॥७९॥
गत्वा मुनिमुपासीनं भासयन्तं तपोवनम् । दण्डवत्प्रणिपत्याह रामोऽहमभिवादये ॥८०॥
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डकाननमागतः । वनवासमिषेणापि धन्योऽहं दर्शनात्तव ॥८१॥
श्रुत्वा रामस्य वचनं रामं ज्ञात्वा हरिं परम् । पूजयामास विधिवद्भक्त्या परमया मुनिः ॥८२॥
वन्यैः फलैः कृतातिथ्यमुपविष्टं रघूत्तम । सीतां च लक्ष्मणं चैव सन्तुष्टो वाक्यमब्रवीत् ८३॥

पूजन करने लगे । इस प्रकार श्रीभरतजी फलमूल का आहार करते हुए, इन्द्रियदमन पूर्वक जटा-वल्कल धारण किये, पृथ्वी पर शयन और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शत्रुघ्न के साथ रहने लगे ॥ ७१-७३ ॥

पृथ्वी पर होने वाले सम्पूर्ण राज कार्यों को श्रीभरतजी पादुकाओं के सामने निवेदन कर देते थे ॥७४॥ इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के आने की प्रतीक्षा में समय गिनते हुए श्रीरामचन्द्रजी में ही अपना मन लगाकर साक्षात् ब्रह्मर्षि के समान रहने लगे ॥ ७५ ॥

श्रीरामचन्द्रजी भी चित्रकूट-पर्वत पर सीता और लक्ष्मण के साथ मुनियों से घिरे हुए कुछ दिन व्यतीत किये ॥ ७६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी की सीता और लक्ष्मण के साथ चित्रकूट पर्वत पर विद्यमान सुनकर आसपास के नगर निवासी दर्शन की इच्छा से सदैव आया करते थे ॥ ७७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी उस भीड़ को देखकर और अपने दण्डकारण्य में आने के कार्य को विचारकर उस पर्वत को छोड़ दिये ॥ ७८ ॥ उस स्थान से चलकर वे सीता तथा लक्ष्मण के साथ अत्रिमुनि के अति उत्तम और जन समुदाय शून्य आश्रम में आये जो सभी प्रकार से सुखपूर्वक रहने योग्य था ॥ ७९ ॥

वहाँ पहुँचने पर वे अपने आश्रम में विराजमान और सम्पूर्ण तपोवन को प्रकाशित करते हुए मुनीश्वर के पास जाकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर बोले—"मैं राम आपका अभिवादन करता हूँ ॥ ८० ॥ मैं पिताजी की आज्ञा से दण्डकारण्य में आया हूँ । इस समय वनवास के व्याज से भी आपका दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया ॥ ८१ ॥

श्रीरामचन्द्रजी का यह वचन सुनकर मुनीश्वर उन्हें साक्षात् परब्रह्म जानकर उनकी अत्यन्त भक्तिपूर्वक विधिवत पूजा किये ॥ ८२ ॥ वे जंगल में होने वाले फलों से उनका आतिथ्य सत्कार कर आसन पर विराजमान श्रीरघुनाथजी, महारानी सीताजी और लक्ष्मणजी से प्रसन्नता पूर्वक बोले—"मेरी भार्या 'अनसूया' नाम से विश्रुत है, वह अतिवृद्धा और बहुत दिनों से तपस्या कर रही है । तथा त्र धर्म को

भार्या मेऽतीव संवृद्धा ह्यनसूयेति विश्रुता । तपश्चरन्ती सुचिरं धर्मज्ञा धर्मवत्सला ॥८४॥
अन्तस्तिष्ठति तां सीता पश्यत्वरिनिषूदन । तथेति जानकीं प्राह रामो राजीवलोचनः ॥८५॥
गच्छ देवीं नमस्कृत्य शीघ्रमेहि पुनः शुभे । तथेति रामवचनं सीता चापि तथाऽकरोत् ॥८६॥
दण्डवत्पतितामग्रे सीतां दृष्ट्वाऽतिहृष्टधीः । अनसूया समालिङ्ग्य वत्से सीतेति सादरम् ॥८७॥
दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्मणा । दुकूले द्वे ददौ तस्यै निर्मले भक्तिसंयुता ॥८८॥
अङ्गरागं च सीतायै ददौ दिव्यं शुभानना । न त्यक्ष्यतेऽङ्गरागेण शोभा त्वां कमलानने ॥८९॥
पातिव्रत्यं पुरस्कृत्य राममन्वेहि जानकि । कुशली राघवो यातु त्वया सह पुनर्गृहम् ॥९०॥
भोजयित्वा यथान्यायं रामं सीतासमन्वितम् । लक्ष्मणं च तदा रामं पुनः प्राह कृताञ्जलिः ९१॥

राम त्वमेव भुवनानि विधाय तेषां संरक्षणाय सुरमानुषतिर्यगादीन् ।
देहान्बिभर्षि न च देहगुणैर्विलिप्तस्त्वत्तो बिभेत्यखिलमोहकरी च माया ॥९२॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे नवमः सर्गः ॥९॥

समाप्तमिदमयोध्याकाण्डम्

जानने वाली और धर्म में प्रेम रखने वाली है ॥ ८४ ॥ इस समय वह कुटी के अन्दर है । हे शत्रु दमन रामः ! सीताजी उससे मिल लें । "बहुत अच्छा" यह कहकर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी जानकीजी से बोले—"हे शुभे ! तुम जाकर शीघ्रही देवी अनसूया जी को प्रणाम कर आओ" । 'बहुत अच्छा' यह कहकर सीताजी ने श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा का पालन किया ॥ ८५-८६ ॥

अनसूया जी अपने सामने दण्ड के समान पड़ी सीता को देखकर अति हर्षित हो बेटी सीता यह कहकर आदर पूर्वक आलिङ्गन की और भक्तिसहित उन्हें विश्वकर्मा द्वारा निर्मित दो दिव्यकुण्डल और शुभ्र रेशमी वस्त्र दीं ॥ ८७-८८ ॥ सुन्दर मुखवाली अनसूयाजी सीता को दिव्यअङ्गराग भी दीं और बोलीं—"हे कमल के समान मुखवाली सीते ! इस अङ्गराग को लगाने से तुम्हारे शरीर की शोभा कभी कम नहीं होगी ॥ ८९ ॥ हे जानकि ! तुम पातिव्रत्य धर्म का पालन करती हुई सदा श्री रामकी ही अनुगामिनि रहना । श्रीरघुनाथजी तुम्हारे साथ कुशलपूर्वक घर को लौटें" ॥ ९० ॥ पुनः वे विधिपूर्वक लक्ष्मण और सीताजी के सहित श्रीरामचन्द्रजी को भोजन कराये । तदन्तर वे श्रीरामचन्द्रजी से हाथ जोड़कर बोले—"हे राम ! इन सम्पूर्ण भुवनों की रचना कर आप इनकी रक्षा के लिए देवता, मनुष्य और तिर्यक् योनियों में शरीर धारण करते हैं ; तथापि आप देह के गुणधर्मों से लिप्त नहीं होते; सम्पूर्ण संसार को मोहित करने वाली माया भी आपसे हमेशा भय मानती है ॥९२ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः नवमसर्गः परिपूर्णः ॥ ७ ॥

ॐ

अध्यात्मरामायण

अरण्यकाण्ड

प्रथमसर्ग

विराध-वध

श्रीमहादेव उवाच

अथ तत्र दिनं स्थित्वा प्रभाते रघुनन्दनः । स्नात्वा मुनिं समामन्त्र्य प्रयाणायोपचक्रमे ॥१॥
मुने गच्छामहे सर्वे मुनिमण्डलमण्डितम् । विपिनं दण्डकं यत्र त्वमाज्ञातुमिहार्हसि ॥२॥
मार्गप्रदर्शनार्थाय शिष्यानाज्ञप्तुमर्हसि । श्रुत्वा रामस्य वचनं प्रहस्यात्रिर्महायशाः ॥
प्राह तत्र रघुश्रेष्ठं राम राम सुराश्रय ॥३॥
सर्वस्य मार्गद्रष्टा त्वं तव को मार्गदर्शकः । तथापि दर्शयिष्यन्ति तव लोकानुसारिणः ॥४॥
इति शिष्यान्समादिश्य स्वयं किञ्चित्तमन्वगात्। रामेण वारितः प्रीत्या अत्रिः स्वभवनं ययौ ५॥
क्रोशमात्रं ततो गत्वा ददर्श महतीं नदीम् । अत्रेः शिष्यानुवाचेदं रामो राजीवलोचनः ॥६॥
नद्याः संतरणे कश्चिदुपायो विद्यते न वा । ऊचुस्ते विद्यते नौका सुदृढा रघुनन्दन ॥७॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती ! उस दिन अत्रि मुनि के आश्रम में निवास कर दूसरे दिन प्रातः काल स्नानकर श्रीरघुनाथजी मुनिवर की अनुमति लेकर चलने की तैयारी किये ॥ १ ॥ श्रीरघुनाथजी बोले हे मुने ! हमलोग मुनिमण्डली से सुशोभित दण्डकारण्य जाना चाहते हैं, आप आज्ञा दें ॥ २ ॥ हमे मार्ग प्रदर्शन करने के लिये कुछ शिष्यों को आज्ञा दीजिये । श्रीरामजी की यह बात सुनकर महायशस्वी अत्रि मुनि हँसकर बोले—हे रघुश्रेष्ठ राम ! आप देवताओं के आश्रय स्वरूप आप सबके मार्ग दर्शक हैं, पुनः आपका मार्गदर्शक कौन होगा ? तथापि इस समय लोक व्यवहार का अनुसरण करने वाले आपको मार्ग बतलाने के लिये शिष्यगण जायेंगे ॥ ३-४ ॥ तत्पश्चात् शिष्यों को आज्ञा देकर मुनिवर अत्रि भी स्वयं कुछ दूर रामचन्द्रजी के साथ गये और पुनः उनके प्रीतिपूर्वक मना करने पर अपने आश्रम को लौट आये ।

एक कोश चलने के अनन्तर राजीव लोचन श्रीरामजी ने एक बहुत बड़ी नदी देखी । नदी को देखकर श्रीरघुनाथजी अत्रिमुनि के शिष्यों से पूछे ॥ ६ ॥ नदी को पार करने के लिये कोई उपाय है या नहीं ? यह सुनकर मुनि के शिष्यगण बोले—हे रघुनन्दन ! एक सुदृढ नौका है ॥ ७ ॥ हमलोग उसमें

तारयिष्यामहे युष्मान्वयमेव क्षणादिह । ततो नावि समारोप्य सीतां राघवलक्ष्मणौ ।८।
क्षणात्सन्तारयामासुर्नदीं मुनिकुमारकाः । रामाभिनन्दिताः सर्वे जग्मुरत्रेरथाश्रमम् ॥९॥
तावेत्य विपिनं घोरं झिल्लीझङ्कारनादितम् । नानामृगगणाकीर्णं सिंहव्याघ्रादिभीषणम् ॥१०॥
राक्षसैर्घोररूपैश्च सेवितं रोमहर्षणम् । प्रविश्य विपिनं घोरं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।११॥
इतः परं प्रयत्नेन गन्तव्यं सहितेन मे । धनुर्गुणेन संयोज्य शरानपि करे दधत् ॥१२॥
अग्रे यास्याम्यहं पश्चात्त्वमन्वेहि धनुर्धरः । आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनोः ।१३।
चक्षुश्चारय सर्वत्र दृष्टं रक्षोभयं महत् । विद्यते दण्डकारण्ये श्रुतपूर्वमरिन्दम ।।१४॥
इत्येवं भाषमाणौ तौ जग्मतुः सार्धयोजनम् । तत्रैका पुष्करिण्यास्ते कह्लारकुमुदोत्पलैः ॥१५॥
अम्बुजैः शीतलोदेन शोभमाना व्यदृश्यत । तत्समीपमथो गत्वा पीत्वा तत्सलिलं शुभम् ।१६।
ऊषुस्ते सलिलाभ्याशे क्षणं छायामुपाश्रिताः । ततो ददृशुरायान्तं महासत्वं भयानकम् ॥१७॥
करालदंष्ट्रवदनं भीषयन्तं स्वगर्जितैः । वामांसे न्यस्तशूलाग्रग्रथितानेकमानुषम् ॥१८॥
भक्षयन्तं गजव्याघ्रमहिषं वनगोचरम् । ज्याऽऽरोपितं धनुर्धृत्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् १९

चढ़ाकर आपको क्षण मात्र में ही नदी के उस पार पहुँचा देंगे ॥ वे यह कहकर सीता सहित श्री राम और लक्ष्मण जी को नौकापर चढ़ाकर क्षण भर में नदी के उस पार पहुँचा दिये और श्रीरामचन्द्रजी द्वारा प्रशंसित होकर अत्रिमुनि के आश्रम पर लौट आये ॥ ८–९ ॥

इसके बाद झिल्लियों की झनकार से गुञ्जायमान, नाना मृगगणों से पूर्ण और सिंह व्याघ्रादि हिंस्र पशुओं से भयानक एक घोर वन में पहुँचे ॥ १० ॥ भयंकर रूपधारण करने वाले राक्षसों से सेवित उस रोमाञ्चकारी घोर वन में घुसकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी से बोले ॥ ११ ॥ यहाँ से सावधान होकर हम लोगों को चलना चाहिये। मैं धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर और हाथ में बाण लेकर आगे चलता हूँ, तथा तुम धनुष धारण कर पीछे-पीछे चलो, हम दोनों के मध्य सीता जीव और ब्रह्म के मध्य माया की भांति चलें ॥ १२–१३ ॥ हे अरिन्दम ! सर्वत्र सतर्कता पूर्वक दृष्टि रखो। हमने पहले सुना था उसी प्रकार का इस दण्डकारण्य में राक्षसों का महद् भय दिखायी देता है ॥ १४ ॥ इस प्रकार बातचीत करते वे लोग सार्ध योजन (डेढ़ योजन छः कोश) चले गये वहाँ पर कुमुद, कह्लार, कमलादि से सुशोभित एक पुष्करिणी थी ॥ १५ ॥ वह कमल और शीतल जल से सुशोभित दिखायी दे रही थी। वे उसके पास जाकर उसका सुन्दर जल पान किये ॥ १६ ॥

वे लोग जल का पान कर जल के किनारे वृक्ष की छाया में बठ गये उसी समय उन्होंने महाबलवान भयानक राक्षस को आते हुये देखा ॥ १७ ॥ उस राक्षस का मुख तीक्ष्ण दाढ़ों से परिपूर्ण था और उसके बायें कन्धे पर एक त्रिशुल रखा था, उसमें अनेक मनुष्य ग्रथित थे ॥ १८ ॥ वह अनेक जंगली हाथी, सिंह, और भैंसों को खाता हुआ आ रहा था। उस राक्षस को देखकर श्रीरामचन्द्रजी धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर

पश्य भ्रातर्महाकायो राक्षसोऽयमुपागतः। आयात्यभिमुखं नोऽग्रे भीरूणां भयमावहन् ।२०
सज्जीकृतधनुस्तिष्ठ मा भैर्जनकनन्दिनि। इत्युक्त्वा बाणमादाय स्थितो राम इवाचलः २१
स तु दृष्ट्वा रमानाथं लक्ष्मणं जानकीं तदा। अट्टहासं ततः कृत्वा भीषयन्निदमब्रवीत् ।२२॥
कौ युवां बाणतूणीरजटावल्कलधारिणौ। मुनिवेषधरौ बालौ स्त्रीसहायौ सुदुर्मदौ।२३॥
सुन्दरौ बत मे वक्त्रप्रविष्टकवलोपमौ। किमर्थमागतौ घोरं वनं व्यालनिषेवितम् ॥२४॥
श्रुत्वा रक्षोवचो रामः स्मयमान उवाच तम्। अहं रामस्त्वयं भ्राता लक्ष्मणो मम सम्मतः २५
एषा सीता मम प्राणवल्लभा वयमागताः। पितृवाक्यं पुरस्कृत्य शिक्षणार्थं भवादृशाम् ।२६।
श्रुत्वा तद्रामवचनमट्टहासमथाकरोत्। व्यादाय वक्त्रं बाहुभ्यां शूलमादाय सत्वरः ।२७।
मां न जानासि राम त्वं विराधं लोकविश्रुतम्। मद्भयान्मुनयः सर्वे त्यक्त्वा वनमितो गताः २८
यदि जीवितुमिच्छास्ति त्यक्त्वा सीतां निरायुधौ। पलायतं न चेच्छीघ्रं भक्षयामि युवामहम् २९
इत्युक्त्वा राक्षसः सीतामादातुमभिदुद्रुवे। रामश्चिच्छेद तद्बाहू शरेण प्रहसन्निव ॥३०॥
ततः क्रोधपरीतात्मा व्यादाय विकटं मुखम्। राममभ्यद्रवद्रामश्चिच्छेद परिधावतः ॥३१॥

धनुष को उठाये और लक्ष्मण जी से बोले ॥ १९ ॥ भाई लक्ष्मण! देखो यह उग्ररूप महाकाय राक्षस कायर पुरुषों को डराने वाला आरहा है ॥ २० ॥ तुम धनुष पर बाण चढ़ाकर तैयार हो जाओ और जानकि! तुम डरना मत। यह कहकर श्रीरामचन्द्रजी धनुष के ऊपर बाण चढ़ाकर पर्वत के समान निश्चल होकर खड़े हो गये ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् वह राक्षस राम लक्ष्मण और जानकी को देखकर बड़ा अट्टहास कर इस प्रकार बोला ।२२॥ तुम दोनों बालक बाण तूणीर और वल्कल आदि मुनिवेश धारण किये हुए कौन हो? तुम्हारे साथ एक स्त्री भी है और तुम दोनों बड़े उन्मत दिखायी पड़ रहे हो ॥ २३ ॥ तुम दोनों सुन्दर और मेरे मुख में जाने वाले मेरे कवल (ग्रास) के समान हो। तुम हिंस्र जन्तुओं से पूर्ण इस घोर जंगल में क्यों आये हो ॥ २४ ॥ राक्षस का यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी उस राक्षस से बोले—मैं राम हूँ और यह मेरा प्यारा छोटा भाई लक्ष्मण है ॥ २५ ॥ यह मेरी प्राणवल्लभा सीता है। हम पिता की आज्ञा से तुम जैसों को शिक्षा देने के लिये वन में आये हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी का वचन सुनकर वह अट्टहास कर मुँह फैलाकर जल्दी से अपने हाथों में शूल लेकर बोला—हे राम। क्या तुम मुझे नहीं जानते? मैं जगत्प्रसिद्ध विराध हूँ। मेरे भय से भयभीत होकर मुनिगण दूसरे वन में चले गये हैं ॥ २८ ॥ तुम लोगों को जीवित रहने की इच्छा है तो सीता और अपने आयुधों को छोड़कर भाग जाओ, नहीं तो तुम दोनों को मैं खा जाऊँगा ॥ २९ ॥

ऐसा कहकर वह राक्षस सीताजी को पकड़ने के लिये सीताजी की ओर दौड़ा। इस पर रामचन्द्रजी हँसते हुए अपने बाण से उसकी भुजाएँ काट दिये ॥ ३० ॥ इस पर वह अत्यन्त क्रोधित हो विकराल मुख को

पदद्वयं विराधस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥३२॥
ततः सर्प इवास्येन ग्रसितुं राममापतत् । ततोऽर्धचन्द्राकारेण बाणेनास्य महच्छिरः ॥३३॥
चिच्छेद रुधिरौघेण पपात धरणीतले । ततः सीता समालिङ्ग्य प्रशशंस रघूत्तमम् ॥३४॥
ततो दुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवगणेरिताः । ननृतुश्चाप्सरा हृष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥३५॥

विराधकायादतिसुन्दराकृतिर्विभ्राजमानो विमलाम्बरावृतः ।
प्रतप्तचामीकरचारुभूषणो व्यदृश्यताग्रे गगने रविर्यथा ॥३६॥
प्रणम्य रामं प्रणतार्तिहारिणं भवप्रवाहोपरमं घृणाकरम् ।
प्रणम्य भूयः प्रणनाम दण्डवत्प्रपन्नसर्वार्तिहरं प्रसन्नधीः ॥३७॥

विराध उवाच

श्रीराम राजीवदलायताक्ष विद्याधरोऽहं विमलप्रकाशः ।
दुर्वाससाऽकारणकोपमूर्तिना शप्तः पुरा सोऽद्य विमोचितस्त्वया ॥३८॥
इतः परं त्वच्चरणारविन्दयोः स्मृतिः सदा मेऽस्तु भवोपशान्तये ।
त्वन्नामसङ्कीर्तनमेव वाणी करोतु मे कर्णपुटं त्वदीयम् ॥३९॥
कथामृतं पातु करद्वयं ते पादारविन्दार्चनमेव कुर्यात् ।
शिरश्च ते पादयुगप्रणामं करोतु नित्यं भवदीयमेवम् ॥४०॥

फैलाकर श्रीरामचन्द्रजी की ओर दौड़ा। इसपर श्रीरामचन्द्रजी विराध के दोनों पैर काट दिये ॥ ३१–३२ ॥ इस पर वह विराध सर्प के समान अपने मुख से श्रीरामचन्द्रजी को निगल जाने के लिये उनकी ओर चला। तब भगवान् राम एक अर्द्धचन्द्राकार बाण से उसका महान् शिर काट दिये। तब वह खुन से लथ-पथ होकर तत्क्षण पृथ्वीपर गिर पड़ा। इस प्रकार उसको मरा देखकर श्री सीताजी रघुश्रेष्ठ भगवान राम का आलिंगन कर उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की ॥ ३३–३४ ॥ उस समय आकाश में देवगण दुन्दुभी बजाने लगे, अप्सराएँ प्रसन्नता पूर्वक नाचने लगीं, गन्धर्व और किन्नरगण गाने लगे ॥ ३५ ॥ इसी समय विराध के शरीर से आकाशस्थित सूर्यदेव के समान, सुन्दर वस्त्रों और प्रतप्त सुवर्णालंकारों से सुसज्जित सुन्दर पुरुष प्रकट हुआ ॥ ३६ ॥ उस समय वह पुरुष शरणागत जनों का दुःख दूर करने वाले, संसार-सागर से पार करने वाले, दयामय श्रीरामचन्द्रजी को प्रसन्न मन से प्रणाम कर प्रसन्नचित्त, शरणागतों के सम्पूर्ण क्लेश हरण करने वाले प्रभु को पृथ्वीपर दण्डवत् कर बारम्बार प्रणाम किया ॥ ३७ ॥

विराध बोला—हे कमलदल लोचन श्रीराम ! मैं विमलप्रकाश विद्याधर हूँ। मुझे पूर्व समय में अकारण क्रोध करने वले श्री दुर्वासाजी शाप दिये थे, आज मैं उस शाप से आपके द्वारा मुक्त हो गया ॥ ३८ ॥ इसके बाद भवभय दूर करने वाले आपके चरणारविन्दों की मेरी सदा स्मृति हो, मेरी वाणी आपके नाम का संकीर्तन करे, कान आपके कथामृत का पान करते रहें, और शिर आपके दोनों चरणों में

नमस्तुभ्यं भगवते विशुद्धज्ञानमूर्तये । आत्मारामाय रामाय सीतारामाय वेधसे ॥४१॥
प्रपन्नं पाहि मां राम यास्यामि त्वदनुज्ञया । देवलोकं रघुश्रेष्ठ माया मां मा वृणोतु ते ॥४२॥
इति विज्ञापितस्तेन प्रसन्नो रघुनन्दनः । ददौ वरं तदा प्रीतो विराधाय महामतिः ॥४३॥
गच्छ विद्याधराशेषमायादोषगुणा जिताः । त्वया मद्दर्शनात्सद्यो मुक्तो ज्ञानवतां वरः ॥४४॥
मद्भक्तिर्दुर्लभा लोके जाता चेन्मुक्तिदा यतः । अतस्त्वं भक्तिसम्पन्नः परं याहि ममाज्ञया ॥४५॥

रामेण रक्षोनिधनं सुघोरं शापाद्विमुक्तिर्वरदानमेवम् ।
विद्याधरत्वं पुनरेव लब्धं रामं गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥४६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

xxxxx

प्रणाम करता रहे यह आप मुझे वरदान दें ॥ ३९-४० ॥ हे विशुद्धज्ञानमूर्ति भगवन् ! आपको नमस्कार है। आप अपने स्वरूप में रमण करने वाले होने से श्रीराम हैं, (अपनी माया के साथ विराजमान रहने से युगलमूर्ति) श्रीसीताराम हैं और संसार के रचयिता हैं, आपको नमस्कार है ॥ ४१ ॥ हे राम ! मैं आपका शरणागत हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये । हे रघुश्रेष्ठ ! आपकी आज्ञा से मैं देवलोक में जा रहा हूँ ; आपकी माया मुझे आच्छादित न करे यह आप कृपा कीजिये ॥ ४२ ॥ इस प्रकार विराध के द्वारा प्रार्थना करने पर महामति श्रीरघुनाथजी प्रसन्न होकर उसे यह वर दिये ॥ ४३ ॥ विद्याधर ! तुम जाओ । तुम माया के सम्पूर्ण गुण-दोषों को जीत लिये हो, तू ज्ञानियों में श्रेष्ठ और मेरे दर्शन के प्रभाव से शीघ्र मुक्त हो गया है ॥ ४४ ॥ मेरी भक्ति संसार में दुर्लभ है, यदि मेरी भक्ति हो जाय तो मुक्तिदायिनी होती है । तुम मेरी भक्ति से सम्पन्न हो, अतः मेरी आज्ञा से परमधाम को जाओ ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी घोर राक्षस का निधन किये, उसको शाप से मुक्ति, वरदान और विद्याधरत्व प्रदान किये । जो व्यक्ति इन लीलाओं का कीर्तन द्वारा श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति करता है, वह निश्चय सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करता है ।

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितयाभाषा-
टीकयासहितः प्रथमसर्गः परिपूर्णः ॥ ५ ॥

—※—

द्वितीयसर्ग

शरभङ्ग तथा सुतीक्ष्ण आदि मुनीश्वरों से भेंट

श्रीमहादेव उवाच

विराधे स्वर्गते रामो लक्ष्मणेन च सीतया। जगाम शरभङ्गस्य वनं सर्वसुखावहम् ॥ १ ॥
शरभङ्गस्ततो दृष्ट्वा रामं सौमित्रिणा सह। आयान्तं सीतया सार्धं सम्भ्रमादुत्थितः सुधीः २
अभिगम्य सुसम्पूज्य विष्टरेषुपवेशयत्। आतिथ्यमकरोत्तेषां कन्दमूलफलादिभिः ॥ ३ ॥
प्रीत्याह शरभङ्गोऽपि रामं भक्तपरायणम्। बहुकालमिहैवासं तपसे कृतनिश्चयः ॥ ४ ॥
तव सन्दर्शनाकाङ्क्षी राम त्वं परमेश्वरः।
अद्य मत्तपसा सिद्धं यत्पुण्यं बहु विद्यते। तत्सर्वं तव दास्यामि ततो मुक्तिं व्रजाम्यहम् ॥५

समर्प्य रामस्य महत्सुपुण्यफलं विरक्तः शरभङ्गयोगी।
चितिं समारोहयदप्रमेयं रामं ससीतं सहसा प्रणम्य ॥ ६ ॥

ध्यायंश्चिरं राममशेषहृत्स्थं दूर्वादलश्याममलम्बुजाक्षम्।
चीराम्बरं स्निग्धजटाकलापं सीतासहायं सहलक्ष्मणं तम् ॥ ७ ॥

को वा दयालुः स्मृतकामधेनुरन्यो जगत्यां रघुनायकादहो।
स्मृतो मया नित्यमनन्यभाजा ज्ञात्वा स्मृतिं मे स्वयमेव यातः ॥ ८ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! विराध के स्वर्ग चले जाने पर लक्ष्मण और सीताजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी शरभङ्ग मुनि के सर्वसुखदायक वन में आये। १ ॥ शरभङ्गमुनि लक्ष्मण और सीता सहित श्रीरामचन्द्र को आते देखकर शीघ्रता से उठ खड़े हुए ॥ २ ॥ उनकी आगवानी कर यथाविधि पूजा कर उनको आसन पर बैठाये तथा कन्द-मूल-फल आदि से उनका आतिथ्य-सत्कार किये ॥ ३ ॥ तत्पश्चात् शरभङ्गमुनि भक्तवत्सल भगवान् राम से प्रीतिपूर्वक बोले—मैं बहुत समय से आपके दर्शन का निश्चय कर तपस्या करता हुआ यहीं रहता हूँ। हे राम ! आप साक्षात् परमेश्वर हैं। मैं तपस्या के द्वारा प्राप्त अपने सम्पूर्ण पुण्यों को आपको समर्पित कर मुक्ति प्राप्त करूँगा ॥ ४-५ ॥ यह कहकर विरक्त योगिवर शरभङ्ग अपना महान् पुण्यफल को श्रीरामचन्द्रजी को समर्पण कर श्रीसीता के सहित अप्रमेय भगवान् को प्रणाम कर सहसा चिता में आरूढ हुए ॥ ६ ॥ उस समय वे सर्वान्तर्यामी दूर्वादल के समान श्यामवर्ण, कमलनयन, चीराम्बरधारी, स्निग्ध जटाजूट वाले श्रीरामचन्द्र का सीता और लक्ष्मण के सहित बहुत देर तक ध्यान करते रहे ॥ ७ ॥ पुनः (मन ही मन कहने लगे) अहो ! इस संसार में श्रीरघुनाथजी को छोड़कर स्मरण करने से कामनाओं को पूर्ण करनेवाला दूसरा कौन दयालु है ? मैं अनन्यभाव से उनका नित्य स्मरण करता था, इसलिए मेरे स्मरण को समझकर वे स्वयं मेरे पास चले आये ॥ ८ ॥ देवेश ! दशरथनन्दन

पश्यत्विदानीं देवेशो रामो दाशरथिः प्रभुः । दग्ध्वा स्वदेहं गच्छामि ब्रह्मलोकमकल्मषः ॥९॥
अयोध्याधिपतिर्मेऽस्तु हृदये राघवः सदा । यद्वामाङ्के स्थिता सीता मेघस्येव तडिल्लता ।१०
इति रामं चिरं ध्यात्वा दृष्ट्वा च पुरतः स्थितम् । प्रज्वाल्य सहसा वह्निं दग्ध्वा पञ्चात्मकं वपुः ११
दिव्यदेहधरः साक्षाद्ययौ लोकपतेः पदम् ।
ततो मुनिगणाः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः । आजग्मू राघवं द्रष्टुं शरभङ्गनिवेशनम् ॥१२॥
दृष्ट्वा मुनिसमूहं तं जानकीरामलक्ष्मणाः । प्रणेमुः सहसा भूमौ मायामानुषरूपिणः ॥१३॥
आशीर्भिरभिनन्द्याथ रामं सर्वहृदि स्थितम् । ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे धनुर्बाणधरं हरिम् ।।१४॥
भूमेर्भारावताराय जातोऽसि ब्रह्मणाऽर्थितः । जानीमस्त्वां हरिं लक्ष्मीं जानकीं लक्ष्मणं तथा १५
शेषांशं शङ्खचक्रे द्वे भरतं सानुजं तथा । अतश्चादौ ऋषीणां त्वं दुखं भोक्तुमिहार्हसि ।१६।

आगच्छ यामो मुनिसेवितानि वनानि सर्वाणि रघूत्तम क्रमात् ।
द्रष्टुं सुमित्रासुतजानकीभ्यां तदा दयास्मासु दृढा भविष्यति ॥१७॥

इति विज्ञापितो रामः कृताञ्जलिपुटैर्विभुः । जगाम मुनिभिः सार्धं द्रष्टुं मुनिवनानि सः ।१८॥

प्रभु राम मेरे तरफ देखते रहें, मैं अपने शरीर को जलाकर निष्पाप हो ब्रह्मलोक को जा रहा हूँ ॥ ९ ॥ अयोध्यापति श्रीरामचन्द्रजी सर्वदा मेरे हृदय में विद्यमान रहें, जिनके वामाङ्क में मेघ की बिजली के समान श्रीसीताजी विद्यमान हैं ॥ १० ॥

इस प्रकार बहुत देर तक श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान करते हुए अपने सामने स्थित श्रीरामचन्द्रजी को देखते हुए मुनिवर शरभङ्गजी सहसा अग्नि जलाकर अपना पाञ्चभौतिक शरीर जला दिये ॥ ११ ॥ तदनन्तर दिव्य शरीर धारण कर साक्षात् ब्रह्मलोक चले गये। तत्पश्चात् दण्डकारण्य निवासी समस्त मुनिगण श्रीरघुनाथजी का दर्शन करने के लिए शरभङ्ग मुनि के आश्रम पर आये ॥ १२ ॥

उस मुनि समाज को देखकर माया-मानव रूप श्रीराम, सीता और लक्ष्मण सहसा पृथ्वी पर मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किये ॥ १३ ॥ वे लोग सबके हृदय में स्थित श्रीराम को आशिर्वाद द्वारा अभिनन्दन किए और धनुष-बाण धारण करने वाले श्रीहरि को हाथ जोड़कर बोले ॥ १४ ॥ हमलोग जानते हैं कि आप ब्रह्माजी की प्रार्थना पर भूमि का भार हरण करने के लिए अवतार लिए हैं। आप साक्षात् श्रीहरि, श्रीजानकीजी लक्ष्मी, श्रीलक्ष्मणजी शेषजी का अंश और भरत-शत्रुघ्न भगवान् के शङ्ख और चक्र हैं; यह भी हमलोग जानते हैं। अतः आप सर्वप्रथम यहाँ ऋषियों का दुःख दूर करें ॥ १५-१६ ॥ हे रघुश्रेष्ठ! आप श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी सहित मेरे साथ आइये और क्रमशः मुनीश्वरों के आश्रमों को देखने चलिए। इससे हमलोगों के ऊपर आपकी दया दृढ़ होगी ॥ १७ ॥

इस प्रकार हाथ जोड़कर निवेदन करने पर श्रीरामजी मुनियों के साथ उनके तपोवनों को देखने के

ददर्श तत्र पतितान्यनेकानि शिरांसि सः । अस्थिभूतानि सर्वत्र रामो वचनमब्रवीत् ।१९॥
अस्थीनि केषामेतानि किमर्थं पतितानि वै । तमूचुर्मुनयो राम ऋषीणां मस्तकानि हि ॥२०॥
राक्षसैर्भक्षितानीश प्रमत्तानां समाधितः । अन्तरायं मुनीनां ते पश्यन्तोऽनुचरन्ति हि २१
श्रुत्वा वाक्यं मुनीनां स भयदैन्यसमन्वितम् । प्रतीज्ञामकरोद्रामो वधायाशेषरक्षसाम् ॥२२॥
पूज्यमानः सदा तत्र मुनिभिर्वनवासिभिः । जानक्या सहितो रामो लक्ष्मणेन समन्वितः २३
उवास कतिचित्तत्र वर्षाणि रघुनन्दनः । एवं क्रमेण संपश्यन्नृषीणामाश्रमान्विभुः ॥२४॥
सुतीक्ष्णस्याश्रमं प्रागात्प्रख्यातमृषिसंकुलम् । सर्वर्तुगुणसंपन्नं सर्वकालसुखावहम् ॥२५॥
राममागतमाकर्ण्य सुतीक्ष्णः स्वयमागतः ।
अगस्त्य शिष्यो रामस्य मन्त्रोऽपासनतत्परः । विधिवत्पूजयामास भक्त्युत्कण्ठितलोचनः ॥२६।

सुतीक्ष्ण उवाच

त्वन्मन्त्रजाप्यहमनन्तगुणाप्रमेय सीतापते शिवविरिञ्चिसमाश्रिताङ्घ्र ।
संसारसिन्धुतरणामलपोतपाद रामाभिराम सततं तव दासदासः ॥२७॥
मामद्य सर्वजगतामविगोचरस्त्वं त्वन्मायया सुतकलत्रगृहान्धकूपे ।
मग्नं निरीक्ष्य मलपुद्गलपिण्डमोहपाशानुबद्धहृदयं स्वयमागतोऽसि ॥२८॥

लिए गये ॥ १८ ॥ वहाँ पर वे अनेक छिन्न शिर पड़े हुए देखे। उन्हें देखकर श्रीरामचन्द्रजी मुनियों से पूछे ॥ १९ ॥ ये हड्डियाँ किनकी हैं और यहाँ किसलिए पड़ी हैं ? तत्पश्चात् मुनियों ने कहा—हे राम ! ये मस्तक ऋषियों के हैं ॥ २० ॥ हे समर्थ ! इनलोगों को राक्षस खा गये हैं। समाधि में स्थित रहने से भागने में असमर्थ मुनीश्वरों को खाने के लिए मौका देखते हुए वे राक्षस यत्र-तत्र भ्रमण करते रहते हैं ॥२१॥ मुनियों के भय और दीनतापूर्वक यह वाणी सुनकर श्रीरामचन्द्र जी समस्त राक्षसों का वध करने के लिए प्रतिज्ञा किये ॥ २२ ॥ इस प्रकार क्रमपूर्वक ऋषियों के आश्रम देखते हुए भगवान् श्रीरघुनाथजी वन में रहने वाले मुनियों द्वारा नित्य पूजित होते हुए लक्ष्मण और सीता के साथ कुछ वर्ष वहाँ रहे ॥ २३–२४ ॥ पुनः वे सुविख्यात सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम में गये, वह आश्रम ऋषियों से भरा हुआ और सर्व ऋतु-गुण-सम्पन्न तथा सब समय सुखदायक था ॥ २५ ॥ राम-मन्त्र के उपासक और अगस्त्य मुनि के शिष्य सुतीक्ष्णजी श्रीरामचन्द्र का आगमन सुन कर स्वयं आगे आये और उनकी यथाविधि पूजा किये। उस समय भक्ति से उनके नेत्र उत्कण्ठित थे ॥ २६ ॥

सुतीक्ष्ण बोले—हे अनन्तगुण अप्रमेय सीतापते ! मैं आपका ही मन्त्र जप करता हूँ। हे अभिराम राम ! श्रीशिवजी और ब्रह्माजी आपके चरणाश्रित हैं, आपके पादपद्म संसार सागर को पार करने के लिए पोत (जहाज) हैं। हे नाथ ! मैं सतत् आपका दासानुदास हूँ ॥ २७ ॥ आप संसार के सम्पूर्ण प्राणियों के इन्द्रियों से अगोचर हैं। परन्तु मलमूत्र रूपी शरीर के मोह के पाश में फँसे हुए मनवाले मुझ दीन को

त्वं सर्वभूतहृदयेषु कृतालयोऽपि त्वन्मन्त्रजाप्यविमुखेषु तनोषि मायाम् ।
त्वन्मन्त्रसाधनपरेष्वपयाति माया सेवानुरूपफलदोऽसि यथा महीपः ॥२९॥
विश्वस्य सृष्टिलयसंस्थितिहेतुरेकस्त्वं मायया त्रिगुणया विधिरीशविष्णू ।
भासीश मोहितधियां विविधाकृतिस्त्वं यद्वद्रविः सलिलपात्रगतो ह्यनेकः ॥३०॥
प्रत्यक्षतोऽद्य भवतश्चरणारविन्दं पश्यामि राम तमसः परतः स्थितस्य ।
दृग्रूपतस्त्वमसतामविगोचरोऽपि त्वन्मन्त्रपूतहृदयेषु सदा प्रसन्नः ॥३१॥
पश्यामि राम तव रूपमरूपिणोऽपि मायाविडम्बनकृतं सुमनुष्यवेषम् ।
कन्दर्पकोटिसुभगं कमनीयचापबाणं दयार्द्रहृदयं स्मितचारुवक्त्रम् ॥३२॥
सीतासमेतमजिनाम्बरमप्रधृष्यं सौमित्रिणा नियतसेवितपादपद्मम् ।
नीलोत्पलद्युतिमनन्तगुणं प्रशान्तं मद्भागधेयमनिशं प्रणमामि रामम् ॥३३॥
जानन्तु राम तव रूपमशेषदेशकालाद्युपाधिरहितं घनचित्प्रकाशम् ।
प्रत्यक्षतोऽद्य मम गोचरमेतदेव रूपं विभातु हृदये न परं विकाङ्क्षे ॥३४॥

अपनी ही माया से मोहित होकर पुत्र-कलत्र, गृह आदि के अन्धकूप में मुझे पड़ा देखकर आप स्वयं पधारे हैं ॥ २८ ॥ आप सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में निवास करनेवाले हैं। जो लोग आपके मन्त्र का जप करने से विमुख हैं, उन्हें अपनी माया से मोहित करते हैं और जो प्राणी आपके मन्त्र को जप करने में तल्लीन हैं; उनकी माया आप दूर करते हैं। इस प्रकार अपनी-२ सेवा के अनुसार राजा की भाँति सबको आप फल देने वाले हैं ॥ २९ ॥ हे ईश ! आपही इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के आदि कारण होते हुए त्रिगुणात्मिका माया के कारण ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूपों में भासित होते हैं। जिस प्रकार जल के पात्रों में एक ही सूर्य प्रतिबिम्बित होकर अनेक भासित होते हैं, उसी प्रकार मोहित बुद्धिवालों के लिए आप विविध आकृतियों में प्रतीत हो रहे हैं ॥ ३० ॥ हे राम ! आप सर्वथा अज्ञान से पृथक् हैं। तथापि आज मैं आपके चरणारविन्द को प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। अतः आप सबके साक्षी होने से असत्प्राणियों को अगोचर होकर भी आपका मन्त्र जप करने से पवित्र हृदय वालों पर आप सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ ३१ ॥ हे राम ! रूप रहित होने पर भी अपने माया से धारण किये हुए आपके सुन्दर वेष को मैं देख रहा हूँ। यह वेष करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर और धनुष बाण धारण किये हुए हैं। आप दयार्द्र हृदय और इषत् हास्ययुक्त मनोहर हैं ॥ ३२ ॥ सीता सहित, मृगचर्मधारी अजेय, नित्य श्रीलक्ष्मणजी द्वारा सेवित पादपद्म वाले, नीलकमल की कान्तियुक्त, अनन्तगुण सम्पन्न, अतिशान्त मेरा सौभाग्यरूप श्रीराममूर्ति को अहर्निश मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३३ ॥ हे राम ! देश, काल, पात्र आदि समस्त उपाधियों से रहित, चिद्घन प्रकाश स्वरूप आपके स्वरूप को जानने वाले जानते रहें, किन्तु मेरे हृदय में आज से मुझे जो प्रत्यक्ष रूप दिखायी पड़ रहा है, यही रूप मेरे हृदय में विराजमान है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी रूप की मुझे कामना नही है ॥ ३४ ॥

इत्येवं स्तुवतस्तस्य रामः सस्मितमब्रवीत् । मुने जानामि ते चित्तं निर्मलं मदुपासनात् ।३५।
अतोऽहमागतोद्रष्टुं मद्दते नान्यसाधनम् । मन्मन्त्रोपासका लोके मामेव शरणं गताः ।३६
निरपेक्षा नान्यगतास्तेषां दृश्योऽहमन्वहम् । स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु त्वत्कृतं मत्प्रियं सदा ॥३७।
सद्भक्तिर्मे भवेत्तस्य ज्ञानं च विमलं भवेत् । त्वं ममोपासनादेव विमुक्तोऽसीह सर्वतः ॥३८॥
देहान्ते मम सायुज्यं लप्स्यसे नात्र संशयः ।
गुरुं ते द्रष्टुमिच्छामि ह्यगस्त्यं मुनिनायकम् । किंचित्कालं तत्र वस्तुं मनो मे त्वरयत्यलम् ।३९
सुतीक्ष्णोऽपि तथेत्याह श्वो गमिष्यसि राघव । अहमप्यागमिष्यामि चिराद्दृष्टो महामुनिः ।४०।

अथ प्रभाते मुनिना समेतो रामः ससीतः सह लक्ष्मणेन ।
अगस्त्यसंभाषणलोलमानसः शनैरगस्त्यानुजमन्दिरं ययौ ॥४१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

इस प्रकार सुतीक्ष्ण की स्तुति सुनकर मुस्कुराकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुने ! तुम्हारा चित्त मेरी उपासना से निर्मल हो गया है, यह मैं जानता हूँ ॥ ३५ ॥ मेरे अतिरिक्त तुम्हारा अन्य कोई साधन नहीं है। अतः मैं तुम्हें देखने के लिए आया हूँ। जो लोग संसार में मेरे मन्त्र की उपासना करनेवाले और मेरी शरणागति में रहनेवाले हैं ॥ ३६ ॥ तथा च नित्य निरपेक्ष और अनन्यगतिक हैं उन्हें मैं नित्य प्रति दर्शन देता हूँ। तुम्हारे द्वारा किये हुए स्तोत्र का जो व्यक्ति पाठ करता है, उसे मेरी विशुद्ध भक्ति तथा निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है। तुम मेरी उपासना से विमुक्त हो गये हो ॥ ३७-३८ ॥ शरीर त्याग के अनन्तर मेरे सायुज्य पद को निःसन्देह प्राप्त करोगे। मैं तुम्हारे गुरु मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी से मिलना चाहता हूँ। मेरा मन कुछ दिन उनके पास रहने के लिए उतावला हो रहा है ॥ ३९ ॥

सुतीक्ष्ण बोले—हे राघव ! "तथा इति" वहाँ कल चलियेगा। महामुनि गुरुवर को देखे मुझे भी बहुत दिन हो गये। अतः मैं भी आपके साथ वहाँ चलूँगा ॥ ४० ॥ इसके बाद प्रातःकाल होने पर सीता और लक्ष्मण सहित मुनिवर सुतीक्ष्ण के साथ श्रीरामचन्द्रजी अगस्त्यजी से सम्भाषण की उत्कण्ठा से धीरे-धीरे अगस्त्यजी के छोटे भाई (अग्निजिह्व मुनि) के आश्रम की ओर चल दिये।

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया
सहितः द्वितीयसर्गः परिपूर्णः ॥ २ ॥

→❀←

तृतीयसर्ग

मुनिवर अगस्त्यजी से भेंट

श्रीमहादेव उवाच

अथ रामः सुतीक्ष्णेन जानक्या लक्ष्मणेन च। अगस्त्यस्यानुजस्थानं मध्याह्ने समपद्यत ॥१॥
तेन सम्पूजितः सम्यग्भुक्त्वा मूलफलादिकम्। परेद्युः प्रातरुत्थाय जग्मुस्तेऽगस्त्यमण्डलम् ॥२॥
सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं नानामृगगणैर्युतम्। पक्षिसङ्घैश्च विविधैर्नादितं नन्दनोपमम् ॥३॥
ब्रह्मर्षिभिर्देवर्षिभिः सेवितं मुनिमन्दिरैः। सर्वतोऽलङ्कृतं साक्षाद्ब्रह्मलोकमिवापरम् ॥४॥
बहिरेवाश्रमस्याथ स्थित्वा रामोऽब्रवीन्मुनिम्। सुतीक्ष्ण गच्छ त्वं शीघ्रमागतं मां निवेदय ॥५॥
अगस्त्यमुनिवर्याय सीतया लक्ष्मणेन च। महाप्रसाद इत्युक्त्वा सुतीक्ष्णः प्रययौ गुरोः ॥६
आश्रमं त्वरया तत्र ऋषिसङ्घसमावृतम्। उपविष्टं रामभक्तैर्विशेषेण समायुतम् ॥७॥
व्याख्यातराममन्त्रार्थं शिष्येभ्यश्चातिभक्तितः। दृष्ट्वागस्त्यं मुनिश्रेष्ठं सुतीक्ष्णः प्रययौ मुनेः ॥८॥
दण्डवत्प्रणिपत्याह विनयावनतः सुधीः।
रामो दाशरथिर्ब्रह्मन् सीतया लक्ष्मणेन च। आगतो दर्शनार्थं ते बहिस्तिष्ठति साञ्जलिः ॥९॥

अगस्त्य उवाच

शीघ्रमानय भद्रं ते रामं मम हृदि स्थितम्। तमेव ध्यायमानोऽहं काङ्क्षमाणोऽत्र संस्थितः१०

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! श्रीरामचन्द्रजी सीता, लक्ष्मण सहित सुतीक्ष्ण को साथ लिये मध्याह्न समय में अगस्त्य मुनि के छोटे भाई (अग्निजिह्व मुनि) के आश्रम में पहुँचे ॥ १ ॥ उन्होंने उनकी विधिवत् पूजा की। उनके द्वारा दिये गये कन्द-मूल फल खाकर दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर अगस्त्य मुनि के आश्रम को प्रस्थान किये ॥ २ ॥ वह आश्रम सभी ऋतुओं के फूल और फलों से परिपूर्ण, विविध वन्य पशुओं से युक्त, विविध पक्षियों से गुञ्जित नन्दनवन के समान सुशोभित था ॥ ३ ॥ चारो तरफ से ऋषियों के आश्रमों से सुशोभित, ब्रह्मर्षियों और देवर्षियों से सेवित वह आश्रम साक्षात् दूसरे ब्रह्मलोक के समान प्रतीत हो रहा था ॥ ४ ॥ आश्रम के बाहर रहकर श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्ण से बोले—हे सुतीक्ष्ण ! तुम शीघ्र जाकर मुनिवर अगस्त्यजी से सीता और लक्ष्मण सहित मेरे आने की सूचना दे दो। तब सुतीक्ष्णजी यह महाप्रसाद है, यह कहकर शीघ्रता से गुरुजी के आश्रम में गये। वहाँ जाकर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी को मुनिमण्डलियों विशेषतः रामभक्तों से घिरे हुए बैठे और अत्यन्त भक्तिपूर्वक शिष्यों को राममन्त्र की व्याख्या सुनाते देखे। यह देखकर सुतीक्ष्णजी उनके पास गये ॥ ५-८ ॥ उन्हें विनयपूर्वक दण्डवत् प्रणाम कर सुधी सुतीक्ष्ण बोले —ब्रह्मन्! दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण के साथ आपके दर्शन के लिये आये और अञ्जलि बाँधे आश्रम के बाहर खड़े हैं ॥ ९ ॥

अगस्त्यजी बोले—वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो ! शीघ्र मेरे हृदय में स्थित रहने वाले राम को लाओ।

इत्युक्त्वा स्वयमुत्थाय मुनिभिः सहितो द्रुतम् । अभ्यगात्परया भक्त्या गत्वा राममथाब्रवीत् ११
आगच्छ राम भद्रं ते दिष्ट्या तेऽद्य समागमः । प्रियातिथिर्मम प्राप्तोऽस्यद्य मे सफलं दिनम् १२
रामोऽपि मुनिमायान्तं दृष्ट्वा हर्षसमाकुलः । सीतया लक्ष्मणेनापि दण्डवत्पतितो भुवि ॥१३॥
द्रुतमुत्थाप्य मुनिराड्राममालिङ्ग्य भक्तितः । तद्गात्रस्पर्शजाह्लादस्रवन्नेत्रजलाकुलः ॥१४॥
गृहीत्वा करमेकेन करेण रघुनन्दनम् । जगाम स्वाश्रमं हृष्टो मनसा मुनिपुङ्गवः ॥१५॥
सुखोपविष्टं संपूज्य पूजया बहुविस्तरम् । भोजयित्वा यथान्यायं भोज्यैर्वन्यैरनेकधा ।१६।
सुखोपविष्टमेकान्ते रामं शशिनिभाननम् । कृताञ्जलिरुवाचेदमगस्त्यो भगवानृषिः ॥१७॥
त्वदागमनमेवाहं प्रतीक्षन्समवस्थितः । यदा क्षीरसमुद्रान्ते ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा ।१८॥
भूमेर्भारापनुत्त्यर्थं रावणस्य वधाय च ।
तदादि दर्शनाकाङ्क्षी तव राम तपश्चरन् । वसामि मुनिभिः सार्धं त्वामेव परिचिन्तयन् १९
सृष्टेः प्रागेक एवासीर्निर्विकल्पोऽनुपाधिकः । त्वदाश्रया त्वद्विषया माया ते शक्तिरुच्यते ।२०।
त्वामेव निर्गुणं शक्तिरावृणोति यदा तदा । अव्याकृतमिति प्राहुर्वेदान्तपरिनिष्ठिताः ।२१॥

मैं उनके दर्शन की अकांक्षा से उन्हीं का ध्यान करता हूँ ॥ १० ॥ यह कहकर शीघ्र मुनियों के साथ उठकर स्वयं श्रीरामचन्द्रजी के पास आये और उनसे अत्यन्त भक्तिपूर्वक बोले ॥ ११ ॥ हे राम ! आइये आपका कल्याण हो । बड़े भाग्य से आपका आज समागम हुआ है । आज मुझे मेरे प्रिय अतिथि प्राप्त हुए हैं, आज का दिन सफल है ॥ १२ ॥

मुनीश्वर को आते देखकर श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त आनन्दित होकर लक्ष्मण और सीता के सहित पृथ्वीपर दण्ड के समान लेट गये ॥ १३ ॥ मुनिराज रामको शीघ्र उठाकर भक्तिपूर्वक हृदय से लगा लिये और उनके शरीर के स्पर्श से प्राप्त आनन्द से उनके नेत्रों में आनन्दाश्रु भर आये ॥१४॥ तत्पश्चात् मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी अपने एक हाथ से उनका हाथ पकड़कर प्रसन्न मन से उन्हें अपने आश्रम में ले आये ॥ १५॥ उन्हें सुखपूर्वक आसन पर बैठाकर विस्तार पूर्वक उनकी विधिवत् पूजा किये तथा समयानुकूल विविध प्रकार के वन्यफल भोजन कराये ॥१३॥ एकान्त में सुखपूर्वक बैठे चन्द्रमा की कान्ति के समान शरीर वाले श्रीरामचन्द्रजी से भगवान् अगस्त्यमुनि हाथ जोड़कर बोले ॥१७॥ हे राम ! पूर्व समय में क्षीर समुद्र के निकट ब्रह्माजी आपसे पृथ्वी का भार हरण करने के लिये रावण का वध करने की प्रार्थना किये थे, उसी समय से आपके दर्शन की इच्छा से तपस्या तथा आपका चिन्तन करता हुआ आपके आने की प्रतीक्षा में मुनियों के साथ मैं यहाँ रहता हूँ ॥ १८–१९ ॥ सृष्टि के पहले आप निर्विकल्प और उपाधि रहित थे, आपमें आश्रित और आपको विषय बनाने वाली माया आपकी शक्ति कही जाती है ॥ २० ॥ जिस समय आप निर्गुण को आपकी माया ढ़ँक लेती है, उस समय वेदान्त निष्ठपुरुष इसे "अव्याकृत" कहते हैं ॥ २१॥ कोई इसे मूलप्रकृति और

मूलप्रकृतिरित्येके प्राहुर्मायेति केचन । अविद्या संसृतिर्बन्ध इत्यादि बहुधोच्यते ॥२२॥
त्वया संक्षोभ्यमाणा सा महत्तत्त्वं प्रसूयते । महत्तत्त्वादहङ्कारस्त्वया सञ्चोदितादभूत् ॥२३॥
अहङ्कारो महत्तत्त्वसंवृतस्त्रिविधोऽभवत् । सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चेति भण्यते ॥२४।
तामसात्सूक्ष्मतन्मात्राण्यासन् भूतान्यतः परम् । स्थूलानि क्रमशो राम क्रमोत्तरगुणानि ह ।२५॥
राजसानीन्द्रियाण्येव सात्विका देवता मनः । तेभ्योऽभवत्सूत्ररूपं लिङ्गं सर्वगतं महत् ॥२६॥
ततो विराट् समुत्पन्नः स्थूलाद्भूतकदम्बकात् । विराजः पुरुषात्सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥२७॥
देवतिर्यङ्मनुष्याश्च कालकर्मक्रमेण तु । त्वं रजोगुणतो ब्रह्मा जगतः सर्वकारणम् ॥२८॥
सत्त्वाद्विष्णुस्त्वमेवास्य पालकः सद्भिरुच्यते । लये रुद्रस्त्वमेवास्य त्वन्मायागुणभेदतः ॥२९॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्या वृत्तयो बुद्धिजैर्गुणैः । तासां विलक्षणो राम त्वं साक्षी चिन्मयोऽव्ययः
सृष्टिलीलां यदा कर्तुमीहसे रघुनन्दन । अङ्गीकरोषि मायां त्वं तदा वै गुणवानिव ।३१
राम माया द्विधा भाति विद्याऽविद्येति ते सदा ।
प्रवृत्तिमार्गनिरता अविद्यावशवर्तिनः । निवृत्तिमार्गनिरता वेदान्तार्थविचारकाः ॥३२।

कोई माया कहते हैं। यही अविद्या संसृति और बन्धन आदि विविध नामों से व्यवहृत होती है ॥ २२ ॥ आपके द्वारा क्षोभित होने पर महत्तत्व उत्पन्न होता है। आपकी प्रेरणा से ही महत्तत्व से अहङ्कार उत्पन्न होता है। महत्तत्व से संवृत अहंकार तीन प्रकार का हुआ, वह सात्विक, राजस और तामस कहा जाता है ॥ २४ ॥ हे राम ! तामस अहंकार से सूक्ष्मतन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) हुईं, इन सूक्ष्म-तन्मात्राओं से इनके गुण के अनुसार क्रमशः स्थूलभूत (आकाश, वायु अग्नि, जल पृथ्वी) उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ राजस अहंकार से दस इन्द्रियाँ और सात्त्विक अहङ्कार से इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता और मन उत्पन्न हुए। इन सबको मिलाकर समष्टि सूक्ष्मशरीर रूप हिरण्यगर्भ (सूत्रात्मा) हुआ ॥ २६ ॥ पुनः स्थूल-भूतों से विराट् उत्पन्न हुआ और विराट् पुरुष से यह सम्पूर्ण स्थावर-जंगम संसार प्रकट हुआ ॥ २७ ॥ आप काल और कर्म के अनुसार देव, तिर्यक् और मनुष्य आदि विविध योनियों में प्रकट हुए हैं; माया के गुणों के भेद से आप रजोगुण से युक्त होकर जगत्कर्ता ब्रह्माजी, सत्त्वगुण द्वारा जगत् का पालन करने वाला विष्णु और तमो गुण द्वारा जगत् का लय करने वाले भगवान् रुद्र हुए हैं ऐसा विद्वान् पुरुष मानते हैं ॥२८–२९॥

हे राम ! बुद्धि के तीन गुणों (सत्त्व, रज और तम) से प्राणियों की जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्थायें होतीं हैं। परन्तु आप इन तीनों से पृथक्, साक्षी, चिन्मय और अविकारी हैं ॥ ३० ॥ हे रघुनन्दन ! जब आप सृष्टि लीला करना चाहते हैं, तब माया को अङ्गीकार कर गुणवान जैसा हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ हे राम ! आपकी यह माया सदा विद्या और अविद्या दो रूपों में भासित होती हैं। प्रवृत्ति मार्ग में रहने वाले अविद्या के वशीभूत और वेदान्त के अर्थों को विचार करने वाले निवृत्ति परायण और आपकी भक्ति में निरत रहने वाले विद्यामय कहे जाते हैं, जो अविद्या के वशीभूत हैं; वे सर्वदा जन्म-मरणरूप

त्वद्भक्तिनिरता ये च ते वै विद्यामयाः स्मृताः ।
अविद्यावशगा ये तु नित्यं संसारिणश्च ते । विद्याभ्यासरता ये तु नित्यमुक्तास्त एव हि३३
लोके त्वद्भक्तिनिरतास्त्वन्मन्त्रोपासकाश्च ये । विद्या प्रादुर्भवेत्तेषां नेतरेषां कदाचन ॥३४॥
अतस्त्वद्भक्तिसम्पन्ना मुक्ता एव न संशयः । त्वद्भक्त्यमृतहीनानां मोक्षः स्वप्नेऽपि नो भवेत्
किं रामबहुनोक्तेन सारं किंचिद्ब्रवीमि ते । साधुसङ्गतिरेवात्र मोक्षहेतुरुदाहृता ॥३६॥
साधवः समचित्ता ये निःस्पृहा विगतैषिणः । दान्ताः प्रशान्तास्त्वद्भक्ता निवृत्ताखिलकामनाः
इष्टप्राप्तिविपत्त्योश्च समाः सङ्गविवर्जिताः । संन्यस्ताखिलकर्माणः सर्वदा ब्रह्मतत्पराः ॥३८।
यमादिगुणसम्पन्नाः संतुष्टा येन केनचित् । सत्सङ्गमो भवेद्यर्हि त्वत्कथाश्रवणे रतिः ॥३९॥
समुदेति ततो भक्तिस्त्वयि राम सनातने । त्वद्भक्तावुपपन्नायां विज्ञानं विपुलं स्फुटम् ।४०।
उदेति मुक्तिमार्गोऽयमाद्यश्चतुरसेवितः । तस्माद्राघव सद्भक्तिस्त्वयि मे प्रेमलक्षणा ॥४१।
सदा भूयाद्धरे सङ्गस्त्वद्भक्तेषु विशेषतः । अद्य मे सफलं जन्म भवत्संदर्शनादभूत् ॥४२॥
अद्य मे क्रतवः सर्वे बभूवुः सफलाः प्रभो ।
दीर्घकालं मया तप्तमनन्यमतिना तपः । तस्येह तपसो राम फलं तव यदर्चनम् ॥४३॥

संसार में फँसे रहते हैं और विद्याभ्यासी नित्य मुक्त हैं ॥ ३२-३३ ॥ संसार में जो आपकी भक्ति में निरत और आपके मन्त्र के उपासक हैं, उनमें विद्या का प्रादुर्भाव होता है; अन्य किसी के हृदय में नहीं ॥ ३४ ॥ इसलिए आपकी भक्ति में रहने वाले पुरुष निश्चय जीवन मुक्त हैं। आपकी भक्तिरूपी अमृत के विना स्वप्न में भी मुक्ति नहीं हो सकती ॥ ३५ ॥ हे राम ! अधिक कहने से क्या ? मैं सारतत्त्व कहता हूँ, संसार में साधुसंगति ही मोक्ष का मुख्य कारण कहा गया है। जो लोग संसार में सम्पत्ति और विपत्ति में समानचित्त, स्पृहारहित, पुत्र-धनादि की इच्छा रहित, इन्द्रियों को दमन करनेवाले, सम्पूर्ण कामनाओं से शून्य, शान्तचित्त, आपके भक्त, इष्ट तथा अनिष्ट फल में समान रहने वाले, संगहीन, समस्त-कर्मों का त्याग करने वाले, सर्वदा ब्रह्म परायण रहने वाले, यम आदि गुणों से सम्पन्न, जो मिले उसमें सन्तुष्ट रहने वाले होते हैं, वे हीं साधु हैं। इस तरह के साधु पुरुषों का जब सङ्गम होता है तो आपके कथा श्रवण में प्रेम हो जाता है ॥ ३७-३९ ॥

हे राम ! इसके बाद आप सनातन में भक्ति होती है, तथा आपकी भक्ति हो जाने पर आपका स्फुट-विपुल ज्ञान होता है। यह चतुरजन सेवित मुक्ति का आद्य मार्ग है। अत-एव हे राघव ! आप में सर्वदा प्रेमलक्षणा मेरी भक्ति रहे। हे राघव ! मुझे अधिक से अधिक आपके भक्तों को सङ्गति हो। हे नाथ ! आपके दर्शन से मेरा जन्म सफल हो गया ॥ ४०-४२ ॥ हे प्रभो ! आज मेरे सम्पूर्ण यज्ञ सफल हो गये। बहुत दिनों से मैं अनन्यभाव से तपस्या किया हूँ। हे राम ! उसी का यह फल है कि मैंने आज आपकी पूजा की ॥४३॥

सदा मे सीतया सार्धं हृदये वस राघव । गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्मृतिः स्यान्मे सदा त्वयि
इति स्तुत्वा रमानाथमगस्त्यो मुनिसत्तमः । ददौ चापं महेन्द्रेण रामार्थे स्थापितं पुरा ॥४५॥
अक्षय्यौ बाणतूणीरौ खड्गो रत्नविभूषितः । जहि राघव भूभारभूतं राक्षसमण्डलम् ॥४६॥
यदर्थमवतीर्णोऽसि मायया मनुजाकृतिः । इतो योजनयुग्मे तु पुण्यकाननमण्डितः ॥४७॥
अस्ति पञ्चवटीनाम्ना आश्रमो गौतमीतटे । नेतव्यस्तत्र ते कालः शेषो रघुकुलोद्वह ॥४८॥
तत्रैव बहुकार्याणि देवानां कुरु सत्पते ॥४९॥

श्रुत्वा तदागस्त्यसुभाषितं वचः स्तोत्रं च तत्त्वार्थसमन्वितं विभुः ।
मुनिं समाभाष्य मुदान्वितो ययौ प्रदर्शितं मार्गमशेषविद्धरिः ॥५०॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥३॥

हे राघव ! सीताजी के साथ आप मेरे हृदय में सर्वदा वास करें, मुझे चलते–बैठते सर्वदा आपकी स्मृति बनी रहे ॥ ४४ ॥

इस प्रकर रमानाथ श्रीरघुनाथजी की स्तुतिकर मुनिसत्तम अगस्त्यजी पूर्व समय में राम के लिये इन्द्र का दिया हुआ धनुष और बाणों से भरे कभी खाली न होने वाले दो तरकस एवं रत्न जटिल एक खड्ग दिये और बोले—हे राघव ! पृथिवी के भारस्वरूप राक्षसों का आप संहार करें ॥४४–४६॥ जिसके लिये आप मायामानव के रूप में अवतार लिये हैं । यहाँ से दो योजन की दूरी पर गौमती नदी के तट पर पवित्र वन से सुशोभित पञ्चवटी नामक एक सुन्दर आश्रम है । हे रघुनाथजी ! आप अवशिष्ट समय वहाँ व्यतीत करें । हे सत्पते ! वहाँ रहकर आप देवताओं के बहुत कार्य सिद्ध करें ॥४७–४९॥

तत्पश्चात् सर्वज्ञ भगवान् राम अगस्त्यजी का मनोहर भाषण और गूढ रहस्य से परिपूर्ण स्तोत्र को सुनकर उनकी अनुमति से प्रसन्नता पूर्वक उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग से चले ॥५०॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंबादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
तृतीय सर्गः परिपूर्णः ॥ ३ ॥

चतुर्थ सर्ग

पञ्चवटी में निवास और लक्ष्मणजी को उपदेश

श्रीमहादेव उवाच

मार्गे व्रजन्ददर्शाथ शैलशृङ्गमिव स्थितम् । वृद्धं जटायुषं रामः किमेतदिति विस्मितः ॥ १ ॥
धनुरानय सौमित्रे राक्षसोऽयं पुरः स्थितः । इत्याह लक्ष्मणं रामो हनिष्याम्यृषिभक्षकम् ॥ २ ॥
तच्छ्रुत्वा रामवचनं गृध्रराड् भयपीडितः । वधार्होऽहं न ते राम पितुस्तेऽहं प्रियः सखा ॥ ३ ॥
जटायुर्नाम भद्रं ते गृध्रोऽहं प्रियकृत्तव । ४ ॥
पञ्चवट्यामहं वत्स्ये तवैव प्रियकाम्यया । मृगयायां कदाचित्तु प्रयाते लक्ष्मणेऽपि च ॥ ५ ॥
सीता जनककन्या मे रक्षितव्या प्रयत्नतः । श्रुत्वा तद्गृध्रवचनं रामः सस्नेहमब्रवीत् ॥ ६ ॥
साधु गृध्र महाराज तथैव कुरु मे प्रियम् । अत्रैव मे समीपस्थो नातिदूरे वने वसन् ॥ ७ ॥
इत्यामन्त्रितमालिङ्ग्य ययौ पञ्चवटीं प्रभुः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया रघुनन्दनः ॥ ८ ॥
नत्वा ते गौतमीतीरं पञ्चवट्यां सुविस्तरम् । मन्दिरं कारयामास लक्ष्मणेन सुबुद्धिना ॥ ९ ॥
तत्र ते न्यवसन्सर्वे गङ्गाया उत्तर तटे । कदम्बपनसाम्रादिफलवृक्षसमाकुले ॥१०॥
विविक्ते जनसंबाधवर्जिते नीरुजस्थले । विनोदयन् जनकजां लक्ष्मणेन विपश्चिता ॥११॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति) मार्ग में जाते समय श्रीरामचन्द्रजी पर्वत-शिखर के समान बैठे हुए वृद्ध जटायु को देखे । उसे देखकर उनको बड़ा विस्मय हुआ कि यह क्या है ? ॥१॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले—हे सौमित्र ! मेरा धनुष लाओ । देखो सामने यह राक्षस बैठा है; मैं ऋषिभक्षक इस दुष्ट को मार डालता हूँ ॥ २ ॥ श्रीरामचन्द्रजी का यह वचन सुनकर गृध्रराज जटायु भय से दुःखित हो बोला—"राम ! मैं तुम्हारे पिता का प्रिय सखा जटायु नामक गृध्र हूँ । तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हारा प्रिय करने वाला हूँ ॥ ३–४ ॥ तुम्हारे कल्याण की ईच्छा से पंचवटी में रहूँगा । जब कभी लक्ष्मणजी भी शिकार खेलने के लिये चले जायेंगे तब मैं प्रयत्न पूर्वक जनकनन्दिनी सीता की रक्षा करूँगा । गृध्रराज के ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी स्नेहपूर्वक बोले ॥५-६॥ हे गृध्रमहाराज ! ठीक ही है ! इस पास के वन में ही रहते हुए आप अवश्य मेरा प्रिय साधन करें ॥ ७ ॥

इस प्रकार अपनी सम्मति देकर भगवान् श्रीराम जटायु को आलिङ्गन कर भाई लक्ष्मण और सीताजी के साथ पञ्चवटी को गये ॥ ८ ॥ गौतमी-नदी के तटपर पहुँचकर वे बुद्धिमान् लक्ष्मण जी से पञ्चवटी में एक विशाल कुटी बनवाये ॥ ९ ॥ वहाँ वे सब गौतमी के उत्तर तटपर कदम्ब, पनस और आम्र आदि फल वाले वृक्षों से युक्त रोगरहित एक जनशून्य एकान्त स्थान में निवास किये । श्रीरामचन्द्रजी बुद्धिमान् लक्ष्मण के साथ जनकात्मजा सीता का मनोरञ्जन करते हुए उस देवलोक के समान सुरम्य स्थान में दूसरे इन्द्र के

अध्युवास सुखं रामो देवलोक इवापरः । कन्दमूलफलादीनि लक्ष्मणोऽनुदिनं तयोः ॥१२॥
आनीय प्रददौ रामसेवातत्परमानसः । धनुर्बाणधरो नित्यं रात्रौ जागर्ति सर्वतः ॥१३॥
स्नानं कुर्वन्त्यनुदिनं त्रयस्ते गौतमीजले । उभयोर्मध्यगा सीता कुरुते च गमागमौ ॥१४॥
आनीय सलिलं नित्यं लक्ष्मणः प्रीतमानसः । सेवतेऽहरहः प्रीत्या एवमासन् सुखं त्रयः ॥१५॥
एकदा लक्ष्मणो राममेकान्ते समुपस्थितम् । विनयावनतो भूत्वा पप्रच्छ परमेश्वरम् ॥१६॥
भगवन् श्रोतुमिच्छामि मोक्षस्यैकान्तिकीं गतिम् । त्वत्तः कमलपत्राक्ष संक्षेपाद्वक्तुमर्हसि ॥१७॥
ज्ञानं विज्ञानसहितं भक्तिवैराग्यबृंहितम् । आचक्ष्व मे रघुश्रेष्ठ वक्ता नान्योऽस्ति भूतले १८

श्रीराम उवाच

शृणु वक्ष्यामि ते वत्स गुह्याद्गुह्यतरं परम् । यद्विज्ञाय नरो जह्यात्सद्यो वैकल्पिकं भ्रमम् ।१९।
आदौ मायास्वरूपं ते वक्ष्यामि तदनन्तरम् । ज्ञानस्य साधनं पश्चाज्ज्ञानं विज्ञानसंयुतम् ॥२०॥
ज्ञेयं च परमात्मानं यज्ज्ञात्वा मुच्यते भयात् । अनात्मनि शरीरादावात्मबुद्धिस्तु या भवेत् ॥२१।
सैव माया तयैवासौ संसारः परिकल्प्यते । रूपे द्वे निश्चिते पूर्वं मायायाः कुलनन्दन ॥२२॥
विक्षेपावरणे तत्र प्रथमं कल्पयेज्जगत् । लिङ्गाद्यब्रह्मपर्यन्तं स्थूलसूक्ष्मविभेदतः ॥२३॥

समान सुखपूर्वक रहने लगे। राम-सेवा में जिनका मन लगा हुआ है, वे लक्ष्मणजी नित्यप्रति उन्हें कन्द-मूल-फल लाकर देते और रात्रि के समय धनुष बाण लेकर चारो ओर जागरण करते थे ॥ १०–१३ ॥ वे तीनों व्यक्ति नित्यप्रति गौतमी में स्नान करते थे। उस समय सीताजी उन दोनों के बीच में रहकर आती-जाती थीं ॥ १४ ॥ लक्ष्मणजी प्रसन्न मन से नित्यप्रति जल लाकर भक्ति पूर्वक उनकी सेवा करते थे। इस प्रकार वे तीनों वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे ॥ १५ ॥

एक दिन लक्ष्मणजी एकान्त में बैठे हुए परमात्मा श्रीराम के पास जाकर नम्रता पूर्वक बोले ॥ १६ ॥ भगवन्! मैं आपके मुखारविन्द से मोक्ष का अव्यभिचारी निश्चित साधन सुनना चाहता हूँ अतएव हे कमलनयन! आप उसका संक्षेप में वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥ हे रघुश्रेष्ठ! आप मुझे भक्ति और वैराग्य से ओत-प्रोत विज्ञान युक्त-ज्ञान बताइये। संसार में आपके अतिरिक्त इस विषय का उपदेश करने वाला और कोई नहीं है ॥ १८ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—वत्स! सुनो, मैं तुमसे गुप्त से गुप्त परम रहस्य सुनाता हूँ; जिसको जान लेने पर मनुष्य शीघ्र ही विकल्पजनित भ्रम से मुक्त हो जाता है ॥ १९ ॥ पहले मैं माया का स्वरूप तुमसे कहूँगा; पुनः ज्ञान का साधन और फिर विज्ञान के सहित ज्ञान को बतलाऊँगा ॥ २० ॥ इनके अतिरिक्त जानने योग्य परमात्मा का स्वरूप वर्णन करूँगा। जिसको जान लेने पर मनुष्य संसार के भय से मुक्त हो जाता है। शरीरादि अनात्मपदार्थों में जो आत्मबुद्धि होती है, उसी को माया कहते हैं। उसी के द्वारा इस संसार की कल्पना हुई है। हे कुलनन्दन! माया के दो रूप माने गये हैं ॥ २१–२२ ॥ एक विक्षेप

अपरं त्वखिलं ज्ञानरूपमावृत्य तिष्ठति । मायया कल्पितं विश्वं परमात्मनि केवले ॥२४॥
रज्जौ भुजङ्गवद्भ्रान्त्या विचारे नास्ति किञ्चन । श्रूयते दृश्यते यद्यत्स्मर्यते वा नरैः सदा ॥२५॥
असदेव हि तत्सर्वं यथा स्वप्नमनोरथौ । देह एव हि संसारवृक्षमूलं दृढं स्मृतम् ॥२६॥
तन्मूलः पुत्रदारादिबन्धः किं तेऽन्यथात्मनः २७॥
देहस्तु स्थूलभूतानां पञ्चतन्मात्रपञ्चकम् । अहङ्कारश्च बुद्धिश्च इन्द्रियाणि तथा दश ॥२८॥
चिदाभासो मनश्चैव मूलप्रकृतिरेव च । एतत्क्षेत्रमिति ज्ञेयं देह इत्यभिधीयते ॥२९॥
एतैर्विलक्षणो जीवः परमात्मा निरामयः । तस्य जीवस्य विज्ञाने साधनान्यपि मे शृणु ३०॥
जीवश्च परमात्मा च पर्यायो नात्र भेदधीः । मानाभावस्तथा दम्भहिंसादिपरिवर्जनम् ॥३१॥
पराक्षेपादिसहनं सर्वत्रावक्रता तथा । मनोवाक्कायसद्भक्त्या सद्गुरोः परिसेवनम् ॥३२॥
बाह्याभ्यन्तरसंशुद्धिः स्थिरता सत्क्रियादिषु । मनोवाक्कायदण्डश्च विषयेषु निरीहता ॥३३॥
निरहङ्कारता जन्मजराद्यालोचनं तथा । असक्तिः स्नेहशून्यत्वं पुत्रदारधनादिषु ॥३४॥
इष्टानिष्टागमे नित्यं चित्तस्य समता तथा । मयि सर्वात्मके रामे ह्यनन्यविषया मतिः ॥३५॥

और दूसरा आवरण (अर्थात् माया की दो शक्तियाँ हैं, एक आवरण शक्ति और दूसरी विक्षेप शक्ति) इनमें से विक्षेप शक्ति ही महत्तत्व से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सम्पूर्ण संसार की स्थूल और सूक्ष्मभेद से कल्पना करती है ॥ २३ ॥

दूसरी आवरणशक्ति सम्पूर्ण ज्ञान को आवरण (ढँक) कर स्थिर रहती है । यह सम्पूर्ण विश्व रज्जु में सर्प के भ्रम की भाँति शुद्ध परमात्मा में माया से कल्पित है, विचार करने पर कुछ भी सत्य नहीं होता । मनुष्य जो कुछ हमेशा सुनते देखते और स्मरण करते हैं, वे सब स्वप्न और मनोरथों के समान असत्य हैं। शरीर ही इस संसार रूप वृक्ष का दृढ़ मूल है ॥ २४–२६ ॥ उसी कारण उसी से पुत्र स्त्री आदि का बन्धन है; नहीं तो आत्मा का इन सबसे क्या सम्बन्ध है ॥ २७ ॥ पञ्च महाभूत, पञ्चतन्मात्राएँ, अहङ्कार, बुद्धि, दशेन्द्रिय, चिदाभास, मन और मूल-प्रकृति इन सबके समुदाय को क्षेत्र जानना चाहिए; इसी को ही शरीर भी कहते हैं ॥ २८–२९ ॥ दोष रहित परमात्मा रूप जीव इन सबसे पृथक् है । उस जीव को जानने का साधन अब मैं बतलाता हूँ सुनो—॥ ३० ॥

जीव और परमात्मा दोनों एक दूसरे के पर्याय वाचक हैं, इनमें भेदबुद्धि नहीं करनी चाहिये । अभिमान से दूर रहना, दम्भ और हिंसा आदि का त्याग करना, दूसरों का आक्षेप सहन करना, सभी जगह कुटिलता का त्याग, मन, वचन और शरीर से सच्ची भक्ति से सद्गुरु की सेवा करना, बाह्य और आन्तरिक शुद्धि से रहना, सत्कर्मों में तत्पर रहना, मन, वाणी और शरीर का संयम करना, विषयों में प्रवृत्त न होना, अहङ्कारशून्य रहना, जन्म, मृत्यु, रोग और जरा आदि के कष्टों का विचार करना, पुत्र, स्त्री और धन आदि में आसक्ति तथा स्नेह न करना, इष्ट और अनिष्ट की प्राप्ति में चित्त को सदा समान रखना,

जनसम्बाधरहितशुद्धदेशनिषेवणम् । प्राकृतैर्जनसङ्घैश्च ह्यरतिः सर्वदा भवेत् ॥३६॥
आत्मज्ञाने सदोद्योगो वेदान्तार्थावलोकनम् । उक्तैरेतैर्भवेज्ज्ञानं विपरीतैर्विपर्ययः ॥३७॥
बुद्धिप्राणमनोदेहाहंकृतिभ्यो विलक्षणः । चिदात्माऽहं नित्यशुद्धो बुद्ध एवेति निश्चयम् ॥३८
येन ज्ञानेन संविन्ते तज्ज्ञानं निश्चितं च मे । विज्ञानं च तदैवैतत्साक्षादनुभवेद्यदा ॥३९॥
आत्मा सर्वत्र पूर्णः स्याच्चिदानन्दात्मकोऽव्ययः । बुद्ध्याद्युपाधिरहितः परिणामादिवर्जितः ४०
स्वप्रकाशेन देहादीन् भासयन्ननपावृतः । एक एवाद्वितीयश्च सत्यज्ञानादिलक्षणः ॥४१॥
असङ्गः स्वप्रभो द्रष्टा विज्ञानेनावगम्यते । आचार्यशास्त्रोपदेशाद्यैक्यज्ञानं यदा भवेत् ॥४२॥
आत्मनोर्जीवपरयोर्मूलाविद्या तदैव हि । लीयते कार्यकरणैः सहैव परमात्मनि ॥४३॥
सावस्था मुक्तिरित्युक्ता ह्युपचारोऽयमात्मनि । इदं मोक्षस्वरूपं ते कथितं रघुनन्दन ॥४४॥
ज्ञानविज्ञानवैराग्यसहितं मे परात्मनः । किं त्वेतद्दुर्लभं मन्ये मद्भक्तिविमुखात्मनाम् ४५॥
चक्षुष्मतामपि यथा रात्रौ सम्यङ्न दृश्यते । पदं दीपसमेतानां दृश्यते सम्यगेव हि ४६॥
एवं मद्भक्तियुक्तानामात्मा सम्यक् प्रकाशते । मद्भक्तेः कारणं किंचिद्वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ४७॥

मुझ सर्वात्मा राम में अनन्य बुद्धि रखना, जन समूह शून्य पवित्र देश में रहना, संसारी लोगों से सर्वदा उदासीन रहना, आत्मज्ञान का हमेशा उद्योग करना तथा वेदान्त के अर्थों का विचार करना, इन साधनों से ज्ञान तो प्राप्त होता है और इनके विपरीत आचरण करने से अज्ञान होता है ॥ ३१–३७ ॥

जिसके द्वारा मैं बुद्धि, प्राण, मन, देह, अहङ्कार आदि से विलक्षण नित्य शुद्ध-बुद्ध चित् स्वरूप आत्मा हूँ, यह ज्ञान प्राप्त हो वह ज्ञान है; यह निश्चय है। जिस ज्ञान के द्वारा इसका साक्षात् अनुभव होता है, उसी को विज्ञान कहते हैं ॥ ३८–३९ ॥ आत्मा सर्वत्र पूर्ण, चिदानन्दस्वरूप, अविनाशी, बुद्धि आदि उपाधियों से रहित परिणामादि शून्य है ॥ ४० ॥ यह आत्मा अपने प्रकाश से देहादि को प्रकाशित करता हुआ स्वयं भी आवरण रहित, एक, अद्वितीय और सत्यज्ञान स्वरूप तथा संग हीन स्वप्रकाश और सबका द्रष्टा है; यह विज्ञान के द्वारा ही ज्ञात होता है। जिस समय आचार्य और शास्त्र के उपदेश से जीवात्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान होता है, उस समय मूला अविद्या अपने कार्य (शरीर आदि) तथा इन्द्रियों के सहित परमात्मा में लीन हो जाती है ॥ ४१–४३ ॥

अविद्या की इस परमात्मा में लय की अवस्था को ही मोक्ष कहते हैं। आत्मा में यह मोक्ष केवल उपचार मात्र ही है। हे रघुनन्दन लक्ष्मण! तुम्हें यह ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य के सहित परमात्मा रूप अपना मोक्षस्वरूप मैं सुनाया; किन्तु जो लोग मेरी भक्ति से विमुख हैं उनके लिये मैं इसे अत्यन्त दुर्लभ मानता हूँ ॥ ४४–४५ ॥ जिस प्रकार नेत्र रहते हुए भी लोग शाम के समय चौर आदि का चिन्ह भली-भाँति नहीं देखते, दीपक होने पर ही उस समय वह दीखायी पड़ता है; उसी प्रकार मेरी भक्ति से युक्त पुरुषों को ही आत्मा का सम्यक् साक्षात्कार होता है। अब मैं अपनी भक्ति के कुछ वास्तविक उपाय

मद्भक्तसङ्गो मत्सेवा मद्भक्तानां निरन्तरम् । एकादश्युपवासादि मम पर्वानुमोदनम् ॥४८॥
मत्कथाश्रवणे पाठे व्याख्याने सर्वदा रतिः । मत्पूजापरिनिष्ठा च मम नामानुकीर्तनम् ॥४९॥
एवं सततयुक्तानां भक्तिरव्यभिचारिणी । मयि संजायते नित्यं ततः किमवशिष्यते ॥५०॥
अतो मद्भक्तियुक्तस्य ज्ञानं विज्ञानमेव च । वैराग्यं च भवेच्छीघ्रं ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ।५१॥
कथितं सर्वमेतत्ते तव प्रश्नानुसारतः । अस्मिन्मनः समाधाय यस्तिष्ठेत्स तु मुक्तिभाक्५२
न वक्तव्यमिदं यत्नान्मद्भक्तिविमुखाय हि । मद्भक्ताय प्रदातव्यमाहूयापि प्रयत्नतः ॥५३॥
य इदं तु पठेन्नित्यं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः । अज्ञानपटलध्वान्तं विधूय परिमुच्यते ।५४॥

भक्तानां मम योगिनां सुविमलस्वान्तातिशान्तात्मनां
मत्सेवाभिरतात्मनां च विमलज्ञानात्मनां सर्वदा ।
सङ्गं यः कुरुते सदोद्यतमतिः सत्सेवनानन्यधी-
र्मोक्षस्तस्य करे स्थितोऽहमनिशं दृश्यो भवे नान्यथा ॥५५॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

XXXX

बतलाता हूँ, सुनो ॥ ४६–४७ ॥ भक्तों की संगति करना, हमेशा मेरा और मेरे भक्तों की सेवा करना, एकादशी आदि व्रत करना, मेरे पर्व दिनों को मानना, मेरी कथा सुनने पढ़ने और उसके व्याख्यान में प्रेम करना, मेरी पूजा में तत्पर रहना, मेरा नाम-संकीर्त्तन करना ॥ ४८–४९ ॥

इस प्रकार जो निरन्तर मुझमें लगे रहते हैं, उनकी मुझमें अविचल भक्ति निश्चय ही हो जाती है, पुनः अवशिष्ट ही क्या रह जाता ? ॥ ५० ॥ अतएव मेरी भक्ति से युक्त प्राणी को ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य आदि की प्राप्ति शीघ्र ही हो जाती है, पुनः वह मोक्ष प्राप्तकर लेता है ॥ ५१ ॥ इस प्रकार तुम्हारे प्रश्नों के अनुसार सम्पूर्ण सुनाने योग्य बातें मैं तुम्हें सुना दिया । जो व्यक्ति अपने मन को इसमें लगाकर रहता है, वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है । हे लक्ष्मण ! मेरी भक्ति से विमुख पुरुषों से इसे सावधानी पूर्वक नहीं कहना चाहिये और मेरे भक्तों को प्रयत्नपूर्वक भी बुलाकर इस रहस्य को सुनाना चाहिये ॥ ५३ ॥ जो पुरुष इसको श्रद्धा भक्तिपूर्वक पाठ करेगा वह अज्ञानरूपी अन्धकार को हटाकर मुक्त हो जायेगा ॥ ५४ ॥

जो पुरुष मेरी सेवा में अनुरक्त चित्त, निर्मल-हृदय, शान्त आत्मा, विमलज्ञान सम्पन्न और मेरे परम भक्त योगिपुरुषों की संगति अनन्य भाव से हमेशा उनकी सेवा में तत्परता पूर्वक करता है; उस पुरुष की मुक्ति करतल गत रहती है और मैं हमेशा उसकी दृष्टि के सम्मुख विराजमान रहता हूँ । इसके अतिरिक्त और किसी उपाय से मेरा दर्शन होना सम्भव नहीं है ॥ ५५ ॥

इति श्री अध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितयाभाषा-
टीकयासहितः चतुर्थ सर्गः परिपूर्णः ॥ ५ ॥

पञ्चम सर्ग

शूर्पणखा को दण्ड, खर आदि राक्षसों का वध और शूर्पणखा का रावण के पास जाना

श्रीमहादेव उवाच

तस्मिन्काले महारण्ये राक्षसी कामरूपिणी। विचचार महासत्त्वा जनस्थाननिवासिनी ॥१॥
एकदा गौतमीतीरे पञ्चवट्याः समीपतः। पद्मवज्राङ्कुशाङ्कानि पदानि जगतीपतेः ॥२॥
दृष्ट्वा कामपरीतात्मा पादसौन्दर्यमोहिता। पश्यन्ती सा शनैरायाद्राघवस्य निवेशनम् ॥३॥
तत्र सा तं रमानाथं सीतया सह संस्थितम्। कन्दर्पसदृशं रामं दृष्ट्वा कामविमोहिता ॥४॥
राक्षसी राघवं प्राह कस्य त्वं कः किमाश्रमे। युक्तो जटावल्कलाद्यैः साध्यं किं तेऽत्र मे वद ॥५॥
अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी। भगिनी राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य महात्मनः ॥६॥
खरेण सहिता भ्रात्रा वसाम्यत्रैव कानने। राज्ञा दत्तं च मे सर्वं मुनिभक्षा वसाम्यहम् ॥७॥
त्वां तु वेदितुमिच्छामि वद मे वदतां वर। तामाह रामनामाहमयोध्याधिपतेः सुतः ॥८॥
एषा मे सुन्दरी भार्या सीता जनकनन्दिनी। स तु भ्राता कनीयान्मे लक्ष्मणोऽतीव सुन्दरः ॥९॥
किं कृत्यं ते मया ब्रूहि कार्यं भुवनसुन्दरि। इति रामवचः श्रुत्वा कामार्ता साऽब्रवीदिदम् १०॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति !) उस समय उस महारण्य में जन स्थान निवासनी महाबलवती इच्छानुसार रूप धारण करने वाली राक्षसी विचरण करती रहती थी ॥१॥ एकदिन पञ्चवटी के समीप गौतमी नदी के तट पर जगत्पति श्रीरामचन्द्रजी के पद्म, वज्र और अंकुश की रेखाओं से युक्त चरण-चिन्हों को देखकर वह उनके सौन्दर्य से मोहित हो, कामासक्त हुई ; उन्हें देखती हुई धीरे-धीरे श्रीरघुनाथजी के आश्रम में चली आयी ॥२–३॥ वहाँ कामदेव के समान सुन्दर रमानाथ श्री रामचन्द्रजी को सीता के साथ बैठे हुए देखकर वह काम से विमोहित राक्षसी रघुनाथजी से बोली—"तुम किसके (पुत्र) हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? इस आश्रम में जटावल्कल आदि धारण कर क्यों रहते हो। यहाँ रहकर तुम कौन वस्तु प्राप्त करना चाहते हो ? यह मुझे बतलाओ ॥४–५॥ मैं राक्षसेन्द्र महात्मा रावण की भगिनी कामरूपिणी राक्षसी शूर्पणखा हूँ ॥६॥ मैं अपने भाई खर के साथ इस वन में रहती हूँ। राजा इस वन का सम्पूर्ण अधिकार मुझे सौंप दिये हैं। अतएव मैं मुनियों को भक्षण करती हुई यहाँ रहती हूँ॥ ७ ॥ हे वक्ताओं में श्रेष्ठ ! मैं तुम्हें जानना चाहती हूँ, अतः तुम अपने विषय में मुझे बताओ। तब भगवान राम उससे बोले—मैं अयोध्याधिपति राजा दशरथ का पुत्र हूँ, मेरा नाम राम है ॥ ८ ॥

यह सुन्दरी जनकनन्दिनी सीता मेरी भार्या है, तथा च यह अति सुकुमार मेरा छोटा अनुज लक्ष्मण है॥ ९ ॥ हे त्रिभुवन सुन्दरि ! तुम बताओ कि मैं तुम्हारा क्या कार्य करूँ ? श्रीरामजी का यह वचन सुन कर वह कामातुर शूर्पणखा बोली ॥ १० ॥

एहि राम मया सार्धं रमस्व गिरिकानने । कामार्ताहं न शक्नोमि त्यक्तुं त्वां कमलेक्षणम् ।११॥
रामः सीतां कटाक्षेण पश्यन् सस्मितमब्रवीत् । भार्या ममैषा कल्याणी विद्यते ह्यनपायिनी ।१२॥
त्वं तु सापत्न्यदुःखेन कथं स्थास्यसि सुन्दरि । बहिरास्ते मम भ्राता लक्ष्मणोऽतीव सुन्दरः ।१३॥
तवानुरूपो भविता पतिस्तेनैव सञ्चर । इत्युक्ता लक्ष्मणं प्राह पतिर्मे भव सुन्दर ॥१४॥
भ्रातुराज्ञां पुरस्कृत्य संगच्छावोऽद्य मा चिरम् । इत्याह राक्षसी घोरा लक्ष्मणं काममोहिता ॥१५॥
तामाह लक्ष्मणःसाध्वि दासोऽहं तस्य धीमतः। दासी भविष्यसि त्वं तु ततो दुःखतरं नु किम् १६॥
तमेव गच्छ भद्रं ते स तु राजाखिलेश्वरः । तच्छ्रुत्वा पुनरप्यागाद्राघवं दुष्टमानसा ॥१७॥
क्रोधाद्राम किमर्थं मां भ्रामयस्यनवस्थितः । इदानीमेव तां सीतां भक्षयामि तवाग्रतः ॥१८॥
इत्युक्त्वा विकटाकारा जानकीमनुधावति । ततो रामाज्ञया खड्गमादाय परिगृह्य ताम् ॥१९॥
चिच्छेद नासां कर्णौ च लक्ष्मणोलघुविक्रमः । ततो घोरध्वनिं कृत्वा रुधिराक्तवपुर्द्रुतम् ॥२०॥
क्रन्दमाना पपाताग्रे खरस्य परुषाक्षरा । किमेतदिति तामाह खरः खरतराक्षरः ॥२१॥

हे राम ! किसी गिरि-गुहा में इस समय चलकर मेरे साथ आनन्द करो। इस समय मैं कामार्त्ता हूँ। अतएव आप कमललोचन को मैं छोड़ नहीं सकती ॥ ११ ॥ यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी नेत्रों से सीता की तरफ ईशारा कर मुस्कुराकर बोले—"हे सुन्दरि ! यह मेरी भार्या विद्यमान है, जिसे त्यागना असम्भव है ॥ १२ ॥

तुम जीवन भर सौत की डाह से जलती हुई किस प्रकार रहोगी ? बाहर मेरा अत्यन्त सुन्दर छोटा भाई लक्ष्मण स्थित है ॥ १३ ॥ वही तुम्हारे लिये योग्य पति होगा, तुम उसी के साथ विहार करो। इस प्रकार कहने पर काम से मोहिता शूर्पणखा लक्ष्मणजी के पास जाकर बोली—"हे सुन्दर ! अपने भाई की आज्ञा से तुम मेरा पति हो आओ। हम और तुम आज परस्पर संगम करें, विलम्ब मत करो" ॥१४-१५॥ यह सुनकर लक्ष्मणजी शूर्पणखा से बोले—"हे साध्वि ! मैं उन बुद्धिमान भगवान् राम का दास हूँ। मुझे अपना पति बनाने से तुम्हें उनकी दासी होना पड़ेगा। तुम्हें इससे अधिक दुःख की बात क्या होगी ? ॥ १६ ॥ तुम्हारा कल्याण हो, तुम उनके पास जाओ, वे ही महाराज सबके स्वामी हैं। "यह सुनकर दुष्ट चित्ता वह राक्षसी पुनः रघुनाथजी के पास आयी ॥ १७ ॥

श्रीरामचन्द्रजी के पास आकर वह क्रोधपूर्वक बोली—"हे राम ! तुम बड़े चञ्चल मन वाले हो, मुझे यत्र-तत्र क्यों घुमा रहे हो ? मैं तत्क्षण तुम्हारे सामने इस सीता को खा जाती हूँ" ॥ १८ ॥ यह कहकर वह विकटरूप धारण कर जानकीजी की ओर खाने के लिए दौड़ी। लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा मानकर उसे पकड़कर जल्दी ही खड्ग लेकर उसके नाक-कान काट दिये। तब वह घोर शब्द करती हुई खुन से लथ-पथ हो अति शीघ्रता से रोती हुई जाकर कठोर शब्द करती हुई खर के सामने गिर पड़ी। उसको इस प्रकार देखकर तीक्ष्णध्वनि वाला खर बोला—यह कौन सी बात है ? ॥ १९-२१ ॥ मृत्यु

केनैवं कारितासि त्वं मृत्योर्वक्त्रानुवर्तिना । वद मे तं वधिष्यामि कालकल्पमपि क्षणात् ॥२२॥
तमाह राक्षसी रामः सीतालक्ष्मणसंयुतः । दण्डकं निर्भयं कुर्वन्नास्ते गोदावरीतटे ॥२३॥
मामेवं कृतवांस्तस्य भ्राता तेनैव चोदितः । यदि त्वं कुलजातोऽसि वीरोऽसि जहि तौ रिपू २४
तयोस्तु रुधिरं पास्ये भक्षयैतौ सुदुर्मदौ । नो चेत्प्राणान्परित्यज्य यास्यामि यमसादनम् २५
तच्छ्रुत्वा त्वरितं प्रागात्खरः क्रोधेन मूर्च्छितः। चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥२६॥
चोदयामास रामस्य समीपं वधकाङ्क्षया । खरश्च त्रिशिराश्चैव दूषणश्चैव राक्षसः ॥२७॥
सर्वे रामं ययुः शीघ्रं नानाप्रहरणोद्यताः । श्रुत्वा कोलाहलं तेषां रामः सौमित्रिमब्रवीत् २८॥
श्रूयते विपुलः शब्दो नूनमायान्ति राक्षसाः । भविष्यति महद्युद्धं नूनमद्य मया सह ॥२९॥
सीता नीता गुहां गत्वा तत्र तिष्ठ महाबल । हन्तुमिच्छाम्यहं सर्वान् राक्षसान् घोररूपिणः ३०
अत्र किञ्चिन्न व्यक्तव्यं शापितोऽसि ममोपरि। तथेति सीतामादाय लक्ष्मणो गह्वरं ययौ ॥३१॥
रामः परिकरं बद्ध्वा धनुरादाय निष्ठुरम् । तूणीरावक्षयशरौ बद्ध्वायत्तोऽभवत्प्रभुः ॥३२॥
तत आगत्य रक्षांसि रामस्योपरि चिक्षिपुः । आयुधानि विचित्राणि पाषाणान्पादपानपि ३३॥

के मुख में जाने वाला कौन तुम्हारा यह हाल किया है ? मुझे बताओ, वह काल के समान भी क्यों न हो, क्षण भर में मैं उसका वध कर डालूँगा ॥ २२ ॥

यह सुनकर राक्षसी शूर्पनखा उससे बोली—"यहाँ सीता और लक्ष्मण के साथ राम दण्डकारण्य को निर्भय करता हुआ गोदावरी के तटपर रहता है ॥ २३ ॥ उसकी ही प्रेरणा से उसका छोटा भाई लक्ष्मण मेरी यह गति किया है । तुम बड़े कुलीन और वीर हो तो उन दोनों शत्रुओं को मार दो ॥ २४ ॥ तुम उन दोनों मदोन्मत्तों को खा जाओ और मैं उन दोनों का खून पीऊँगी ; नहीं तो अपने प्राणों को छोड़कर यमपुर को चली जाऊँगी" ॥ २५ ॥ शूर्पणखा का यह कथन सुनकर खर क्रोध से शीघ्र ही युद्ध के लिये चला और राम को मारने के लिए उसने बड़े पराक्रमी चौदह हजार राक्षसों को उनके पास भेजा । खर, दूषण और त्रिशिरा ये नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर राम के पास आये । उनका कोलाहल सुनकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले ॥ २६–२८ ॥

"हे लक्ष्मण ! बड़ा कोलाहल सुनाई पड़ रहा है, प्रतीत होता है कि निश्चय ही राक्षस गण आ रहे हैं; निश्चय ही राक्षसों के साथ आज मेरा घोर युद्ध होगा ॥ २९ ॥ अत-एव हे महाबल ! तुम सीता को लेकर किसी पर्वत की गुफा में चले जाओ । इन समस्त घोर रूप राक्षसों का आज मैं वध करना चाहता हूँ ॥ ३० ॥ तुम्हें मेरा सौगन्ध है, इस विषय में तुम कुछ नहीं कहोगे", तदनन्तर लक्ष्मण जी जैसी आज्ञा कहकर सीताजी को लेकर एक गिरि गुहा में चले गये ॥ ३१ ॥ श्रीरामचन्द्रजी अपना कमर कसकर कठोर धनुष और दो अक्षय बाण वाले तरकस बाँधकर युद्ध के लिए तैयार हो गये ॥ ३२ ॥ तब राक्षसगण वहाँ आकर राम के ऊपर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र, पत्थर और वृक्षादि की वर्षा करने लगे ॥ ३३ ॥ तब

तानि चिच्छेद रामोऽपि लीलया तिलशः क्षणात् । ततो बाणसहस्रेण हत्वा तान् सर्वराक्षसान् ३४।
खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् । जघान प्रहरार्धेन सर्वानेव रघूत्तमः ॥३५॥
लक्ष्मणोऽपि गुहामध्यात्सीतामादाय राघवे । समर्प्य राक्षसान्दृष्ट्वा हतान्विस्मयमाययौ ॥३६॥
सीता रामं समालिङ्ग्य प्रसन्नमुखपङ्कजा । शस्त्रव्रणानि चाङ्गेषु ममार्ज जनकात्मजा ॥३७॥
साऽपि दुद्राव दृष्ट्वा तान्हतान् राक्षसपुङ्गवान्। लङ्कां गत्वा सभामध्ये क्रोशन्ती पादसन्निधौ ३८॥
रावणस्य पपातोर्व्यां भगिनी तस्य रक्षसः । दृष्ट्वा तां रावणः प्राह भगिनीं भयविह्वलाम् ३९॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्से त्वं विरूपकरणं तव । कृतं शक्रेण वा भद्रे यमेन वरुणेन वा ॥४०॥
कुबेरेणाथवा ब्रूहि भस्मीकुर्यां क्षणेन तम् । राक्षसी तमुवाचेदं त्वं प्रमत्तो विमूढधीः ॥४१॥
पानासक्तः स्त्रीविजितः षण्ढः सर्वत्र लक्ष्यसे । चारचक्षुर्विहीनस्त्वं कथं राजा भविष्यसि ॥४२॥
खरश्च निहतः सङ्ख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा । चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां महात्मनाम् ॥४३॥
निहितानि क्षणेनैव रामेणासुरशत्रुणा । जनस्थानमशेषेण मुनीनां निर्भयं कृतम् ॥
न जानासि विमूढस्त्वमत एव मयोच्यते ॥४४॥

एक क्षण में ही श्रीरामचन्द्रजी लीला से ही उनके अस्त्र-शस्त्रादि को तिल-तिल कर काट डाले। पुनः हजारों बाणों से उन सम्पूर्ण राक्षसों को मारकर खर, दूषण और त्रिशिरा को भी मार डाले। इस प्रकार आधा पहर में ही सम्पूर्ण राक्षसों का संहार कर दिये ॥ ३४–३५ ॥

तब लक्ष्मणजी गुहा में से सीताजी को लाकर श्रीरघुनाथजी को सौंप दिये। उस समय सभी राक्षसों को मरा हुआ देखकर वे बड़े आश्चर्य चकित हुए ॥ ३६ ॥ जनकनन्दिनी सीताजी प्रसन्नमुख से श्रीरामचन्द्रजी का आलिंगन कीं और उनके शरीर में हुए अस्त्र-शस्त्र के घावों पर हाथ फेरने लगीं ॥ ३७ ॥

उन सम्पूर्ण राक्षसों को मरा हुआ देखकर राक्षसेन्द्र रावण की बहन शूर्पणखा दौड़ती हुई लंका में पहुँची और राजसभा में पहुँचकर रोती हुई रावण के पैरों के समीप जमीन पर गिर पड़ी। अपनी बहिन को इस प्रकार भयभीत देखकर रावण बोला ॥ ३८-३९ ॥ "अरी वत्से! उठकर खड़ी हो, बताओ कौन तुमको विरूपा किया है? हे भद्रे! यह इन्द्र, यम, वरुण अथवा कुबेर में से किसका काम है। बताओ मैं एक क्षण में ही उसे भस्म कर डालूँगा।

तब राक्षसी शूर्पणखा उससे बोली—"तुम बड़े ही प्रमादी और मूढ़ बुद्धिवाले हो ॥ ४०-४१ ॥ तुम मद्यपान में आसक्त, स्त्री के वशीभूत और सब विषयों में नपुंसक की भाँति प्रतीत होते हो। तुम्हारे चार (गुप्तचर) रूप नेत्र नहीं हैं; पुनः तुम राजा कैसे रह सकोगे? ॥ ४२ ॥ युद्ध में खर मारा गया तथा दूषण और त्रिशिरा आदि चौदह हजार मुख्य राक्षसों को राक्षसों के शत्रु राम एक क्षण में ही मार डाला और सम्पूर्ण जनस्थान को मुनिश्वरों के लिये सर्वथा निर्भय कर दिया। इतना होने पर भी तुम नहीं जानते? अतएव तुम मूढ हो यह मैं कहती हूँ ॥ ४३–४४ ॥ रावण बोला—राम कौन है? किसके लिये किस प्रकार

रावण उवाच

को वा रामः किमर्थं वा कथं तेनासुरा हताः । सम्यक्कथय मे तेषां मूलघातं करोम्यहम् ॥४५॥

शूर्पणखोवाच

जनस्थानादहं याता कदाचिद्गौतमीतटे । तत्र पञ्चवटी नाम पुरा मुनिजनाश्रया ॥४६॥
तत्राश्रमे मया दृष्टो रामो राजीवलोचनः । धनुर्बाणधरः श्रीमान् जटावल्कलमण्डितः ॥४७॥
कनीयाननुजस्तस्य लक्ष्मणोऽपि तथाविधः । तस्य भार्या विशालाक्षी रूपिणी श्रीरिवापरा ॥४८॥
देवगन्धर्वनागानां मनुष्याणां तथाविधा । न दृष्टा न श्रुता राजन्द्योतयन्ती वनं शुभा ४९॥
आनेतुमहमुद्युक्ता तां भार्यार्थं तवानघ । लक्ष्मणो नाम तद्भ्राता चिच्छेद मम नासिकाम् ५०
कर्णौ च नोदितस्तेन रामेण स महाबलः । ततोऽहमतिदुःखेन रुदती खरमन्वगाम् ॥५१॥
सोऽपि रामं समासाद्य युद्धं राक्षसयूथपैः । अतः क्षणेन रामेण तेनैव बलशालिना ॥५२॥
सर्वे तेन विनष्टा वै राक्षसा भीमविक्रमाः । यदि रामो मनः कुर्यात्त्रैलोक्यं निमिषार्धतः ५३।
भस्मीकुर्यान्न सन्देह इति भाति मम प्रभो । यदि सा तव भार्या स्यात्सफलं तव जीवितम् ५४।
अतो यतस्व राजेन्द्र यथा ते वल्लभा भवेत् । सीता राजीवपत्राक्षी सर्वलोकैकसुन्दरी ॥५५॥
साक्षाद्रामस्य पुरतःस्थातुं त्वं न क्षमः प्रभो । मायया मोहयित्वा तु प्राप्स्यसे तां रघूत्तमम् ५६॥

वह इन राक्षसों का वध किया ? तू सब कुछ विस्तार पूर्वक बताओ, मैं उसका मूलाधार ही नष्ट कर दूँगा ॥ ४५ ॥ शूर्पणखा बोली—एकदिन जनस्थान से मैं गौतमी के तटपर जा रही थी, वहाँ पर पूर्वकाल में मुनिजन सेवित पञ्चवटी नामक आश्रम है ॥ ४६ ॥

उस आश्रम में जटावल्कलादि से सुशोभित धनुष-बाण धारण करने वाले कमललोचन शोभाधाम श्रीराम को मैं देखी ॥ ४७ ॥ उसका अनुज लक्ष्मण भी उसके समान सुन्दर है। उस रामकी विशाल लोचनवाली भार्या दूसरी लक्ष्मी के समान सुन्दर है ॥ ४८ ॥ देव, गन्धर्व, नाग और मनुष्य आदि में किसी भी स्त्री को ऐसी रूपवती मैं न देखी है और न सुनी है। वह शुभलक्षणा अपनी कान्ति से सम्पूर्ण वन को प्रकाशित कर रही थी ॥ ४९ ॥ उसे तुम्हारी पत्नी बनाने की ईच्छा से मैं उसे लाने का प्रयास की, इसीलिये राम का भाई लक्ष्मण मेरी नाक काट दिया ॥ ५० ॥ पुनः राम के कहने पर महाबली लक्ष्मण मेरा कान भी काट दिया। तदनन्तर मैं अत्यन्त दुःख से रोती हुई खर के पास गयी ॥ ५१ ॥ वह भी अपने राक्षस सेनापतियों के साथ शीघ्र ही जाकर राम से युद्ध ठान लिया; परन्तु उस बलशाली राम ने क्षण मात्र में ही सभी भीम-पराक्रम राक्षसों को नष्ट कर दिये। हे प्रभो! मुझे तो प्रतीत हो रहा है कि राम को यह ईच्छा हो तो वह आधा निमेष में ही सम्पूर्ण त्रिलोकी को भस्म कर सकता है। परन्तु उसकी स्त्री सीता यदि तुम्हारी भार्या हो जाय तो तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा ॥ ५२–५४ ॥

अत-एव हे राजेन्द्र ! तुम यह प्रयत्न करो कि सम्पूर्ण लोकों में सुन्दरी कमललोचनी सीता तुम्हारी प्राणवल्लभा हो जाय ॥ ५५ ॥ हे प्रभो ! तुम राम के सामने साक्षात् स्थित नहीं हो सकते। अतएव

श्रुत्वा तत्सूक्तवाक्यैश्च दानमानादिभिस्तथा । आश्वास्य भगिनीं राजा प्रविवेश स्वकं गृहम् ।
तत्र चिन्तापरो भूत्वा निद्रां रात्रौ न लब्धवान् ॥५७॥

एकेन रामेण कथं मनुष्यमात्रेण नष्टः सबलः खरो मे ।
भ्राता कथं मे बलवीर्यदर्पयुतो विनष्टो बत राघवेण ॥५८॥
यद्वा न रामो मनुजः परेशो मां हन्तुकामः सबलं बलौघैः ।
सम्प्रार्थितोऽयं द्रुहिणेन पूर्वं मनुष्यरूपोऽद्य रघोः कुलेऽभूत् ॥५९॥
वध्यो यदि स्यां परमात्मनाऽहं वैकुण्ठराज्यं परिपालयेऽहम् ।
नो चेदिदं राक्षसराज्यमेव भोक्ष्ये चिरं राममतो व्रजामि ॥६०॥
इत्थं विचिन्त्याखिलराक्षसेन्द्रो रामं विदित्वा परमेश्वरं हरिम् ।
विरोधबुद्ध्यैव हरिं प्रयामि द्रुतं न भक्त्या भगवान्प्रसीदेत् ॥६१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥५॥

उन रघुश्रेष्ठ को किसी प्रकार मायाजाल से मोहित कर उसे प्राप्त कर सकते हो ॥ ५६ ॥ यह सुनकर राक्षसेन्द्र रावण सुन्दर वाक्यों और दान सम्मान आदि से बहन शूर्पणखा को धैर्य देकर अपने अन्तःपुर में प्रवेश किया। परन्तु वहाँ चिन्ता के कारण उसे रात्रि में नींद नहीं आयी ॥ ५७ ॥ वह सोचने लगा कि अकेले मनुष्य मात्र रघुवंशी राम बल-वीर्य और राक्षस-सम्पन्न मेरे भाई खर को सेना के साथ कैसे मार डाला ॥ ५८ ॥

अथच यह राम मनुष्य नहीं है, साक्षात् परमात्मा ही पूर्व समय में ब्रह्मा की प्रार्थना करने पर मेरी सेना सहित वानरसेनाओं से मुझे मारने के लिये इस समय रघुवंश में मनुष्य रूप से अवतार लिया है ॥५९॥ मैं परमात्मा द्वारा यदि मारा गया तो वैकुण्ठ का राज्य प्राप्त करूँगा; नहीं तो बहुत दिनों तक राक्षसों का राज्य भोग करूँगा ही। अत-एव मैं राम के पास अवश्य ही चलूँगा ॥ ६० ॥ सम्पूर्ण राक्षसों का स्वामी रावण यह विचार किया कि भगवान् राम को साक्षात् परमात्मा हरि समझकर विरोध बुद्धि से मैं भगवान् के पास जाऊँगा, भक्ति के द्वारा भगवान् मुझपर शीघ्र तो प्रसन्न हो सकते ही नहीं ॥ ६१ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया
सहितः पञ्चमसर्गः परिपूर्णः ॥ ५ ॥

षष्ठसर्ग

रावण का मारीच के पास जाना

श्रीमहादेव उवाच

विचिन्त्यैवं निशायां स प्रभाते रथमास्थितः । रावणो मनसा कार्यमेकं निश्चित्य बुद्धिमान् ॥१॥
ययौ मारीचसदनं परं पारमुदन्वतः । मारीचस्तत्र मुनिवज्जटावल्कलधारकः ॥२॥
ध्यायन् हृदि परात्मानं निर्गुणं गुणभासकम् । समाधिविरमेऽपश्यद्रावणं गृहमागतम् ॥३॥
द्रुतमुत्थाय चालिङ्ग्य पूजयित्वा यथाविधि । कृतातिथ्यं सुखासीनं मारीचो वाक्यमब्रवीत् ॥४॥
समागमनमेतत्ते रथेनैकेन रावण । चिन्तापर इवाभासि हृदि कार्यं विचिन्तयन् ॥५॥
ब्रूहि मे नहि गोप्यं चेत्करवाणि तव प्रियम् । न्याय्यं चेद् ब्रूहि राजेन्द्र वृजिनं मां स्पृशेन्नहि।६॥

रावण उवाच

अस्ति राजा दशरथः साकेताधिपतिः किल । रामनामा सुतस्तस्य ज्येष्ठः सत्यपराक्रमः ॥७॥
विवासयामास सुतं वनं वनजनप्रियम् । भार्यया सहितं भ्रात्रा लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥८॥
स आस्ते विपिने घोरे पञ्चवट्याश्रमे शुभे । तस्य भार्या विशालाक्षी सीता लोकविमोहिनी ९॥
रामो निरपराधान्मे राक्षसान् भीमविक्रमान्। खरं च हत्वा विपिने सुखमास्तेऽतिनिर्भयः ॥१०॥

श्री महादेवजी बोले—(हे पार्वति !) रात्रि के समय यह विचार कर प्रातः काल होने पर बुद्धिमान् रावण रथ में सवार हुआ और अपने मन में एक कार्य सोचकर समुद्र के दूसरे तटपर मारीच के घर गया। वहाँ पर मारीच मुनियों के समान जटा वल्कलादि धारण कर गुणों के प्रकाशक निर्गुण परमात्मा का ध्यान कर रहा था। समाधि भंग होने पर वह रावण को अपने घर आया हुआ देखा ॥ १-३ ॥ रावण को अपने घर देखते ही जल्दी से उठकर गले से आलिङ्गन कर विधिवत् उसकी पूजा तथा आतिथ्य-सत्कार करने के अनन्तर स्वस्थ होकर रावण जब बैठा तो मारीच उससे बोला ॥ ४ ॥ हे रावण ! इस समय तुम एक ही रथ में आये हो तथा तुम्हारा मन किसी कार्य के चिन्तन में चिन्ताग्रस्त प्रतीत होता है ॥ ५ ॥ गोपनीय यदि न हो तो मुझसे बताओ। हे राजेन्द्र ! उस कार्य को करने में मुझे पाप न लगे और वह न्यायोचित कार्य हो तो मुझे बताओ मैं तुम्हारा वह प्रिय कार्य अवश्य करूँगा ॥ ६ ॥

रावण बोला—अयोध्या के अधिपति राजादशरथ का बड़ा लड़का सत्य पराक्रमी राम है ॥७॥ राजा वन जन प्रिय पुत्र को भाई लक्ष्मण और स्त्री के साथ जंगल में भेज दिया है ॥ ८ ॥ इस समय वह घोर दण्डकारण्य के पञ्चवटी नामक शुभ आश्रम में रहता है। उसकी भार्या विशालनयना सीता त्रिलोक को विमोहित करने वाली है ॥ ९ ॥ वह राम बड़े पराक्रमी भाई खर सहित निरपराधी राक्षसों को मारकर उस तपोवन में निर्भय होकर सुखपूर्वक रहता है ॥ १० ॥ मेरी बहन निर्दोषा शूर्पणखा का नाक और कान

भगिन्याः शूर्पणखाया निर्दोषायाश्च नासिकाम्। कर्णौ चिच्छेद दुष्टात्मा वने तिष्ठति निर्भयः ११।
अतस्त्वया सहायेन गत्वा तत्प्राणवल्लभाम्। आनयिष्यामि विपिने रहिते राघवेण ताम् ॥१२॥
त्वं तु मायामृगो भूत्वा ह्याश्रमादपनेष्यसि। रामं च लक्ष्मणं चैव तदा सीतां हराम्यहम् ॥१३॥
त्वं तु तावत्सहायं मे कृत्वा स्थास्यसि पूर्ववत्। इत्येवं भाषमाणं तं रावणं वीक्ष्य विस्मितः ॥१४॥
केनेदमुपदिष्टं ते मूलघातकरं वचः। स एव शत्रुर्वध्यश्च यस्त्वन्नाशं प्रतीक्षते ॥१५॥
रामस्य पौरुषं स्मृत्वा चित्तमद्यापि रावण। बालोऽपि मां कौशिकस्य यज्ञसंरक्षणाय सः १६॥
आगतस्त्विषुणैकेन पातयामास सागरे। योजनानां शतं रामस्तदादि भयविह्वलः ॥१७॥
स्मृत्वा स्मृत्वा तदेवाहं रामं पश्यामि सर्वतः ॥१८॥

दण्डकेऽपि पुनरप्यहं वने पूर्ववैरमनुचिन्तयन् हृदि।
तीक्ष्णशृङ्गमृगरूपमेकदा मादृशैर्बहुभिरावृतोऽभ्ययाम् ॥१९॥
राघवं जनकजासमन्वितं लक्ष्मणेन सहितं त्वरान्वितः।
आगतोऽहमथ हन्तुमुद्यतो मां विलोक्य शरमेकमक्षिपत् ॥२०॥
तेन विद्धहृदयोऽहमुद्भ्रमन् राक्षसेन्द्र पतितोऽस्मि सागरे।
तत्प्रभृत्यहमिदं समाश्रितः स्थानमूर्जितमिदं भयार्दितः ॥२१॥

काटकर वह दुष्टात्मा जंगल में निर्भयता पूर्वक रहता है ॥ ११ ॥ अतएव तुम्हारी सहायता से वहाँ जाकर राम के तपोवन में न रहने पर उसकी प्राणवल्लभा को ले आऊँगा ॥ १२ ॥ तुम माया-मय-मृगरूप धारण कर राम और लक्ष्मण को आश्रम से दूर ले जाना। उसी समय मैं सीता का हरण कर लाऊँगा ॥ १३ ॥ इस प्रकार तुम मेरी सहायता कर पुनः अपने आश्रम में आकर रहना। इस प्रकार रावण को कहते हुए देखकर विस्मित होकर वह बोला ॥ १४ ॥

हे रावण! यह मूलाघात (सर्वनाश) करने वाली बात तुम्हें कौन बताया है? इस प्रकार तुम्हारा नाश चाहने वाला निश्चय ही तुम्हारा शत्रु और वध करने योग्य है ॥ १५ ॥ हे रावण! उसके बाल्यकाल के पुरुषार्थ को याद कर भय होता है। वे विश्वामित्र जी की यज्ञ रक्षा करने के लिये गये थे और एक बाण से ही मुझे सौ योजन दूर समुद्र के तटपर फेंक दिये थे, तब से भय से व्याकुल हो बार-बार उस बात का स्मरण होने से सर्वत्र मुझे राम-ही-राम दिखलायी देने लगते हैं ॥ १६–१८ ॥ एक दिन अपने पूर्व बैर का स्मरण कर मैं दण्डकारण्य में अपने समान बहुत से मृगों के साथ मिलकर एक तीखे सींग वाला मृग का रूप धारण कर गया था ॥ १९ ॥ जब मैं अति स्फुर्ति पूर्वक सीता, लक्ष्मण और श्रीरघुनाथजी को मारने की इच्छा से आगे बढ़ा तब मुझे देखकर वे केवल एक बाण छोड़ दिये ॥ २० ॥

हे राक्षसेन्द्र। उससे हृदय विद्ध होने से मैं आकाश में चक्कर काटता हुआ समुद्र में आकर गिरा।

राममेव सततं विभावये भीतभीत इव भोगराशितः ।
राजरत्नरमणीरथादिकं श्रोत्रयोर्यदि गतं भयं भवेत् ॥२२॥
राम आगत इहेति शङ्कया बाह्यकार्यमपि सर्वमत्यजम् ।
निद्रया परिवृतो यदा स्वपे राममेव मनसाऽनुचिन्तयन् ॥२३॥
स्वप्नदृष्टिगतराघवं तदा बोधितो विगतनिद्र आस्थितः ।
तद्भवानपि विमुच्य चाग्रहं राघवं प्रति गृहं प्रयाहि भोः ॥२४॥
रक्ष राक्षसकुलं चिरागतं तत्स्मृतौ सकलमेव नश्यति ।
तव हितं वदतो मम भाषितं परिगृहाण परात्मनि राघवे ॥२५॥
त्यज विरोधमतिं भज भक्तितः परमकारुणिको रघुनन्दनः ।
अहमशेषमिदं मुनिवाक्यतोऽश्रृणवमादियुगे परमेश्वरः ॥२६॥
ब्रह्मणाऽर्थित उवाच तं हरिः किं तवेप्सितमहं करवाणि तत् ।
ब्रह्मणोक्तमरविन्दलोचन त्वं प्रयाहि भुवि मानुषं वपुः ।
दशरथात्मजभावमञ्जसा जहि रिपुं दशकन्धरं हरे ॥२७॥

अतो न मानुषो रामः साक्षान्नारायणोऽव्ययः । मायामानुषवेषेण वनं यातोऽतिनिर्भयः ॥२८॥

तभी से मैं भयभीत होकर इस निर्भय स्थान में रहता हूँ ॥ २१ ॥ राज, रत्न, रमणी, और रथ आदि (विविध भोग सामग्रियों के आदि अक्षर के कानों में उच्चारण पड़ते ही मुझे (राम की याद होने से) भय उत्पन्न हो जाता है । अत-एव मैं भोग-समुदाय से भयभीत होकर निरन्तर राम का ही ध्यान करता रहता हूँ ॥ २२ ॥ इस स्थान पर राम न आगये हों इस आशङ्का से मैं समस्त बाह्य कार्य छोड़ दिया हूँ। जिस समय मैं निद्रा के वश होकर हो सो जाता हूँ; उस समय मन ही मन राम का ही स्मरण करता रहता हूँ ॥ २३ ॥ इस प्रकार स्वप्न में देखे हुए श्रीरघुनाथजी को निद्रा टूटने पर जब मैं जागता हूँ तो भी नहीं भूलता। अत एव हे रावण ! तुम भी श्रीराघव से हठ छोड़कर अपने घर को चले जाओ और पुराने समय से चल रहे अपने राक्षस-वंश की रक्षा करो तुम श्रीरामचन्द्रजी से वैर मत करो, उनका वैर भाव से स्मरण करने से सर्वस्व नष्ट हो जाता है। मैं तुम्हारे हित के लिये जो कुछ कहता हूँ वह मानो। तुम परमात्मा श्रीरघुनाथजी से विरोध बुद्धि छोड़ दो और भक्तिभाव से उनका भजन करो, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी बड़े ही दयालु हैं। मुनीश्वरों के मुख से ये सभी बातें मैं सुना हूँ कि सत्ययुग में ब्रह्माजी के प्रार्थना पर परमात्मा श्रीहरि ने कहा था कि तुम्हारा मनोरथ क्या है जिसे मैं पूर्ण करूँगा। तब ब्रह्माजी भगवान् से बोले—हे कमललोचन हरि! आप मनुष्य रूप से पृथिवी में अवतार लीजिए और शीघ्र ही दशरथ का पुत्र श्रीराम होकर देवद्रोही दशानन का वध कीजिये ॥ २४–२७ ॥

अत-एव तुम निश्चय समझो कि श्रीरामचन्द्र मनुष्य नहीं हैं; वे साक्षात् अव्यय-पुरुष श्रीनारायण हैं;

भूभारहरणार्थाय गच्छ तात गृहं सुखम् । श्रुत्वा मारीचवचनं रावणः प्रत्यभाषत ॥२९॥
परमात्मा यदा रामः प्रार्थितो ब्रह्मणा किल । मां हन्तुं मानुषो भूत्वा यत्नादिह समागतः ॥३०॥
करिष्यत्यचिरादेव सत्यसङ्कल्प ईश्वरः । अतोऽहं यत्नतः सीतामानेष्याम्येव राघवात् ॥३१॥
वधे प्राप्ते रणे वीर प्राप्स्यामि परमं पदम् । यद्वा रामं रणे हत्वा सीतां प्राप्स्यामि निर्भयः ३२॥
तदुत्तिष्ठ महाभाग विचित्रमृगरूपधृक् । रामं सलक्ष्मणं शीघ्रमाश्रमादतिदूरतः ॥३३॥
आक्रम्य गच्छ त्वं शीघ्रं सुखं तिष्ठ यथा पुरा । अतः परं चेद्यत्किञ्चिद्भाषसे मद्विभीषणम् ॥३४॥
हनिष्याम्यसिनाऽनेन त्वामत्रैव न संशयः । मारीचस्तद्वचः श्रुत्वा स्वात्मन्येवानुचिन्तयत् ॥३५॥
यदि मां राघवो हन्यात्तदा मुक्तो भवार्णवात् । मां हन्याद्यदि चेद्दुष्टस्तदा मे निरयो ध्रुवम् ३६॥
इति निश्चित्य मरणं रामादुत्थाय वेगतः । अब्रवीद्रावणं राजन्करोम्याज्ञां तव प्रभो ॥३७॥
इत्युक्त्वा रथमास्थाय गतो रामाश्रमं प्रति । शुद्धजाम्बूनदप्रख्यो मृगोऽभूद्रौप्यबिन्दुकः ॥३८॥
रत्नशृङ्गो मणिखुरो नीलरत्नविलोचनः । विद्युत्प्रभो विमुग्धास्यो विचचार वनान्तरे ॥३९॥
रामाश्रमपदस्यान्ते सीता दृष्टिपथे चरन् ॥४०॥

माया-मानव होकर वे निर्भयता पूर्वक पृथिवी का भार उतारने के लिये वन में आये हैं। अत एव हे तात! तुम सुखपूर्वक घर को लौट जाओ। मारीच का यह कथन सुनकर रावण बोला ॥ २८–२९ ॥ ब्रह्माजी की प्रार्थना से यदि परमात्मा ही श्रीराम होकर मनुष्यरूप से मुझे मारने के लिये प्रयत्न पूर्वक यहाँ आये हैं, तो शीघ्र ही वे वैसा ही करेंगे; क्योंकि ईश्वर सत्य संकल्प हैं। अतएव मैं यत्नपूर्वक अवश्य ही श्रीरघुनाथजी के पास से सीता को ले आऊँगा ॥ ३०–३१ ॥

हे वीर! युद्ध में यदि मैं उनके हाथ मारा गया, तो अवश्य ही परमपद को प्राप्त करूँगा। यदि मैं ही रणक्षेत्र में श्रीराम को मार दूँगा तो निर्भयतापूर्वक सीता को पाऊँगा ॥ ३२ ॥ अतएव हे महाभाग! उठो और शीघ्र ही विचित्र मृग का रूप धारण कर श्रीराम और लक्ष्मण को आश्रम से अतिदूर ले जाओ। पुनः पूर्ववत् अपने आश्रम मेंआकर सुखपूर्वक रहो। मुझे भयभीत करने के लिये तुम और कुछ यदि कहोगे तो अभी इसी खड्ग से तुम्हें यहीं मार डालूँगा"। उसका यह कथन सुनकर मारीच अपने मन ही मन सोचने लगा ॥ ३३–३५ ॥ यदि रघुनाथजी मुझे मारेंगे तो मैं संसार-सागर को पार कर लूँगा और कहीं यह दुष्ट मुझे यहीं मार दिया तो निश्चय ही मुझे नरक भोगना पड़ेगा ॥ ३६ ॥ इस प्रकार श्रीराम के हाथ से अपना मरना निश्चय कर वह शीघ्रता से उठा और रावण से बोला—हे राजन्! हे प्रभो! मैं आपकी आज्ञा का पालन करूगा" ॥ ३७ ॥

वह ऐसा कहकर रावण के रथ पर चढ़कर श्रीरामचन्द्र के आश्रम के पास आया और चाँदी की बूँदो के सहित सुवर्णवर्ण विचित्र मृग-रूप धारण किया ॥ ३८ ॥ उसके सींग रत्नमय खुर मणिमय और नेत्र नील रत्नमय थे। इस प्रकार बिजली की छटा और मनोहर मुखवाला वह मृग श्रीरामचन्द्रजी के आश्रम के पास

क्षणं च धावत्यवतिष्ठते क्षणं समीपमागत्य पुनर्भयावृतः।
एवं स मायामृगवेषरूपधृक् चचार सीतां परिमोहयन्खलः ॥४१॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तम सर्ग

मारीचवध और सीताहरण

श्रीमहादेव उवाच

अथ रामोऽपि तत्सर्वं ज्ञात्वा रावणचेष्टितम् । उवाच सीतामेकान्ते शृणु जानकि मे वचः ॥१॥
रावणो भिक्षुरूपेण आगमिष्यति तेऽन्तिकम् । त्वं तु छायां त्वदाकारां स्थापयित्वोटजे विश ॥२॥
अग्नावदृश्यरूपेण वर्षं तिष्ठ ममाज्ञया । रावणस्य वधान्ते मां पूर्ववत्प्राप्स्यसे शुभे ॥३॥
श्रुत्वा रामोदितं वाक्यं सापि तत्र तथाकरोत्। मायासीतां बहिः स्थाप्य स्वयमन्तर्दधेऽनले । ४॥
मायासीता तदाऽपश्यन्मृगं मायाविनिर्मितम्। हसन्ती राममभ्येत्य प्रोवाच विनयान्विता ॥५॥

सीताजी के सामने वन में विचरण करने लगा ॥ ३१–४० ॥ किसी क्षण तो वह चौकड़ी मारता और कभी-कभी पास आकर रूक जाता । पुनः भय से भागने लगता । इस प्रकार वह वञ्चक माया-मृग रूप धारणकर सीताजी को मोहित करता हुआ विचरण करने लगा ॥ ४१ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः षष्ठसर्गः परिपूर्णः ॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! श्रीरामचन्द्रजी रावण की सम्पूर्ण चेष्टाओं को जानकर एकान्त में सीताजी से बोले—हे जानकि ! मेरी बात सुनो ॥ १ ॥ हे शुभे ! रावण तुम्हारे पास भिक्षुक का रूप धारण कर आयेगा । अतएव तुम अपनी आकृति की अपनी छाया को कुटी में छोड़कर अग्नि में मेरी आज्ञा से एक वर्ष तक अदृश्य होकर रहो । रावण का वध हो जाने के बाद पूर्ववत् तू मुझे प्राप्त कर लोगी ॥२-३॥ श्रीरामचन्द्रजी की बात सुनकर सीताजी ने भी वैसा ही किया । वे माया-सीता को बाहर रखकर स्वयं अग्नि में अन्तर्धान हो गयीं ॥ ४ ॥

तदनन्तर माया मयी सीता मायामृग को देखकर श्रीरामचन्द्रजी के पास हँसती हुई आकर नम्रतापूर्वक

पश्य राम मृगं चित्रं कानकं रत्नभूषितम् । विचित्रबिन्दुभिर्युक्तं चरन्तमकुतोभयम् ॥६॥
बद्ध्वा देहि मम क्रीडामृगो भवतु सुन्दरः । तथेति धनुरादाय गच्छन् लक्ष्मणमब्रवीत् ॥७॥
रक्ष त्वमतियत्नेन सीतां मत्प्राणवल्लभाम् । मायिनः सन्ति विपिने राक्षसा घोरदर्शनाः ॥८॥
अतोऽत्रावहितः साध्वीं रक्ष सीतामनिन्दिताम् । लक्ष्मणो राममाहेदं देवायं मृगरूपधृक् ।
मारीचोऽत्र न सन्देह एवं भूतो मृगः कुतः ॥९॥

श्रीराम उवाच

यदि मारीच एवायं तदा हन्मि न संशयः । मृगश्चेदानयिष्यामि सीताविश्रामहेतवे ॥१०॥
गमिष्यामि मृगं बद्ध्वा ह्यानयिष्यामि सत्वरः। त्वं प्रयत्नेन सन्तिष्ठ सीतासंरक्षणोद्यतः ॥११॥
इत्युक्त्वा प्रययौ रामो मायामृगमनुद्रुतः । माया यदाश्रया लोकमोहिनी जगदाकृतिः ॥१२॥
निर्विकारश्चिदात्मापि पूर्णोऽपि मृगमन्वगात् । भक्तानुकम्पी भगवानिति सत्यं वचो हरिः॥१३॥
कर्तुं सीताप्रियार्थाय जानन्नपि मृगं ययौ । अन्यथा पूर्णकामस्य रामस्य विदितात्मनः ॥१४॥
मृगेण वा स्त्रिया वापि किं कार्यं परमात्मनः । कदाचिद्दृश्यतेऽभ्याशे क्षणं धावति लीयते ॥१५॥
दृश्यते च ततो दूरादेवं राममपाहरत् । ततो रामोऽपि विज्ञाय राक्षसोऽयमिति स्फुटम् १६

बोली ॥ ५ ॥ "हे राम ! यह रत्न-विभूषित सुवर्णमृग को देखिये । यह विचित्र बिन्दु युक्त कैसे निर्भयता पूर्वक विचरण कर रहा है ? हे प्रभो ! इसे बाँधकर मुझे ला दीजिये, यह सुन्दर मेरा क्रीड़ामृग हो" ॥ ६ ॥ तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी ऐसा ही हो, यह कह कर अपना धनुष उठा लिये और जाते हुए लक्ष्मण से बोले— "हे लक्ष्मण ! तुम मेरी प्राणवल्लभा सीता की यत्नपूर्वक रक्षा करो ॥ ७ ॥ जंगल में बड़े मायावी देखने में भयङ्कर राक्षस हैं । अतएव तुम अनिन्दिता साध्वी सीता की सावधानी पूर्वक रक्षा करना" ॥ ८ ॥ तब लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजी से बोले—"देव ! यह मृग का रूप धारण किया हुआ निःसन्देह मारीच है, क्योंकि इस प्रकार का मृग कहाँ हो सकता है" ? ॥ ९ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी बोले—"यदि यह मारीच ही है तो निःसन्देह इसे मैं मार दूँगा; और यदि यह मृग है तो सीता के मन विश्राम के लिये इसे ले आऊँगा" ॥ १० ॥

मैं जाता हूँ और शीघ्र ही इस मृग को बाँधकर लाता हूँ, तुम प्रयत्न पूर्वक सीताजी की रखवाली करते हुए रहो ॥ ११ ॥ यह जगदाकृति लोक विमोहिनी माया जिनके आश्रित है, वे श्रीरामचन्द्रजी यह कहकर उस माया मृग के पीछे दौड़ते हुए चले गये ॥ १२ ॥ वे निर्विकार, चिदात्मा और पूर्ण होकर भी मृग के पीछे-पीछे दौड़े । अतएव "भगवान् हरि भक्तवत्सल हैं", यह वाक्य सत्य ही है ॥ १३ ॥ भगवान् सब कुछ जानते हुए भी सीता को प्रसन्न करने के लिये मृग के पीछे दौड़े । अन्यथा पूर्णकाम आत्मज्ञ परमात्मा राम को मृग अथवा स्त्री से क्या प्रयोजन ? वह मृग कभी तो समीप दिखायी देता और कभी क्षण मात्र में ही दूर भागकर छिप जाता था ॥ १४–१५ ॥ पुनः बहुत दूरपर दिखायी देता, इस प्रकार वह

विव्याध शरमादाय राक्षसं मृगरूपिणम् । पपात रुधिराक्तास्यो मारीचः पूर्वरूपधृक् ॥१७॥
हा हतोऽस्मि महाबाहो त्राहि लक्ष्मण मां द्रुतम् । इत्युक्त्वा रामवद्वाचा पपात रुधिराशनः १८
यन्नामाज्ञोऽपि मरणे स्मृत्वा तत्साम्यमाप्नुयात् । किमुताग्रे हरिं पश्यंस्तेनैव निहतोऽसुरः १९॥
तद्देहादुत्थितं तेजः सर्वलोकस्य पश्यतः । राममेवाविशद्देवा विस्मयं परमं ययुः ॥२०॥
किं कर्म कृत्वा किं प्राप्तः पातकी मुनिहिंसकः । अथवा राघवस्यायं महिमा नात्र संशयः ॥२१॥
रामबाणेन संविद्धः पूर्वं राममनुस्मरन् । भयात्सर्वं परित्यज्य गृहवित्तादिकं च यत् ॥२२॥
हृदि रामं सदा ध्यात्वा निर्धूताशेषकल्मषः । अन्ते रामेण निहतः पश्यन् राममवाप सः ॥२३॥
द्विजो वा राक्षसो वाऽपि पापी वाऽधार्मिकोऽपि वा । त्यजन्कलेवरं रामं स्मृत्वा याति परं पदम् ।
इति तेऽन्योन्यमाभाष्य ततो देवा दिवं ययुः । रामस्तच्चिन्तयामास म्रियमाणोऽसुराधमः ॥२५॥
हा लक्ष्मणेति मद्वाक्यमनुकुर्वन्ममार किम् । श्रुत्वा मद्वाक्यसदृशं वाक्यं सीतापि किं भवेत् २६
इति चिन्तापरीतात्मा रामो दूरान्न्यवर्तत । सीता तद्भासितं श्रुत्वा मारीचस्य दुरात्मनः २७॥
भीताऽतिदुःखसंविग्ना लक्ष्मणं त्विदमब्रवीत् । गच्छ लक्ष्मण वेगेन भ्राता तेऽसुरपीडितः ॥२८॥

श्रीरामचन्द्रजी को बहुत दूर ले गया। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी यह जान लिये कि यह राक्षस ही है और मायामृग रूप राक्षस को बाण से बींध डाले। बाण के लगते ही मारीच अपना पूर्वरूप धारणकर रूधिर भरे मुख से पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १६–१७ ॥

वह रुधिरपान करने वाला राक्षस हे महाबाहो लक्ष्मण! मैं मारा गया, शीघ्र मेरी रक्षा करो; इस प्रकार राम की हा बोली में कहता हुआ गिर पड़ा ॥ १८ ॥ मरते समय जिनके नाम का स्मरण कर अज्ञ भी जिनमें लीन हो जाते हैं, उनको सामने देखते हुए और उन्हीं के हाथों से मरना, उस राक्षस के विषय में कहना ही क्या? ॥ १९ ॥ उसके शरीर से तेज निकल कर सबके देखते-देखते राम में समा गया यह देखकर देवता लोग विस्मित हुए ॥ २० ॥ वे कहने लगे—इस मुनिजन हिंसक पापी निशाचर कैसा-कैसा कर्म किया और कैसी गति प्राप्त किया; अथवा निःसन्देह यह राघव की ही महिमा है ॥ २१ ॥ राम के बाण से विद्ध यह पहले से ही भय से गृह, धन आदि की लिप्सा को छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी के स्मरण में लगा हुआ था ॥२२॥ हृदय में सदा श्रीराम का ध्यान करने से सम्पूर्ण पाप रहित होने वाला यह अन्त में श्रीराम के बाण से मरकर श्रीरामचन्द्रजी को ही प्राप्त कर लिया ॥ २३ ॥

ब्राह्मण, राक्षस, पापी अथवा धार्मिक शरीर का त्याग करते समय श्रीराम का स्मरण करने से परमपद को प्राप्त करते हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकार परस्पर बातचीत करते हुए देवगण स्वर्गलोक चले गये। तब श्रीरामचन्द्रजी सोचने लगे कि यह अधम राक्षस हा लक्ष्मण! इस प्रकार मेरी बोली में कहकर प्राण क्यों छोड़ा? मेरे वाक्यों को सुनकर सीताजी की क्या दशा होगी? ॥ २५–२६ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए बड़े दूर से श्रीरामचन्द्रजी लौटे। इधर उस मारीच का कहा हुआ शब्द सुनकर अत्यन्त भय और

हा लक्ष्मणेति वचनं भ्रातुस्ते न शृणोषि किम् । तामाह लक्ष्मणो देवि रामवाक्यं न तद्भवेत् ।२९॥
यः कश्चिद्राक्षसो देवि म्रियमाणोऽब्रवीद्वचः । रामस्त्रैलोक्यमपि यः क्रुद्धो नाशयति क्षणात् ॥३०॥
स कथं दीनवचनं भाषतेऽमरपूजितः । क्रुद्धा लक्ष्मणमालोक्य सीता वाष्पविलोचना ३१॥
प्राह लक्ष्मण दुर्बुद्धे भ्रातुर्व्यसनमिच्छसि । प्रेषितो भरतेनैव रामनाशाभिकाङ्क्षिणा ॥३२॥
मां नेतुमागतोऽसि त्वं रामनाश उपस्थिते । न प्राप्स्यसे त्वं मामद्य पश्य प्राणांस्त्यजाम्यहम्३३
ना जानातीदृशं रामस्त्वां भार्याहरणोद्यतम् । रामादन्यं न स्पृशामि त्वां वा भरतमेव वा ॥३४॥
इत्युक्त्वा वध्यमाना सा स्वबाहुभ्यां रुरोद ह । तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणः कर्णौ पिधायातीव दुखितः ।
मामेवं भाषसे चण्डि धिक् त्वां नाशमुपैष्यसि । इत्युक्त्वा वनदेवीभ्यः समर्प्य जनकात्मजाम् ।
ययौ दुःखार्तिसंविग्नो राममेव शनैः शनैः । ततोऽन्तरं समालोक्य रावणो भिक्षुवेषधृक् ॥३७॥
सीतासमीपमगमत्स्फुरद्दण्डकमण्डलुः । सीता तमवलोक्याशु नत्वा संपूज्य भक्तितः ३८॥
कन्दमूलफलादीनि दत्त्वा स्वागतमब्रवीत् । मुने भुङ्क्ष्व फलादीनि विश्रमस्व यथासुखम् ॥३९॥
इदानीमेव भर्ता मे ह्यागमिष्यति ते प्रियम् । करिष्यति विशेषेण तिष्ठ त्वं यदि रोचते ॥४०॥

दुःख से व्याकुल हो सीताजी लक्ष्मण से इस प्रकार बोलीं—"लक्ष्मण! तुम जल्दी जाओ, तुम्हारे भाई असुरों से पीड़ित हैं ॥ २७-२८ ॥ हा लक्ष्मण! अपने भाई का यह शब्द क्या तुम नहीं सुनते? तब लक्ष्मणजी बोले—देवि! यह वाक्य श्रीरामचन्द्रजी का नहीं है ॥ २९ ॥ कोई राक्षस मरते समय यह वाक्य कहा है। जो श्रीरामजी क्रोधित होने पर क्षणमात्र में ही त्रिलोकी को नष्ट कर सकते हैं ॥ ३० ॥ वे देवताओं से पूज्य प्रभु इस प्रकार दीन-वचन कैसे बोल सकते? तत्पश्चात् नेत्रों में जलभर कर क्रोध-पूर्वक लक्ष्मण के तरफ देखती हुई सीताजी बोलीं—रे लक्ष्मण! क्या तू अपने भाई को विपत्ति में पड़ा हुआ देखना चाहता हो? अरे दुर्बुद्धे! यह प्रतीत होता है कि राम का नाश चाहने वाला भरत ने ही तुझे भेजा है ॥ ३१-३२ ॥ राम का नाश हो जाने पर मुझे लेने के लिये ही तू आया है क्या? किन्तु तुम मुझे प्राप्त नहीं कर सकोगे। देखो, मैं अभी प्राण त्याग देती हूँ ॥ ३३ ॥ राम इस प्रकार पत्नीहरण के लिये उद्यत तुझे नहीं जानते, रामके अतिरिक्त तुम अथवा भरत में से किसी का मैं स्पर्श नहीं कर सकती ॥ ३४ ॥ यह कहकर अपने हाथों से छाती पीट-पीट कर रोने लगीं। सीता के ऐसे कठोर शब्द सुनकर लक्ष्मणजी अति दुःखित हो अपना दोनों कान मूँद लिये और बोले—हे चण्डि! तुमको धिक्कार है, मुझे इस प्रकार कह रही हो! इससे तुम नष्ट हो जाओगी। यह कहकर लक्ष्मणजी वन देवियों को सीताजी को सौंपकर दुःख से खिन्न मन धीरे-धीरे राम के पास चले। इसी समय मौका देखकर रावण भिक्षुक का वेष धारण कर दण्ड-कमण्डलु लिये सीता के पास आया। सीताजी उसे देखकर शीघ्र ही नमस्कार कर भक्तिपूर्वक उसका पूजन कर कन्द-मूल-फल आदि देकर स्वागत करते हुए बोलीं—"हे मुने! ये फल आदि खाकर सुखपूर्वक विश्राम कीजिये। थोड़ी देर में ही मेरे पतिदेव आते होंगे। आपकी यदि

भिक्षुरुवाच

का त्वं कमलपत्राक्षि को वा भर्ता तवानघे । किमर्थमत्र ते वासो वने राक्षससेविते ।
ब्रूहि भद्रे ततः सर्वं स्ववृत्तान्तं निवेदय ॥४१॥

सीतोवाच

अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा दशरथो महान् । तस्य ज्येष्ठः सुतो रामः सर्वलक्षणलक्षितः ।४२
तस्याहं धर्मतः पत्नी सीता जनकनन्दिनी । तस्य भ्राता कनीयांश्च लक्ष्मणो भ्रातृवत्सलः ।४३
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डके वस्तुमागतः । चतुर्दश समास्त्वां तु ज्ञातुमिच्छामि मे वद ॥४४॥

भिक्षुरुवाच

पौलस्त्यतनयोऽहं तु रावणो राक्षसाधिपः । त्वत्कामपरितप्तोऽहं त्वां नेतुं पुरमागतः ॥४५॥
मुनिवेषेण रामेण किं करिष्यसि मां भज । भुङ्क्ष्व भोगान्मया सार्धं त्यज दुःखं वनोद्भवम् ।
श्रुत्वा तद्वचनं सीता भीता किञ्चिदुवाच तम् । यद्येवं भाषसे मां त्वं नशमेष्यसि राघवात् ॥४७।
आगमिष्यति रामोऽपि क्षणं तिष्ठ सहानुजः । मां को धर्षयितुं शक्तो हरेर्भार्यां शशो यथा ४८
रामबाणैर्विभिन्नस्त्वं पतिष्यसि महीतले । इति सीतावचः श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।४९।
स्वरूपं दर्शयामास महापर्वतसन्निभम् । दशास्यं विंशतिभुजं कालमेघसमद्युतिम् ॥५०॥

इच्छा हो तो कुछ देर रुकिये । वे आपका कुछ विशेष आतिथ्य कर सकेंगे ॥ ३५–४० ॥ भिक्षु बोला—हे कमललोचने । तुम कौन हो ? तुम्हारे पति कौन हैं ? हे अनघे । इस राक्षस सेवित वन में तुम्हारा रहना कैसे है ? हे भद्रे ! यह सब तुम मुझे बताओ, तब मैं अपना वृत्तान्त बतलाऊँगा ॥ ४१ ॥

सीताजी बोलीं—(हे भिक्षो ।) श्रीमान् महाराजदशरथ अयोध्या के राजा के ज्येष्ठ लड़के सर्वलक्षण सम्पन्न श्रीराम हैं, मैं जनकनन्दिनी सीता उनकी धर्मपत्नी हूँ। उनका छोटा भाई लक्ष्मण भ्रातृवत्सल है ॥ ४३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी पिता की आज्ञा से चौदहवर्ष तक दण्डकारण्य में आये हैं । मैं आपके विषय में जानना चाहती हूँ, मुझे बतलावें ॥ ४४ ॥ भिक्षुक बोला—मैं पुलस्त्यनन्दन (विश्वश्रवा) का पुत्र राक्षसों का राजा रावण हूँ। तुम्हारे काम से पीडित तुम्हें अपनी राजधानी में ले जाने के लिये आया हूँ ॥ ४५ ॥ मुनिवेषधारी राम से तुम क्या करोगी ? तुम मुझसे प्रेम करो और इस वनवास के दुःख को छोड़कर मेरे साथ विविध भोगों का भोग करो ॥ ४६ ॥

उसकी ये बातें सुनकर सीताजी कुछ डरते हुए उससे बोलीं—यदि तु मुझसे ऐसी बातें करेगा तो श्रीरामचन्द्रजी नष्ट कर देंगे ॥ ४७ ॥ तू क्षणभर ठहरो, भाई के साथ श्रीरामजी आते ही होंगे। मेरे साथ कौन बलात्कार कर सकता है ? सिंहनी के साथ खरहा भी बलात्कार कर सकता है क्या ? ॥ ४८ ॥ रामके बाणों से छिन्न-भिन्न तू जमीन पर गिरेगा। इस प्रकार सीता का वचन सुनकर क्रोध से मूर्च्छित रावण महापर्वत के समान अपना स्वरूप दिखाया; दशमुख, बीस भुजाएँ तथा काले मेघ के समान उसकी

तद्दृष्ट्वा वनदेव्यश्च भूतानि च वितत्रसुः । ततो विदार्य धरणीं नखैरुद्धृत्य बाहुभिः ॥५१॥
तोलयित्वा रथे क्षिप्त्वा ययौ क्षिप्रं विहायसा । हा राम हा लक्ष्मणेति रुदती जनकात्मजा ॥५२॥
भयोद्विग्नमना दीना पश्यन्ती भुवमेव सा । श्रुत्वा तत्क्रन्दितं दीनं सीतायाः पक्षिसत्तमः ५३
जटायुरुत्थितः शीघ्रं नगाग्रात्तीक्ष्णतुण्डकः । तिष्ठ तिष्ठेति तं प्राह को गच्छति ममाग्रतः ॥५४॥
मुषित्वा लोकनाथस्य भार्यां शून्याद्वनालयात् । शुनको मन्त्रपूतं त्वं पुरोडाशमिवाध्वरे ॥५५॥
इत्युक्त्वा तीक्ष्णतुण्डेन चूर्णयामास तद्रथम् । वाहान्बिभेद पादाभ्यां चूर्णयामास तद्धनुः ॥५६॥
ततः सीतां परित्यज्य रावणः खड्गमाददे । चिच्छेद पक्षौ सामर्षः पक्षिराजस्य धीमतः ॥५७॥
पपात किञ्चिच्छेषेण प्राणेन भुवि पक्षिराट् । पुनरन्यरथेनाशु सीतामादाय रावणः ॥५८॥
क्रोशन्ती रामरामेति त्रातारं नाधिगच्छति । हा राम हा जगन्नाथ मां न पश्यसि दुःखिताम् ५९

कान्ति थी ॥ ४९-५० ॥ उस समय उस भयङ्कर रूप को देखकर वन देवियाँ और वन में रहने वाले जीव भयभीत हो गये। तब रावण सीताजी के पैरों के नीचे की जमीन को नखों से खोदकर[1] सीताजी को अपने हाथों से उठा लिया और रथ में रखकर शीघ्र आकाश मार्ग से चल दिया। उस समय सीताजी अति भयभीत होकर कातर-दृष्टि से पृथिवी की ओर देखती हुई "हा राम! हा लक्ष्मण! यह कहकर रोने लगीं। सीताजी का वह आर्त्त क्रन्दन सुनकर शीघ्र ही तीक्ष्ण चोंचवाला पक्षि श्रेष्ठ जटायु पहाड़ की चोटी पर से उठा और बोला—"अरे! ठहर,! ठहर, यज्ञ के मन्त्रपूत पुरोडाश को ले जाने वाले कुत्ते की भाँति मेरे सामने जगन्नाथ श्रीरघुनाथजी की भार्या को तू कौन ले जाता है? ॥ ५१-५५ ॥ यह कहकर जटायु अपनी तीक्ष्णचोंच से रावण के रथ को चूर-चूर कर दिया और अपने पञ्जों से घोड़ों को मारकर उसके धनुष को टुकड़े-टुकड़े कर दिया ॥ ५६ ॥

तब सीताजी को छोड़कर रावण अपना खड्ग निकाला और झुंझलाकर मतिमान् जटायु का पँख काट दिया ॥ ५७ ॥ पँख कट जाने पर पक्षिराज जटायु अधमरा हो पृथिवी पर गिर पड़े। पुनः तत्क्षण रावण सीताजी को दूसरे रथ पर चढ़ाकर चल दिया ॥ ५८ ॥ उस समय किसी रक्षक को न देखकर वह सीता बारम्बार श्रीराम को पुकारती हुई रो-रोकर कह रही थीं—हा राम! हा जगन्नाथ! क्या आप मुझ दुःखिनी

---

१ रावण को ब्रह्माजी का यह शाप था कि तू जिस किसी के भी साथ बलात्कार करेगा तो तुम्हारे मस्तक के सौ टुकड़े हो धायेंगे"। एक समय पुञ्जिकस्थलो नामक अप्सरा आकाशमार्ग से ब्रह्माजी के पास जा रही थी। उसे जाते देख रावण वस्त्रहीन कर उसके साथ सम्भोग किया। यह बात जब ब्रह्माजी को ज्ञात हुई तो ब्रह्माजी रावण मो शाप दिये थे। अत एव वावण सीताजो था स्पर्श नहीं किया।

एक समय रम्भा के साथ बलात्कार करने से कुबेर पुत्र नल कूबर ने भी रावण को इसी प्रकार का शाप दिया था (वाल्मीकि रामायण उ० का० सर्ग २६) परन्तु यह शाप पहला था और अपने तपोबल से रावण उससे नहीं डरता था। इसलिये वह पुञ्जिकस्थला के साथ बलात्कार करने का साहस किया था।

रक्षसा नीयमानां स्वां भार्यां मोचय राघव । हा लक्ष्मण महाभाग त्राहि मामपराधिनीम् ।६०
वाक्शरेण हतस्त्वं मे क्षन्तुमर्हसि देवर । इत्येवं क्रोशमानां तां रामागमनशङ्कया ॥६१॥
जगाम वायुवेगेन सीतामादाय सत्वरः । विहायसा नीयमाना सीतापश्यदधोमुखी ॥६२॥
पर्वताग्रे स्थितान्पञ्च वानरान्वारिजानना । उत्तरीयार्धखण्डेन विमुच्याभरणादिकम् ॥६३॥
बद्ध्वा चिक्षेप रामाय कथयन्त्विति पर्वते । ततः समुद्रमुल्लङ्घ्य लङ्कां गत्वा स रावणः ॥६४॥
स्वान्तः पुरे रहस्येतामशोकविपिनेऽक्षिपत् । राक्षसीभिः परिवृतां मातृबुद्ध्यान्वपालयत् ।६५॥

कृशाऽतिदीना परिकर्मवर्जिता दुःखेन शुष्यद्वदनाऽतिविह्वला ।
हा राम रामेति विलप्यमाना सीता स्थिता राक्षसवृन्दमध्ये ॥६६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

को देखते नहीं है ? ॥ ५९ ॥ हे राघव ! आपकी स्त्री को राक्षस ले जाता है । आप छुड़ाइये । हा महाभाग लक्ष्मण ! मुझ अपराधिनी की रक्षा करो ॥ ६० ॥ हे देवर ! मैं तुम्हें बाणी रूपी बाण से मारी थी, तुम मुझे क्षमा करना । सीताजी के इस प्रकार रुदन करने से राम के आने की आशङ्का से वायु के समान अति तीव्र वेग से सीताजी को लेकर रावण चलने लगा । इस प्रकार आकाश मार्ग से जाते हुए नीचे की ओर देखती हुई कमल के समान मुखवाली सीताजी एक पर्वत के शिखर पर पाँच वानरों को बैठे देखीं । यह देखकर वे अपना आभूषणादि उतारकर अपने दुपट्टे के टुकड़े में बाँधीं और ये राम को मेरा समाचार सुनावें इस आशय से पर्वत पर फेंक दीं । तब रावण समुद्र पार कर लंका में पहुँचकर अपने अन्तः पुर के एकान्त देश अशोक वाटिका में सीताजी को रखा और राक्षसियों से घेरे में रखकर मातृबुद्धि से उनकी रक्षा करने लगा ॥ ६१–६५ ॥

उस स्थान में अतिकृश दीनवदना सीताजी सब प्रकार के शृङ्गारों को छोड़कर दुःख के कारण शुष्क वदन और अत्यन्त विह्वल होकर हा राम ! हा राम ! यह विलाप करती हुई राक्षसों के मध्य रहने लगीं ॥ ६६ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंबादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
सप्तमसर्गः परिपूर्णः ॥ ३ ॥

—※—

अष्टम सर्ग

सीताजी के वियोग में भगवान् राम का विलाप और जटायु से भेंट

श्रीमहादेव उवाच

रामो मायाविनं हत्वा राक्षसं कामरूपिणम् । प्रतस्थे स्वाश्रमं गन्तुं ततो दूराद्ददर्श तम् ॥१॥
आयान्तं लक्ष्मणं दीनं मुखेन परिशुष्यता । राघवश्चिन्तयामास स्वात्मन्येव महामतिः ॥२॥
लक्ष्मणस्तन्न जानाति मायासीतां मया कृताम् । ज्ञात्वाप्येनं वञ्चयित्वा शोचामि प्राकृतो यथा
यद्यहं विरतो भूत्वा तूर्ष्णीं स्थास्यामि मन्दिरे । तदा राक्षसकोटीनां वधोपायः कथं भवेत् ।४।
यदि शोचामि तां दुःखसन्तप्तः कामुको यथा ।
तदा क्रमेणानुचिन्वन्सीतां यास्येऽसुरालयम् । रावणं सकुलं हत्वा सीतामग्नौ स्थितां पुनः ।५॥
मयैव स्थापितां नीत्वा याताऽयोध्यामतन्द्रितः । अहं मनुष्यभावेन जातोऽस्मि ब्रह्मणाऽर्थितः ६
मनुष्यभावमापन्नः किञ्चित्कालं वसामि कौ । ततो मायामनुष्यस्य चरितं मेऽनुशृण्वताम् ॥७॥
मुक्तिः स्यादप्रयासेन भक्तिमार्गानुवर्तिनाम् । निश्चित्यैवं तदा दृष्ट्वा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ।।८॥
किमर्थमागतोऽसि त्वं सीतां त्यक्त्वा मम प्रियाम् । नीता वा भक्षिता वापि राक्षसैर्जनकात्मजा ।
लक्ष्मणः प्राञ्जलिः प्राह सीताया दुर्वचो रुदन् । हा लक्ष्मणेति वचनं राक्षसोक्तं श्रुतं तया ।१०॥

श्री महादेवजी बोले—(हे पार्वति) श्रीरामचन्द्रजी कामरूपधारण करने वाला मायावी राक्षस को मारकर जब अपने आश्रम पर आने के लिए प्रस्थान किये तो वे दूर से ही दीन तथा उदास मुख किये आते हुए लक्ष्मण को देखे। तब मन में ही महामति श्रीरघुनाथजी सोचने लगे ॥ १–२ ॥ मैं माया का सीता बना दिया हूँ, यह लक्ष्मण नहीं जानते। मैं जानकर भी लक्ष्मण से यह बात गुप्त रखकर साधारण मनुष्य जैसा शोक करूँगा ॥ ३ ॥ यदि मैं विरत होकर चुप-चाप अपने मन्दिर में बैठ जाऊँगा तो करोड़ों राक्षसों के वध का उपाय कैसे होगा ? ॥ ४ ॥ यदि उस सीता के लिये कामी पुरुष की भाँति दुःखातुर होकर शोक करूँगा तो क्रमशः सीता की खोज करता हुआ राक्षसराज रावण के यहाँ पहुँचकर उसे कुल सहित मारकर पुनः अग्नि में स्थापित की हुई सीता को अग्नि से निकालकर शीघ्र ही अयोध्या को चला जाऊँगा। मैं ब्रह्मा की प्रार्थना से मनुष्यावतार लिया हूँ। अत-एव कुछ समय तक पृथ्वी पर मैं मनुष्य भाव से ही रहूँगा। इससे मुझ माया से मनुष्य रूप धारण करने वाले के चरित्रों को सुनने वाले भक्तिमार्ग में लगे हुए प्राणियों की मुक्ति बिना प्रयास ही हो जायेगी। इस प्रकार निश्चय कर श्रीराम-चन्द्रजी लक्ष्मण की ओर देखकर बोले ॥ ५–६ ॥ लक्ष्मण ! तुम मेरी प्रिया सीता का छोड़कर कैसे आ गये ? अब तो सीता को या तो राक्षसगण हरण कर ले गये होंगे अथवा भक्षण कर गये होंगे ॥ ९ ॥

यह सुनकर लक्ष्मणजी हाथ जोड़कर रोते हुए सीता के कहे हुए दुर्वाक्य कह दिये। लक्ष्मणजी बोले—"हा लक्ष्मण !" यह आपके वाक्य के समान ही राक्षस का वाक्य सुनकर सीताजी मुझसे बोलीं कि

त्वद्वाक्यसदृशं श्रुत्वा मां गच्छेति त्वराब्रवीत् ।
रुदन्ती सा मया प्रोक्ता देवि राक्षसभाषितम् । नेदं रामस्य वचनं स्वस्था भव शुचिस्मिते ।११॥
इत्येवं सान्त्विता साध्वी मया प्रोवाच मां पुनः । यदुक्तं दुर्वचो राम न वाच्यं पुरतस्तव १२॥
कर्णौ पिधाय निर्गत्य यातोऽहं त्वां समीक्षितुम् । रामस्तु लक्ष्मणं प्राह तथाऽप्यनुचितं कृतम्
त्वया स्त्रीभाषितं सत्यं कृत्वा त्यक्त्वा शुभाननाम् । नीता वा भक्षिता वाऽपि राक्षसैर्नात्रसंशयः ।
इति चिन्तापरो रामः स्वाश्रमं त्वरितो ययौ । तत्रादृष्ट्वा जनकजां विललापातिदुखितः १५
हा प्रिये क्व गताऽसि त्वं नासि पूर्ववदाश्रमे । अथवा मद्विमोहार्थं लीलया क्व विलीयसे १६
इत्याचिन्वन्वनं सर्वं नापश्यज्जानकीं तदा । वनदेव्यः कुतः सीतां ब्रुवन्तु मम वल्लभाम् । १७॥
मृगाश्च पक्षिणो वृक्षा दर्शयन्तु मम प्रियाम् । इत्येवं विलपन्नेव रामः सीतां न कुत्रचित् ॥१८॥
सर्वज्ञः सर्वथा क्वापि नापश्यद्रघुनन्दनः । आनन्दोऽप्यन्वशोचत्तामचलोऽप्यनुधावति ॥१९
निर्ममो निरहङ्कारोऽप्यखण्डानन्दरूपवान् । मम जायेति सीतेति विललापातिदुःखितः ॥२०॥
एवं मायामनुचरन्नसक्तोऽपि रघूत्तमः । आसक्त इव मूढानां भाति तत्त्वविदां न हि ॥२१॥

तुम शीघ्र ही जाओ। तब मैं रोती हुई सीताजी को समझाया कि देवि ! यह राक्षस का शब्द है। हे शुचिस्मते ! आप निश्चिन्त रहें ॥१०–११॥ इस प्रकार उनसे कहने पर भी साध्वी सीता मुझसे जो दुर्वचन कही हैं, हे भगवन् ! वे आपके सामने कहने योग्य नहीं हैं ॥१२ ॥ अत-एव मैं कानों को बन्द कर वहाँ से आपको देखने के लिये चला आरहा हूँ। यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे लक्ष्मण ! यह होने पर भी तुम अनुचित किये ॥ १३ ॥

तुम स्त्री की बात को सत्य मानकर शुभानना सीता को छोड़ दिये। या तो सीता को राक्षस हरण कर ले गये होंगे अथवा भक्षण कर गये होंगे ॥१४॥ इस प्रकार चिन्तित हो श्रीरामचन्द्रजी अति शीघ्रता से अपने आश्रम में आये। वहाँ पर जानकी को नहीं देखकर अति दुःखित हो विलाप करने लगे ॥१५॥ हा प्रिये ! तुम कहाँ चली गयी ? तुम पूर्व की भाँति आश्रम में दिखायी नही पड़ रही हो; अथवा हमें मोहित करने के लिये लीला से कहीं छिप गयी हो ? ॥१६॥ इस तरह विलाप करते हुए वे सम्पूर्ण वन में खोजे, परन्तु कही भी जानकीजी दिखायी नहीं दीं। तत्पश्चात् वे कहने लगे—हे वनदेवियों ! मेरी प्राणवल्लभा सीता कहाँ है ? यह बतलाओ। अरे मृग, पक्षी और वृक्षों तुम मेरी प्रिया को दिखाओ ॥१७॥ इसतरह विलाप करते हुए सर्वज्ञ श्रीरघुनाथजी सीता को कहीं भी नहीं देखे ॥१८॥ भगवान् राम आनन्दस्वरूप होकर भी सीताजी के लिये शोक किये; निश्चल होकर भी उनको खोजते हुए यत्र-तत्र दौड़ते रहे। पुनः समता और अहङ्कार से शून्य अखण्डानन्द-स्वरूप होकर भी अत्यन्त दुःखित होकर मेरी जाया ! सीता ! यह कहकर विलाप करते रहे ॥१९–२०॥

इस प्रकार माया का अनुसरण करते हुए श्रीरघुनाथजी आसक्ति से रहित होते हुए भी मूढ़ जनों को

एवं विचिन्वन्सकलं वनं रामः सलक्ष्मणः । भग्नं रथं छत्रचापं कूबरं पतितं भुवि ॥२२॥
दृष्ट्वा लक्ष्मणमाहेदं पश्य लक्ष्मण केनचित् । नीयमानां जनकजां तं जित्वाऽन्यो जहार ताम् २३
ततः कश्चिद्भुवो भागं गत्वा पर्वतसन्निभम् । रुधिराक्तवपुर्दृष्ट्वा रामो वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥२४॥
एष वै भक्षयित्वा तां जानकीं शुभदर्शनाम् । शेते विविक्तेऽतितृप्तः पश्य हन्मि निशाचरम् ॥२५॥
चापमानय शीघ्रं मे बाणं च रघुनन्दन । तच्छ्रुत्वा रामवचनं जटायुः प्राह भीतवत् ॥२६॥
मां न मारय भद्रं ते म्रियमाणं स्वकर्मणा । अहं जटायुस्ते भार्याहारिणं समनुद्रुतः ॥२७॥
रावणं तत्र युद्धं मे बभूवारिविमर्दन । तस्य वाहान् रथं चापं छित्वाहं तेन घातितः २८॥
पतितोऽस्मि जगन्नाथ प्राणांस्त्यक्ष्यामि पश्य माम् । तच्छ्रुत्वा राघवो दीनं कण्ठप्राणं ददर्श ह २९।
हस्ताभ्यां संस्पृशन् रामो दुःखाश्रुवृतलोचनः ॥३०॥
जटायो ब्रूहि मे भार्या केन नीता शुभानना । मत्कार्यार्थं हतोऽसि त्वमतो मे प्रियबान्धवः ॥३१॥
जटायुः खिन्नया वाचा वक्त्राद्रक्तं समुद्वमन् । उवाच रावणो राम राक्षसो भीमविक्रमः ॥३२॥

आसक्त जैसा प्रतीत हो रहे हैं; परन्तु तत्त्वज्ञानियों को इस प्रकार का भ्रम नहीं होता था ॥२१॥ इस तरह लक्ष्मण के साथ श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण वन में सीता को खोजते हुए जमीन पर टूटे रथ, क्षत्र, धनुष और कुबर (रथ की एक लकड़ी) पड़े हुए देखे। उन्हें देखकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले—हे लक्ष्मण यहाँ देखो, सीताजी को जाते हुए किसी पुरुष को कोई दूसरा व्यक्ति युद्ध में जीतकर उन्हें हरण कर ले गया है ॥२२–२३॥ पुनः थोड़े दूर जाने पर एक पर्वत के समान शरीर को खून से लथ-पथ देखकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—॥२४॥ "निःसन्देह यही शुभदर्शना सीता को खाकर तृप्त होकर यहाँ एकान्त में सो रहा है। मैं इस राक्षस को अभी मार देता हूँ ॥२५॥

हे रघुनन्दन लक्ष्मण ! शीघ्र ही मेरा धनुषबाण लाओ"। राम की यह उक्ति सुनकर भयभीत होकर जटायु बोला ॥२६॥ मैं अपने ही कर्म से मर रहा हूँ ; आप मुझे न मारें, आपका कल्याण हो। मैं जटायु नामक गृध्र हूँ। मैं आपकी भार्या सीता को ले जाने वाले रावण का पीछा किया और मैं उसका रथ, घोड़े और धनुष भी तोड़ दिया; परन्तु वह मुझे घायल कर दिया जिससे मैं घायल होकर यहाँ पड़ा हूँ। हे जगन्नाथ ! आप मेरे तरफ देखिये, मैं अब अपने प्राणों को छोड़ना चाहता हूँ॥ २७–२९ ॥ यह सुनकर श्रीरघुनाथजी ! उनके पास जाकर उसे कण्ठगतप्राण और अति दीन अवस्था में पड़े देखे। तत्पश्चात् वे आँखों में आँसू भरकर उस पर हाथ फेरते हुए बोले" ॥३०॥ हे जटायु ! मेरी सुमुखी भार्या सीता को कौन ले गया है ? उसे बताओ। अहो ! तुम मेरे कार्य के लिये मारे गये। अत-एव अवश्य ही तुम मेरे प्रिय-बन्धु हो" ॥३१॥

जटायु रक्त वमन करते हुए अस्फुट वाणी में बोला—"हे राम ! महापराक्रमी राक्षसराज रावण मैथिली सीता को दक्षिण दिशा में ले गया है। इससे अधिक कहने की मुझमें शक्ति नहीं है आपके

आदाय मैथिलीं सीतां दक्षिणाभिमुखो ययौ । इतो वक्तुं न मे शक्तिः प्राणांस्त्यक्ष्यामि तेऽग्रतः ३३
दिष्ट्या दृष्टोऽसि राम त्वं म्रियमाणेन मेऽनघ । परमात्माऽसि विष्णुस्त्वं मायामनुजरूपधृक् ३४
अन्तकालेऽपि दृष्ट्वा त्वां मुक्तोहं रघुसत्तम । हस्ताभ्यां स्पृश मां राम पुनर्यास्यामि ते पदम् ३५
तथेति रामः पस्पर्श तदङ्गं पाणिना स्मयन् । ततः प्राणान्परित्यज्य जटायुः पतितो भुवि ।३६॥
रामस्तमनुशोचित्वा बन्धुवत्साश्रुलोचनः । लक्ष्मणेन सामानाय्य काष्ठानि प्रददाह तम् ॥३७॥
स्नात्वा दुःखेन रामोऽपि लक्ष्मणेन समन्वितः । हत्वा वने मृगं तत्र मांसखण्डान्समन्ततः ॥३८॥
शाद्वले प्राक्षिपद्रामः पृथक् पृथगनेकधा । भक्षन्तु पक्षिणः सर्वे तृप्तो भवतु पक्षिराट्[1] ॥३९॥
इत्युक्त्वा राघवः प्राह जटायो गच्छ मत्पदम् । मत्सारूप्यं भजस्वाद्य सर्वलोकस्य पश्यतः ॥४०।
ततोऽनन्तरमेवासौ दिव्यरूपधरः शुभः । विमानवरमारुह्य भास्वरं भानुसन्निभम् ॥४१॥
शङ्खचक्रगदापद्मकिरीटवरभूषणैः । द्योतयन्स्वप्रकाशेन पीताम्बरधरोऽमलः ॥४२॥
चतुर्भिः पार्षदैर्विष्णोस्तादृशैरभिपूजितः । स्तूयमानो योगिगणै राममाभाष्य सत्वरः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव रघुनन्दनम् ॥४३॥

जटायुरुवाच

अगणितगुणमप्रमेयमाद्यं सकलजगत्स्थितिसंयमादिहेतुम् ।
उपरमपरमं परात्मभूतं सततमहं प्रणतोऽस्मि रामचन्द्रम् ॥४४॥

सामने अभी मैं अपना प्राण छोड़ना चाहता हूँ ॥३२-३३॥ हे राम ! आज बड़े भाग्य से मरते समय आपको मैं देख सका हूँ । हे अनघ ! आप माया-मानव रूप में अवतरित साक्षात् परमात्मा विष्णु ही हैं ॥३४॥ हे रघुश्रेष्ठ ! मैं तो अन्तिम समय आपका दर्शन करने से ही मुक्त हो गया, परन्तु आप मुझे अपने कर कमलों से स्पर्श कीजिए; पुनः आपका परमपद मैं प्राप्त करूँगा ॥३५॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी मुस्कुराते हुए बहुत अच्छा यह कहकर उसका शरीर अपने कर कमलों से स्पर्श किये । तब जटायु अपना प्राण छोड़कर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥३६॥ तब श्रीरामचन्द्रजी सजल नेत्र हो उसके लिये अपने बन्धुवर्ग के समान शोक करते हुए लक्ष्मण से लकड़ियों को एकत्रित करवाकर उसका दाह-संस्कार किये ॥३७॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—"हे जटायु ! तुम मेरे परमपद को जाओ और आज सबके देखते-देखते मेरा सारूप्य प्राप्त करो" ॥४०॥

तब वह जटायु शीघ्र ही सुन्दर दिव्य शरीर धारण कर सूर्य के समान देदीप्यमान एक विमान पर आरूढ़ हुआ ॥४१॥ उस समय वह सुन्दर पीताम्बर धारण किये शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और किरीट आदि श्रेष्ठ आभूषणों से विभूषित अपने प्रकाश से प्रकाशित कर रहा था ॥४२॥ उसी प्रकार के भगवान् विष्णु के चार पार्षद उसकी स्तुति कर रहे थे और योगिजन उसकी स्तुति कर रहे थे । तब वह त्वरा के साथ हाथ जोड़कर श्रीरघुनाथजी की स्तुति करने लगा ॥४३॥ जटायु बोला—जो अगणित गुण सम्पन्न, अप्रमेय

१—श्लो० ३८-३९ का कुछ गूढ़ अर्थ प्रतीत होता है । साधारण अर्थ सरल ही है ।

निरवधिसुखमिन्दिराकटाक्षं　क्षपितसुरेन्द्रचतुर्मुखादिदुःखम् ।
नरवरमनिशं नतोऽस्मि रामं वरदमहं वरचापबाणहस्तम् ॥४५॥
त्रिभुवनकमनीयरूपमीड्यं　रविशतभासुरमीहितप्रदानम् ।
शरणदमनिशं सुरागमूले कृतनिलयं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥४६॥
भवविपिनदवाग्निनामधेयं भवमुखदैवतदैवतं दयालुम् ।
दनुजपतिसहस्रकोटिनाशं रवितनयासदृशं हरिं प्रपद्ये ॥४७॥
अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥४८॥
गिरिशगिरिसुतामनोनिवासं गिरिवरधारिणमीहिताभिरामम् ।
सुरवरदनुजेन्द्रसेविताङ्घ्रिं सुरवरदं रघुनायकं प्रपद्ये ॥४९॥
परधनपरदारवर्जितानां परगुणभूतिषु तुष्टमानसानाम् ।
परहितनिरतात्मनां सुसेव्यं रघुवरमम्बुजलोचनं प्रपद्ये ॥५०॥

जगत के आदिकारण और उसकी स्थिति लय के आदि कारण हैं, उन परम शान्त स्वरूप परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी को मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ ॥४४। जो असीम आनन्दमय और श्रीकमलादेवी के कटाक्ष के आश्रय हैं, जो ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं का दुःख दूर करने वाले हैं, उन धनुष-बाण धारण करने वाले वरदायक मनुष्यों में श्रेष्ठ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को मैं अहर्निश प्रणाम करता हूँ ॥४५॥

त्रिलोकी में जो सबसे अधिक रूपवान् , स्तुत्य, सैकड़ों सूर्यों के समान तेजस्वी तथा अभिलषित फल देने वाले हैं, उन शरद प्रद और प्रेमी हृदय में रहने वाले श्रीरघुनाथजी को मैं अहर्निश शरण ग्रहण करता हूँ ॥४६॥ जिनका नाम संसाररूप वन के लिये दावाग्नि के समान है, जो महादेव आदि देवताओं के भी देव हैं तथा जो करोड़ों दानवेन्द्रों का दमन करने वाले और श्रीयमुनाजी के समान श्याम वर्ण वाले हैं, उन दयामय श्रीहरि का मैं शरणागत हूँ ॥४७॥

संसार में हमेशा वासना रखने वाले पुरुषों से जो अत्यन्त दूर और संसार से विरत मुनियों को सदैव दृष्टिगोचर रहते हैं, जिनके चरणारविन्द रूप जहाज संसार सागर से पार करने वाले हैं; उन श्रीरघुनाथजी का मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥४८॥ जो श्रीमहादेवजी और पार्वती जी के मन में निरन्तर निवास करते हैं, जिनका चरित्र अत्यन्त मनोहर है और देव तथा असुरपतिगण जिनके चरणारविन्द की सेवा करते हैं, उन गिरिवर धारी देवताओं को वर देने वाले श्रीरघुनाथजी का मैं शरणागत हूँ ॥४९॥ जो दूसरे का धन और पर स्त्री से हमेशा दूर रहते हैं तथा दूसरों के गुण और दूसरों के ऐश्वर्य को देखकर प्रसन्न रहते हैं उन निरन्तर परोपकार-परायण महात्माओं से सुसेवित कमललोचन श्रीरघुनाथ जी का मैं शरण ग्रहण करता

स्मितरुचिरविकासिताननाब्जमतिसुलभं सुरराजनीलनीलम् ।
सितजलरुहचारुनेत्रशोभं रघुपतिमीशगुरोर्गुरुं प्रपद्ये ॥५१॥

हरिकमलजशम्भुरूपभेदात्त्वमिह विभासि गुणत्रयानुवृत्तः ।
रविरिव जलपूरितोदपात्रेष्वमरपतिस्तुतिपात्रमीशमीडे ॥५२॥

रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥५३॥

इत्येवं स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूद्रघूत्तमः । उवाच गच्छ भद्रं ते मम विष्णोः परं पदम् ५४
शृणोति य इदं स्तोत्रं लिखेद्वा नियतः पठेत् । स यति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत् ५५

इति राघवभाषितं तदा श्रुतवान् हर्षसमाकुलो द्विजः ।
रघुनन्दनसाम्यमास्थितः प्रययौ ब्रह्मसुपूजितं पदम् ॥५६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥८॥

हूँ ॥५०॥ जिनका मुखारविन्द मधुर मुसकान से सुशोभित हो रहा है, जो भक्तों के लिये अति सुलभ हैं, जिनके शरीर की आभा इन्द्रनीलमणि के समान सुन्दर नीलवर्ण की है, जिनके मनोहर नेत्र श्वेत कमल की शोभा वाले हैं; उन महादेवजी के परमगुरु श्रीरघुनाथजी का मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥५१॥ जलपूर्ण विविध पात्रों में प्रतिबिम्बित होने वाले सूर्य की भाँति सत्त्व, रज और तम इन गुणों से सम्वद्धित होकर आप विष्णु, ब्रह्मा और शंकरजी के रूप में भासित होते हैं। देवराज इन्द्र से स्तुल्य परमेश्वर स्वरूप आपकी मैं स्तुति करता हूँ ॥५२॥

आपका दिव्य शरीर करोड़ों कामदेव से भी अधिक सुन्दर है, सैकड़ों मार्गों में फँसे हुए लोगों से आप अत्यन्त दूर और यतिपति के हृदय में आप हमेशा भासमान हैं। इस प्रकार आर्त्तजनों का दुःख दूर करने वाले प्रभु श्रीरघुनाथजी का मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥५३॥ इस प्रकार जटायु की स्तुति से प्रसन्न होकर श्रीरघुनाथजी जटायु से बोले—"हे जटायु ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम मेरे परमधाम विष्णुलोक में जाओ ॥५४॥ जो प्राणी तुम्हारे द्वारा किये मेरे इस स्तोत्र को एकाग्र मन से सुनता, लिखता अथवा पढ़ता है वह मेरा सारूप्य पद को प्राप्त करता है और अन्त समय में उसे मेरी स्मृति होती है" ॥५५॥ पक्षिराज जटायु श्रीरघुनाथजी का यह कथन सहर्ष सुनकर उन्हीं के समान रूप धारण कर ब्रह्माजी से अत्यन्त पूजित हो परमधाम को चला गया ॥५६॥

इति श्री मदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेनविरचितयाभाषा-
टीकयासहितः अष्टमः सर्गः परिपूर्णः ॥ ८ ॥

नवम सर्ग

कबन्ध का उद्धार

श्रीमहादेव उवाच

ततो रामो लक्ष्मणेन जगाम विपिनान्तरम् । पुनर्दुःखं समाश्रित्य सीतान्वेषणतत्परः ॥१॥
तत्राद्भुतसमाकारो राक्षसः प्रत्यदृश्यत । वक्षस्येव महावक्त्रश्चक्षुरादिविवर्जितः ॥२॥
बाहू योजनमात्रेण व्यापृतौ तस्य रक्षसः । कबन्धो नाम दैत्येन्द्रः सर्वसत्त्वविहिंसकः ॥३॥
तद्बाह्वोर्मध्यदेशे तौ चरन्तौ रामलक्ष्मणौ । ददर्शतुर्महासत्त्वं तद्बाहुपरिवेष्टितौ ॥४॥
रामः प्रोवाच विहसन्पश्य लक्ष्मण राक्षसम् । शिरःपादविहीनोऽयं यस्य वक्षसि चाननम् ॥५॥
बाहुभ्यां लभ्यते यद्यत्तत्तद्भक्षन् स्थितो ध्रुवम् । आवामप्येतयोर्बाह्वोर्मध्ये संकलितौ ध्रुवम् ॥६॥
गन्तुमन्यत्र मार्गो न दृश्यते रघुनन्दन । किं कर्तव्यमितोऽस्माभिरिदानीं भक्षयेत्स नौ ।७।।
लक्ष्मणस्तमुवाचेदं किं विचारेण राघव । आवामेकैकमव्यग्रौ छिन्द्यावास्य भुजौ ध्रुवम् ।८।
तथेति रामः खड्गेन भुजं दक्षिणमच्छिनत् । तथैव लक्ष्मणो वामं चिच्छेद भुजमञ्जसा ॥९॥
ततोऽतिविस्मितो दैत्यः कौ युवां सुरपुङ्गवौ । मद्बाहुच्छेदकौ लोके दिवि देवेषु वा कुतः ।१०।
ततोऽब्रवीद्धसन्नेव रामो राजीवलोचनः । अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा दशरथो महान्

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी दुःखी होकर पुनः सीताजी को खोजते हुए लक्ष्मणजी के साथ दूसरे जंगल में गये ।।१।। वहाँ पर एक अद्भुत आकृति का राक्षस देखे; उसके वक्षःस्थल में ही एक बड़ा भारी मुख था और वह राक्षस नेत्र तथा कर्ण आदि से रहित था ।।२।। उस राक्षस की भुजाएँ एक-एक योजन तक फैली हुई थीं और सम्पूर्ण प्राणियों का हिंसा करने वाला वह कबन्ध नामक दैत्यराज था ।।३।। उसकी भुजाओं के बीच चलते हुए उनसे घिरे हुए राम और लक्ष्मण उस महाबलवान् राक्षस को देखे ॥४।। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी हँसते हुए बोले—लक्ष्मण ! इस राक्षस को देखो; यह राक्षस शिर और पैर से रहित है, तथा इसकी छाती में ही मुख है ।।५।। अपनी भुजाओं के द्वारा इसे जा प्राप्त हो जाता है उसी से यह जीवित रहता है। हमलोग भी निःसन्देह इसकी भुजाओं के बीच फँस गये हैं ।।६।। हे रघुनन्दन ! इससे निकलने का हमें कोई रास्ता दिखायी नहीं पड़ता। हमें अब क्या करना चाहिये ? लगता है हमें शीघ्र ही यह भक्षण कर लेगा ॥७॥

लक्ष्मणजी बोले—हे राघव ! अधिक सोचने-विचारने की आवश्यकता नहीं है। हम दोनों सावधान होकर तत्क्षण इसकी एक-एक भुजा काट दें ।।८।। "बहुत अच्छा" यह कहकर श्रीरामचन्द्रजी खड्ग से उसकी दायीं भुजा काट दिये। उसी प्रकार श्रीलक्ष्मणजी भी तत्क्षण उसकी वाम भुजा काट दिये ॥९॥ तत्पश्चात् वह दैत्य अति विस्मय पूर्वक बोला—मेरी भुजाओं को काटने वाले तुम लोग कौन श्रेष्ठ देवता हो ? इसलोक अथवा स्वर्ग में रहने वाले देवगणों में भी ऐसा समर्थ होना असम्भव है ।।१०।। तदनन्तर कमल-

रामोऽहं तस्य पुत्रोऽसौ भ्राता मे लक्ष्मणः सुधीः । मम भार्या जनकजा सीता त्रैलोक्यसुन्दरी १२
आवां मृगयया यातौ तदा केनापि रक्षसा । नीतां सीतां विचिन्वन्तौ चागतौ घोरकानने १३
बाहुभ्यां वेष्टितावत्र तव प्राणरिरक्षया । छिन्नौ तव भुजौ त्वं च को वा विकटरूपधृक् १४

कबन्ध उवाच

धन्योऽहं यदि रामस्त्वमागतोऽसि ममान्तिकम् । पुरा गन्धर्वराजोऽहं रूपयौवनदर्पितः ॥१५॥
विचरँल्लोकमखिलं वरनारीमनोहरः । तपसा ब्रह्मणो लब्धमवध्यत्वं रघूत्तम ॥१६॥
अष्टावक्रं मुनिं दृष्ट्वा कदाचिदहसं पुरा । क्रुद्धोऽसावाह दुष्ट त्वं राक्षसो भव दुर्मते ॥१७॥
अष्टावक्रः पुनः प्राह वन्दितो मे दयापरः । शापस्यान्तं च मे प्राह तपसा द्योतितप्रभः ।१८
त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणः स्वयम् । आगमिष्यति ते बाहू छिद्येते योजनायतौ ॥१९।
तेन शापाद्विनिर्मुक्तो भविष्यसि यथा पुरा । इति शप्तोऽहमद्राक्षं राक्षसीं तनुमात्मनः ॥२०॥
कदाचिद्देवराजानमभ्याद्रवमहं रुषा । सोऽपि वज्रेण मां राम शिरोदेशेऽभ्यताडयत् २१

नयन श्रीरामचन्द्रजी हँसते हुए बोले—अयोध्या के अधिपति श्रीमान् महाराज दशरथ थे ।।११।। मैं उनका पुत्र राम और यह बुद्धिमान् मेरा अनुज लक्ष्मण है, तथा त्रैलोक्यसुन्दरी जनकनन्दिनी सीता मेरी भार्या है ।।१२।। हमलोग शिकार खेलने के लिये बाहर गये थे, इसी बीच कोई राक्षस सीता को चुरा लिया, उसी को खोजते हुए हम यहाँ इस घोर जंगल में आ गये हैं। इतने में ही तुम हमलोगों को अपनी भुजाओं से घेर लिया। तब हमलोग अपना प्राण बचाने के लिये तुम्हारी भुजाएँ काट दिये। तुम यह बताओ कि इस बिकट् रूप वाले तुम कौन हो ? ।।१३-१४।।

कबन्ध बोला—यदि आप राम हैं और स्वयं आप मेरे पास आये हैं तो मैं धन्य हूँ। पूर्व समय में मैं रूप और यौवन के मद से उन्मत्त एक गन्धर्वराज था ।।१५।। हे रघुश्रेष्ठ! मैं तपस्या के द्वारा ब्रह्माजी से यह वर प्राप्त किया था कि मैं कभी किसी से न मर सकूँ; और अपनी रूप-कान्ति से सुन्दर स्त्रियों के मन को चुराता हुआ सम्पूर्ण लोकों में भ्रमण करता था ।।१६।। एक समय अष्टावक्र ऋषि को देखकर मैं हँस पड़ा; अत एव वे क्रोधित होकर बोले—अरे दुष्ट दुर्बुद्धे! तू राक्षस हो जाओ ।।१७।। (उनके शाप से भयभीत होकर जब) मै उनकी प्रार्थना किया तो तप से परमतेजस्वी वे दयालु-मुनीश्वर मेरे शाप का अन्त करने का उपाय बतलाये ।।१८।। वे बोले—त्रेता युग में स्वयं नारायण दशरथ के यहाँ अवतार लेकर तुम्हारे पास आयेंगे और वे एक-एक योजन लम्बी तुम्हारी दोनों भुजाओं को काट देंगे ।।१९।। तत्पश्चात् तुम शाप से छूट कर अपना पूर्वरूप धारण करोगे। इस प्रकार शाप देने के बाद मैं अपने को राक्षस के रूप में देखा ।।२०।।

हे राम ! एक समय मैं क्रोधपूर्वक देवराज इन्द्र के पीछे दौड़ा। तब वे क्रोधित होकर मेरे शिरपर अपने वज्र से मारे ।।२१।। हे रघुनन्दन ! ब्रह्माजी के वरदान से मैं मरा नहीं; परन्तु उस वज्र के आघात

तदा शिरो गतं कुक्षिं पादौ च रघुनन्दन । ब्रह्मदत्तवरान्मृत्युर्नाभून्मे वज्रताडनात् ॥२२॥
मुखाभावे कथं जीवेदयमित्यमराधिपम् । ऊचुः सर्वे दयाविष्टा मां विलोक्यास्यवर्जितम् २३
ततो मां प्राह मघवा जठरे ते मुखं भवेत् । बाहू ते योजनायामौ भविष्यत इतो व्रज ॥२४॥
इत्युक्तोऽत्र वसन्नित्यं बाहुभ्यां वनगोचरान् । भक्षयाम्यधुना बाहू खण्डितौ मे त्वयाऽनघ ।२५
इतःपरं मां श्वभ्रास्ये निक्षिपाग्नीन्धनावृते । अग्निना दह्यमानोऽहं त्वया रघुकुलोत्तम ॥२६॥
पूर्वरूपमनुप्राप्य भार्यामार्गं वदामि ते । इत्युक्ते लक्ष्मणेनाशु श्वभ्रं निर्माय तत्र तम् ।२७।
निक्षेप्य प्रादहत्काष्ठैस्ततो देहात्समुत्थितः । कन्दर्पसदृशाकारः सर्वाभरणभूषितः ॥२८॥
रामं प्रदक्षिणं कृत्वा साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च । कृताञ्जलिरुवाचेदं भक्तिगद्गदया गिरा ॥२९॥

गन्धर्व उवाच

स्तोतुमुत्सहते मेऽद्य मनो रामातिसम्भ्रमात् । त्वामनन्तमनाद्यन्तं मनोवाचामगोचरम् ॥३०॥
सूक्ष्मं ते रूपमव्यक्तं देहद्वयविलक्षणम् ।
दृग्रूपमितरत्सर्वं दृश्यं जडमनात्मकम् । तत्कथं त्वां विजानीयाद्व्यतिरिक्तं मनः प्रभो ३१
बुद्ध्यात्माभासयोरैक्यं जीव इत्यभिधीयते । बुद्ध्यादिसाक्षी ब्रह्मैव तस्मिन्निर्विषयेऽखिलम् ।३२॥

से मेरे शिर पेट में घुस गये ॥२२॥ मुझ मुख विहीन को देखकर देवताओं का दया आयी और वे देवराज इन्द्र से बोले कि यह मुख के विना कैसे जीवित रहेगा ? ॥२३॥ तत्पश्चात् इन्द्र मुझसे बोले— तुम्हारे पेट में ही मुख होगा और तुम्हारी भुजाएँ एक-एक योजन लम्बी हो जायँगी, अब तुम यहाँ से चले जाओ ॥२४॥ इन्द्र के यह कहने पर मैं यहाँ रहकर नित्य प्रति अपने हाथों से वन के जीवों को खींचकर खाता रहता हूँ। हे अनघ! आप अब मेरे भुजाओं को काट दिये ॥२७॥ हे रघुश्रष्ठ! आप मुझे ईन्धन और अग्नि युक्त गड्ढे में डाल दीजिये। आपके द्वारा अग्नि से दग्ध होने पर मैं अपना पूर्वरूप धारणकर आपकी भार्या का पता बतलाऊँगा।

यह कहने पर श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही लक्ष्मण से एक बड़ा गड्ढा तैयार करवाये और उसे उस गड्ढे में डालकर लड़कियों से जला दिये। तदनन्तर उस राक्षस के शरीर से एक सर्वालङ्कार विभूषित कामदेव के समान अति सुन्दर पुरुष प्रकट हुआ ॥२६–२८॥ वह श्रीरामचन्द्रजी की परिक्रमा कर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर भक्ति से गद्गद कण्ठ हो हाथ जोड़कर कहने लगा ॥२९॥

गन्धर्व बोला—हे राम! आप अनन्त, आदि और अन्त रहित तथा मन वाणी से परे हैं, फिर भी मेरा मन आपकी स्तुति करने के लिये बड़े वेग से उत्सुक हो रहा है ॥३०॥ हे प्रभो! आपके स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीर (विराट् और हिरण्यगर्भ) से आपका वास्तविक ज्ञानमय स्वरूप सूक्ष्म अर्थात् योगियों से सर्वथा दुर्ज्ञेय है। उससे अतिरिक्त जो पदार्थ हैं, वे जड, दृश्य और अनात्मा हैं। अत-एव आपसे भिन्न यह जड़ मन आपको कैसे जान सकता है ? बुद्धि और चिदाभास का अन्योन्याध्यासरूप ऐक्य को ही जीव

आरोप्यतेऽज्ञानवशान्निर्विकारेऽखिलात्मनि । हिरण्यगर्भस्ते सूक्ष्मं देहं स्थूलं विराट् स्मृतम् ३३
भावनाविषयो राम सूक्ष्मं ते ध्यातृमङ्गलम् । भूतं भव्यं भविष्यच्च यत्रेदं दृश्यते जगत् ॥३४॥
स्थूलेऽण्डकोशे देहे ते महदादिभिरावृते । सप्तभिरुत्तरगुणैर्वैराजो धारणाश्रयः ॥३५॥
त्वमेव सर्वकैवल्यं लोकास्तेऽवयवाः स्मृताः । पातालं ते पादमूलं पार्ष्णिस्तव महातलम् ॥३६॥
रसातलं ते गुल्फौ तु तलातलमितीर्यते । जानुनी सुतलं राम ऊरू ते वितलं तथा ॥३७॥
अतलं च मही राम जघनं नाभिगं नभः । उरःस्थलं ते ज्योतींषि ग्रीवा ते मह उच्यते ॥३८॥
वदनं जनलोकस्ते तपस्ते शङ्खदेशगम् । सत्यलोको रघुश्रेष्ठ शीर्षण्यास्ते सदा प्रभो ॥३९॥
इन्द्रादयो लोकपाला बाहवस्ते दिशः श्रुती । अश्विनौ नासिके राम वक्त्रं तेऽग्निरुदाहृतः ॥४०॥
चक्षुस्ते सविता राम मनश्चन्द्र उदाहृतः । भ्रूभङ्ग एव कालस्ते बुद्धिस्ते वाक्पतिर्भवेत् ॥४१॥
रुद्रोऽहङ्काररूपस्ते वाचश्छन्दांसि तेऽव्यय । यमस्ते दंष्ट्रदेशस्थो नक्षत्राणि द्विजालयः ॥४२॥
हासो मोहकरी माया सृष्टिस्तेऽपाङ्गमोक्षणम् । धर्मः पुरस्तेऽधर्मश्च पृष्ठभाग उदीरिः ॥४३॥
निमिषोन्मेषणे रात्रिर्दिवा चैव रघूत्तम । समुद्राः सप्त ते कुक्षिर्नाड्यो नद्यस्तव प्रभो ॥४४॥

कहते हैं। इन बुद्धि आदि का साक्षी ब्रह्म ही है; वह ब्रह्म वाणी आदि किसी का भी विषय नहीं है; उस निर्विकार सर्वात्मा में अज्ञानवश इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को आरोपित किया जाता है। हे राम! आपका सूक्ष्म शरीर हिरण्यगर्भ और स्थूल शरीर विराट् कहा जाता है। आपका भावनामय (हृत्कमल में ध्यान करने योग्य) सूक्ष्मरूप जिसमें भूत, वर्तमान और भविष्यत् यह सम्पूर्ण संसार दृष्टिगोचर होता है, आपके ध्यान करने वालों को मङ्गल करने वाला है ॥३१-३४॥

अपने-अपने उत्तरवर्त्ती तत्वों से प्रत्येक दशगुना अधिक महत् तत्त्वादि सात आवरणों के द्वारा घिरे हुए आपके स्थूल ब्रह्माण्ड शरीर में ही धारणा का आश्रयरूप विराट् शरीर स्थित है ॥३५॥ एक मात्र आप ही सर्व मोक्ष स्वरूप हैं। यह सम्पूर्ण लोक आपके अवयव हैं। पाताल आपका चरणतल है; महातल आपका पाष्णि (ऐड़ी) है ॥३६॥ हे राम! रसातल गुल्फ हैं, तलातल जानु, सुतल जँघाएँ, वितल आपके दोनों ऊरु, अतल और पृथिवी आपके कटि प्रदेश, भूर्लोक नाभि, स्वर्लोक वक्षः स्थल, महर्लोक ग्रीवा, जनलोक मुख, तप लोक ललाट तथा हे प्रभो! सत्यलोक आपका मस्तक है ॥३६-३९॥ हे राम! इन्द्रादि लोकपाल गण आपकी भुजाएँ, दिशाएँ कर्ण, अश्विनी कुमार नासिका और अग्नि मुख है ॥४०॥ हे राम! आपके नेत्र सूर्य और मन चन्द्रमा हैं; काल भ्रूभंगी और बृहस्पति जी आपकी बुद्धि हैं ॥४१॥ हे निर्विकार! रुद्र आपके अहंकार, वेद आपकी वाणी, यम आपके दंष्ट्र देशस्थ दाढ़ें और नक्षत्रगण आपकी दन्तपङ्क्ति हैं ॥४२॥

सर्वविमोहिनी माया आपका हास्य, सृष्टि कटाक्ष, धर्म आगे का हिस्सा और अधर्म पृष्ठ भाग है ॥४३॥ हे रघूत्तम! रात्रि और दिन आपके निमेषोन्मष हैं। हे प्रभो! सात समुद्र आपकी कुक्षि

रोमाणि वृक्षौषधयो रेतो वृष्टिस्तव प्रभो। महिमा ज्ञानशक्तिस्ते एवं स्थूलं वपुस्तव ॥४५॥
यदस्मिन् स्थूलरूपे ते मनः सन्धार्यते नरैः। अनायासेन मुक्तिः स्यादतोऽन्यन्नहि किञ्चन ४६॥
अतोऽहं राम रूपं ते स्थूलमेवानुभावये। यस्मिन्ध्याते प्रेमरसः सरोमपुलको भवेत् ॥४७॥
तदैव मुक्तिः स्याद्राम यदा ते स्थूलभावकः। तदप्यास्तां तवैवाहमेतद्रूपं विचिन्तये ॥४८॥
धनुर्बाणधरं श्यामं जटावल्कलभूषितम्। अपीच्यवयसं सीतां विचिन्वन्तं सलक्ष्मणम् ॥४९॥
इदमेव सदा मे स्यान्मानसे रघुनन्दन। सर्वज्ञः शङ्करः साक्षात्पार्वत्या सहितः सदा ॥५०॥
त्वद्रूपमेवं सततं ध्यायन्नास्ते रघूत्तम। मुमूर्षूणां तदा काश्यां तारकं ब्रह्मवाचकम् ॥५१॥
रामरामेत्युपदिशन्सदा सन्तुष्टमानसः। अतस्त्वं जानकीनाथ परमात्मा सुनिश्चितः ॥५२॥
सर्वे ते मायया मूढास्त्वां न जानन्ति तत्त्वतः। नमस्ते रामभद्राय वेधसे परमात्मने ॥५३॥
अयोध्याधिपते तुभ्यं नमः सौमित्रिसेवित। त्राहि त्राहि जगन्नाथ मां माया नावृणोतु ते ॥५४॥

श्रीराम उवाच

तुष्टोऽहं देवगन्धर्व भक्त्या स्तुत्या च तेऽनघ। याहि मे परमं स्थानं योगिगम्यं सनातनम् ॥५५॥

तथा नदियाँ हैं ॥४४॥ हे प्रभो ! वृक्ष और औषधियाँ आपके रोम, वृष्टि वीर्य और ज्ञान शक्ति आपकी महिमा है। ये आपके स्थूल शरीर हैं ॥४५॥ आपके इस स्थूल शरीर में स्थिर बुद्धिवाला व्यक्ति अनायास ही मुक्त हो जाता है। हे राम ! आपके स्थूल रूप से पृथक् कोई वस्तु नहीं है ॥४६॥ अत-एव हे राम ! मैं आपके इस स्थूलरूप से सदा चिन्तन करता हूँ, जिसके ध्यान मात्र से ही शरीर रोमाञ्चित हो हृदय में प्रेम का सञ्चार होता है ॥४७॥

हे राम ! यह जीव जब आपके विराट् रूप का चिन्तन करता है तब तत्क्षण ही वह मुक्त हो जाता है, फिर भी मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है। मैं आपके इस रूपका ही चिन्तन करूँगा ॥४८॥ हे रघुनन्दन मैं प्रार्थना करता हूँ कि लक्ष्मणजी के साथ सीता का अन्वेषण करता हुआ आपका जटा-बल्कल से विभूषित धनुष-बाण धारण करने वाला तरुणवयस्क यह श्यामरूप हमेशा मेरे हृदय में विराजमान रहे। हे रघुश्रेष्ठ ! पार्वतीजी सहित सर्वज्ञ श्रीशंकरजी हमेशा आपके इस दिव्यरूप का चिन्तन किया करते हैं; तथा च काशी में मृत्यु प्राप्त करने वालों को ब्रह्मवाचक "राम-राम" यह तारक-मन्त्र का उपदेश करते हुए सतत आनन्दमग्न रहते हैं। अत-एव हे जानकीनाथ ! आप निश्चय ही परमात्मा हैं ॥४९-५२॥ आपकी माया से विमोहित होकर सबलोग आपके वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते। हे जगत्स्रष्टा परमात्मा राम ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥५३॥

हे सौमित्र सेवित अयोध्याधिपति ! आपको नमस्कार है। हे जगन्नाथ ! आप मेरी रक्षा कीजिये, आपकी माया मुझे विमोहित न करे ॥५४॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे देव गन्धर्व ! मैं तुम्हारी भक्ति और प्रार्थना से अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। हे अनघ ! तुम योगियों के प्राप्त करने योग्य मेरे सनातन परमधाम को

जपन्ति ये नित्यमनन्यबुद्ध्या भक्त्या त्वदुक्तं स्तवमागमोक्तम् ।
तेऽज्ञानसम्भूतभवं विहाय मां यान्ति नित्यानुभवानुमेयम् ॥५६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

—→※←—
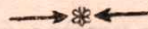
दशम सर्ग

शबरी से भेंट

श्रीमहादेव उवाच

लब्ध्वा वरं स गन्धर्वः प्रयास्यन् राममब्रवीत् । शबर्यास्ते पुरोभागे आश्रमे रघुनन्दन ॥१॥
भक्त्या त्वत्पादकमले भक्तिमार्गविशारदा । तां प्रयाहि महाभाग सर्वं ते कथयिष्यति २॥
इत्युक्त्वा प्रययौ सोऽपि विमानेनार्कवर्चसा । विष्णोः पदं रामनामस्मरणे फलमीदृशम् । ३॥
त्यक्त्वा तद्विपिनं घोरं सिंहव्याघ्रादिदूषितम् । शनैरथाश्रमपदं शबर्या रघुनन्दनः । ४॥
शबरी राममालोक्य लक्ष्मणेन समन्वितम् । आयान्तमाराद्धर्षेण प्रत्युत्थायाचिरेण सा ॥५॥

जाओ ॥५५॥ जो व्यक्ति तुम्हारे द्वारा किये इस आगमोक्त स्तोत्र का अनन्य बुद्धि से नित्य भक्ति पूर्वक पाठ करेगा । वह अन्त में अज्ञानजन्य संसार से मुक्त होकर नित्य अनुभव रूप मुझ परमात्मा को प्राप्त करेगा ॥५६॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया सहितः नवमसर्गः परिपूर्णः ॥ ६ ॥

—※—

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति) वह गन्धर्व भगवान् श्रीराम से वर प्राप्त कर उनके परमधाम को जाते हुए बोला—हे रघुनन्दन ! आगे वाले आश्रम में शबरी रहती है । आपके चरण-कमल में भक्ति रखने से वह भक्ति-मार्ग में कुशल है । हे महाभाग ! आप वहाँ जाइये । वह आपको सब बातें बता देगी ॥१-२॥ यह कहकर सूर्य के समान एक तेजस्वी विमान पर चढ़कर वह विष्णुलोक को चला गया । राम नाम का स्मरण का फल ऐसा ही होता है ॥ ३ ॥ तत्पश्चात् सिंह, व्याघ्र आदि से दूषित उस घोर वन को छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी धीरे-धीरे शबरी के आश्रम पर पधारे ॥४॥ श्रीरामचन्द्र को लक्ष्मण के सहित समीप आते हुए

पतित्वा पादयोरग्रे हर्षपूर्णाश्रुलोचना। स्वागतेनाभिनन्द्याथ स्वासने संन्यवेशयत् ॥६॥
रामलक्ष्मणयोः सम्यक्पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः। तज्जलेनाभिषिच्याङ्गमथार्घ्यादिभिरादृता ॥७॥
सम्पूज्य विधिवद्रामं ससौमित्रिं सपर्यया। सङ्गृहीतानि दिव्यानि रामार्थं शबरी मुदा ॥८॥
फलान्यमृतकल्पानि ददौ रामाय भक्तितः। पादौ सम्पूज्य कुसुमैः सुगन्धैः सानुलेपनैः ॥९॥
कृतातिथ्यं रघुश्रेष्ठमुपविष्टं सहानुजम्। शबरी भक्तिसम्पन्ना प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१०॥
अत्राश्रमे रघुश्रेष्ठ गुरवो मे महर्षयः। स्थिताः शुश्रूषणं तेषां कुर्वती समुपस्थिता ॥११॥
बहुवर्षसहस्राणि गतास्ते ब्रह्मणः पदम्। गमिष्यन्तोऽब्रुवन्मां त्वं वसात्रैव समाहिता ॥१२॥
रामो दाशरथिर्जातः परमात्मा सनातनः। राक्षसानां वधार्थाय ऋषीणां रक्षणाय च ॥१३॥
आगमिष्यति सैकाग्रध्याननिष्ठा स्थिरा भव। इदानीं चित्रकूटाद्रावाश्रमे वसति प्रभुः ॥१४॥
यावदागमनं तस्य तावद्रक्ष कलेवरम्। दृष्ट्वैव राघवं दग्ध्वा देहं यास्यसि तत्पदम् ॥१५॥
तथैवाकरवं राम त्वद्ध्यानैकपरायणा। प्रतीक्ष्यागमनं तेऽद्य सफलं गुरुभाषितम् ॥१६॥
तव सन्दर्शनं राम गुरूणामपि मे न हि। योषिन्मूढाऽप्रमेयात्मन् हीनजातिसमुद्भवा ॥१७॥

देखकर शबरी अति हर्षित हो शीघ्र उठकर खड़ी हुई ॥ ५ ॥ उसके नेत्रों में आनन्दाश्रु भर आये और वह भगवान् के चरणारविन्द में गिरकर उनका स्वागत कर कुशल-प्रश्न के अनन्तर सुन्दर आसन पर बैठायी ॥ ६ ॥ तत्पश्चात् भक्ति-पूर्वक श्रीराम और लक्ष्मण के चरणों को अच्छी तरह धोयी और उस चरणोदक को अपने शरीर पर छिड़ककर श्रद्धायुक्त हो अर्घ्यादि विविध सामग्रियों से श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी की विधिवत् पूजा कर अमृत के समान दिव्य फल जिसे वह श्रीरामचन्द्रजी के लिये एकत्रित कर रखी थी हर्ष पूर्वक लाकर भक्ति से उन्हें दी और उनके चरणाविन्द की पूजा चन्दन युक्त सुगन्धित पुष्पों से की ॥ ७-९ ॥

इस तरह आतिथ्य सत्कार के अनन्तर जब श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण के सहित आसन पर विराजमान थे तब भक्ति पूर्वक हाथ जोड़कर शबरी बोली ॥ १० ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! पहले इस आश्रम में मेरे गुरु महर्षि (मतंग) जी रहते थे। उनकी सेवा-शुश्रूषा करती हुई मैं हजारों वर्षों से यहाँ रहती हूँ। वे महर्षि अब ब्रह्म-पद प्राप्त कर लिये। वे जाते समय मुझसे कहे थे कि तू एकाग्रमन हो यहीं रहो ॥ ११-१२ ॥ सनातन परमात्मा राक्षसों को मारने और ऋषियों की रक्षा के लिये राजादशरथ के पुत्र राम के रूप में अवतार लिये हैं ॥ १३ ॥ वे शीघ्र ही यहाँ आयेंगे। एकाग्रचित्त से ध्यान करती हुई तू यहाँ रहो। इस समय चित्रकूट पर्वत के आश्रम में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं ॥ १४ ॥ उनके यहाँ आने तक तू अपने शरीर का पालन कर और उनके आने पर श्रीरघुनाथजी का दर्शन करते हुए इस शरीर को जलाकर तू उनके परम धाम को चली जायेगी ॥ १५ ॥ हे राम ! गुरुजी की आज्ञा से उसी समय से मैं आपका ही ध्यान करती हुई आपके आने की राह देख रही थी। गुरुजी का वाक्य आज सफल हो गया ॥ १६ ॥ हे राम ! आपका दर्शन मेरे गुरुदेव को भी नहीं हुआ, पुनः हे अप्रमेयात्मन् मैं हीन जाति में उत्पन्न मूढ स्त्री ही हूँ ॥ १७ ॥ आपके

तव दासस्य दासानां शतसङ्ख्योत्तरस्य वा । दासीत्वे नाधिकारोऽस्ति कुतः साक्षात्तवैव हि १८।
कथं रामाद्य मे दृष्टस्त्वं मनोवागगोचरः । स्तोतुं न जाने देवेश किं करोमि प्रसीद मे ॥१९॥

श्रीराम उवाच

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः। न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम् ॥२०॥
यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः । नैव द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः सदा ॥२१॥
तस्माद्भामिनि सङ्क्षेपाद्वक्ष्येऽहं भक्तिसाधनम्। सतां सङ्गतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम् ॥२२॥
द्वितीयं मत्कथालापस्तृतीयं मद्गुणेरणम् । व्याख्यातृत्वं मद्वचसां चतुर्थं साधनं भवेत् ॥२३॥
आचार्योपासनं भद्रे मद्बुद्ध्याऽमायया सदा । पञ्चमं पुण्यशीलत्वं यमादि नियमादि च ॥२४॥
निष्ठा मत्पूजने नित्यं षष्ठं साधनमीरितम् । मम मन्त्रोपासकत्वं साङ्गं सप्तममुच्यते ॥२५॥
मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मतिः । बाह्यार्थेषु विरागित्वं शमादिसहितं तथा ॥२६॥
अष्टमं नवमं तत्त्वविचारो मम भामिनि । एवं नवविधा भक्तिः साधनं यस्य कस्य वा ।२७।
स्त्रियो वा पुरुषस्यापि तिर्यग्योनिगतस्य वा। भक्तिः सञ्जायते प्रेमलक्षणा शुभलक्षणे ॥२८॥

दासों के जो दास हैं उनके भी उत्तरोत्तर जो सैकड़ों दासानुदास हैं मैं तो उनकी भी दासी होने की अधिकारिणी नही हूँ। पुनः प्रत्यक्ष आपकी दासी होने का मुझे अधिकार ही कहाँ है ॥ १८ ॥ हे राम ! आप मन और वाणी से अगोचर है, मुझे आपका दर्शन कैसे हो गया । हे देवेश्वर ! आपकी स्तुति करना मैं नहीं जानती, मैं क्या करूँ ? आप प्रसन्न होइये ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—पुरुषत्व, स्त्रीत्व अथवा कोई जाति विशेष, नाम, आश्रम आदि मेरे भजन के कारण नहीं हैं; मेरे भजन का कारण तो केवल भक्ति ही है ॥ २० ॥ मेरी भक्ति से विमुख और यज्ञ, दान, तप, वेदाध्ययन अथवा अन्य किसी कर्म के द्वारा कोई प्राणी मुझे नहीं देखता ॥ २१ ॥ अत एव हे भामिनी ! मैं संक्षेप में अपनी भक्ति के साधनों को बतलाता हूँ—इनमें सत्संगति ही पहला साधन है ॥ २२ ॥ मेरी कथा का कीर्तन यह द्वितीय साधन है; मेरा गुणानुवाद तृतीय साधन और मेरे वाक्यों की व्याख्या करना चतुर्थ साधन होता है ॥ २३ ॥ हे भद्रे । मेरी बुद्धि से निष्कपट होकर आचार्य की सेवा करना पञ्चम साधन, पवित्र स्वभाव, यम-नियमादि पालन और मेरी पूजा में हमेशा प्रेम होना भक्ति का छठवाँ साधन तथा मेरे मन्त्र की साङ्गोपाङ्ग उपासना सप्तम साधन कहा जाता है ॥२४–२५॥

मुझसे अधिक मेरे भक्तों की पूजा करना समस्त प्राणियों में मेरी बुद्धि रखना बाह्य वस्तुओं में वैराग्य होना और शम-दमादि सम्पन्न यह मेरी भक्ति का आठवाँ साधन है। तथा च तत्त्व का विचार करना यह नवम साधन है। हे भामिनी ! इस प्रकार नवधा भक्ति है। हे शुभ लक्षणे ! ये साधन जिस-किसी भी प्राणी में हो वह पुरुष, स्त्री अथवा पशु-पक्षी आदि कोई भी हो, उसमें प्रेमलक्षणा-भक्ति उत्पन्न हो ही

भक्तौ सञ्जातमात्रायां मत्तत्त्वानुभवस्तदा। ममानुभवसिद्धस्य मुक्तिस्तत्रैव जन्मनि ॥२९॥
स्यात्तस्मात्कारणं भक्तिर्मोक्षस्येति सुनिश्चितम्। प्रथमं साधनं यस्य भवेत्तस्य क्रमेण तु ॥३०॥
भवेत्सर्वं ततो भक्तिर्मुक्तिरेव सुनिश्चितम्। यस्मान्मद्भक्तियुक्ता त्वं ततोऽहं त्वामुपस्थितः३१
इतो मद्दर्शनान्मुक्तिस्तव नास्त्यत्र संशयः। यदि जानासि मे ब्रूहि सीता कमललोचना ॥३२।
कुत्रास्ते केन वा नीता प्रिया मे प्रियदर्शना ॥३३॥

शबर्युवाच

देव जानासि सर्वज्ञ सर्वं त्वं विश्वभावन। तथाऽपि पृच्छसे यन्मां लोकाननुसृतः प्रभो ॥३४॥
ततोऽहमभिधास्यामि सीता यत्राधुना स्थिता। रावणेन हृता सीता लङ्कायां वर्ततेऽधुना ॥३५॥
इतः समीपे रामस्ते पम्पानाम सरोवरम्। ऋष्यमूकगिरिर्नाम तत्समीपे महानगः ॥३६॥
चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं सुग्रीवो वानराधिपः। भीतभीतः सदा यत्र तिष्ठत्यतुलविक्रमः ॥३७॥
वालिनश्च भयाद्भ्रातुस्तदगम्यमृषेर्भयात्। वालिनस्तत्र गच्छ त्वं तेन सख्यं कुरु प्रभो ॥३८॥
सुग्रीवेण स सर्वं ते कार्यं सम्पादयिष्यति। अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि तवाग्रे रघुनन्दन ॥३९॥
मुहूर्तं तिष्ठ राजेन्द्र यावद्दग्ध्वा कलेवरम्। यास्यामि भगवान् राम तव विष्णोः परं पदम् ४०॥

जाती है ॥२६–२८॥ भक्ति का अविर्भाव होने से ही मेरे स्वरूप का अनुभव हो जाता है और मेरे अनुभव होने वाले की मुक्ति उसी जन्म में ही हो जाती है। अत एव यह सुनिश्चय है कि मुक्ति का साधन भक्ति ही है। भक्ति के सभी साधनों में जिसमें प्रथम साधन होता है, उसमें क्रमशः भक्ति के सभी लक्षण आ जाते हैं। पुनः उसे भक्ति तथा मुक्ति प्राप्त होना सुनिश्चित ही है। तू मेरी भक्ति से युक्त है। अत-एव मैं तुम्हारे पास आया हूँ ॥२९–३१॥

मेरा दर्शन होने से निःसन्देह तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी। तू यदि जानती हो तो बताओ कि इस समय कमललोचना सीता कहाँ है? मेरी प्रियदर्शना प्रिया को कौन ले गया है? ॥३२–३३॥ शबरीबोली–हे देव! हे सर्वज्ञ! हे विश्वभावन! आप सबकुछ जानते हैं। तथापि लोक का अनुसरण करते हुए मुझसे पूछते हैं तो इस समय सीता जहाँ है उसे बतलाती हूँ। रावण सीताजी को हरण कर ले गया है और इस समय सीताजी लङ्का में हैं ॥३४–३५॥

हे राम! इसके समीप ही पम्पा नामक सरोवर है। उसके समीप ही ऋष्मूक नामक बड़ा पर्वत है ॥३६॥ वहाँ पर अतुल पराक्रमी वानरों का राजा सुग्रीव अपने भाई के भय से हमेशा अत्यन्त भयभीत हो अपने चार मन्त्रियों के साथ रहता है। ऋषि के शाप के भय से वह स्थान सर्वथा वाली के अगम्य है। हे प्रभो! आप वहाँ जायँ और सुग्रीव से मित्रता करें। वह आपका सभी कार्य सिद्ध करेगा। हे रघुनन्दन! मैं आपके सामने अब अग्नि में प्रवेश करूँगी ॥३७–३९॥ हे राजेश्वर! हे भगवन्! हे राम! जबतक मैं अपना शरीर जलाकर आप विष्णु भगवान् के परमपद को जाऊँ, तबतक आप एक मुहूर्त्त यहाँ

इति रामं समामन्त्र्य प्रविवेश हुताशनम् । क्षणान्निर्धूय सकलमविद्याकृतबन्धनम् ॥
रामप्रसादाच्छबरी मोक्षं प्रापातिदुर्लभम् ॥४१॥
किं दुर्लभं जगन्नाथे श्रीरामे भक्तवत्सले । प्रसन्नेऽधमजन्मापि शबरी मुक्तिमाप सा ॥४२॥
किं पुनर्ब्राह्मणा मुख्याः पुण्याः श्रीरामचिन्तकाः । मुक्तिं यान्तीति तद्भक्तिर्मुक्तिरेव न संशयः ४३

भक्तिर्मुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हे
लोकाः कामदुघाङ्घ्रिपद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुकाः ।
नानाज्ञानविशेषमन्त्रविततिं त्यक्त्वा सुदूरे भृशं
रामं श्यामतनुं स्मरारिहृदये भान्तं भजध्वं बुधाः ॥४४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

रूकिये ॥४०॥ शबरी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के साथ यह सम्भाषण कर अग्नि में प्रवेश की और एक क्षण में ही समस्त अविद्याजन्य बन्धनों को नष्टकर भगवान् श्रीराम की कृपा से अति दुर्लभ मोक्ष-प्रद प्राप्त की ॥४१॥ उस नीच जाति में उत्पन्न शबरी भी मोक्ष प्राप्त कर ली; भक्तवत्सल जगन्नाथ भगवान् श्रीरामचन्द्र के प्रसन्न होने पर दुर्लभ ही क्या है ॥४२॥

पुनः श्रीरामचन्द्र का ध्यान करने वाले पुण्यजन्मा ब्राह्मणादि की मुक्ति हो जाय तो इसमें संशय ही क्या है ? निःसन्देह भगवान् श्री राम की भक्ति ही मुक्ति है ॥४३॥ अरे लोकवासियों ! भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति ही मोक्षदायिनी है। अत एव कामधेनु के समान उनके चरण द्वन्द्व की अति उत्सुकता पूर्वक सेवा करो। हे बुद्धिमान् प्राणियों ! विविध विज्ञानवार्ता और मन्त्र विस्तार को दूर छोड़कर शीघ्र ही श्रीशंकरजी के हृदय में शोभा पाने वाले श्याम शरीर वाले भगवान् श्रीरामचन्द्र का अत्यन्त भजन करो ॥४४॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः दशमः सर्गः परिपूर्णः ॥ १० ॥

—*—

ॐ

अध्यात्मरामायण

किष्किन्धाकाण्ड

* * * * * * *

प्रथम सर्ग

सुग्रीव से मिलन

श्रीमहादेव उवाच

ततः सलक्ष्मणो रामः शनैः पम्पासरस्तटम् । आगत्य सरसां श्रेष्ठं दृष्ट्वा विस्मयमाययौ ॥१॥
क्रोशमात्रं सुविस्तीर्णमगाधामलशम्बरम् । उत्फुल्लाम्बुजकह्लारकुमुदोत्पलमण्डितम् ॥२॥
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकादिशोभितम् । जलकुक्कुटकोयष्टिक्रौञ्चनादोपनादितम् ॥३॥
नानापुष्पलताकीर्णं नानाफलसमावृतम् । सतां मनःस्वच्छजलं पद्मकिञ्जल्कवासितम् ॥४॥
तत्रोपस्पृश्य सलिलं पीत्वा श्रमहरं विभुः । सानुजः सरसस्तीरे शीतलेन पथा ययौ ॥५॥
ऋष्यमूकगिरेः पार्श्वे गच्छन्तौ रामलक्ष्मणौ । धनुर्बाणकरौ दान्तौ जटावल्कलमण्डितौ ॥
पश्यन्तौ विविधान्वृक्षान् गिरेः शोभां सुविक्रमौ ॥६॥

श्री महादेव जी बोले—(हे पार्वति !) तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण के साथ धीरे-धीरे पम्पा सरोवर के तटपर आये। उस रमणीय सरोवर को देखकर उन्हें अति विस्मय हुआ ॥१॥ वह सरोवर एक कोश का विस्तार वाला था, उसमें अतिनिर्मल अगाध जल और चतुर्दिक् कमल, कह्लार, कुमुद तथा उत्पल आदि सुशोभित हो रहे थे ॥२॥ उसमें यत्र-तत्र हंस और कारण्डव आदि पक्षी विहार कर रहे थे, चक्रवाक् आदि उस सरोवर की शोभा बढ़ा रहे थे और जल कुक्कुट, कोयष्टि तथा क्रौञ्च आदि पक्षियों के कलरव से वह सरोवर शब्दायमान हो रहा था ॥३॥ वह विविध पुष्प-लताओं से परिपूर्ण और अनेक प्रकार के फलवाले वृक्षों से घिरा हुआ कमलकेशर से सुवासित उस सरोवर का जल सज्जन व्यक्तियों के मन के समान स्वच्छ था ॥४॥

वहाँ पहुँचकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी अनुज लक्ष्मण के साथ आचमन कर सरोवर का श्रमहारी शीतलजल पान किये और किनारे-किनारे शीतल छायायुक्त मार्ग से चलने लगे ॥५॥ जटावल्कल से विभूषित जितेन्द्रिय परम पराक्रमी श्रीराम और लक्ष्मण हाथ में धनुष-बाण धारण किये अनेक वृक्षों और पर्वत की शोभा देखते हुए जब ऋष्यमूक पर्वत के बगल में चल रहे थे, उस समय सुग्रीव अपने चार मन्त्रियों के साथ

सुग्रीवस्तु गिरेर्मूर्ध्नि चतुर्भिः सह वानरैः। स्थित्वा ददर्श तौ यान्तावारुरोह गिरेः शिरः ॥७॥
भयादाह हनूमन्तं कौ तौ वीरवरौ सखे। गच्छ जानीहि भद्रं ते वटुर्भूत्वा द्विजाकृतिः ॥८॥
वालिना प्रेषितौ किं वा मां हन्तुं समुपागतौ। ताभ्यां सम्भाषणं कृत्वा जानीहि हृदयं तयोः ॥९॥
यदि तौ दुष्टहृदयौ संज्ञां कुरु कराग्रतः। विनयावनतो भूत्वा एवं जानीहि निश्चयम् ॥१०॥
तथेति वटुरूपेण हनुमान् समुपागतः। विनयावनतो भूत्वा रामं नत्वेदमब्रवीत् ॥११॥
कौ युवां पुरुषव्याघ्रौ युवानौ वीरसम्मतौ। द्योतयन्तौ दिशः सर्वाः प्रभया भास्कराविव ॥१२॥
युवां त्रैलोक्यकर्ताराविति भाति मनो मम। युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ॥१३॥
मायया मानुषाकारौ चरन्ताविव लीलया। भूभारहरणार्थाय भक्तानां पालनाय च ॥१४॥
अवतीर्णाविह परौ चरन्तौ क्षत्रियाकृती। जगत्स्थितिलयौ सर्गं लीलया कर्तुमुद्यतौ ॥१५॥
स्वतन्त्रौ प्रेरकौ सर्वहृदयस्थाविहेश्वरौ। नरनारायणौ लोके चरन्ताविति मे मतिः ॥१६॥
श्रीरामो लक्ष्मणं प्राह पश्यैनं वटुरूपिणम्। शब्दशास्त्रमशेषेण श्रुतं नूनमनेकधा ॥१७॥
अनेन भाषितं कृत्स्नं न किञ्चिदपशब्दितम्। ततः प्राह हनूमन्तं राघवो ज्ञानविग्रहः ॥१८॥

गिरि-शिखर पर बैठे थे। श्रीराम और लक्ष्मण को जाते हुए देखकर पर्वत के एक ऊँचे शिखर पर चढ़ गये और भयभीत होकर हनुमानजी से बोले—मित्र! यह देखो, ये दोनों वीरवर कौन हैं? तुम्हारा कल्याण हो, तुम ब्रह्मचारी ब्राह्मण का वेश धारण कर उनके पास जाओ और ज्ञात करो कि वे कौन हैं। ६–८॥ उनसे बातचीत कर उनके हृदय की बात जानना; क्या उन लोगों को मुझे मारने के लिये वाली ही भेजा है ॥९॥ यदि वे दुष्टहृदय वाले हों तो अङ्गुली से ही ईशारा करना; बड़े विनम्र होकर इसका पता लगाना ॥१०॥ "तथा इति" यह कहकर हनुमानजी वटु (ब्रह्मचारी) का रूप धारण कर राम के पास आये और विनय-पूर्वक नमस्कार कर बोले—हे पुरुष-व्याघ्र! आप दोनों कौन हैं? आप युवा और वीर जान पड़ते हैं। अहो! सूर्य के समान अपने शरीर की कान्ति से सभी दिशाओं को आप प्रकाशित कर रहे हैं ॥११-१२॥ मेरे मन में यह प्रतीत हो रहा है कि आप लोग त्रिलोकी की रचना करने वाले संसार के आदिकारण-भूत जगन्मय प्रधान पुरुष ही हैं ॥१३॥

आप पृथिवी का भार हरण करने के लिये और भक्तजनों की रक्षा के लिये मानो लीला वश अपनी माया से मनुष्य का रूप धारण कर विचरण कर रहें हैं ॥१४॥ क्षत्रिय कुमार के रूप में अवतीर्ण होकर आप साक्षात् परमात्मा ही पृथिवी पर विचरण कर रहे हैं। आप लीला के द्वारा ही संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय करने में तत्पर हैं ॥१५॥ मेरा तो यह विचार है कि आप सबके हृदय में विराजमान, सबके प्रेरक परम स्वतन्त्र भगवान् नारायण ही इस लोक में विचरण कर रहे हैं ॥१६॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी से बोले—हे लक्ष्मण! इस ब्रह्मचारी को देखो। निश्चय ही यह सम्पूर्ण शब्दशास्त्र (व्याकरण) अनेकों बार विधिवत् पढ़ लिया है ॥१७॥

देखो इसने जो भी बातें कही, इसमें कहीं भी किसी प्रकार की एक भी अशुद्धि नहीं है। तब विज्ञान-

अहं दाशरथी रामस्त्वयं मे लक्ष्मणोऽनुजः । सीतया भार्यया सार्धं पितुर्वचनगौरवात् ।१९।।
आगतस्तत्र विपिने स्थितोऽहं दण्डके द्विज । तत्र भार्या हृता सीता रक्षसा केनचिन्मम ।
तामन्वेष्टुमिहायातौ त्वं को वा कस्य वा वद ।।२०।।

वटुरुवाच

सुग्रीवो नाम राजा यो वानराणां महामतिः । चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं गिरिमूर्धनि तिष्ठति २१
भ्राता कनीयान् सुग्रीवो वालिनः पापचेतसः । तेन निष्कासितो भार्या हृता तस्येह वालिना २२
तद्भयादृष्यमूकाख्यं गिरिमाश्रित्य संस्थितः । अहं सुग्रीवसचिवो वायुपुत्रो महामते ।।२३।।
हनूमान्नाम विख्यातो ह्यञ्जनीगर्भसम्भवः । तेन सख्यं त्वया युक्तं सुग्रीवेण रघूत्तम ।।२४।।
भार्यापहारिणं हन्तुं सहायस्ते भविष्यति । इदानीमेव गच्छाम आगच्छ यदि रोचते ।।२५।।

श्रीराम उवाच

अहमप्यागतस्तेन सख्यं कर्तुं कपीश्वर । सख्युस्तस्यापि यत्कार्यं तत्करिष्याम्यसंशयम् २६
हनूमान् स्वस्वरूपेण स्थितो राममथाब्रवीत् । आरोहतां मम स्कन्धौ गच्छामः पर्वतोपरि ।२७
यत्र तिष्ठति सुग्रीवो मन्त्रिभिर्वालिनो भयात् । तथेति तस्यारुरोह स्कन्धं रामोऽथ लक्ष्मणः २८
उत्पपात गिरेर्मूर्ध्नि क्षणादेव महाकपिः । वृक्षच्छायां समाश्रित्य स्थितौ तौ रामलक्ष्मणौ

घन श्रीरघुनाथजी हनुमानजी से बोले ।।१८।। हे द्विज ! मैं दशरथ पुत्र राम हूँ, यह मेरा अनुज लक्ष्मण है। पिता की आज्ञा से मैं अपनी स्त्री सीता के सहित वन में आया था और दण्डकारण्य में रहता था। उस स्थान पर कोई राक्षस मेरी भार्या सीता का हरण कर लिया है। उस सीता को खोजने के लिये हम यहाँ आये हैं। आप बताइए आप कौन हैं और किसके लड़के हैं ? ।।१९-२०।। ब्रह्मचारी बोले—महामति सुग्रीव वानरों के राजा अपने चार मन्त्रियों के साथ पर्वत के शिखर पर रहते हैं।। २१ ।। वे दुष्टहृदयवाले वाली के छोटे भाई हैं। वह वाली उनकी स्त्री को छीनकर उन्हें घर से निकाल दिया है ।।२२।। अतएव उसके भय से सुग्रीव इस ऋष्यमूक पर्वत पर रहते हैं। हे महामते ! मैं उन्हीं सुग्रीव का मन्त्री और वायु का पुत्र हूँ ।।२३।। माता अञ्जनी के गर्भ से मेरा जन्म हुआ है। मैं हनुमान् नाम से प्रसिद्ध हूँ। हे रघुश्रेष्ठ ! आपको महाराज सुग्रीव से मित्रता करनी चाहिये ।।२४।।

वे आपकी भार्या को हरण करने वाले का वध करने में आपके सहायक होंगे। आपकी यदि इच्छा हो तो आप अभी उनके पास चलें ।।२५।। श्री रामचन्द्रजी बोले—हे कपीश्वर ! मैं भी उनसे मित्रता करने के लिये आया हूँ। उन मित्र का भी जो कार्य होगा मैं निश्चय ही उसे पूर्ण कर दूँगा ।।२६।। यह सुनकर हनुमान्जी अपना रूप धारणकर श्रीरामचन्द्रजी से बोले—आपलोग मेरे दोनों कन्धों पर चढ़ जाइये। हम पर्वत के ऊपर चलते हैं, जिस स्थान पर वाली के भय से अपने मन्त्रियों के साथ सुग्रीव रहते हैं। तदनन्तर श्रीराम और लक्ष्मण "तथा-इति" यह कहकर उनके कंधों पर चढ़ गये ।।२७-२८।। वानर राज

हनूमानपि सुग्रीवमुपगम्य कृताञ्जलिः । व्येतु ते भयमायातौ राजन् श्रीरामलक्ष्मणौ ३०॥
शीघ्रमुत्तिष्ठ रामेण सख्यं ते योजितं मया । अग्निं साक्षिणमारोप्य तेन सख्यं द्रुतं कुरु ३१
ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवः समागम्य रघूत्तमम् । वृक्षशाखां स्वयं छित्त्वा विष्टराय ददौ मुदा ३२
हनूमाँल्लक्ष्मणायादात्सुग्रीवाय च लक्ष्मणः । हर्षेण महताविष्टाः सर्व एवावतस्थिरे ॥३३॥
लक्ष्मणस्त्वब्रवीत्सर्वं रामवृत्तान्तमादितः । वनवासाभिगमनं सीताहरणमेव च ॥३४॥
लक्ष्मणोक्तं वचः श्रुत्वा सुग्रीवो राममब्रवीत् । अहं करिष्ये राजेन्द्र सीतायाः परिमार्गणम् ३५
साहाय्यमपि ते राम करिष्ये शत्रुघातिनः । शृणु राम मया दृष्टं किञ्चित्ते कथयाम्यहम् ॥३६॥
एकदा मन्त्रिभिः सार्धं स्थितोऽहं गिरिमूर्धनि । विहायसा नीयमानां केनचित्प्रमदोत्तमाम् ३७
क्रोशन्तीं रामरामेति दृष्ट्वास्मान्पर्वतोपरि । आमुच्याभरणान्याशु स्वोत्तरीयेण भामिनी ॥३८॥
निरीक्ष्याधः परित्यज्य क्रोशन्ती तेन रक्षसा । नीताहं भूषणान्याशु गुहायामक्षिपं प्रभो ॥३९॥
इदानीमपि पश्य त्वं जानीहि तव वा न वा । इत्युक्त्वानीय रामाय दर्शयामास वानरः ॥४०॥

हनुमान् एक क्षण में ही पर्वत के शिखर पर कूदकर पहुँच गये । वहाँ पर श्रीराम और लक्ष्मणजी एक वृक्ष की छाया में खड़े हो गये ॥२९॥

तब हनुमान् जी सुग्रीव के पास जाकर उनसे हाथ जोड़कर बोले—हे राजन ! आप अपनी शङ्का को दूर कीजिये; आपके यहाँ श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण पधारे हैं ॥३०॥ आप शीघ्र उठिये, मैं श्रीराम से आपकी मित्रता का संयोग लगा दिया हूँ । शीघ्र ही अग्नि का साक्षी कर उनसे मित्रता कीजिये ॥३१॥ तब सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न हो श्रीरघुनाथजी के पास आये और प्रसन्न मन से अपने हाथ से एक वृक्ष की शाखा को तोड़कर उन्हें बैठने के लिये आसन दिये ॥३२॥ इस प्रकार हनुमानजी लक्ष्मणजी को तथा लक्ष्मणजी सुग्रीव के लिये आसन दिये । सबलोग अति आनन्द पूर्वक अपने-अपने आसनों पर बैठ गये ॥३३॥ तब लक्ष्मणजी ने आदि से लेकर वन में आने तथा सीताहरण तक श्रीरामचन्द्रजी का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया ॥३४॥ लक्ष्मणजी के ये वचन सुनकर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजी से बोले—हे राजराजेश्वर ! मैं सीताजी की खोज करूँगा ॥ ३५ ॥

हे राम ! मैं शत्रुओं का वध करने में भी आपकी सहायता करूँगा; इस सम्बन्ध में मैं जो कुछ देखा हूँ उसे आपको सुनाता हूँ सुनिये ॥३६॥ एक समय मैं मन्त्रियों के साथ पर्वत के शिखर पर बैठा था । उस समय मैंने देखा कि कोई राक्षस किसी उत्तम कामिनी को आकाश-मार्ग से ले जाता है ॥३७॥ वह राम ! राम ! यह कहकर विलाप कर रही थी । हमलोगों को पर्वत शिखर पर बैठे देखकर शीघ्र ही अपना आभूषण उतार एक वस्त्र में बाँधकर और मेरे तरफ देखते हुए नीचे गिरा दी । हे प्रभो ! इस प्रकार निरन्तर विलाप करती हुई उस अबला को राक्षस ले गया । हे प्रभो ! मैं शीघ्र ही उन आभूषणों को उठाकर गुफा में रख दिया हूँ ॥३८–३९॥ आप अभी ही उसे देखिये और पहचानिये कि वे आभूषण आपके

विमुच्य रामस्तद्दृष्ट्वा हा सीतेति मुहुर्मुहुः । हृदि निक्षिप्य तत्सर्वं रुरोद प्राकृतो यथा ॥४१॥
आश्वास्य राघवं भ्राता लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् । अचिरेणैव ते राम प्राप्यते जानकी शुभा ॥
वानरेन्द्रसहायेन हत्वा रावणमाहवे ॥४२॥
सुग्रीवोऽप्याह हे राम प्रतिज्ञां करवाणि ते । समरे रावणं हत्वा तव दास्यामि जानकीम् ॥४३॥
ततो हनूमान्प्रज्वाल्य तयोरग्निं समीपतः । तावुभौ रामसुग्रीवावग्नौ साक्षिणि तिष्ठति ॥४४॥
बाहू प्रसार्य चालिङ्ग्य परस्परमकल्मषौ । समीपे रघुनाथस्य सुग्रीवः समुपाविशत् ॥४५॥
स्वोदन्तं कथयामास प्रणयाद्रघुनायके । सखे शृणु ममोदन्तं वालिना यत्कृतं पुरा ॥४६॥
मयपुत्रोऽथ मायावी नाम्ना परमदुर्मदः । किष्किन्धां समुपागत्य वालिनं समुपाह्वयत् ॥४७॥
सिंहनादेन महता वाली तु तदमर्षणः । निर्ययौ क्रोधताम्राक्षो जघान दृढमुष्टिना ॥४८॥
दुद्राव तेन संविग्नो जगाम स्वगुहां प्रति । अनुदुद्राव तं वाली मायाविनमहं तथा ॥४९॥
ततः प्रविष्टमालोक्य गुहां मायाविनं रुषा । वाली मामाह तिष्ठ त्वं बहिर्गच्छाम्यहं गुहाम् ।
इत्युक्त्वाविश्य स गुहां मासमेकं न निर्ययौ ॥५०॥
मासादूर्ध्वं गुहाद्वारान्निर्गतं रुधिरं बहु । तद्दृष्ट्वा परितप्ताङ्गो मृतो वालीति दुःखितः ॥५१॥

ही हैं या नहीं। यह कहकर कपिराज सुग्रीव उन आभूषणों को लाकर राम को दिखाये ॥४०॥ श्रीरामचन्द्र जी उन्हें खोलकर देखे तो उन्हें छाती से लगा लिये और साधारण मनुष्य की भाँति बारम्बार हा सीते! हा सीते! यह कहकर रोने लगे ॥४१॥

तदनन्तर भाई लक्ष्मण उन्हें आश्वासन देकर बोले—हे राम! वानरराज सुग्रीव की सहायता से रावण को युद्ध में मारकर शीघ्र ही आप शुभलक्षणा जनकनन्दिनी को प्राप्त करेंगे ॥४२॥ सुग्रीव भी बोले कि हे राम! मैं आप से प्रतिज्ञा करता हूँ कि रावण को युद्ध में मारकर आपको सीता को दिला दूँगा ॥४३॥ तब हनुमान जी उन दोनों के पास अग्नि को प्रज्वलित किये। तदनन्तर निष्पाप श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीवजी दोनों ही अग्नि को साक्षी देकर परस्पर एक दूसरे से भुजा फैलाकर मिले। तत्पश्चात् सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजी के पास बैठ गये ॥४४-४५॥ पुनः अत्यन्त प्रेमपूर्वक उन्हें अपना इतिवृत्त सुनाने लगे। वे बोले—सखे! मेरा वृत्तान्त सुनिये—पूर्व समय में वाली मेरे साथ जो किया है वह सुनाता हूँ ॥४६॥ एक समय अति मदोन्मत्त मय दानव का पुत्र मायावी किष्किन्धापुरी में आकर वाली को युद्ध के लिये ललकारा ॥४७॥ उसके सिंहनाद से वाली की आँखे क्रोध से लाल हो गयीं और वह बाहर आकर उसको बड़े जोर से एक घूसा मारा ॥४८॥ उसके आघात से मायावी अपनी गुफा की ओर दौड़ा। तब वाली और मैं हमदोनों उसका पीछा किये ॥४९॥

मायावी को गुफा में गया देखकर वाली को अति क्रोध हुआ। वह मुझसे बोला—तुम यहाँ रहो मैं गुफा में जाता हूँ। यह कहकर वह गुफा में गया और एक माह व्यतीत हो जाने पर भी वह गुफा से नहीं निकला ॥५०॥ एक मास के अनन्तर उस गुफा के द्वार से अत्यधिक रक्त निकला। उसे देखकर मैं यह

गुहाद्वारि शिलामेकां निधाय गृहमागतः । ततोऽब्रुवं मृतो वाली गुहायां रक्षसा हतः ॥५२॥
तच्छ्रुत्वा दुःखिताः सर्वे मामनिच्छन्तमप्युत । राज्येऽभिषेचनं चक्रुः सर्वे वानरमन्त्रिणः ॥५३॥
शिष्टं तदा मया राज्यं किञ्चित्कालमरिन्दम । ततः समागतो वाली मामाह परुषं रुषा ॥५४॥
बहुधा भर्त्सयित्वा मां निजघान च मुष्टिभिः । ततो निर्गत्य नगरादधावं परया भिया ॥५५॥
लोकान् सर्वान्परिक्रम्य ऋष्यमूकं समाश्रितः । ऋषेः शापभयात्सोऽपि नायातीमं गिरिं प्रभो ॥५६॥
तदादि मम भार्यां स स्वयं भुङ्क्ते विमूढधीः । अतो दुःखेन सन्तप्तो हृतदारो हताश्रयः ॥५७॥
वसाम्यद्य भवत्पादसंस्पर्शात्सुखितोऽस्म्यहम् । मित्रदुःखेन सन्तप्तो रामो राजीवलोचनः ॥५८॥
हनिष्यामि तव द्वेष्यं शीघ्रं भार्यापहारिणम् । इति प्रतिज्ञामकरोत्सुग्रीवस्य पुरस्तदा ॥५९॥
सुग्रीवोऽप्याह राजेन्द्र वाली बलवतां बली । कथं हनिष्यति भवान्देवैरपि दुरासदम् ॥६०॥
श्रृणु ते कथयिष्यामि तद्बलं बलिनां वर । कदाचिद्दुन्दुभिर्नाम महाकायो महाबलः ॥६१॥
किष्किन्धामगमद्राम महामहिषरूपधृक् । युद्धाय वालिनं रात्रौ समाह्वयत भीषणः ॥६२॥
तच्छ्रुत्वाऽसहमानोऽसौ वाली परमकोपनः । महिष श्रृङ्गयोर्धृत्वा पातयामास भूतले ॥६३॥

समझकर कि वाली मारा गया; मुझे बड़ा दुःख और सन्ताप हुआ ॥५१॥ तब उस गुफा के द्वार पर एक शिला रखकर मैं घर लौट आया और सबसे यह कह दिया कि वाली गुफा में राक्षस द्वारा मारा गया ॥५२॥ यह समाचार सुनकर सभी लोग दुःखित हुए। हे अच्युत ! मेरे नहीं चाहने पर भी सभी वानर मन्त्रिगण मुझे राजपद पर अभिषिक्त कर दिये ॥५३॥ हे अरिन्दम ! मैं कुछ ही समय राज्य शासन किया कि वाली आ गया और क्रोधपूर्वक मुझे कठोर बातें कहने लगा ॥५४॥ अनेक प्रकार से भर्त्सना कर वह मुझे मुष्टि से मारा। तब मैं अति भयभीत हो नगर छोड़कर भाग गया ॥५५॥

हे प्रभो ! मैं सभी लोकों में घूमकर ऋष्यमूक पर्वत पर आश्रित हूँ। ऋषि के शाप के भय से वह इस पर्वत पर नहीं आता ॥५६॥ तब से मेरी भार्या को वह दुर्मति स्वयं उपभोग करता है और मैं स्त्री तथा घर हरण होने के दुःख से सन्तप्त हूँ। आज आपके पाद-स्पर्श से मैं सुखी हूँ। तदनन्तर मित्र के दुःख से राजीवलोचन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी दुःखित हो उसके सामने प्रतिज्ञा किये कि मैं अति शीघ्र तुम्हारी पत्नी को हरण करने वाले तुम्हारे शत्रु को मार दूँगा ॥५७-५९॥ सुग्रीव बोले कि हे राजेन्द्र ! वाली सभी योद्धाओं में अग्रणी है। उसको पराजित करना देवताओं के लिये भी अत्यन्त कठिन है। पुनः आप उसे कैसे मार सकते हैं ? ॥६०॥ हे वीरवर ! आप सुनें, मैं उसके बल के बारे में बतलाता हूँ। एक समय दुन्दुभि नामक एक बड़ा बलवान् और महाकाय राक्षस भैंसे का रूप धारण कर किष्किन्धापुरी में आया और वह भयानक असुर रात्रि के समय वाली को युद्ध के लिये ललकारा ॥६१-६२॥ उसके ललकार को सुनकर वाली उसे सहन न कर सका और वह अति क्रोधित हो भैंसे की सींग पकड़कर उसे पृथिवी पर पटक

पादेनैकेन तत्कायमाक्रम्यास्य शिरो महत् । हस्ताभ्यां भ्रामयंश्छित्त्वा तोलयित्वाक्षिपद्भुवि ।६४॥
पपात तच्छिरो राम मातङ्गाश्रमसन्निधौ । योजनात्पतितं तस्मान्मुनेराश्रममण्डले ॥६५॥
रक्तवृष्टिः पपातोच्चैर्दृष्ट्वा तां क्रोधमूर्च्छितः । मातङ्गो वालिनं प्राह यद्यागन्तासि मे गिरिम् ६६॥
इतः परं भग्नशिरा मरिष्यसि न संशयः । एवं शप्तस्तदारभ्य ऋष्यमूकं न यात्यसौ ॥६७॥
एतज्ज्ञात्वाहमप्यत्र वसामि भयवर्जितः । राम पश्य शिरस्तस्य दुन्दुभेः पर्वतोपमम् ॥६८॥
तत्क्षेपणे यदा शक्तः शक्तस्त्वं वालिनो वधे । इत्युक्त्वा दर्शयामास शिरस्तद्गिरिसन्निभम् ।६९॥
दृष्ट्वा रामः स्मितं कृत्वा पादाङ्गुष्ठेन चाक्षिपत् । दशयोजनपर्यन्तं तदद्भुतमिवाभवत् ॥७०॥
साधुसाध्विति सम्प्राह सुग्रीवो मन्त्रिभिः सह । पुनरप्याह सुग्रीवो रामं भक्तपरायणम् ॥७१॥
एते ताला महासाराः सप्त पश्य रघूत्तम । एकैकं चालयित्वासौ निष्पत्रान्कुरुतेऽञ्जसा ॥७२॥
यदि त्वमेकबाणेन विद्ध्वा छिद्रं करोषि चेत् । हतस्त्वया तदा वाली विश्वासो मे प्रजायते ॥
तथेति धनुरादाय सायकं तत्र सन्दधे ॥७३॥
बिभेद च तदा रामः सप्त तालान्महाबलः । तालान्सप्त विनिर्भिद्य गिरिं भूमिं च सायकः ।७४॥

दिया ।६३॥ अपने एक पैर से उसके शरीर को दबाकर उस दैत्य के महान् मस्तक को अपने हाथों से घुमाकर तोड़ डाला और उसे उछालकर भूमि पर फेंक दिया ॥६४॥

हे राम ! फेंकने पर वह शिर वहाँ से एक योजन दूर मुनियों के आश्रममण्डल में मतङ्ग ऋषि के आश्रम के पास आकर गिरा ।।६५।। उस शिर के गिरने से यत्र-तत्र रक्त की वृष्टि हो गयी। यह देखकर महर्षि मतङ्ग जी क्रोधित हो वाली से बोले कि आज से यदि तू कभी मेरे इस पर्वत पर आयेगा तो निश्चय ही तुम्हारा शिर फट जायेगा और तुम मर जाओगे। मुनीवर के शाप से वह इस ऋष्यमूक पर्वत पर नहीं आता है ।।६६-६७॥ यह जानकर इस पर्वत पर निर्भय होकर मैं रहता हूँ। हे राम! यह पर्वत के समान दुन्दुभि का शिर देखिये ।।६८।।

यदि आप इसे फेंकने में समर्थ होंगे तो निश्चय ही वाली का वध कर सकेंगे। यह कहकर सुग्रीव वह पर्वत के समान दुन्दुभि का शिर दिखाया ।।६९।। उस सिर को देखकर श्रीरामचन्द्रजी मुस्कुराते हुए अपने पैर के अंगूठे से उसे दश योजन दूर फेंक दिये, यह एक अद्भूत बात हुई ।।७०।। अपने मन्त्रियों के साथ सुग्रीव साधु-साधु कहने लगे और पुनः भक्त परायण भगवान् श्रीराम से बोले—हे रघुश्रेष्ठ ! ये ताल के सात वृक्ष सुदृढ़ हैं, इसे देखिये। वाली इनमें से प्रत्येक को हिलाकर अनायास ही पत्र रहित कर देता है ।।७१-७२॥ एक बाण से ही आप यदि इनमें बेधकर छिद्र कर देंगे तो मुझे विश्वास हो जायगा कि आप वाली को मार देंगे। तदनन्तर महाबली श्रीरघुनाथजी "तथा इति" यह कहकर अपने धनुष पर बाण चढ़ाये और उन सातों ताल के वृक्षों को वेध दिये। तब वह बाण सातों ताल, पर्वत, और भूमि को वेधकर पूर्ववत् आकर श्रीरामचन्द्रजी के तरकश में स्थित हो गया। तत्पश्चात् आश्चर्य चकित हो श्रीरामचन्द्रजी

पुनरागत्य रामस्य तूणीरे पूर्ववत्स्थितः । ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवो राममाहातिविस्मितः ॥७५॥
देव त्वं जगतां नाथः परमात्मा न संशयः । मत्पूर्वकृतपुण्यौघैः सङ्गतोऽद्य मया सह ॥७६॥
त्वां भजन्ति महात्मानः संसारविनिवृत्तये । त्वां प्राप्य मोक्षसचिवं प्रार्थयेऽहं कथं भवम् ॥७७॥
दाराः पुत्रा धनं राज्यं सर्वं त्वन्मायया कृतम् । अतोऽहं देवदेवेश नाकाङ्क्षेऽन्यत्प्रसीद मे ॥७८॥
आनन्दानुभवं त्वाद्य प्राप्तोऽहं भाग्यगौरवात् । मृदर्थं यतमानेन निधानमिव सत्पते ॥७९॥
अनाद्यविद्यासंसिद्धं बन्धनं छिन्नमद्य नः । यज्ञदानतपःकर्मपूर्तेष्टादिभिरप्यसौ ।८०॥
न जीर्यते पुनर्दार्ढ्यं भजते संसृतिः प्रभो । त्वत्पाददर्शनात्सद्यो नाशमेति न संशयः ॥८१॥
क्षणार्धमपि यच्चित्तं त्वयि तिष्ठत्यचञ्चलम् । तस्याज्ञानमनर्थानां मूलं नश्यति तत्क्षणात् ॥८२॥
तत्तिष्ठतु मनो राम त्वयि नान्यत्र मे सदा ॥८३॥
रामरामेति यद्वाणी मधुरं गायति क्षणम् । स ब्रह्महा सुरापो वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥८४॥
न काङ्क्षे विजयं राम न च दारसुखादिकम् । भक्तिमेव सदा काङ्क्षे त्वयि बन्धविमोचनीम् ।८५॥
त्वन्मायाकृतसंसारस्त्वदंशोऽहं रघूत्तम । स्वपादभक्तिमादिश्य त्राहि मां भवसङ्कटात् ॥८६॥

से सुग्रीव बोले कि हे देव! निःसन्देह आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी साक्षात् परमात्मा हैं। पूर्वजन्म के पुण्य समूह से आपसे आज मेरा संयोग हुआ है ॥७३–७६॥ महात्मा-जन संसार-बन्धन की निवृत्ति के लिये आपका भजन करते हैं; पुनः आप मोक्ष देने वाले प्रभु को प्राप्त कर मैं सांसारिक वस्तुओं की कामना कैसे करूँ ? ॥७७॥

हे देवदेवेश्वर! स्त्री पुत्र, धन, राज्य आदि समस्त पदार्थ आपके माया के कार्य हैं। अतएव आपके अतिरिक्त अब मुझे किसी पदार्थ की ईच्छा नहीं है; आप मुझपर कृपा कीजिए ॥७८॥ हे सत्पते! आप आनन्दानुभव जिस प्रकार मिट्टी खोदते समय किसी को निधि प्राप्त हो जाय उसी प्रकार बड़े भाग्य से आप आज मुझे प्राप्त हुए हैं ॥७९॥ आज मेरा अनादि अविद्या का बन्धन कट गया। हे प्रभो! यह संसार रूपी बन्धन यज्ञ, दान, तप तथा इष्टापूर्ति आदि कर्मों से भी नहीं कटता और दृढ़ ही हो जाता है। परन्तु आपके चरणों के दर्शन से निःसन्देह यह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ।।८०–८१॥ जिसका चित्त आधे क्षण भी निश्चल होकर आपके ध्यान में स्थित होता है, उसका सम्पूर्ण अनर्थों का मूलकारण अज्ञान तत्क्षण ही समाप्त हो जाता है। अतएव हे राम! मेरा मन सतत आप में संलग्न रहे, वह आपको छोड़कर अन्यत्र कहीं भी न जाय ॥८२–८३॥

एक क्षण भी जिसकी वाणी राम-राम यह मधुर गान करे वह ब्रह्मघाती अथवा मद्य पान करने वाला ही क्यों न हो, सभी पापों से छूट जाता है ॥८४॥ हे राम! न मुझे विजय की आकाङ्क्षा है और न स्त्री सुख की ही आकाङ्क्षा है। भव-बन्धन-विमोचनी आपकी भक्ति ही मैं चाहता हूँ ॥८५॥ हे रघुश्रेष्ठ! यह संसार आपकी माया का विलास है और मैं आपका ही अंश हूँ। अत-एव अपने चरणारविन्द की भक्ति मुझे

पूर्वं मित्रार्युदासीनास्त्वन्मायावृतचेतसः। आसन्मेऽद्य भवत्पाददर्शनादेव राघव ॥८७॥
सर्वं ब्रह्मैव मे भाति क्व मित्रं क्व च मे रिपुः। यावत्त्वन्मायया बद्धस्तावद्गुणविशेषता ॥८८॥
सा यावदस्ति नानात्वं तावद्भवति नान्यथा। यावन्नानात्वमज्ञानात्तावत्कालकृतं भयम् ॥८९॥
अतोऽविद्यामुपास्ते यः सोऽन्धे तमसि मज्जति। मायामूलमिदं सर्वं पुत्रदारादिबन्धनम् ॥
तदुत्सारय मायां त्वं दासीं तव रघूत्तम ॥९०॥

त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिस्त्वन्नामसङ्गीतकथासु वाणी।
त्वद्भक्तसेवानिरतौ करौ मे त्वदङ्गसङ्ग लभतां मदङ्गम् ॥९१॥
त्वन्मूर्तिभक्तान् स्वगुरुं च चक्षुः पश्यत्वजस्रं स शृणोतु कर्णः।
त्वज्जन्मकर्माणि च पादयुग्मं व्रजत्वजस्रं तव मन्दिराणि ॥९२॥
अङ्गानि ते पादरजोविमिश्रतीर्थानि बिभ्रत्वहिशत्रुकेतो।
शिरस्त्वदीयं भवपद्मजाद्यैर्जुष्टं पदं राम नमत्वजस्रम् ॥९३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥१॥

देकर भव संकट से रक्षा कीजिये ॥८६॥ पहले आपकी माया से ढका हुआ मेरा मन अपने शत्रु-मित्र-उदासीन आदि में लगा था परन्तु आपके चरणारविन्द का दर्शन होते ही सबकुछ मुझे ब्रह्म-स्वरूप ही भासित होता है। हे प्रभो! कौन मेरा मित्र और कौन मेरा शत्रु? जीव जब-तक आपकी माया से आवृत्त रहता है, तब तक यह अज्ञान जन्य भेद रहता है और तभी तक प्राणी को मृत्यु का भय रहता है ॥८७-८९॥ अतः जो व्यक्ति अविद्या की उपासना करता है वह घोर-अन्धकार में पड़ता है। ये पुत्र स्त्री आदि सम्पूर्ण बन्धन मायामूल ही हैं। अत-एव हे रघूत्तम! अपनी दासी रूप इस माया को मुझसे दूर कीजिये ॥९०॥ हे प्रभो। मेरा चित्तवृत्त हमेशा आपके चरणारविन्द में लगा रहे, मेरी वाणी हमेशा आपके नाम सङ्कीर्त्तन और कथा-वार्ता में संलग्न रहे और हाथ आपके भक्तों की सेवा में लगे रहें तथा मेरा शरीर हमेशा आपका अङ्ग-सङ्ग करता रहे ॥९१॥

नेत्र हमेशा आपकी मूर्त्ति, आपके भक्तजन और अपने गुरु का दर्शन करते रहें, कान हमेशा आपके अवतारों की लीला-कथा का श्रवण करें और मेरे पैर हमेशा आपके मन्दिरों की यात्रा करते रहें ॥९२॥ हे गरुडध्वज! मेरा शरीर आपके चरणरज से युक्त तीर्थोदक धारण करे और जिनकी शिव, ब्रह्मा आदि देवगण हमेशा सेवा करते हैं मेरा शिर हमेशा आपके चरणों में प्रणाम करें ॥९३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितयाभाषा-टीकयासहितः प्रथमसर्गः परिपूर्णः ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग

वाली का वध और भगवान् श्रीराम के साथ उसका सम्भाषण

श्रीमहादेव उवाच

इत्थं स्वात्मपरिष्वङ्गनिर्धूताशेषकल्मषम् । रामः सुग्रीवमालोक्य सस्मितं वाक्यमब्रवीत् ॥१॥
मायां मोहकरीं तस्मिन्वितन्वन् कार्यसिद्धये । सखे त्वदुक्तं यत्तन्मां सत्यमेव न संशयः ॥२॥
किन्तु लोका वदिष्यन्ति मामेवं रघुनन्दनः । कृतवान्किं कपीन्द्राय सत्यं कृत्वाग्निसाक्षिकम् ॥३॥
इति लोकापवादो मे भविष्यति न संशयः । तस्मादाहूय भद्रं ते गत्वा युद्धाय वालिनम् ॥४॥
बाणेनैकेन तं हत्वा राज्ये त्वामभिषेचये । तथेति गत्वा सुग्रीवः किष्किन्धोपवनं द्रुतम् ॥५॥
कृत्वा शब्दं महानादं तमाह्वयत वालिनम् । तच्छ्रुत्वा भ्रातृनिनदं रोषताम्रविलोचनः ॥६॥
निर्जगाम गृहाच्छीघ्रं सुग्रीवो यत्र वानरः । तमापतन्तं सुग्रीवः शीघ्रं वक्षस्यताडयत् ॥७॥
सुग्रीवमपि मुष्टिभ्यां जघान क्रोधमूर्च्छितः । वाली तमपि सुग्रीव एवं क्रुद्धौ परस्परम् ॥८॥
अयुद्ध्येतामेकरूपौ दृष्ट्वा रामोऽतिविस्मितः । न मुमोच तदा बाणं सुग्रीववधशङ्कया ॥९॥
ततो दुद्राव सुग्रीवो वमन् रक्तं भयाकुलः । वाली स्वभवनं यातः सुग्रीवो राममब्रवीत् ॥१०॥
किं मा घातयसे राम शत्रुणा भ्रातृरूपिणा । यदि मद्धनने वाञ्छा त्वमेव जहि मां विभो ॥११॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! इस तरह अपने संसर्ग से सब पाप दूर हो गये हैं, उस सुग्रीव को देखकर श्रीरघुनाथजी कार्य सिद्ध करने के लिये उसपर मोह उत्पन्न करनेवाली अपनी माया का विस्तार करते हुए मुस्कुराकर बोले—हे मित्र ! तू जो कहे हो वह निःसन्देह ठीक है ॥ १२– ॥ किन्तु लोग कहेंगे कि श्रीरघुनाथजी वानरराजसुग्रीव से अग्नि की साक्षी कर मित्रता किये, परन्तु वे उस सुग्रीव का कौन कार्य सिद्ध किये ? ॥ ३ ॥ इस प्रकार संसार में निःसन्देह मेरी निन्दा होगी । अत-एव तुम्हारा कल्याण हो, तुम अभी जाकर युद्ध के लिये वाली को ललकारो ॥ ४ ॥ उसे एक ही बाण से मारकर मैं तुम्हें राजपद-पर अभिषिक्त कर दूँगा । "तथा-इति" यह कहकर वह शीघ्र किष्किन्धापुरी के उपवन में गया और अति-घोर शब्द कर गर्जते हुए वाली को युद्ध के लिये ललकारा । भाई का यह सिंहनाद सुनकर उसके नेत्र क्रोध से लाल हो गये और वह तत्काल अपने घर से निकलकर वानरराज सुग्रीव के पास आया । उसे आते ही उसके वक्षःस्थल में सुग्रीव मारा ॥५–७॥ वाली भी क्रोधातुर हो सुग्रीव को अपने दोनों घूँसों से प्रहार किया और सुग्रीव वालीपर आक्रमण किया । इस प्रकार वे दोनों अति क्रोधपूर्वक एक दूसरे से लड़ने लगे । युद्ध में उन दोनों को एक रूप देखकर आश्चर्य चकित हो सुग्रीव के वध की आशङ्का से श्रीरामचन्द्रजी बाण नहीं छोड़े ॥८–९॥ अन्त में सुग्रीव भय से व्याकुल होकर रक्त वमन करता हुआ भागा और वाली अपने घर पर चला गया । तदनन्तर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजी से बोला—हे राम ! आप इस भ्रातारूपी

एवं मे प्रत्ययं कृत्वा सत्यवादिन् रघूत्तम। उपेक्षसे किमर्थं मां शरणागतवत्सल ॥१२॥
श्रुत्वा सुग्रीववचनं रामः साश्रुविलोचनः। आलिङ्ग्य मास्म भैषीस्त्वं दृष्ट्वा वामेकरूपिणौ १३॥
मित्रघातित्वमाशङ्क्य मुक्तवान्सायकं न हि। इदानीमेव ते चिह्नं करिष्ये भ्रमशान्तये ॥१४॥
गत्वाह्वय पुनः शत्रुं हतं द्रक्ष्यसि वालिनम्। रामोऽहं त्वां शपे भ्रातर्हनिष्यामि रिपुं क्षणात् १५॥
इत्याश्वास्य स सुग्रीवं रामो लक्ष्मणमब्रवीत्। सुग्रीवस्य गले पुष्पमालामामुच्य पुष्पिताम् ॥१६॥
प्रेषयस्व महाभाग सुग्रीवं वालिनं प्रति। लक्ष्मणस्तु तदा बद्ध्वा गच्छ गच्छेति सादरम् १७।
प्रेषयामास सुग्रीवं सोऽपि गत्वा तथाकरोत्। पुनरप्यद्भुतं शब्दं कृत्वा वालिकमाह्वयत् ॥१८॥
तच्छ्रुत्वा विस्मितो वाली क्रोधेन महतावृतः। बद्ध्वा परिकरं सम्यग्गमनायोपचक्रमे ॥१९॥
गच्छन्तं वालिनं तारा गृहीत्वा निषिषेध तम्। न गन्तव्यं त्वयेदानीं शङ्का मेऽतीव जायते ।२०॥
इदानीमेव ते भग्नः पुनरायाति सत्वरः। सहायो बलवांस्तस्य कश्चिन्नूनं समागतः ॥२१॥
वाली तामाह हे सुभ्रु शङ्का ते व्येतु तद्गता। प्रिये करं परित्यज्य गच्छ गच्छामि तं रिपुम् २२॥

शत्रु से मुझे मरवाना चाहते हैं क्या ? हे प्रभो ! मुझे मरवाने की ही यदि आपकी ईच्छा है तो स्वयं आप ही मुझे मार दीजिये ॥११॥

हे सत्यवादी शरणागतवत्सल श्रीरघुनाथजी ! मुझे विश्वास दिलाकर इस प्रकार आप उपेक्षा क्यों करते हैं ॥१२॥ सुग्रीव की यह बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी हृदय से लगा लिये और सजलनेत्र हो बोले—भाई ! तुम डरो मत, तुम दोनों को एक रूप देखकर मैं मित्र का वध न हो जाय इस आशङ्का से बाण नहीं छोड़ा। इस भ्रम को दूर करने के लिये मैं तुम्हारे शरीर में अब कोई एक चिन्ह दूँगा ॥१३–१४॥ पुनः एकबार जाकर शत्रु को पुकारो, तुम वाली को मरा हुआ देखोगे। भाई ! मैं राम तुम्हारी शपथ कर कहता हूँ कि इस बार मैं क्षणभर में तुम्हारे शत्रु को मार दूँगा ॥१५॥ इस प्रकार सुग्रीव को आश्वासन देकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले—लक्ष्मण ! खिले हुए फूल की एक माला सुग्रीव के गले में डाल दो ॥ १६ ॥ हे महाभाग ! सुग्रीव को वाली से लड़ने के लिये भेज दो। तब लक्ष्मणजी सुग्रीव के गले में माला डालकर आदरपूर्वक बोले कि भाई ! तुम जाओ, यह कहकर लक्ष्मणजी सुग्रीव को लड़ने के लिये भेज दिये। सुग्रीव वहाँ पहुँचकर पुनः अद्भुत शब्द कर वाली को पुकारा ॥१७–१८॥

यह सुनकर वाली अति विस्मित हुआ और अति क्रोधपूर्वक अपना कमर कसकर चलने के लिये तैयार हो गया ॥१९॥ उसे जाते हुए देखकर उसकी स्त्री उसका हाथ पकड़कर रोकी और बोली—देव ! मेरे हृदय में बड़ी आशङ्का हो रही है, इस समय आप मत जाइये ॥२०॥ तत्क्षण ही यह आप से पराजित होकर भागा था और शीघ्र ही पुनः लौट आया। प्रतीत होता है कि निश्चय उसे कोई बलवान् सहायक मिल गया है ॥२१॥ तब वाली बोला—हे सुन्दर भृकुटी वाली ! तुम यह आशङ्का मत करो। हे प्रिये ! तू मेरा हाथ छोड़कर घर लौट जाओ; मैं अभी जाकर उस शत्रु को मारकर आता हूँ, उसका सहायक भला कौन हो

हत्वा शीघ्रं समायास्ये सहायस्तस्य को भवेत्। सहायी यदि सुग्रीवस्ततो हत्वोभयं क्षणात् ॥२३॥
आयास्ये मा शुचः शूरः कथं तिष्ठेद्गृहे रिपुम्। ज्ञात्वाप्याह्वयमानं हि हत्वायास्यामि सुन्दरि २४

तारोवाच

मत्तोऽन्यच्छृणु राजेन्द्र श्रुत्वा कुरु यथोचितम्। आह मामङ्गदः पुत्रो मृगयायां श्रुतं वचः ॥२५॥
अयोध्याधिपतिः श्रीमान् रामो दाशरथिः किल। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया भार्यया सह २६॥
आगतो दण्डकारण्यं तत्र सीता हृता किल। रावणेन सह भ्रात्रा मार्गमाणोऽथ जानकीम् ॥२७॥
आगतो ऋष्यमूकाद्रिं सुग्रीवेण समागतः। चकार तेन सुग्रीवः सख्यं चानलसाक्षिकम् ॥२८॥
प्रतिज्ञां कृतवान् रामः सुग्रीवाय सलक्ष्मणः। वालिनं समरे हत्वा राजानं त्वां करोम्यहम् ॥२९
इति निश्चित्य तौ यातौ निश्चितं शृणु मद्वचः। इदानीमेव ते भग्नः कथं पुनरुपागतः ॥३०॥
अतस्त्वं सर्वथा वैरं त्यक्त्वा सुग्रीवमानय। यौवराज्येऽभिषिच्याशु रामं त्वं शरणं व्रज ॥३१॥
पाहि मामङ्गदं राज्यं कुलं च हरिपुङ्गव। इत्युक्त्वाश्रुमुखी तारा पादयोः प्रणिपत्य तम् ॥३२॥
हस्ताभ्यां चरणौ धृत्वा रुरोद भयविह्वला। तामालिङ्ग्य तदा वाली सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥३३॥
स्त्रीस्वभावाद्बिभेषि त्वं प्रिये नास्ति भयं मम। रामो यदि समायातो लक्ष्मणेन समं प्रभुः ॥३४॥

सकता है। यदि सुग्रीव का कोई सहायक होगा तो क्षणभर में ही दोनों को मारकर आ जाऊँगा। हे सुन्दरी! किसी प्रकार की तू चिन्ता मत करो। शत्रु को बाहर से ललकार सुनकर कोई शूरवीर घर में कैसे रुक सकता है? अत-एव उसे मारकर मैं आऊँगा ॥२२–२४॥

तारा बोली—हे राजेन्द्र! मुझसे अन्य भी वृत्तान्त सुनिये और उसे सुनकर आप जैसा उचित हो वैसा करें। अङ्गद मृगया के समय सुनी हुई बात को मुझसे बताया है ॥२५॥ अयोध्याधिपति दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण और सीता के साथ दण्डकारण्य में आये थे। उस स्थान पर रावण सीता का हरण कर लिया है। वे अपनी भार्या जानकी जी को खोजते हुए अपने भाई के साथ सुग्रीव से मिले हैं। उस स्थान पर सुग्रीव अग्नि का साक्षी देकर उनसे मित्रता किया है ॥२६–२८॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी के साथ सुग्रीव से प्रतिज्ञा किये हैं कि मैं युद्ध में वाली को मारकर तुम्हें राजा बना दूँगा। २९॥ इसी उद्देश्य से वे दोनों आये हैं, मेरी यह बात सच मानिये। अभी-अभी आप से मार खाकर भागा हुआ सुग्रीव पुनः कैसे लौट आता? ॥३०॥

अत-एव आप सुग्रीव से वैर भाव छोड़कर उसे लाइये और शीघ्र ही उसे युवराज पद पर अभिषिक्त कर श्रीरामचन्द्रजी की शरण में जाइये ॥३१॥ हे कपिश्रेष्ठ! आप अङ्गद तथा इस राज्य और कुल की रक्षा कीजिये। यह कहकर तारा वाली के चरणों में गिर पड़ी। उस समय तारा के मुखपर अश्रुधाराएँ बह रहीं थीं ॥३२॥ वह भय से विह्वल हो अपने हाथों से दोनों चरण पकड़कर फूट-फूट कर रोने लगी। तत्पश्चात् वाली प्रेमपूर्वक आलिङ्गन कर बोला—प्रिये! तुम स्त्री स्वभाव से व्यर्थ ही डरती हो, मुझे तो

तदा रामेण मे स्नेहो भविष्यति न संशयः । रामो नारायणः साक्षादवतीर्णोऽखिलप्रभुः ॥३५॥
भूभारहरणार्थाय श्रुतं पूर्वं मयानघे । स्वपक्षः परपक्षो वा नास्ति तस्य परात्मनः ॥३६॥
आनेष्यामि गृहं साध्वि नत्वा तच्चरणाम्बुजम् । भजतोऽनुभजत्येष भक्तिगम्यः सुरेश्वरः ॥३७॥
यदि स्वयं समायाति सुग्रीवो हन्मि तं क्षणात् । यदुक्तं यौवराज्याय सुग्रीवस्याभिषेचनम् ॥३८॥
कथमाहूयमानोऽहं युद्धाय रिपुणा प्रिये । शूरोऽहं सर्वलोकानां सम्मतः शुभलक्षणे ॥३९॥
भीतभीतमिदं वाक्यं कथं वाली वदेत्प्रिये । तस्माच्छोकं परित्यज्य तिष्ठ सुन्दरि वेश्मनि ।४०।
एवमाश्वास्य तारां तां शोचन्तीमश्रुलोचनाम् । गतो वाली समुद्युक्तः सुग्रीवस्य वधाय सः ॥४१॥
दृष्ट्वा वालिनमायान्तं सुग्रीवो भीमविक्रमः । उत्पपात गले बद्धपुष्पमालः मतङ्गवत् ॥४२॥
मुष्टिभ्यां ताडयामास वालिनं सोऽपि तं तथा । अहन्वाली च सुग्रीवं सुग्रीवो वालिनं तथा ४३।
रामं विलोकयन्नेव सुग्रीवो युयुधे युधि । इत्येवं युद्ध्यमानौ तौ दृष्ट्वा रामः प्रतापवान् ४४
बाणमादाय तूणीरादैन्द्रे धनुषि सन्दधे । आकृष्य कर्णपर्यन्तमदृश्यो वृक्षखण्डगः ॥४५॥
निरीक्ष्य वालिनं सम्यग्लक्ष्यं तद्धृदयं हरिः । उत्ससर्जाशनिसमं महावेगं महाबलः ॥४६॥

कोई भय का कारण दिखलायी नहीं पड़ता। लक्ष्मण के सहित प्रभुराम यदि यहाँ आए हैं तो निःसन्देह उनसे मेरा प्रेम हो जायगा। हे अनघे ! राम तो साक्षात् सर्वेश्वर श्रीनारायण हैं। वे पृथ्वी का भार हरण करने के लिये अवतार लिये हैं, इसे मैं पहले से ही सुन रखा हूँ। वे प्रकृति आदि से परे सबके आत्मा हैं, उनका न कोई अपना है और न कोई पराया है ॥३४–३६॥

हे साध्वि ! उनके चरण कमलों में प्रणाम कर उन्हें मैं घर ले आऊँगा। वे सुरेश्वर भक्ति से प्राप्त होते हैं और उनका भजन करनेवाले पर वे प्रसन्न रहते हैं ॥ ३७ ॥ यदि सुग्रीव ही अकेला आया है तो एक क्षण में ही मैं उसे मार दूँगा। हे शुभलक्षणे ! प्रिये ! तू सुग्रीव को युवराज पद पर अभिषिक्त करने के लिए कहती हो तो सम्पूर्ण लोकों में मैं माननीय शूरवीर हूँ। शत्रु के द्वारा ललकारे जाने पर भी उसके भय से वाली कैसे कह सकता है। अत-एव हे सुन्दरि ! तुम निःसन्देह होकर घर पर रहो ॥ ३८–४० ॥ इस प्रकार शोकाश्रुपूर्ण नेत्र तारा को वाली आश्वासन देकर सुग्रीव को मारने के उद्देश्य से चला ॥ ४१ ॥ वाली को आते हुए देखकर भीम पराक्रमी सुग्रीव गले में पुष्पमाला पहने हुए गजराज के समान उछलने लगा ॥ ४२ ॥ पुनः सुग्रीव अपने मुष्टि प्रहार से वाली पर प्रहार किया और वाली भी सुग्रीव पर उसी प्रकार प्रहार किया; दोनों बारम्बार एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥ ४३॥

राम को देखता हुआ ही सुग्रीव युद्ध में लड़ रहा था। परमप्रतापी श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार उन दोनों को लड़ते हुए देखकर अपने तरकस से एक बाण निकाल कर अपने ऐन्द्र धनुष पर चढ़ाये। पुनः एक वृक्ष की ओट में धनुष को पर्णपर्यन्त खींच कर महापराक्रमी श्रीहरि वाली को देखकर उसके हृदय को लक्ष्य कर वज्र के समान कठोर और महावेगशाली बाण छोड़ दिये ॥ ४४–४६ ॥ वह बाण वाली के

विभेद स शरो वक्षो वालिनः कम्पयन्महीम् । उत्पपात महाशब्दं मुञ्चन्स निपपात ह ॥४७॥
तदा मुहूर्तं निःसंज्ञो भूत्वा चेतनमाप सः ।
ततो वाली ददर्शाग्रे रामं राजीवलोचनम् । धनुरालम्ब्य वामेन हस्तेनान्येन सायकम् ॥४८॥
बिभ्राणं चीरवसनं जटामुकुटधारिणम् । विशालवक्षसं भ्राजद्वनमालाविभूषितम् ॥४९॥
पीनचार्वायतभुजं नवदूर्वादलच्छविम् । सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां च पार्श्वयोः परिसेवितम् ।५०।
विलोक्य शनकैः प्राह वाली रामं विगर्हयन् । किं मयापकृतं राम तव येन हतोऽस्म्यहम् ॥५१॥
राजधर्ममविज्ञाय गर्हितं कर्म ते कृतम् । वृक्षखण्डे तिरोभूत्वा त्यजता मयि सायकम् ।५२॥
यशः किं लप्स्यसे राम चोरवत्कृतसङ्गरः । यदि क्षत्रियदायादो मनोर्वंशसमुद्भवः ॥५३॥
युद्धं कृत्वा समक्षं मे प्राप्स्यसे तत्फलं तदा । सुग्रीवेण कृतं किं ते मया वा न कृतं किमु ॥५४॥
रावणेन हृता भार्या तव राम महावने । सुग्रीवं शरणं यातस्तदर्थमिति शुश्रुम ॥५५॥
बत राम न जानीषे मद्बलं लोकविश्रुतम् । रावणं सकुलं बद्ध्वा ससीतं लङ्कया सह ॥५६॥
आनयामि मुहूर्तार्द्धाद्यदि चेच्छामि राघव । धर्मिष्ठ इति लोकेऽस्मिन् कथ्यसे रघुनन्दन ॥५७॥

वक्षःस्थल को बेध दिया । बाण के लगते ही घोर शब्द करता हुआ वह उछलकर पृथ्वी पर गिर पड़ा जिससे पृथ्वी कम्पायमान हो उठी ॥ ४७ ॥

उस समय वह एक मुहूर्त्त संज्ञा-शून्य (मूच्छित) हो गया, पुनः जब उसे चेतना हुई तो वह अपने सामने कमलनयन श्रीरघुनाथजी को खड़ा देखा । वे बायें हाथ धनुष का सहारा कर दायें हाथ में बाण लिये हुए थे और शरीर में चीरवस्त्र था तथा शिर पर जटाओं का मुकुट धारण किये थे । उनका विशाल वक्षःस्थल मनोहर वनमाला से विभूषित था ॥ ४८–४९ ॥ उनकी भुजाएँ स्थूल, सुन्दर और लम्बी थीं, उनके शरीर की कान्ति नव दूर्वादल के समान श्यामवर्ण की थी । उनके दोनों तरफ सुग्रीव और लक्ष्मण सेवा में तत्पर थे ॥ ५० ॥ श्रीरामचन्द्रजी को देखकर वाली उन्हें तिरस्कृत करता हुआ धीरे से कहा—हे राम ! मैं आपका कौन सा अनिष्ट किया था कि आप मुझे मारे ॥ ५१ ॥ राजनीति न जानने के कारण आप ऐसा निन्दनीय कर्म किये हैं । इस प्रकार वृक्ष की आड़ में छिपकर मेरे ऊपर बाण छोड़ते हुए ॥ ५२ ॥ चोर के समान युद्ध करने से क्या आप यश प्राप्त करेंगे ? यदि आपका जन्म मनु के वंश में हुआ है, आप क्षत्रिय कुमार हैं, तो मेरे समक्ष आकर युद्ध करते तो आपको उसका फल भी मिलता; सुग्रीव आपका कौन सा कार्य किया है और मैं आपका कौन सा कार्य नहीं किया ॥ ५३–५४ ॥ हे राम ! महावन में रावण आपकी भार्या सीता का हरण किया है, उसी लिये आप सुग्रीव के शरण में आये हैं ॥ ५५ ॥ परन्तु विश्वविख्यात मेरे बल को आप नहीं जानते हैं । हे राघव ! मैं कुलसहित रावण को बाँधकर सीता और लङ्का के सहित आधे मुहूर्त्त में ले आता । हे रघुनन्दन ! इस संसार में आप बड़े धर्मात्मा कहे जाते हैं ॥ ५६–५७ ॥

वानरं व्याधवद्धत्वा धर्मं कं लप्स्यसे वद । अभक्ष्यं वानरं मांसं हत्वा मां किं करिष्यसि ।५८।
इत्येवं बहु भाषन्तं वालिनं राघवोऽब्रवीत् । धर्मस्य गोप्ता लोकेऽस्मिंश्चरामि सशरासनः ॥५९॥
अधर्मकारिणं हत्वा सद्धर्मं पालयाम्यहम् । दुहिता भगिनी भ्रातुर्भार्या चैव तथा स्नुषा ।६०।
समा यो रमते तासामेकामपि विमूढधीः । पातकी स तु विज्ञेयः स वध्यो राजभिः सदा ६१
त्वं तु भ्रातुः कनिष्ठस्य भार्यायां रमसे बलात् । अतो मया धर्मविदा हतोऽसि वनगोचर ।६२॥
त्वं कपित्वान्न जानिषे महान्तो विचरन्ति यत् । लोकं पुनानाः सञ्चारैरतस्तान्नातिभाषयेत् ।।६३॥
तच्छ्रुत्वा भयसन्त्रस्तो ज्ञात्वा रामं रमापतिम् । वाली प्रणम्य रभसाद्रामं वचनमब्रवीत् । ६४॥
राम राम महाभाग जाने त्वां परमेश्वरम् । अजानता मया किञ्चिदुक्तं तत्क्षन्तुमर्हसि ॥६५॥
साक्षात्त्वच्छरघातेन विशेषेण तवाग्रतः । त्यजाम्यसून्महायोगिदुर्लभं तव दर्शनम् ॥६६॥
यन्नाम विवशो गृह्णन् म्रियमाणः परं पदम् । याति साक्षात्स एवाद्य मुमूर्षोर्मे पुरः स्थितः ।६७
देव जानामि पुरुषं त्वां श्रियं जानकीं शुभाम् । रावणस्य वधार्थाय जातं त्वां ब्रह्मणार्थितम् ।६८।
अनुजानीहि मां राम यान्तं त्वत्पदमुत्तमम् । मम तुल्यबले बाले अङ्गदे त्वं दयां कुरु ।।६९॥

व्याध के समान एक वानर को मारकर आपको कौन सा धर्म होगा ? वानर का मांस अभक्ष्य होता है। पुनः मुझे मार कर आप क्या करेंगे ? ॥ ५८ ॥

वाली के यह कहने पर श्रीरघुनाथजी बोले—धर्म की रक्षा करने हेतु मैं संसार में धनुष धारण कर विचरण करता हूँ ॥ ५९ ॥ मैं अधर्म करनेवालों को मारकर सद्धर्म का पालन करता हूँ।

दुहिता, बहन, अनुजवधू, पुत्रवधू ये समान हैं। जो मूढ व्यक्ति इनमें से किसी भी एक के साथ रमण करता है उसे महापातकी जानना चाहिये और राजा को उसे मार देना चाहिये ॥ ६०-६१ ॥ रे वनचर ! तू अपने छोटे भाई की स्त्री को बलात्कार से रमण करता था। अत-एव मुझ धर्मात्मा ने तुझे मारा ॥ ६२ ॥ वानर होने से तू यह नहीं जानता कि महान् लोग जहाँ विचरण करते हैं वहाँ अपने आचरणों से संसार को पवित्र करते हैं। अत-एव उनसे इस प्रकार नहीं बोलना चाहिये ॥ ६३ ॥

यह सुनकर वह भयभीत हो गया और उन्हें साक्षात् रमापति श्रीनारायण जानकर शीघ्रता से प्रणाम कर बोला ॥ ६४ ॥ हे राम ! हे राम ! हे महाभाग ! आप साक्षात् परमेश्वर को मैं समझ गया। अज्ञान-वश मैं जो कुछ कहा हूँ उसे आप क्षमा करें ॥ ६५ ॥ आपका दर्शन योगियों को दुर्लभ है, मैं साक्षात् आपके बाण लगने से विशेषरूप से आपके सामने प्राण छोड़ रहा हूँ ॥ ६६ ॥ मृत्यु के समय जिनका नाम लेने से प्राणी परमपद को प्राप्त करता है, वही आप इस अन्तिम समय में आज साक्षात् मेरे सामने उपस्थित हैं ॥ ६७ ॥ हे देव ! यह मैं जानता हूँ कि आप साक्षात् परमपुरुष नारायण हैं और जानकीजी श्रीलक्ष्मीजी हैं। ब्रह्माजी की प्रार्थना करने से आप रावण का वध करने के लिये अवतार लिये हैं ॥ ६८ ॥ हे राम ! मैं अब आपके उत्तम धाम को जा रहा हूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिये। मेरे ही समान बलशाली मेरा

विशल्यं कुरु मे राम हृदयं पाणिना स्पृशन् ।
तथेति बाणमुद्धृत्य रामः पस्पर्श पाणिना । त्यक्त्वा तद्वानरं देहममरेन्द्रोऽभवत्क्षणात् ॥७०॥
वाली रघूत्तमशराभिहतो विमृष्टो रामेण शीतलकरेण सुखाकरेण ।
सद्यो विमुच्य कपिदेहमनन्यलभ्यं प्राप्तं परं परमहंसगणैर्दुरापम् ॥७१॥
इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयसर्ग

तारा का विलाप, श्रीरामचन्द्रजी का तारा को समझाना तथा सुग्रीव को राजपद प्राप्त करना

महादेव उवाच

निहते वालिनि रणे रामेण परमात्मना । दुद्रुवुर्वानराः सर्वे किष्किन्धां भयविह्वलाः ॥ १ ॥
तारामूचुर्महाभागे हतो वाली रणाजिरे । अङ्गदं परिरक्षाद्य मन्त्रिणः परिनोदय ॥ २ ॥
चतुर्द्वारकपाटादीन् बद्ध्वा रक्षामहे पुरीम् । वानराणां तु राजानमङ्गदं कुरु भामिनि ॥ ३ ॥
निहतं वालिनं श्रुत्वा तारा शोकविमूर्च्छिता । अताडयत्स्वपाणिभ्यां शिरो वक्षश्च भूरिशः ॥४॥

बालक अङ्गद पर आप दया कीजिये ॥ ६९ ॥ हे राम ! मेरे हृदय को आपने हाथों से स्पर्श करता हुआ इस बाण को निकाल दीजिये । तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी 'तथा इति' यह कहकर उसे स्पर्श करते हुए बाण निकाल दिये । तब वाली वानर का शरीर छोड़कर तत्क्षण इन्द्र रूप हो गया ॥ ७० ॥ हे पार्वति ! वाली श्रीरघुनाथजी के बाण से मारा गया और उनके करकमल के शीतल स्पर्श से सद्यः अपना वानर शरीर छोड़कर अनन्यलभ्य परमपद को प्राप्त किया, जो परम हंसों को भी मिलना अत्यन्त कठिन है ॥ ७१ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज पं० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः द्वितीयसर्गः परिपूर्णः ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! युद्ध में परमात्मा राम से वाली को मारे जाने से भय से व्याकुल हो सभी वानर गण किष्किन्धापुरी में दौड़े और तारा से बोले—हे महाभागे ! वानरराज वाली रण में मारे गये । अब आप अङ्गद की रक्षा कीजिये और मन्त्रियों को सावधान कीजिये ॥ २ ॥ हे भामिनी ! हमलोग नगर के चारो द्वारों के कपाटों को लगाकर नगर की रक्षा करते हैं, आप अङ्गद को वानरों का राजा बनाइये ॥ ३ ॥ वाली को मरा हुआ सुन शोक से मूर्च्छित होकर तारा अपना शिर तथा छाती को बारम्बार

किमङ्गदेन राज्येन नगरेण धनेन वा । इदानीमेव निधनं यास्यामि पतिना सह ॥ ५ ॥
इत्युक्त्वा त्वरिता तत्र रुदती मुक्तमूर्धजा । ययौ तारातिशोकार्ता यत्र भर्तृकलेवरम् ॥ ६ ॥
पतितं वालिनं दृष्ट्वा रक्तैः पांसुभिरावृतम् । रुदती नाथनाथेति पतिता तस्य पादयोः । ७ ॥
करुणं विलपन्ती सा ददर्श रघुनन्दनम् । राम मां जहि बाणेन येन वाली हतस्त्वया ॥ ८ ॥
गच्छामि पतिसालोक्यं पतिर्मामभिकाङ्क्षते । स्वर्गेऽपि न सुखं तस्य मां विना रघुनन्दन ॥९॥
पत्नीवियोगजं दुःखमनुभूतं त्वयानघ । वालिने मां प्रयच्छाशु पत्नीदानफलं भवेत् । १०॥
सुग्रीव त्वं सुखं राज्यं दापितं वालिघातिना । रामेण रुमया सार्धं भुङ्क्ष्व सापत्नवर्जितम् ।११॥
इत्येवं विलपन्तीं तां तारां रामो महामनाः । सान्त्वयामास दयया तत्त्वज्ञानोपदेशतः ॥१२॥
किं भीरु शोचसि व्यर्थं शोकस्याविषयं पतिम् । पतिस्तवायं देहो वा जीवो वा वद तत्त्वतः १३
पञ्चात्मको जडो देहस्त्वङ्मांसरुधिरास्थिमान् । कालकर्मगुणोत्पन्नः सोऽप्यास्तेऽद्यापि ते पुरः ॥
मन्यसे जीवमात्मानं जीवस्तर्हि निरामयः । न जायते न म्रियते न तिष्ठति न गच्छति ॥१५॥
न स्त्री पुमान्वा षण्ढो वा जीवः सर्वगतोऽव्ययः ।

पीटने लगी और बोली, मुझे अङ्गद, राज्य, नगर अथवा धन से क्या प्रयोजन ? मैं तो अपने पति के साथ प्राण छोड़ दूँगी ॥ ५ ॥ यह कहकर वह रोती हुई शीघ्र अपने पति के पड़े हुए शव के पास गयी । उस समय तारा अत्यन्त शोकाकुल थी और उसके केश बिखरे थे ॥ ६ ॥ वहाँ पर रक्त और धूलि से लथ-पथ वाली को पड़ा देखकर वह "हा नाथ ! हा नाथ !" यह कहकर रोती हुई उसके चरणों पर गिर पड़ी ॥ ७ ॥ करुण-क्रन्दन करती हुई वह रघुनाथजी को देखी । हे राम ! जिस बाण से आप वाली को मारे हैं, उसी बाण से मुझे मारिये ॥ ८ ॥ मैं शीघ्र ही पति के पास जाऊँ; वे मेरी राह देखते होंगे । क्योंकि हे रघुनन्दन ! मेरे विना उन्हें स्वर्ग में भी सुख नहीं होगा ॥ ९ ॥ हे अनघ ! पत्नी के वियोग का दुःख आप अनुभव किये ही हैं । अत-एव आप मुझे वाली के पास शीघ्र ही भेज दीजिये । इससे आपको स्त्रीदान का फल मिलेगा । १० ॥ सुग्रीव ! वाली को मारने वाले राम ने तुम्हें राज्य दिला ही दिया; निष्कण्टक रुमा के साथ तू उस राज्य का भोग करो ॥ ११ ॥ इस प्रकार विलाप करती हुई तारा को महामना श्रीराम दयापूर्वक तत्त्वज्ञान का उपदेश देकर शान्त किये ॥ १२ ॥

वे बोले—हे भीरु ! तू शोक न करने योग्य अपने पति के लिये व्यर्थ शोक क्यों करती है ? तू यह सोच-समझ कर बताओ कि तुम्हारा पति यह देह है या इसमें रहने वाला जीव । देह यदि पति है तो यह जड पञ्चभूतमय एवं त्वचा, मांस, रुधिर, अस्थि से निर्मित है । तथा काल, कर्म और गुणों से उत्पन्न वह अभी भी तुम्हारे सामने पड़ा है ॥१३–१४॥ यदि च जीव को अपना पति मानती हो तो तुझे शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह निर्विकार है । न वह जन्म लेता है, न मरता है, न स्थिर रहता है और न जाता है ॥१५॥ जीव तो सर्वव्यापी अव्यय है । वह स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक कुछ भी नहीं है । वह

एक एवाद्वितीयोऽयमाकाशवदलेपकः । नित्यो ज्ञानमयः शुद्धः स कथं शोकमर्हति ॥१६॥

तारा उवाच

देहीऽचित्काष्ठवद्राम जीवो नित्यश्चिदात्मकः । सुखदुःखादिसम्बन्धः कस्य स्याद्राम मे वद ।१७।

श्रीराम उवाच

अहङ्कारादिसम्बन्धो यावद्देहेन्द्रियैः सह । संसारस्तावदेव स्यादात्मनस्त्वविवेकिनः ॥१८॥
मिथ्यारोपितसंसारो न स्वयं विनिवर्तते । विषयान्ध्यायमानस्य स्वप्ने मिथ्यागमो यथा १९
अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तत्कार्याहंकृतेस्तथा । संसारोऽपार्थकोऽपि स्याद्रागद्वेषादिसंकुलः ॥२०॥
मन एव हि संसारो बन्धश्चैव मनः शुभे । आत्मा मनः समानत्वमेत्य तद्गतबन्धभाक् ।२१॥
यथा विशुद्धः स्फटिकोऽलक्तकादिसमीपगः । तत्तद्वर्णयुगाभाति वस्तुतो नास्ति रञ्जनम् ॥२२॥
बुद्धीन्द्रियादिसामीप्यादात्मनः संसृतिर्बलात् । आत्मा स्वलिङ्गं तु मनः परिगृह्य तदुद्भवान् २३
कामान् जुषन् गुणैर्बद्धः संसारे वर्ततेऽवशः । आदौ मनोगुणान् सृष्ट्वा ततः कर्माण्यनेकधा ॥२४॥
शुक्ललोहितकृष्णानि गतयस्तत्समानतः । एवं कर्मवशाज्जीवो भ्रमत्याभूतसंप्लवम् ॥२५॥

एक, अद्वितीय, आकाश के समान निर्लेप, नित्य, ज्ञानमय और शुद्धस्वरूप है। पुनः वह सोचने योग्य कैसे हो सकता है ? ॥१६॥

तारा बोली—हे राम ! यह शरीर काष्ठ के समान जड़ और जीव नित्य चैतन्यस्वरूप है, पुनः सुख और दुःखादि का सम्बन्ध किससे होता है ? यह आप मुझे बतलाइये ॥१७॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—जबतक देह और इन्द्रियों के साथ अहङ्कारादि का सम्बन्ध रहता है तबतक आत्मा और अनात्मा के विवेक से रहित जीव का संसार से सम्बन्ध रहता है ॥ १८ ॥ यह संसार मिथ्या ही आत्मा के साथ आरोपित है, परन्तु वह स्वयं निवृत्त नहीं होता, जिस प्रकार विषयों का ध्यान करने वाले को स्वप्न के दृश्य मिथ्या ही होते हैं ॥१९॥ अनादि अविद्या और उसका कार्य अहङ्कार के सम्बन्ध से स्थित यह संसार निरर्थक किन्तु राग-द्वेषादि से पूर्ण है॥ २० ॥ हे शुभे! मन ही संसार और मन ही बन्धन है। (अनोन्याध्यास से) उस अनात्मवस्तु मन के साथ एक होने के कारण यह आत्मा उससे उत्पन्न सुख दुःखादि के बन्धन में पड़ता है ॥२१॥ जिस प्रकार विशुद्ध-स्फटिक लाह आदि के समीप होने से उन्हीं के रंग का प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में वह उस रंग का नहीं होता, उसी प्रकार बुद्धि और इन्द्रिय आदि के समीप रहने से बलात् आत्मा को संसार की प्रतीत होती है ॥२३॥

आत्मा अपने लिङ्ग शरीर को ग्रहण कर उससे उत्पन्न होने वाले विषयों का भोग करता हुआ उसके रागद्वेषादि गुणों में बन्धकर विवश होकर संसार-चक्र में फँसा रहता है। पहले मन के गुणों की रचना करता है; पुनः अनेक प्रकार का कर्म करता है ॥२४॥ वे कर्म शुक्ल (जप, ध्यान आदि), लोहित कर्म (हिंसामय यज्ञ-यागादि), कृष्णकर्म (मद्यपानादि पापकर्म) तीन प्रकार के होते हैं। इस प्रकार अपने कर्म के वश होकर जीव प्रलय पर्यन्त आवागमन के चक्कर में पड़ा रहता है ॥२३-२५॥ प्रलयावस्था में

सर्वोपसंहृतौ जीवो वासनाभिः स्वकर्मभिः । अनाद्यविद्यावशगस्तिष्ठत्यभिनिवेशतः ॥२६॥
सृष्टिकाले पुनः पूर्ववासनामानसैः सह । जायते पुनरप्येवं घटीयन्त्रमिवावशः ॥२७॥
यदा पुण्यविशेषेण लभते सङ्गतिं सताम् । मद्भक्तानां सुशान्तानां तदा मद्विषया मतिः २८
मत्कथाश्रवणे श्रद्धा दुर्लभा जायते ततः । ततः स्वरूपविज्ञानमनायासेन जायते ॥२९॥
तदाचार्यप्रसादेन वाक्यार्थज्ञानतः क्षणात् । देहेन्द्रियमनःप्राणाहङ्कृतिभ्यः पृथक् स्थितम् ३०
स्वात्मानुभवतः सत्यमानन्दात्मानमद्वयम् । ज्ञात्वा सद्यो भवेन्मुक्तः सत्यमेव मयोदितम् ३१
एवं मयोदितं सम्यगालोचयति योऽनिशम् । तस्य संसारदुःखानि न स्पृशन्ति कदाचन ।३२।
त्वमप्येतन्मया प्रोक्तमालोचय विशुद्धधीः । न स्पृश्यसे दुःखजालैः कर्मबन्धाद्विमोक्ष्यसे ।३३
पूर्वजन्मनि ते सुभ्रु कृता मद्भक्तिरुत्तमा । अतस्तव विमोक्षाय रूपं मे दर्शितं शुभे ॥३४॥
ध्यात्वा मद्रूपमनिशमालोचय मयोदितम् । प्रवाहपतितं कार्यं कुर्वन्त्यपि न लिप्यसे ॥३५॥
श्रीरामेणोदितं सर्वं श्रुत्वा तारातिविस्मिता । देहाभिमानजं शोकं त्यक्त्वा नत्वा रघूत्तमम् ३६
आत्मानुभवसन्तुष्टा जीवन्मुक्ता बभूव ह । क्षणसङ्गममात्रेण रामेण परमात्मना ॥३७॥

सम्पूर्ण भूतों का लय हो जाने पर भी अपने-अपने कर्तृत्व, भोक्तृत्व के अभिनिवेश से यह अपनी वासनाओं एवं कर्मों के साथ अनादि अविद्या माया से अच्छादित रहता है ॥२६॥ सृष्टि के समय में पूर्ववासनाओं से युक्त मनके साथ घटीयन्त्र के समान विवश होकर उत्पन्न होता है ॥२७॥

जिस समय विशेष पुण्य के होने से मेरे भक्त शान्तचित्तमहात्माओं की सत्सङ्गति होती है, तब इसकी बुद्धि मद्विषयक होती है ॥२८॥ इससे मेरी कथा सुनने में श्रद्धा होती है, जो दुर्लभा है। मेरी कथा की श्रवण करने से अनायास ही मेरे स्वरूप का ज्ञान हो जाता है ॥२९॥ तब गुरु कृपा के द्वारा तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के अर्थ का ज्ञान होने तथा स्वयं अनुभव से यह अपने सच्चिदानन्द स्वरूप अद्वितीय आत्मा को देह इन्द्रिय, मन, प्राण और अहङ्कार आदि से पृथक् समझकर शीघ्र ही क्षणभर में मुक्त हो जाता है। हे तारा! यह सत्य बात तुमसे मैं कह दिया ॥३०-३१॥ इस प्रकार मेरे कहे हुए वाणी का अहर्निश जो भली-भाँति मनन करते है, उन्हें सांसारिक दुःख कभी भी स्पर्श नहीं करते ॥३२॥ मेरे इस उपदेश को तू भी शुद्धचित्त से मनन करो; यह करने से तूझे भी दुःख जाल स्पर्श नहीं करेंगे और तू कर्म-बन्धन से मुक्त हो जाओगी ॥३३॥

हे सुभ्रु! तू पूर्व जन्म में मेरी अत्युत्कट भक्ति की थी; अत-एव हे सुन्दरि! तुझे आत्मवत् करने हेतु मैं तुम्हें दर्शन दिया ॥३४॥ अहर्निश मेरे स्वरूप का ध्यान करती हुई मेरे उपदेश का मनन करो। यह करने से प्रारब्ध के द्वारा होने वाले कर्मों से तू निर्लिप्त रहोगी ॥३५॥ श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा सम्पूर्ण उपदेश को सुनकर तारा अतिविस्मित हो देहाभिमान जनित शोक को छोड़कर श्रीरघुनाथजी को प्रणाम की और आत्मानुभव से सन्तुष्ट होकर तत्काल वह जीवन्मुक्त हो गयी। परमात्मा राम के क्षणमात्र के सत्सङ्ग से

अनादिबन्धं निर्धूय मुक्ता सापि विकल्मषा। सुग्रीवोऽपि च तच्छ्रुत्वा रामवक्त्रात्समीरितम् ३८
जहावज्ञानमखिलं स्वस्थचित्तोऽभवत्तदा। ततः सुग्रीवमाहेदं रामो वानरपुङ्गवम् ॥३९॥
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य पुत्रेण यद्युक्तं साम्परायिकम्। कुरु सर्वं यथान्यायं संस्कारादि ममाज्ञया ।४०।
तथेति बलिभिर्मुख्यैर्वानरैः परिणीय तम्। वालिनं पुष्पके क्षिप्त्वा सर्वराजोपचारकैः ।४१।
भेरीदुन्दुभिनिर्घोषैर्ब्राह्मणैर्मन्त्रिभिः सह। यूथपैर्वानरैः पौरैस्तारया चाङ्गदेन च ॥४२॥
गत्वा चकार तत्सर्वं यथाशास्त्रं प्रयत्नतः। स्नात्वा जगाम रामस्य समीपं मन्त्रिभिः सह ४३
नत्वा रामस्य चरणौ सुग्रीवः प्राह हृष्टधीः। राज्यं प्रशाधि राजेन्द्र वानराणां समृद्धिमत् ४४॥
दासोऽहं ते पादपद्मं सेवे लक्ष्मणवच्चिरम्। इत्युक्तो राघवः प्राह सुग्रीवं सस्मितं वचः ४५॥
त्वमेवाहं न सन्देहः शीघ्रं गच्छ ममाज्ञया। पुरराज्याधिपत्ये त्वं स्वात्मानमभिषेचय ॥४६॥
नगरं न प्रवेक्ष्यामि चतुर्दश समाः सखे। आगमिष्यति मे भ्राता लक्ष्मणः पत्तनं तव ।४७
अङ्गदं यौवराज्ये त्वमभिषेचय सादरम्। अहं समीपे शिखरे पर्वतस्य सहानुजः ॥४८॥
वत्स्यामि वर्षदिवसांस्ततस्त्वं यत्नवान् भव। किञ्चित्कालं पुरे स्थित्वा सीतायाः परिमार्गणे ॥

वह अनादि अविद्या के बन्धन को काटकर कल्मष रहित हो मुक्त हो गयी। भगवान् के मुखारविन्द से उपदेश सुनकर सुग्रीव भी सम्पूर्ण अज्ञान से रहित शान्तचित्त हो गया। तब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी वानर में श्रेष्ठ सुग्रीव से बोले ॥३६–३९॥

हे सुग्रीव! मेरी आज्ञा से तुम अपने भाई के ज्येष्ठ पुत्र अङ्गद के द्वारा शास्त्रोक्त और्ध्वदैहिक कर्म को पूर्ण करो ॥४०॥ जैसी आज्ञा, यह कह कर सुग्रीव ने मुख्य-मुख्य बलवान् वानरों को साथ में लेकर बाली के शव को पुष्प के विमान पर रखकर राजोचित उपचारों से भेरी, दुन्दुभि आदि का घोष पूर्वक, ब्राह्मण, मन्त्री, युथपति वानरगण, नगरवासी, तारा और अङ्गद के साथ जाकर प्रयत्न पूर्वक शास्त्रोक्त सब संस्कारों को सम्पन्न कराया और स्नानादि के बाद मन्त्रियों सहित राम के पास लौट आया ॥४१–४३॥ वहाँ आकर सुग्रीव ने प्रसन्नमन से श्रीरामचन्द्रजी के चरणारविन्द में प्रणाम कर बोला—हे राजेन्द्र! वानरों के इस समृद्धिशाली राज्य का आप शासन करें ॥४४॥ मैं तो आपके चरणारविन्द का दास हूँ। लक्ष्मण के समान ही मैं भी सदा आपके चरणारविन्द की सेवा करूँगा। यह सुनकर श्रीरघुनाथजी मुस्कुराते हुए सुग्रीव से बोले—सुग्रीव! जो मैं हूँ वही तुम हो, इसमें सन्देश नहीं है। शीघ्र ही मेरी आज्ञा से तुम जाओ और किष्किन्धा के राज्यपद पर अपना अभिषेक कराओ ॥४५–४६॥ हे सखे! मैं चौदह वर्ष तक किसी भी नगर में प्रवेश नहीं कर सकता। अत-एव तुम्हें राज्याभिषेक करते समय अनुज लक्ष्मण नगर में जायेंगे ॥४७॥

अङ्गद को आदर पूर्वक युवराज पद पर अभिषेक करना। वर्षा के दिनों में भाई लक्ष्मण के साथ यहाँ पर्वत के शिखर पर रहूँगा, तुम कुछ समय नगर में रहकर पुनः सीताजी की खोज के लिये प्रयत्न

साष्टाङ्गं प्रणिपत्याह सुग्रीवो रामपादयोः। यदाज्ञापयसे देव तत्तथैव करोम्यहम् ॥५०॥
अनुज्ञातस्तु रामेण सुग्रीवस्तु सलक्ष्मणः। गत्वा पुरं तथा चक्रे यथा रामेण चोदितः ।५१।
सुग्रीवेण यथान्यायं पूजितो लक्ष्मणस्तदा। आगत्य राघवं शीघ्रं प्रणिपत्योपतस्थिवान् ।५२।
ततो रामो जगामाशु लक्ष्मणेन समन्वितः। प्रवर्षणगिरेरूर्ध्वं शिखरं भूरि विस्तरम् ॥५३॥
तत्रैकं गह्वरं दृष्ट्वा स्फटिकं दीप्तिमच्छुभम्।
वर्षवातातपसहं फलमूलसमीपगम्। वासाय रोचयामास तत्र रामः सलक्ष्मणः ॥५४॥
दिव्यमूलफलपुष्पसंयुते मौक्तिकोपमजलौघपल्वले।
चित्रवर्णमृगपक्षिशोभिते पर्वते रघुकुलोत्तमोऽवसत् ॥५५॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥३॥

करना ॥ ४८-४९ ॥ तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम कर सुग्रीव बोला—भगवन्! आपकी जैसी आज्ञा वह मैं करूँगा ॥५०॥ पुनः भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से सुग्रीव ने लक्ष्मणजी को साथ लेकर किष्किन्धापुरी में जाकर श्रीरामचन्द्र जी के कथनानुसार सब कार्य सम्पन्न कराया ॥५१॥ तब सुग्रीव से यथोचित सम्मानित हो लक्ष्मणजी श्रीरघुनाथजी के पास चले आये और उनके चरण में प्रणामकर उनकी सेवा में तत्पर हो गये ॥५२॥

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी तत्क्षण लक्ष्मण के साथ प्रवर्षण पर्वत के ऊपर अतिविस्तीर्ण शिखर पर गये ॥५३॥ वे वहाँ पर स्फटिकमणि की एक स्वच्छ और प्रकाशमान गुफा देखे। वह वर्षा, वायु और धूप से रक्षा योग्य था तथा समीप में ही कन्द-मूल और फल लगे हुए थे। उसे देखकर श्रीराम और लक्ष्मण वहाँ रहना अनुकूल समझे ॥५४॥ तत्पश्चात् रघुकूल तिलक श्रीरामचन्द्रजी दिव्य मूल-फल और फूलों से सम्पन्न मोती के समान स्वच्छ जलवाले जलाशयों से युक्त विचित्र मृग-पक्षिगण सेवित उस प्रवर्षण पर्वत पर रहने लगे ॥५५॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
तृतीयसर्गः परिपूर्णः ॥ ३ ॥

—※—

चतुर्थ सर्ग

भगवान् राम का लक्ष्मण जी से क्रिया योग का वर्णन।

श्रीमहादेव उवाच

तत्र वार्षिकदिनानि राघवो लीलया मणिगुहासु सञ्चरन्।
पक्वमूलफलभोगतोषितो लक्ष्मणेन सहितोऽवसत्सुखम्॥ १॥
वातनुन्नजलपूरितमेघानन्तरस्तनितवैद्युतगर्भान्।
वीक्ष्य विस्मयमगाद्गजयूथान्यद्वदाहितसुकाञ्चनकक्षान्॥ २॥

नवघासं समास्वाद्य हृष्टपुष्टमृगद्विजाः। धावन्तः परितो रामं वीक्ष्य विस्फारितेक्षणा।३।
न चलन्ति सदा ध्याननिष्ठा इव मुनीश्वराः। रामं मानुषरूपेण गिरिकाननभूमिषु॥ ४॥
चरन्तं परमात्मानं ज्ञात्वा सिद्धगणा भुवि। मृगपक्षिगणा भूत्वा राममेवानुसेविरे॥ ५॥
सौमित्रिरेकदा राममेकान्ते ध्यानतत्परम्। समाधिविरमे भक्त्या प्राणयाद्विनयान्वितः॥६॥
अब्रवीदेव ते वाक्यात्पूर्वोक्ताद्विगतो मम। अनाद्यविद्यासम्भूतः संशयो हृदि संस्थितः॥७॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्रियामार्गेण राघव। भवदाराधनं लोके यथा कुर्वन्ति योगिनः॥८॥
इदमेव सदा प्राहुर्योगिनो मुक्तिसाधनम्। नारदोऽपि तथा व्यासो ब्रह्मा कमलसम्भवः॥९॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती! उस स्थान पर लक्ष्मण के साथ श्रीरामचन्द्रजी लीला से मणिमय गुफाओं में विचरण करते हुए, पके हुए फल-मूल के भोजन से निर्वाह करते हुए। वर्षा के दिनों में आनन्दपूर्वक निवास किये॥१॥ वायु से प्रेरित जल से पूरित मेघों को देखकर जो अपने अन्दर कौंधती हुई बिजली के कारण स्वर्णमय झूलों से युक्त हाथियों के झुण्ड के समान प्रतीत होते थे, उन्हें अति विस्मय होता था॥२॥ नवीनतृण के खाने से हृष्ट-पुष्ट तन्दरुस्त पक्षीगण इधर-उधर दौड़ते हुए जब कभी श्रीरामचन्द्रजी को देखते थे तो श्रीरामचन्द्रजी की ओर निर्निमिष श्रीरामचन्द्रजी की ओर देखते रह जाते थे, और ध्याननिष्ट मुनिश्वरों के समान जहाँ के तहाँ खड़े रह जाते थे। इस समय परमात्मा राम को गिरि, कानन, और भूमि पर मनुष्य रूप से विचरण करते हुए जानकर अनेक सिद्धगण पृथ्वी पर मृग और पक्षी का रूप धारण कर हमेशा उन्हीं की सेवा में रहने लगे॥३–५॥

एक समय सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजी एकान्त में ध्यान करते हुए भगवान् श्रीराम से उनकी समाधि खुलने पर अति-प्रेम और भक्ति से नम्रतापूर्वक बोले—भगवन्! आप मुझे पहले जो उपदेश दिये थे, उस उपदेश के द्वारा मेरे हृदय में स्थित अनादि-अविद्याजन्यसंसय दूर हो गया॥६–७॥ परन्तु हे राघव! योगी लोग जिस प्रकार क्रिया मार्ग से संसार में आपकी आराधना करते हैं। इस समय मैं उसे सुनना चाहता हूँ॥८॥ योगी लोग, देवर्षि नारद जी, महर्षिवेदव्यास, कमलयोनि श्रीब्रह्माजीभी मुक्ति साधन का

ब्रह्मक्षत्रादिवर्णानामाश्रमाणां च मोक्षदम् । स्त्रीशूद्राणां च राजेन्द्र सुलभं मुक्तिसाधनम् ॥
तव भक्ताय मे भ्रात्रे ब्रूहि लोकोपकारकम् ॥१०॥

श्रीराम उवाच

मम पूजाविधानस्य नान्तोऽस्ति रघुनन्दन । तथापि वक्ष्ये संक्षेपाद्यथावदनुपूर्वशः ॥११॥
स्वगृह्योक्तप्रकारेण द्विजत्वं प्राप्य मानवः । सकाशात्सद्गुरोर्मन्त्रं लब्ध्वा मद्भक्तिसंयुतः १२॥
तेन सन्दर्शितविधिर्मामेवाराधयेत्सुधीः । हृदये वाऽनले वार्चेत्प्रतिमादौ विभावसौ ॥१३॥
शालग्रामशिलायां वा पूजयेन्मामतन्द्रितः । प्रातः स्नानं प्रकुर्वीत प्रथमं देहशुद्धये ॥१४॥
वेदतन्त्रोदितैर्मन्त्रैर्मृल्लेपनविधानतः । सन्ध्यादि कर्म यन्नित्यं तत्कुर्याद्विधिना बुधः १५॥
संकल्पमादौ कुर्वीत सिद्ध्यर्थं कर्मणा सुधीः । स्वगुरुं पूजयेद्भक्त्या मद्बुद्ध्या पूजको मम १६॥
शिलायां स्नपनं कुर्यात्प्रतिमासु प्रमार्जनम् । प्रसिद्धैर्गन्धपुष्पाद्यैर्मत्पूजा सिद्धिदायिका ॥१७॥
अमायिकोऽनुवृत्त्या मां पूजयेन्नियतव्रतः । प्रतिमादिष्वलङ्कारः प्रियो मे कुलनन्दन ॥१८॥
अग्नौ यजेत् हविषा भास्करे स्थण्डिले यजेत् । भक्तेनोपहृतं प्रीत्यै श्रद्धया मम वार्यपि ॥१९॥

मार्ग इसी को प्रतिपादित किये हैं ॥९॥ हे राजेन्द्र ! ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों तथा ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों को मोक्ष देने वाला स्त्री तथा शूद्रों को भी मुक्ति का भी सुलभ साधन यही है। हे प्रभु ! मैं आपका भक्त और अनुज हूँ। अतएव लोकोपकारी इस साधन का वर्णन मुझसे कीजिये ॥१०॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे रघुनन्दन! मेरी पूजा विधि का अन्त नहीं है, तथापि संक्षेप में यथाक्रम मैं इसका वर्णन करता हूँ ॥ ११ ॥

मेरी भक्ति से सम्पन्न मनुष्य अपनी शाखा गृह सूत्र द्वारा निर्दिष्ट विधि से द्विजत्व प्राप्तकर भक्तिपूर्वक सद्गुरु के पास जाकर मंत्र ग्रहण करे ॥१२॥ पुनः बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि उनकी बताई हुई विधि से अपने हृदय में, अग्नि में, प्रतिमा आदि में अथवा भगवान् सूर्य में मेरी ही अराधना करे, अथवा अतन्द्रित हो शालग्राम शिला में मेरी पूजा करे। बुद्धिमान् उपासक सर्वप्रथम शरीर की शुद्धि के लिये प्रातःकाल ही वैदिक अथवा तांत्रिक मंत्रों से शरीर में विधिवत् मृत्तिका आदि लगाकर स्नान करें और पुनः नियमानुसार संध्या आदि नित्यकर्म करें ॥१३–१५॥

मेरी पूजा करने वाला बुद्धिमान् पुरुष कार्यों की सिद्धि के लिये सर्वप्रथम संकल्प करे और मेरी ही बुद्धि से अपने गुरुदेव की पूजा करे ॥१६॥ शिलारूप मेरी मूर्त्ति हो तो उसे स्नान करवाये तथा च मेरी मूर्त्ति की प्रतिमा हो तो मार्जन करे। पुनः प्रसिद्ध गन्ध-पुष्प आदि से मेरी पूजा करे यह शीघ्र ही सिद्धि देने वाली होती है ॥१७॥ सब प्रकार से छलछिद्र का त्याग कर गुरु द्वारा निर्दिष्ट विधि से मेरी पूजा करनी चाहिये। हे कुलनन्दन! प्रतिमा आदि का शृङ्गार करना मेरा प्रिय है ॥१८॥ अग्नि में हवन से मेरी पूजा कर वेदी पर सूर्य की आकृति बनाकर सूर्यमण्डल में मेरी पूजा करे। भक्त के द्वारा श्रद्धा से निवेदन किया हुआ जल भी मेरी प्रसन्नता का कारण होता है ॥१९॥

किं पुनर्भक्ष्यभोज्यादि गन्धपुष्पाक्षतादिकम् । पूजाद्रव्याणि सर्वाणि सम्पाद्यैवं समारभेत् ॥२०॥
चैलाजिनकुशैः सम्यगासनं परिकल्पयेत् । तत्रोपविश्य देवस्य सम्मुखे शुद्धमानसः ॥२१॥
ततो न्यासं प्रकुर्वीत मातृकाबहिरान्तरम् । केशवादि ततः कुर्यात्तत्त्वन्यासं ततः परम् ॥२२॥
मन्मूर्तिपञ्जरन्यासं मन्त्रन्यासं ततो न्यसेत् । प्रतिमादावपि तथा कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ॥२३॥
कलशं स्वपुरो वामे क्षिपेत्पुष्पादिदक्षिणे । अर्घ्यपाद्यप्रदानार्थं मधुपर्कार्थमेव च ॥२४॥
तथैवाचमनार्थं तु न्यसेत्पात्रचतुष्टयम् । हृत्पद्मे भानुविमले मत्कलां जीवसंज्ञिताम् ॥२५॥
ध्यायेत्स्वदेहमखिलं तया व्याप्तमरिन्दम् । तामेवावाहयेन्नित्यं प्रतिमादिषु मत्कलाम् ॥२६॥
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवस्त्रविभूषणैः । यावच्छक्योपचारैर्वा त्वर्चयेन्माममायया ॥२७॥
विभवे सति कर्पूरकुङ्कुमागुरुचन्दनैः । अर्चयेन्मन्त्रवन्नित्यं सुगन्धकुसुमैः शुभैः ॥२८॥
दशावरणपूजां वै ह्यागमोक्तां प्रकारयेत् । नीराजनैर्धूपदीपैर्नैवेद्यैर्बहुविस्तरैः ॥२९॥
श्रद्धयोपहरेन्नित्यं श्रद्धाभुगहमीश्वरः । होमं कुर्यात्प्रयत्नेन विधिना मन्त्रकोविदः ॥३०॥
अगस्त्येनोक्तमार्गेण कुण्डेनागमवित्तमः । जुहुयान्मूलमन्त्रेण पुंसूक्तेनाथवा बुधः ॥३१॥

पुनः भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थ, गन्ध, पुष्प, अक्षत, आदि पूजन सामग्री आदि की बात ही क्या है ? सम्पूर्ण पूजन सामग्री को एकत्रित कर मेरी पूजा करे ॥२०॥ (पूजा विधि निम्नाङ्कित है) कुश, मृगचर्म, वस्त्र आदि का आसन बनाकर उस पर शुद्ध हृदय से इष्टदेव के सामने बैठ जाये ॥२१॥ तब बहिर्मात्रिका न्यास, अन्तर मातृका न्यास, केशव, नारायण आदि चतुर्विंशति नामों का न्यास कर तत्त्व न्यास करे। तत्पश्चात् विष्णुपञ्जरोक्त मेरी मूर्ति में पञ्जरन्यास तथा मन्त्र न्यास करे। आलस्य रहित होकर इसी विधि से मेरी प्रतिमा में भी न्यास करे ॥२२–२३॥ तथा च अपने सामने बायीं तरफ कलश तथा दायीं तरफ पुष्प आदि सामाग्री रखे। इसी प्रकार अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क तथा आचमन के लिये चार पात्र रखे। सूर्य के समान तेजस्वी हृदय कमल में जीव संज्ञक मेरी कला का ध्यान करे। हे अरिन्दम ! अपने सम्पूर्ण शरीर को उससे व्याप्त हुआ समझे तथा प्रतिमा आदि में भी पूजा करते समय मेरी जीव कला का नित्य आवहन करे ॥ २४–२६ ॥ पाद्य, अर्घ्य, आचमन स्नान, वस्त्र, आभूषण, आदि सामग्रियों से अथवा यथोपलब्ध सामग्रियों से मेरी पूजा करे ॥२७॥

यदि अपने पास शक्ति हो तो प्रतिदिन कर्पूर, कुमकुम, अगरु, चन्दन और सुगन्धित उत्तम पुष्पों से मन्त्रों के द्वारा मेरी पूजा करे ॥२८॥ तथाच नीराजन् (पाँच बत्तियों की आरती), धूप, दीप और विविध प्रकार के नैवेद्यों से वैदिक दशावरण पूजाविधि से मेरी पूजा करे। श्रद्धा के साथ नित्यप्रति सम्पूर्ण पदार्थ समर्पित करे। मैं परमात्मा श्रद्धा का ही भूखा हूँ। मन्त्रज्ञ पूजा के अनन्तर विधिपूर्वक हवन करे ॥ ३० ॥ शास्त्रज्ञ बुद्धिमान् पुरुष अगस्त ऋषि के द्वारा निर्दिष्ट विधि से कुण्ड बनाकर मूलमन्त्र अथवा पुरुषसूक्त से उसमें हवन करे ॥३१॥

अथवौपासनाग्नौ वा चरुणा हविषा तथा । तप्तजाम्बूनदप्रख्यं दिव्याभरणभूषितम् ॥३२॥
ध्यायेदनलमध्यस्थं होमकाले सदा बुधः । पार्षदेभ्यो बलिं दत्त्वा होमशेषं समापयेत् ॥३३॥
ततो जपं प्रकुर्वीत ध्यायेन्मां यतवाक् स्मरन् । मुखवासं च ताम्बूलं दत्त्वा प्रीतिसमन्वितः ॥३४॥
मदर्थे नृत्यगीतादि स्तुतिपाठादि कारयेत् । प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ हृदये मां निधाय च ॥३५॥
शिरस्याधाय मद्दत्तं प्रसादं भावनामयम् । पाणिभ्यां मत्पदे मूर्ध्नि गृहीत्वा भक्तिसंयुतः ॥३६॥
रक्ष मां घोरसंसारादित्युक्त्वा प्रणमेत्सुधीः । उद्वासयेद्यथापूर्वं प्रत्यग्ज्योतिषि संस्मरन् ॥३७॥
एवमुक्तप्रकारेण पूजयेद्विधिवद्यदि । इहामुत्र च संसिद्धिं प्राप्नोति मदनुग्रहात् ॥३८॥
मद्भक्तो यदि मामेवं पूजां चैव दिने दिने । करोति मम सारूप्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥३९॥
इदं रहस्यं परमं च पावनं मयैव साक्षात्कथितं सनातनम् ।
पठत्यजस्रं यदि वा शृणोति यः स सर्वपूजाफलभाङ् न संशयः ॥४०॥
एवं परात्मा श्रीरामः क्रियायोगमनुत्तमम् । पृष्टः प्राह स्वभक्ताय शेषांशाय महात्मने ॥४१॥
पुनः प्राकृतवद्रामो मायामालम्ब्य दुःखितः । हा सीतेति वदन्नैव निद्रां लेभे कथञ्चन ॥४२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र किष्किन्धायां सुबुद्धिमान् । हनूमान्प्राह सुग्रीवमेकान्ते कपिनायकम् ॥४३॥
शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तवैव हितमुत्तमम् । रामेण ते कृतः पूर्वमुपकारो ह्यनुत्तमः ॥४४॥

अथवा अग्निहोत्र की अग्नि में चरु तथा हविष हवन करे, हवन करते समय बुद्धिमान् होम की अग्नि में तपाये हुए स्वर्ण की आभा वाले, दिव्याभरण भूषित अग्नि के मध्य में परमात्मा का ध्यान करे। पुनः मेरे पार्षदों को बलि देकर शेष आहुति दे ॥३२–३३॥ तब मौन होकर मेरा ध्यान और स्मरण करता हुआ जप करे। पुनः प्रीति पूर्वक मुखवास और ताम्बूल देकर मेरे लिये नृत्य, गीत, स्तुति पाठ आदि कराये और हृदय में मेरा ध्यान कर भूमिपर दण्डवत् साष्टाङ्ग करे ॥३४–३५॥ मेरे दिये हुए भावनामय प्रसाद को शिर पर रखकर भक्तिपूर्वक मेरे चरणों को अपने हाथों से अपने मस्तक पर रखकर इस घोर संसार से मेरी रक्षा करें, यह कहकर मुझे प्रणाम करे। तब बुद्धिमान् उपासक प्रतिमा में आवाहित जीवकला मुझमें प्रवेश कर गई है, यह भावना करता हुआ विसर्जन करे ॥३६–३७॥ जो इस प्रकार उक्त विधि से मेरी पूजा करे तो मेरी कृपा से इस लोक और परलोक दोनों जगह सिद्धि प्राप्त करता है ॥३८॥

मेरा भक्त नित्य प्रति यदि इस प्रकार मेरी पूजा करता है तो निःसंदेह मेरा सारूप्य प्राप्त करता है ॥३९॥ यह गोपनीय पूजा विधि परम पवित्र और सनातन है, जिसे स्वयं मैं अपने मुख से कहा हूँ। जो प्राणी निरन्तर इसे पढ़ता अथवा सुनता है, निःसंदेह वह सम्पूर्ण पूजा का फल प्राप्त करता है ॥४०॥ इस प्रकार परमात्मा श्रीराम अनन्य-भक्त शेषावतार महात्मा लक्ष्मणजी के पूछने पर इस अतिउत्तम क्रिया योग का उन्हें उपदेश दिये ॥४१॥ पुनः श्रीरामचन्द्रजी अपनी माया का अवलम्बन कर साधारण मनुष्य की भाँति दुःखित हो हा सीते! हा सीते! यह कहते हुए सारी रात व्यतीत किये। किसी भी प्रकार उन्हें निद्रा नहीं आई ॥४२॥

इसी समय किष्किन्धापुरी में बुद्धिमान् हनुमानजी वानरराज सुग्रीव से बोले—हे राजन्! सुनिये,

कृतघ्नवत्त्वया नूनं विस्मृतः प्रतिभाति मे । त्वत्कृते निहतो वाली वीरस्त्रैलोक्यसम्मतः ॥४५॥
राज्ये प्रतिष्ठितोऽसि त्वं तारां प्राप्तोऽसि दुर्लभाम् । स रामः पर्वतस्याग्रे भ्रात्रा सह वसन्सुधीः ४६।
त्वदागमनमेकाग्रमीक्षते कार्यगौरवात् । त्वं तु वानरभावेन स्त्रीसक्तो नावबुद्ध्यसे ॥४७॥
करोमीति प्रतिज्ञाय सीतायाः परिमार्गणम् । न करोषि कृतघ्नस्त्वं हन्यसे वालिवद् द्रुतम् ॥४८॥
हनूमद्वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो भयविह्वलः । प्रत्युवाच हनूमन्तं सत्यमेव त्वयोदितम् ॥४९॥
शीघ्रं कुरु ममाज्ञां त्वं वानराणां तरस्विनाम् । सहस्राणि दशेदानीं प्रेषयाशु दिशो दश ॥५०॥
सप्तद्वीपगतान्सर्वान्वानरानानयन्तु ते । पक्षमध्ये समायान्तु सर्वे वानरपुङ्गवाः ॥५१॥
ये पक्षमतिवर्तन्ते ते वध्या मे न संशयः । इत्याज्ञाप्य हनूमन्तं सुग्रीवो गृहमाविशत् ॥५२॥
सुग्रीवाज्ञां पुरस्कृत्य हनूमान्मन्त्रिसत्तमः । तत्क्षणे प्रेषयामास हरीन्दश दिशः सुधीः ॥५३॥

अगणितगुणसत्त्वान्वायुवेगप्रचारान्वनचरगणमुख्यान् पर्वताकाररूपान् ।
पवनहितकुमारः प्रेषयामास दूतानतिरभसतरात्मा दानमानादितृप्तान् ॥५४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

मैं आपके अत्यन्त हित की बात करता हूँ। श्रीरामचन्द्रजी पहले आपका बड़ा उपकार किये हैं ॥४३-४४॥ परन्तु मुझे प्रतीत होता है कि कृतघ्न के समान आप उसे भूल गये हैं। आपके लिये ही जो त्रैलोक्यमान्य वीरवर वाली को मारे, आपको राज्यपद पर प्रतिष्ठित किये तथा आपको दुर्लभ तारा प्राप्त हुई; वे बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई के साथ पर्वत शिखर पर निवास करते हुए अपने भारी कार्य के लिये एकाग्रचित्त हो आपके आने की राह देख रहे हैं। परन्तु आप वानर स्वभाव से स्त्री में आसक्त हो कुछ नहीं जानते ॥४५-४७। मैं सीता की खोज करूँगा, यह प्रतीज्ञा करके भी आप अब तक कुछ नहीं किये। आप बड़े कृतघ्न हैं और वाली के समान शीघ्र ही मारे जयेंगे ॥४८॥

हनुमानजी का यह कथन सुनकर सुग्रीव भय से विह्वल हो हनुमान जी से बोले—हनुमान्। तुम ठीक ही कहते हो ॥४९॥ तुम शीघ्र ही मेरी आज्ञा से शीघ्रगामी दशहजार वानरों को दशो दिशाओं में भेजो ॥५०॥ वे सब सातों द्वीपों में रहने वाले सभी वानरों को यहाँ ले आवें और जितने प्रमुख वानर हैं वे सब यहाँ एक पक्ष के भीतर आ जायँ ॥५१॥ जो एक पक्ष के अन्दर नहीं आयेंगे, वे मेरे हाथों मारे जायेंगे। इस प्रकार हनुमानजी को आज्ञा देकर सुग्रीव पुनः अपने घर चले गये ॥५२॥ सुग्रीव की आज्ञा से बुद्धिवान् मन्त्रिवर श्रीहनुमान्जी तत्क्षण दशो दिशाओं में बहुत से वानर भेज दिये ॥ ५३ ॥ अगणितगुणसम्पन्न पराक्रमशाली वायु के समानगति वाले और पर्वत के समान आकृति वाले मुख्य-मुख्य वानर दूतों को श्रीरामचन्द्रजी के कार्यके लिये उतावले पवननन्दन श्रीहनुमान्जी दान-मान से संतुष्ट कर सभी दिशाओं में भेज दिये ॥५४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे किष्किन्धाकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया
सहितः चतुर्थसर्गः परिपूर्णः ॥ ४ ॥

पञ्चम सर्ग

भगवान् राम का शोक और लक्ष्मणजी का किष्किन्धापुरी में जाना

श्रीमहादेव उवाच

रामस्तु पर्वतस्याग्रे मणिसानौ निशामुखे । सीताविरहजं शोकमसहन्निदमब्रवीत् ॥१॥
पश्य लक्ष्मण मे सीता राक्षसेन हृता बलात् । मृताऽमृता वा निश्चेतुं न जानेऽद्यापि भामिनीम् २।
जीवतीति मम ब्रूयात्कश्चिद्वा प्रियकृत्स मे । यदि जानामि तां साध्वीं जीवन्तीं यत्र कुत्र वा ।३॥
हठादेवाहरिष्यामि सुधामिव पयोनिधेः । प्रतिज्ञां शृणु मे भ्रातर्येन मे जनकात्मजा ॥४॥
नीता तं भस्मसात्कुर्यां सपुत्रबलवाहनम् । हे सीते चन्द्रवदने वसन्ती राक्षसालये ॥५॥
दुःखार्ता मामपश्यन्ती कथं प्राणान् धरिष्यसि । चन्द्रोऽपि भानुवद्भाति मम चन्द्राननां विना ।६॥
चन्द्र त्वं जानकीं स्पृष्ट्वा करैर्मां स्पृश शीतलैः। सुग्रीवोऽपि दयाहीनो दुःखितं मां न पश्यति ॥७॥
राज्यं निष्कण्टकं प्राप्य स्त्रीभिः परिवृतो रहः। कृतघ्नो दृश्यते व्यक्तं पानासक्तोऽतिकामुकः ॥८॥
नायाति शरदं पश्यन्न मे मार्गयितुं प्रियाम् । पूर्वोपकारिणं दुष्टः कृतघ्नो विस्मृतो हि माम् ।९॥
हन्मि सुग्रीवमप्येवं सपुरं सहबान्धवम् । वाली यथा हतो मेऽद्य सुग्रीवोऽपि तथा भवेत् १०

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! एकदिन प्रदोष-काल में मणिमय पर्वत के शिखर पर बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी सीता के विरह जनित शोक को सहन न करने से इस प्रकार बोले—हे लक्ष्मण ! देखो, मेरी सीता को बलपूर्वक राक्षस हरण कर ले गया; वह भामिनी अभी तक जीवित है या नहीं ; यह निश्चय करने के लिये आज तक हमें कुछ भी पता नहीं चला ॥१–२॥ वह जीवित है यह समाचार मुझसे जो सुनाए वह मेरा अति उपकार करने वाला है । उस साध्वी को जहाँ कहीं भी जीवित रहना जान जाऊँ तो वह कहीं भी क्यों न हो अवश्य ही समुद्र से अमृत के समान उसे शीघ्र लाऊँगा । हे भाई ! मेरी प्रतिज्ञा सुनो—जो मेरी जनकात्मजा को ले गया है, उसे मैं पुत्र, सेना और वाहनों सहित भस्म कर दूँगा । हे चन्द्रवदने सीते ! मुझे नहीं देखती हुई राक्षसों के घर में रहती हुई तुम किस प्रकार अपना प्राण धारण करोगी ? हाय ! चन्द्रमुखी सीता के विना चन्द्रमा भी सूर्य के समान प्रतीत होता है ॥३–६॥

हे चन्द्र ! तुम जानकी कोअपनी किरणों से स्पर्श करो, पुनः उन शीतल किरणों से मुझे स्पर्श करो । सुग्रीव भी निर्दयी होकर मुझ दुःखिया को नहीं देखता ॥७॥ अहो ! निष्कण्टक राज्य प्राप्तकर मद्यपान में आसक्त अत्यन्त कामुक वह स्त्रियों से घिरा हुआ एकान्त में पड़ा रहता है । वह अत्यन्त कृतघ्न प्रतीत हो रहा है ॥ ८ ॥ शरदृतु देखकर भी वह मेरी प्रिया की खोज कराने हेतु नहीं आता है । मैं पूर्वसमय में उसका उपकार किया था, किन्तु वह दुष्ट कृतघ्न हो मुझे भूल गया ॥९॥ सुग्रीव को भी मैं उसी प्रकार उसके नगर, बन्धु-बान्धव आदि के सहित मार दूँगा, जिस प्रकार वाली मेरे हाथों से मारा गया, उसी प्रकार आज सुग्रीव भी मारा जायगा ॥१०॥

इति रुष्टं समालोक्य राघवं लक्ष्मणोऽब्रवीत् । इदानीमेव गत्वाहं सुग्रीवं दुष्टमानसम् ॥११॥
मामाज्ञापय हत्वा तमायास्ये राम तेऽन्तिकम् । इत्युक्त्वा धनुरादाय स्वयं तूणीरमेव च ॥१२॥
गन्तुमभ्युद्यतं वीक्ष्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । न हन्तव्यस्त्वया वत्स सुग्रीवो मे प्रियः सखा १३
किन्तु भीषय सुग्रीवं वालिवत्त्वं हनिष्यसे । इत्युक्त्वा शीघ्रमादाय सुग्रीवप्रतिभाषितम् ॥१४॥
आगत्य पश्चाद्यत्कार्यं तत्करिष्याम्यसंशयम् । तथेति लक्ष्मणोऽगच्छत्त्वरितो भीमविक्रमः ॥१५॥
किष्किन्धां प्रति कोपेन निर्दहन्निव वानरान् । सर्वज्ञो नित्यलक्ष्मीको विज्ञानात्मापि राघवः १६॥
सीतामनुशुशोचार्त्तः प्राकृतः प्राकृतामिव । बुद्ध्यादिसाक्षिणस्तस्य मायाकार्यातिवर्तिनः ।१७॥
रागादिरहितस्यास्य तत्कार्यं कथमुद्भवेत् । ब्रह्मणोक्तमृतं कर्तुं राज्ञो दशरथस्य हि ॥१८॥
तपसः फलदानाय जातो मानुषवेषधृक् । मायया मोहिताः सर्वे जना अज्ञानसंयुताः ॥१९॥
कथमेषां भवेन्मोक्ष इति विष्णुर्विचिन्तयन् । कथां प्रथयितुं लोके सर्वलोकमलापहाम् ॥२०॥
रामायणाभिधां रामो भूत्वा मानुषचेष्टकः । क्रोधं मोहं च कामं च व्यवहारार्थसिद्धये ॥२१॥
तत्तत्कालोचितं गृह्णन् मोहयत्यवशाः प्रजाः । अनुरक्त इवाशेषगुणेषु गुणवर्जितः ॥२२॥

श्रीरघुनाथजी को इस प्रकार रुष्ट देखकर लक्ष्मणजी बोले—हे राम ! आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं अभी जाकर दुष्टचित्त सुग्रीव को मारकर आपके पास लौट आता हूँ । यह कह कर हाथ में धनुष तरकस लिये स्वयं जाने को तद्यत लक्ष्मणजी को देखकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—"वत्स ! सुग्रीव मेरा प्रिय सुहृद् है, तुम उसे मत मारना ॥११–१३॥ किन्तु सुग्रीव को डराना कि तू भी वाली के समान मारा जायगा । पुनः शीघ्र उत्तर लेकर आना । तब जो कुछ करना होगा मैं अवश्य ही वह करूँगा । (तथा इति) यह कहकर महापराक्रमी लक्ष्मणजी शीघ्र ही किष्किन्धापुरी में आये । वे क्रोध से प्रतीत हो रहे थे कि सभी वानरों को भस्म कर देंगे । श्रीरघुनाथजी सर्वज्ञ और ज्ञानस्वरूप हैं । श्रीलक्ष्मीजी नित्य उनकी सेवा करती हैं । सीता के शोक से इस प्रकार विह्वल हो रहे हैं जिस प्रकार साधारण पुरुष अपनी स्त्री के वियोग से दुःख करता है । वे प्रभु बुद्धि आदि के साक्षी, माया के कार्यों से परे और राग-द्वेष आदि विकारों से रहित हैं, पुनः इन विकारों का कार्य रूप शोक उन्हें किस प्रकार हो सकता है ? वे ब्रह्माजी की वाणी सत्य करने के लिये ही महाराज दशरथ को उनकी तपस्या का फल देने के लिये ही मनुष्य रूप से अवतार लिये है । सब लोग माया से मोहित होकर अज्ञान के वशीभूत हो गये हैं, उससे किस प्रकार उनकी निवृत्ति हो यह सोचकर भगवान् विष्णु अपनी सकल लोक-मलापहारिणी रामायण की कथा लोक में विस्तार करने के लिये राम के रूप में अवतार लेकर मनुष्य के समान अनेक लीलाएँ कहते हुए व्यवहार की सिद्धि के लिये समय के अनुसार क्रोध, मोह और काम आदि विकारों को स्वीकार कर विकारों के वशवर्ति अपनी प्रजा को अपनी लीला से विमोहित कर रहे हैं, परन्तु सम्पूर्ण गुणों से अनुरक्त जैसे वे दिखलायी पड़ते हुए भी वस्तुतः सबसे रहित हैं ॥१४–२२॥

विज्ञानमूर्तिर्विज्ञानशक्तिः साक्ष्यगुणान्वितः । अतः कामादिभिर्नित्यमविलिप्तो यथा नभः ॥२३॥
विन्दन्ति मुनयः केचिज्ञानन्ति जनकादयः । तद्भक्ता निर्मलात्मानः सम्यग् जानन्ति नित्यदा ॥
भक्तचित्तानुसारेण जायते भगवानजः ॥२४॥
लक्ष्मणोऽपि तदा गत्वा किष्किन्धानगरान्तिकम् । ज्याघोषमकरोत्तीव्रं भीषयन् सर्ववानरान् ॥
तं दृष्ट्वा प्राकृतास्तत्र वानरा वप्रमूर्धनि । चक्रुः किलकिलाशब्दं धृतपाषाणपादपाः ॥२६॥
तान्दृष्ट्वा क्रोधताम्राक्षो वानरान् लक्ष्मणस्तदा । निर्मूलान्कर्तुमुद्युक्तो धनुरानम्य वीर्यवान् ॥२७॥
ततः शीघ्रं समाप्लुत्य ज्ञात्वा लक्ष्मणमागतम् ॥२८॥
निवार्य वानरान् सर्वानङ्गदो मन्त्रिसत्तमः । गत्वा लक्ष्मणसामीप्यं प्रणनाम स दण्डवत् ॥२९॥
ततोऽङ्गदं परिष्वज्य लक्ष्मणः प्रियवर्धनः । उवाच वत्स गच्छ त्वं पितृव्याय निवेदय ॥३०॥
मामागतं राघवेण चोदितं रौद्रमूर्तिना । तथेति त्वरितं गत्वा सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥३१॥
लक्ष्मणः क्रोधताम्राक्षः पुरद्वारि बहिः स्थितः । तच्छ्रुत्वातीव सन्त्रस्तः सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥३२॥
आहूय मन्त्रिणां श्रेष्ठं हनूमन्तमथाऽब्रवीत् । गच्छ त्वमङ्गदेनाशुलक्ष्मणं विनयान्वितः ॥३३॥
सान्त्वयन्कोपितं वीरं शनैरानय मन्दिरम् । प्रेषयित्वा हनूमन्तं तारामाह कपीश्वरः ॥३४॥

वे विज्ञान-स्वरूप, विज्ञान शक्ति सम्पन्न, साक्षी एवं गुणातीत हैं। अतएव आकाश के समान काम आदि से सर्वथा निर्लिप्त हैं ॥२३॥ इनके वास्तविक स्वरूप को कोई-कोई मुनि तथा जनक इत्यादि और निर्मल मन वाले भक्तगण नित्य भली भाँति जानते हैं। वे भगवान भक्त की भावना के अनुसार अवतार ग्रहण करते हैं ॥२४॥ लक्ष्मणजी भी किष्किधापुरी के समीप जाकर सभी वानरों को डराते हुए धनुष की प्रत्यञ्चा का भीषण टंकार किये ॥ २५ ॥ उसे देखकर कुछ साधारण बन्दर नगर के शिखर पर चढ़कर अपने हाथों में पत्थर और वृक्ष आदि लेकर किलकारी करने लगे। उन्हें देखकर वीरवर लक्ष्मणजी के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और धनुष को चढ़ाकर बन्दरों को निर्मूल करने के लिये उद्यत हुए ॥२६–२७॥ लक्ष्मणजी को आया हुआ जानकर मंत्रिवर अंगदजी शीघ्र ही कूदकर आगे आये और वे सभी वानरों को रोककर लक्ष्मणजी के पास गये और दण्डवत् प्रणाम किये ॥२८–२९॥

तब प्रियवर्धन लक्ष्मणजी अङ्गद को गले लगा कर बोले—वत्स ! तुम जाकर अपने पितृव्य सुग्रीव से कह दो कि श्रीरघुनाथजी तुमसे अत्यन्त क्रुद्ध हैं। मैं उनकी प्रेरणा से यहाँ आया हूँ। 'तथा इति' यह कहकर शीघ्र ही सारा वृतान्त अङ्गदजो सुग्रीव को सुनाये ॥३०–३१॥ वे बोले कि क्रोध से लाल नेत्र किये लक्ष्मणजी बाहर नगर के द्वार पर खड़े हैं। यह सुनकर वानरराज सुग्रीव को अत्यन्त भय हुआ ॥३२॥ वे मन्त्रिवर हनुमानजी को बुलाकर बोले—तुम अंगदजी के साथ शीघ्र ही लक्ष्मणजी के पास जाओ और क्रोधित उन वीरवर को विनय पूर्वक शान्त कर आदर सहित उन्हें यहाँ ले आओ। हनुमानजी को भेजकर

त्वं गच्छ सान्त्वयन्ती तं लक्ष्मणं मृदुभाषितैः। शान्तमन्तःपुरं नीत्वा पश्चाद्दर्शय मेऽनघे ॥३५॥
भवत्विति ततस्तारा मध्यकक्षं समाविशत्। हनूमानङ्गदेनैव सहितो लक्ष्मणान्तिकम् ॥३६॥
गत्वा ननाम शिरसा भक्त्या स्वागतमब्रवीत्। एहि वीर महाभाग भवद्गृहमशङ्कितम् ॥३७॥
प्रविश्य राजदारादीन् दृष्ट्वा सुग्रीवमेव च। यदाज्ञापयसे पश्चात्तत्सर्वं करवाणि भोः ॥३८॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं भक्त्या करे गृह्य स मारुतिः। आनयामास नगरमध्याद्राजगृहं प्रति ॥३९॥
पश्यंस्तत्र महासौधान् यूथपानां समन्ततः। जगाम भवनं राज्ञः सुरेन्द्रभवनोपमम् ॥४०॥
मध्यकक्षे गता तत्र तारा ताराधिपानना। सर्वाभरणसम्पन्ना मदरक्तान्तलोचना। ४१॥
उवाच लक्ष्मणं नत्वा स्मितपूर्वाभिभाषिणी। याहि देवर भद्रं ते साधुस्त्वं भक्तवत्सलः ॥४२॥
किमर्थं कोपमाकार्षीर्भक्ते भृत्ये कपीश्वरे। बहुकालमनाश्वासं दुःखमेवानुभूतवान् ॥४३॥
इदानीं बहुदुःखौघाद्भवद्भिरभिरक्षितः। भवत्प्रसादात्सुग्रीवः प्राप्तसौख्यो महामतिः।॥४४॥
कामासक्तो रघुपतेः सेवार्थं नागतो हरिः। आगमिष्यन्ति हरयो नानादेशगताः प्रभो ॥४५॥
प्रेषिता दशसाहस्रा हरयो रघुसत्तम। आनेतुं वानरान् दिग्भ्यो महापर्वतसन्निभान्।४६॥

कपिराज सुग्रीव तारा से बोले—॥३३-३४॥ हे अनघे! आगे जाकर तुम वीरवर लक्ष्मण को शान्त करो और उनके शान्त हो जाने पर अन्तःपुर में लाकर मुझसे मिलाओ ॥३५॥ ऐसा ही हो यह कहकर तारा बीच कक्ष में आई। अङ्गद के सहित हनुमानजी भी लक्ष्मण के पास आये और सिर झुकाकर भक्तिपूर्वक स्वागत करते हुए बोले—हे वीरवर महाभाग! यह आपका ही घर है निःसंकोच आप आइये। ३६-३७॥ अन्दर आकर राजमहिषी और महाराज सुग्रीव से मिलें, पुनः आपकी आज्ञा के अनुसार हम कार्य करेंगे ॥३८॥ यह कह पवननन्दन हनुमानजी भक्ति से लक्ष्मण जी का हाथ पकड़कर नगर के मध्य से होते हुए राजमन्दिर की ओर ले चले ॥३९॥

तत्पश्चात् लक्ष्मणजी रास्ते में जाते हुए यत्र-तत्र वानरों के यूथपतियों के महल देखते हुए राजभवन में पहुँचे जो इन्द्र के भवन के समान अतिशोभायमान था ॥ ४० ॥ वहाँ पर बीचकक्ष में ही चन्द्रमुखी तारा बैठी हुई थी, वह सम्पूर्ण अलङ्कारों से अलङ्कृत थी और मद के कारण उसके नेत्र कुछ रक्तवर्ण के हो रहे थे ॥ ४१ ॥ मधुरभाषिणी वह तारा लक्ष्मणजी को प्रणाम कर मुस्कुराती हुई बोली—देवर जी आइये, आपका कल्याण हो, आप साधुस्वभाव और भक्तवत्सल हैं ॥ ४२ ॥ अपने भक्त और अनुचर वानरराज सुग्रीव पर आप इतना कोप क्यों किये हैं; वह तो बहुत दिनों से किसी प्रकार के सहारे के विना दुःख ही दुःख भोगा है ॥ ४३ ॥

इस समय बहुत बड़े दुःख से आपलोग रक्षा किये हैं। आप लोगों की कृपा से ही महामति सुग्रीव को यह सुख प्राप्त हुआ है ॥ ४४॥ बन्दर स्वभाव से काम में आसक्त हो रघुनाथजी की सेवा में वे उपस्थित नहीं हुए। हे प्रभु! विविध देशों से बहुत वानर आने वाले हैं ॥४५॥ हे रघुसत्तम! विविध

सुग्रीवः स्वयमागत्य सर्ववानरयूथपैः । वधयिष्यति दैत्यौघान् रावणं च हनिष्यति ॥४७॥
त्वयैव सहितोऽद्यैव गन्ता वानरपुङ्गवः । पश्यान्तर्भवनं तत्र पुत्रदारसुहृद्वृतम् ॥४८॥
दृष्ट्वा सुग्रीवमभयं दत्त्वा नय सहैव ते । ताराया वचनं श्रुत्वा कृशक्रोधोऽथ लक्ष्मणः ॥४९॥
जगामान्तःपुरं यत्र सुग्रीवो वानरेश्वरः । रुमामालिङ्ग्य सुग्रीवः पर्यङ्के पर्यवस्थितः ॥५०॥
दृष्ट्वा लक्ष्मणमत्यर्थमुत्पपाताविभीतवत् । तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः क्रुद्धो मदविह्वलितेक्षणम् ॥५१॥
सुग्रीवं प्राह दुर्वृत्त विस्मृतोऽसि रघूत्तमम् । वाली येन हतो वीरः स बाणोऽद्य प्रतीक्षते ॥५२॥
त्वमेव वालिनो मार्गं गमिष्यसि मया हतः । एवमत्यन्तपरुषं वदन्तं लक्ष्मणं तदा ॥५३॥
उवाच हनुमान् वीरः कथमेवं प्रभाषसे । त्वत्तोऽधिकतरो रामे भक्तोऽयं वानराधिपः ॥५४॥
रामकार्यार्थमनिशं जागर्ति न तु विस्मृतः । आगताः परितः पश्य वानराः कोटिशः प्रभो ।५५॥
गमिष्यन्त्यचिरेणैव सीतायाः परिमार्गणम् । साधयिष्यति सुग्रीवो रामकार्यमशेषतः ॥५६॥
श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत् । सुग्रीवोऽप्यर्घ्यपाद्यैर्लक्ष्मणं समपूजयत् ॥५७॥
आलिङ्ग्य प्राह रामस्य दासोऽहं तेन रक्षितः । रामः स्वतेजसा लोकान् क्षणार्धेनैव जेष्यति ॥५८॥

दिशाओं से महापर्वत के समान वानरों को बुलाने के लिये दससहस्र वानर भेजे गये हैं ॥४६॥ स्वयं सुग्रीव सब वानर यूथपतियों के साथ जाकर दैत्य दल का संहार और रावण का वध करेगा ॥ ४७ ॥ वे कपिश्रेष्ठ आपके साथ आज ही जाने वाले हैं। आप अन्तःपुर में पधारें, उस स्थान पर पुत्र, स्त्री, सुहृद् आदि के साथ सुग्रीव बैठा है। सुग्रीव से मिलकर अभय दान दीजिये और साथ ही श्रीरामचन्द्रजी के पास ले जाइये। तारा के ये वचन सुनकर लक्ष्मणजी का क्रोध शान्त हुआ और वे अन्तःपुर में वानरराज सुग्रीव के पास गये। पलङ्गपर सुग्रीव रुमा को गले लगाये पड़े थे ॥४८–५०॥

सुग्रीव लक्ष्मणजी को देखते ही अति भयभीत के समान उछलकर खड़े हो गये। मद से विह्वलित नेत्र वाले सुग्रीव को देखकर अतिक्रोधित हो लक्ष्मणजी बोले—दुर्वृत सुग्रीव ! रघुनाथजी को तू भूल गया। जिस बाण से वाली मारा गया वह आज तुम्हारी प्रतीक्षा करता है ॥५१–५२॥ प्रतीत होता है कि तू मेरे द्वारा मारे जाने से वाली के रास्ते से ही जाना चाहता है। इस प्रकार लक्ष्मणजी के कठोर वचन सुनकर वीरवर हनुमानजी बोले—आप इसप्रकार क्यों कहते हैं, ये वानरराज सुग्रीव आप से भी अधिक श्रीरामचन्द्रजी के भक्त हैं ॥ ५३–५४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी के कार्य के लिये ये अहर्निश जागरण करते हैं, ये उनके कार्य को भूले नहीं हैं। हे प्रभु ! करोड़ों बंदर दिशाओं से आ रहे हैं। ये सब सीताजी को पता लगाने के लिये जायेंगे और सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजी के शेष कार्य विधिवत् सम्पन्न करेंगे ॥५६॥ हनुमानजी के ये वाक्य सुनकर लक्ष्मणजी लज्जित हो गये। तब सुग्रीवजी अर्घ्य, पाद्य आदि से लक्ष्मणजी की विधिवत् पूजा किये, तब उनसे गले मिलकर सुग्रीव बोले—मैं तो श्रीराम का दास हूँ और वे ही मेरी रक्षा किये हैं, वे अपने तेज से आधे क्षण में ही सम्पूर्ण लोकों को जीत सकते हैं ॥५८॥

सहायमात्रमेवाहं वानरैः सहितः प्रभो । सौमित्रिरपि सुग्रीवं प्राह किञ्चिन्मयोदितम् ॥५९॥
तत्क्षमस्व महाभाग प्रणयाद्भाषितं मया । गच्छामोऽद्यैव सुग्रीव रामस्तिष्ठति कानने ॥६०॥
एक एवातिदुःखार्तो जानकीविरहात्प्रभुः । तथेति रथमारुह्य लक्ष्मणेन समन्वितः ॥६१॥
वानरैः सहितो राजा राममेवान्वपद्यत ॥६२॥

भेरीमृदङ्गैर्बहुऋक्षवानरैः श्वेतातपत्रैर्व्यजनैश्च शोभितः ।
नीलाङ्गदाद्यैर्हनुमत्प्रधानैः समावृतो राघवमभ्यगाद्धरिः ॥६३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥५॥

षष्ठसर्ग

सीताजी की खोज, वानरों का गुफा में प्रवेश और स्वयंप्रभा का चरित्र ।

श्रीमहादेव उवाच

दृष्ट्वा रामं समासीनं गुहाद्वारि शिलातले । चैलाजिनधरं श्यामं जटामौलिविराजितम् ॥ १ ॥
विशालनयनं शान्तं स्मितचारुमुखाम्बुजम् । सीताविरहसन्तप्तं पश्यन्तं मृगपक्षिणः ॥ २ ॥

हे प्रभु ! मैं वानरों सहित केवल उनका सहायक मात्र हूँ । तब लक्ष्मणजी सुग्रीव से बोले—हे महाभाग ! मैं प्रणयवश आपसे जो कुछ अनुचित कहा हूँ, उसे क्षमा करें । भगवान श्रीराम जंगल में अकेले हैं, अतएव हम आज ही चलेंगे ॥५९–६०॥ वहाँ पर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी श्रीजानकीजी की विरह से अत्यन्त दुःखी हैं । 'तथा इति' यह कहकर लक्ष्मणजी के साथ रथ में बैठकर सुग्रीव वानरों के साथ श्रीरामचन्द्रजी के पास चले ॥६१–६२॥

उस समय भेरी, मृदङ्ग आदि विविध प्रकार के वाद्य बज रहे थे और अनेक ऋक्ष, वानर श्वेत छत्र चामर लिये उन्हें अत्यन्त सुशोभित कर रहे थे । नील, अङ्गद हनुमान आदि प्रमुख वानरों के साथ सुग्रीव श्रीरघुनाथजी के पास चले ॥६३॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः पञ्चमसर्गः परिपूर्णः ॥ ५ ॥

—*—

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! गुफा के द्वार पर शिलाखण्ड पर बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी को सुग्रीव और लक्ष्मणजी दूर से ही देखे । वे मृगचर्म धारण किये, जटा मुकुट से सुशोभित, विशाल नेत्र, स्मित सुन्दर मुखारविन्द, शान्त मूर्ति, श्यामशरीर भगवान् श्रीराम सीताजी की विरह व्यथा से संतप्त होकर

रथाद्दूरात्समुत्पत्य वेगात्सुग्रीवलक्ष्मणौ । रामस्य पादयोरग्रे पेततुर्भक्तिसंयुतौ ॥ ३ ॥

रामः सुग्रीवमालिङ्ग्य पृष्ट्वानामयमन्तिके । स्थापयित्वा यथान्यायं पूजयामास धर्मवित् ॥४।

ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठं सुग्रीवो भक्तिनम्रधीः । देव पश्य समायान्तीं वानराणां महाचमूम् ॥ ५ ।

कुलाचलाद्रिसम्भूता मेरुमन्दरसन्निभाः । नानाद्वीपसरिच्छैलवासिनः पर्वतोपमाः ॥ ६ ॥

असंख्याताः समायान्ति हरयः कामरूपिणः । सर्वे देवांशसम्भूताः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ७ ॥

अत्र केचिद्गजबलाः केचिद्दशगजोपमाः । गजायुतबलाः केचिदन्येऽमितबलाः प्रभो ॥ ८ ॥

केचिदञ्जनकूटाभाः केचित्कनकसन्निभाः । केचिद्रक्तान्तवदना दीर्घवालास्तथापरे ॥ ९ ॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशाः केचिद्राक्षससन्निभाः । गर्जन्तः परितो यान्ति वानरा युद्धकाङ्क्षिणः १०

त्वदाज्ञाकारिणः सर्वे फलमूलाशनाः प्रभो । ऋक्षाणामधिपो वीरो जाम्बवान्नाम बुद्धिमान् ११

एष मे मन्त्रिणां श्रेष्ठः कोटिभल्लूकवृन्दपः । हनूमानेष विख्यातो महासत्त्वपराक्रमः ॥१२॥

वायुपुत्रोऽतितेजस्वी मन्त्री बुद्धिमतां वरः । नलो नीलश्च गवयो गवाक्षो गन्धमादनः ॥१३॥

शरभो मैन्दवश्चैव गजः पनस एव च । वलीमुखो दधिमुखः सुषेणस्तार एव च ॥१४॥

केसरी च महासत्त्वः पिता हनुमतो बली । एते ते यूथपा राम प्राधान्येन मयोदिताः ।१५।

मृग और पक्षियों को देख रहे थे। उन्हें दूर से देखकर शीघ्र ही रथ से उतर अत्यन्त भक्ति पूर्वक श्रीरघुनाथजी के चरणों में गिर पड़े ॥ १–३ ॥ धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव का आलिंगन कर कुशलक्षेम पूछकर अपने पास बैठाये और यथोचित सत्कार किये ॥ ४ ॥ तत्पश्चात् सुग्रीव भक्ति से अत्यन्त विनम्र हो श्रीरघुनाथजी से बोले—देव ! आती हुई वानरों की महान् सेना को देखिये ॥ ५ ॥ प्रभो ! हिमालय आदि पर्वतों पर उत्पन्न हुए, सुमेरु और मंदराचल के समान अनेक द्वीप, नदी तथा पर्वतों के ऊपर निवास करने वाले पर्वतों के समान अगणित विशालकाय वानर आ रहे हैं। ये देवताओं के अंश से उत्पन्न, इच्छा के अनुरूप रूप धारण करने वाले और युद्धविद्या में अत्यन्त निपुण हैं ॥ ६–७ ॥ इनमें किसी में एक हाथी का बल, किसी में दस हाथी का बल तथा किसी में हजार हाथियों का बल और किसी में अमित बल है ॥ ८ ॥ कोई कज्जलगिरि के समान और कोई सुवर्ण के समान हैं। किसी का मुख रक्तवर्ण और किसी के शरीर पर लम्बे-लम्बे बाल हैं ॥ ९ ॥ इनमें कोई शुद्धस्फटिक मणि के समान और कोई राक्षस के समान हैं। ये सब वानर युद्ध की इच्छा वाले गरजते हुए यत्र-तत्र दौड़ रहे हैं ॥ १० ॥ हे प्रभो ! ये सब आपकी आज्ञा पालन करने वाले और फलमूल खाने वाले हैं। ये ऋक्षों के अधिपति जाम्बवान वीर और बुद्धिमान् हैं। ये मेरे मंत्रियों में श्रेष्ठ करोड़ भालुओं के वृन्द के अधिपति हैं। ये महाशक्तिशाली और पराक्रम में विख्यात परम तेजस्वी पवनपुत्र हनुमान्जी हैं। ये बुद्धिमानों में श्रेष्ठ मंत्री हैं। इसके अतिरिक्त नल, नील, गवय, गवाक्ष गंधमादन, मैन्दव, गज, पनस, बलीमुख, दधिमुख, सुषेण, तार तथा हनुमानजी के पिता महाबली परमधीर केसरी मेरे प्रधान-प्रधान यूथपति हैं, जिसे मैं आपसे निवेदन किया ॥११–१५॥

महात्मानो महावीर्याः शक्रतुल्यपराक्रमाः । एते प्रत्येकतः कोटिकोटिवानरयूथपाः ॥१६॥
तवाज्ञाकारिणः सर्वे सर्वे देवांशसम्भवाः । एष वालिसुतः श्रीमानङ्गदो नाम विश्रुतः १७॥
वालितुल्यबलो वीरो राक्षसानां बलान्तकः । एते चान्ये च बहवस्त्वदर्थे त्यक्तजीविताः १८।
योद्धारः पर्वताग्रैश्च निपुणाः शत्रुघातने । आज्ञापय रघुश्रेष्ठ सर्वे ते वशवर्तिनः ॥१९॥
रामः सुग्रीवमालिङ्ग्य हर्षपूर्णाश्रुलोचनः । प्राह सुग्रीव जानासि सर्वं त्वं कार्यगौरवम् ॥२०॥
मार्गणार्थं हि जानक्या नियुङ्क्ष्व यदि रोचते । श्रुत्वा रामस्य वचनं सुग्रीवः प्रीतमानसः ।२१॥
प्रेषयामास बलिनो वानरान् वानरर्षभः । दिक्षु सर्वासु विविधान्वानरान् प्रेष्य सत्वरम् २२॥
दक्षिणां दिशमत्यर्थं प्रयत्नेन महाबलान् । युवराजं जाम्बवन्तं हनूमन्तं महाबलम् ॥२३॥
नलं सुषेणं शरभं मैन्दं द्विविदमेव च । प्रेषयामास सुग्रीवो वचनं चेदमब्रवीत् ॥२४॥
विचिन्वन्तु प्रयत्नेन भवन्तो जानकीं शुभाम् । मासादर्वाङ्निवर्तध्वं मच्छासनपुरःसराः ॥२५॥
सीतामदृष्ट्वा यदि वो मासादूर्ध्वं दिनं भवेत् । तदा प्राणान्तिकं दण्डं मत्तः प्राप्स्यथ वानराः २६
इति प्रस्थाप्य सुग्रीवो वानरान् भीमविक्रमान्। रामस्य पार्श्वे श्रीरामं नत्वा चोपविवेश सः २७॥
गच्छन्तं मारुतिं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत् । अभिज्ञानार्थमेतन्मे ह्यङ्गुलीयकमुत्तमम् ॥२८॥

ये सब महात्मा, अति बलवान् और इन्द्र के समान पराक्रमी हैं। ये प्रत्येक कोटि-कोटि वानरों के यूथपति हैं ॥ १६ ॥ ये सब देवताओं के अंश से समुद्भूत और आपके आज्ञाकारी हैं। ये वालिकुमार श्रीमान् अङ्गद नाम से विख्यात हैं ॥ १७ ॥ ये वाली के समान बलवान् और राक्षसों के बल को दमन करने वाले हैं। ये सब और अनेक वानरयोद्धा आपके लिये प्राण न्योछावर करने वाले हैं ॥ १८ ॥ ये पर्वत शिला लेकर युद्ध करने वाले और शत्रुओं के संहार करने में निपुण हैं। हे रघुश्रेष्ठ! आप इन्हें आज्ञा दीजिये, ये आपके वशवर्ति हैं ॥ १९ ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्र हो सुग्रीव को हृदय से लगाकर बोले—सुग्रीव! कार्य गौरव को तुम जानते ही हो, यदि यह उचित हो तो जानकीजी की खोज के लिये इन्हें नियुक्त करो। श्रीरामचन्द्रजी का यह वचन सुनकर कपिश्रेष्ठ सुग्रीव प्रसन्न होकर अनेक वानरों को सीताजी की खोज के लिये भेजे। शीघ्र ही सभी दिशाओं में अनेक वानरों को भेजकर दक्षिण दिशा में यत्नपूर्वक महाबलशाली युवराज अङ्गद, जाम्बवान्, हनुमान्, नल, सुषेण, शरभ, मैन्द तथा द्विविद आदि को यह कहकर भेजे कि मेरी आज्ञा से तुमलोग अति प्रयत्न पूर्वक शुभलक्षणा जानकीजी का अन्वेषण करना और एक मास के अन्दर ही लौट आना ॥ २१–२५ ॥ सीता को विना देखे एकमास से एक दिन भी यदि अधिक होगा तो तुम लोगों को मेरे द्वारा दिया गया मृत्युदण्ड भोगना पड़ेगा ॥ २६ ॥

इसप्रकार महापराक्रमी वानरों को भेजकर सुग्रीव श्रीराम को प्रणाम कर उनके समीप बैठ गये ॥ २७ ॥ तब जाते हुए हनुमानजी को देखकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—पहचान के लिये यह मेरे नाम

मन्नामाक्षरसंयुक्तं सीतायै दीयतां रहः ।
अस्मिन् कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपिसत्तम । जानामि सत्त्वं ते सर्वं गच्छ पन्थाःशुभस्तव २९॥
एवं कपीनां राज्ञा ते विसृष्टाः परिमार्गणे । सीताया अङ्गदमुखा बभ्रमुस्तत्र तत्र ह ॥३०॥
भ्रमन्तो विन्ध्यगहने ददृशुः पर्वतोपमम् । राक्षसं भीषणाकारं भक्षयन्तं मृगान् गजान् ॥३१॥
रावणोऽयमिति ज्ञात्वा केचिद्वानरपुङ्गवाः । जघ्नुः किलकिलाशब्दं मुञ्चन्तोमुष्टिभिःक्षणात् ३२
नायं रावण इत्युक्त्वा ययुरन्यन्महद्वनम् । तृषार्ताः सलिलं तत्र नाविन्दन् हरिपुङ्गवाः ॥३३॥
विभ्रमन्तो महारण्ये शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः । ददृशुर्गह्वरं तत्र तृणगुल्मावृतं महत् ॥३४॥
आर्द्रपक्षान् क्रौञ्चहंसान्निःसृतान्ददृशुस्ततः । अत्रास्ते सलिलं नूनं प्रविशामो महागुहाम् ॥३५॥
इत्युक्त्वा हनुमानग्रे प्रविवेश तमन्वयुः । सर्वे परस्परं धृत्वा बाहून्बाहुभिरुत्सुकाः ॥३६॥
अन्धकारे महद्दूरं गत्वाऽपश्यन् कपीश्वराः । जलाशयान्मणिनिभतोयान् कल्पद्रुमोपमान् ।३७॥
वृक्षान्पक्वफलैर्नम्रान्मधुद्रोणसमन्वितान् । गृहान् सर्वगुणोपेतान् मणिवस्त्रादिपूरितान् ।३८॥
दिव्यभक्ष्यान्नसहितान्मानुषैः परिवर्जितान् । विस्मितास्तत्र भवने दिव्ये कनकविष्टरे ॥३९॥

की मुद्रिका ले लो। मेरे नाम की इस मुद्रिका को एकान्त में सीता को देना। हे कपिश्रेष्ठ! इस विषय में स्वयं तू ही समर्थ हो; मैं तुम्हारे बुद्धि बल को भली-भाँति जानता हूँ, तुम्हारा मार्ग कल्याण प्रद हो ॥ २८–२९ ॥ इस प्रकार सुग्रीव के द्वारा भेजे गये वे अङ्गदादि कपिश्रेष्ठ सीताजी की खोज करते हुए यत्र-तत्र पृथिवी पर विचरण करने लगे ॥ ३० ॥

वे सब घूमते-घूमते विन्ध्याचल के गहन वन में पर्वत के समान भीषण आकृति वाला राक्षस देखे, जो मृग, जंगली हाथी आदि को भक्षण कर रहा था ॥ ३१ ॥ रावण यही है यह समझकर कुछ वानरगण किल-किला शब्द कर उसे क्षणमात्र में ही मुष्ठि से मार दिये ॥ ३२ ॥ पुनः (सुगमता से मरा देख) यह रावण नहीं है, यह कहते हुए वे दूसरे महावन में गये। वहाँ पर वे तृषित हो गये, किन्तु कहीं भी जल दिखायी नहीं पड़ रहा था ॥ ३३ ॥ उस महारण्य में घूमते हुए उनके कण्ठ, ओष्ठ, तालु आदि सुख गये। तदनन्तर वहाँ तृण, गुल्म और लता आदि से आवृत्त उन्हें एक विशाल गुफा दिखायी दी ॥ ३४ ॥ वे देखे कि उस गुफा से भीगे पंख वाले क्रौञ्च और हंस निकल रहे हैं। इस गुफा में जल होगा, यह कह कर वे सब उस गुफा में प्रवेश किये। सबसे आगे हनुमानजी प्रवेश किये और उनके पीछे अन्य सभी वानर एक दूसरे के हाथ में हाथ डालकर उत्सुकतापूर्वक उसमें घुस गये ॥ ३५–३६ ॥

बहुत दूर तक अन्धकार में ही जाने के अनन्तर वे सब वानर उस गुफा में मणि के समान स्वच्छ जल से परिपूर्ण अनेक सरोवर देखे; उनके समीप ही पके हुए फलों के भार झुके से हुए कल्पतरु के समान सुन्दर वृक्ष थे, जिनमें शहद के छत्ते लगे हुए थे। समीप में ही मणिमय वस्त्रालङ्कारों से युक्त और दिव्य भोजन सामग्रियों से परिपूर्ण सर्वगुण सम्पन्न निर्जन भवन है। एक दिव्य भवन में सुवर्ण सिंहासन पर विराजमान

प्रभया दीप्यमानां तु ददृशुः स्त्रियमेककाम्। ध्यायन्तीं चीरवसनां योगिनीं योगमास्थिताम् ४०
प्रणेमुस्तां महाभागां भक्त्या भीत्या च वानराः। दृष्ट्वा तान्वानरान्देवी प्राह यूयं किमागताः ४१
कुतो वा कस्य दूता वा मत्स्थानं किं प्रधर्षथ। तच्छ्रुत्वा हनुमानाह शृणु वक्ष्यामि देवि ते ॥४२॥
अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा दशरथः प्रभुः। तस्य पुत्रो महाभागो ज्येष्ठो राम इति श्रुतः ४३
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य सभार्यः सानुजो वनम्। गतस्तत्र हृता भार्या तस्य साध्वी दुरात्मना ।४४।
रावणेन ततो रामः सुग्रीवं सानुजो ययौ। सुग्रीवो मित्रभावेन रामस्य प्रियवल्लभाम् ॥४५॥
मृगयध्वमिति प्राह ततो वयमुपागताः। ततो वनं विचिन्वन्तो जानकीं जलकाङ्क्षिणः ४६
प्रविष्टा गह्वरं घोरं दैवादत्र समागताः। त्वं वा किमर्थमत्रासि का वा त्वं वद नः शुभे ४७
योगिनी च तथा दृष्ट्वा वानरान् प्राह हृष्टधीः। यथेष्टं फलमूलानि जग्ध्वा पीत्वामृतं पयः ॥४८॥
आगच्छत ततो वक्ष्ये मम वृत्तान्तमादितः। तथेति भुक्त्वा पीत्वा च हृष्टास्ते सर्ववानराः ४९
देव्याः समीपं गत्वा ते बद्धाञ्जलिपुटाः स्थिताः। ततः प्राह हनूमन्तं योगिनी दिव्यदर्शना ५०

एक दिव्य रमणी को वे आश्चर्यचकित हो देखे। वह रमणी योगाभ्यास में तल्लीन एक योगिनी थी, वह अपने तेज से उस स्थान को प्रकाशित कर रही थी तथा अपने शरीर पर चीर-वस्त्र धारण किये उस समय ध्यानस्थ थी ॥ ३७–४० ॥

उस महाभाग युवति को देखकर वानर सब भय और प्रीति से उसे प्रणाम किये। तत्पश्चात् वह देवी उनकी ओर देखकर बोली—आपलोग यहाँ क्यों और कहाँ से आये हैं ? आप किसके दूत हैं तथा मेरे स्थान को भ्रष्ट क्यों कर रहे हैं ? यह सुनकर हनुमानजी बोले—देवि ! मैं सब कुछ आपसे बतलाता हूँ ॥४१–४२॥ परम ऐश्वर्यशाली महाराज दशरथ अयोध्या के अधिपति थे। महाभागशाली उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचन्द्र नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ ४३ ॥ वे अपने पिता की आज्ञा से अपनी स्त्री और अपने अनुज के साथ वन में आये थे। जंगल में उनकी परमसाध्वी अर्धाङ्गिनी सीता को रावण हरण कर ले गया। तदनन्तर अपने भाई के साथ वे सुग्रीव के पास आये। सुग्रीव से उनकी मित्रता हो जाने से सुग्रीव हम लोगों को ये आदेश दिये हैं कि उनकी प्राणप्रिया सीता को तुम लोग खोज करो। अत-एव हमलोग उसी स्थान से आये हैं। जंगल में जानकीजी को खोजते-खोजते हमें जल की आवश्यकता हुई। अत-एव हमलोग इस भयङ्कर गुफा में भाग्यवश चले आये हैं। हे शुभे ! आप कौन हैं और यहाँ किसलिये रहती हैं ? यह हमें बतलाइये ॥ ४४–४७ ॥

यह वृत्तान्त सुन उस योगिनी को बड़ा हर्ष हुआ और वह वानरों से बोली—तुम लोग पहले इच्छानुसार फल-मूल आदि खाकर अमृत मय जलपान कर आओ; तब मैं अपना सब इतिवृत्त बतलाऊँगी। तत्पश्चात् वे वानरगण 'तथा इति' यह कह कर इच्छा के अनुसार फलमूलादि खाकर जलपान किये और पुनः प्रसन्न मन उस देवी के पास आकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तब वह दिव्यदर्शना योगिनी हनुमानजी से कहने

हेमा नाम पुरा दिव्यरूपिणी विश्वकर्मणः । पुत्री महेशं नृत्येन तोषयामास भामिनी ॥५१॥
तुष्टो महेशः प्रददाविदं दिव्यपुरं महत् । अत्र स्थिता सा सुदती वर्षाणामयुतायुतम् ॥५२॥
तस्या अहं सखी विष्णुतत्परा मोक्षकाङ्क्षिणी । नाम्ना स्वयंप्रभा दिव्यगन्धर्वतनया पुरा ५३
गच्छन्ती ब्रह्मलोकं सा मामाहेदं तपश्चर । अत्रैव निवसन्ती त्वं सर्वप्राणिविवर्जिते ॥५४॥
त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणोऽव्ययः । भूभारहरणार्थाय विचरिष्यति कानने ॥५५॥
मार्गन्तो वानरास्तस्य भार्यामायान्ति ते गुहाम् । पूजयित्वाथ तान् नत्वा रामं स्तुत्वा प्रयत्नतः
यातासि भवनं विष्णोर्योगिगम्यं सनातनम् । इतोऽहं गन्तुमिच्छामि रामं द्रष्टुं त्वरान्विता ५७
यूयं पिदध्वमक्षीणि गमिष्यथ बहिर्गुहाम् । तथैव चक्रुस्ते वेदाद्गताः पूर्वस्थितं वनम् ॥५८॥
सापि त्यक्त्वा गुहां शीघ्रं ययौ राघवसन्निधिम् । तत्र रामं ससुग्रीवं लक्ष्मणं च ददर्श ह ॥५९॥
कृत्वा प्रदक्षिणं रामं प्रणम्य बहुशः सुधीः । आह गद्गदया वाचा रोमाञ्चिततनूरुहा ॥६०॥
दासी तवाहं राजेन्द्र दर्शनार्थमिहागता । बहुवर्षसहस्राणि तप्तं मे दुश्चरं तपः ॥६१॥
गुहायां दर्शनार्थं ते फलितं मेऽद्य तत्तपः । अद्य हि त्वां नमस्यामि मायायाः परतः स्थितम् ६२

लगी—पूर्व समय में विश्वकर्मा की हेमा नाम की एक दिव्य रूपिणी पुत्री थी। वह सुन्दरी अपने नृत्य से श्रीमहादेवजी को प्रसन्न की ॥ ४८–५१ ॥ प्रसन्न होकर श्रीमहादेवजी यह विशाल दिव्य नगर उसे दिये। सुन्दर दशना वह हजारों वर्ष यहाँ रही ॥ ५२ ॥

उसकी सखी दिव्य नामक गन्धर्व की मैं पुत्री हूँ। स्वयंप्रभा मेरा नाम है, मुझे मोक्ष की इच्छा है। अत-एव मैं हमेशा विष्णुभगवान की उपासना में तल्लीन रहती हूँ। पूर्व समय में वह जब ब्रह्मलोक में जाने लगी तब वह मुझसे बोली कि तू सब प्रकार से निर्जन इस स्थान पर रहकर तपस्या करो ॥ ५३–५४ ॥ त्रेतायुग में साक्षात् अव्यय नारायण राजा दशरथ के यहाँ जन्म लेकर पृथ्वी का भार हरण करने के लिये वन में विचरण करेंगे ॥ ५५ ॥ उनकी स्त्री को खोजते हुए कुछ वानर तुम्हारे गुफा में आयेंगे। विधिवत् उनकी पूजा कर श्रीरामचन्द्रजी के पास जाकर विधिवत् उनकी स्तुति कर योगियों के प्राप्त होने योग्य उनके सनातन धाम को तू चली जाओगी। अत-एव मैं अब शीघ्र ही भगवान् श्रीराम का दर्शन करने के लिये जाना चाहती हूँ; ॥ ५६–५७ ॥

तुम सब अपनी आँखें बन्द कर लो, तब गुफा से बाहर निकल जाओगे। ऐसा कर वे लोग शीघ्र प्रथम वन में पहुँच गये ॥ ५८ ॥ वह योगिनी भी उस गुफा को छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी के पास आयी। वहाँ पर वह सुग्रीव और लक्ष्मण के साथ भगवान श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन की ॥ ५९ ॥ वह श्रीरामचन्द्रजी की प्रदक्षिणा और बार-बार प्रणाम कर पुलकित वदन हो गद्गद् वाणी से कहने लगी कि हे राजाधिराज ! मैं आपकी दासी आपके दर्शन हेतु यहाँ आयी हूँ, आपके दर्शन के लिये गुफा में रहकर सहस्त्रों वर्ष मैं तपस्या की हूँ। आज मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया। मैं आज मायातीत आपको नमस्कार कर रही

सर्वभूतेषु चालक्ष्यं बहिरन्तरवस्थितम् । योगमायाजवनिकाच्छन्नो मानुषविग्रहः ॥६३॥
न लक्ष्यसेऽज्ञानदृशां शैलूष इव रूपधृक् । महाभागवतानां त्वं भक्तियोगविधित्सया ॥६४॥
अवतीर्णोऽसि भगवन् कथं जानामि तामसी । लोके जानातु यः कश्चित्तव तत्त्वं रघूत्तम ॥६५॥
ममैतदेव रूपं ते सदा भातु हृदालये । राम ते पादयुगलं दर्शितं मोक्षदर्शनम् ॥६६॥
अदर्शनं भवार्णानां सन्मार्गपरिदर्शनम् ।
धनपुत्रकलत्रादिविभूतिपरिदर्पितः । अकिञ्चनधनं त्वाद्य नाभिधातुं जनोऽर्हति ॥६७॥
निवृत्तगुणमार्गाय निष्किञ्चनधनाय ते ॥६८॥
नमः स्वात्माभिरामाय निर्गुणाय गुणात्मने । कालरूपिणमीशानमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥६९॥
समं चरन्तं सर्वत्र मन्ये त्वां पुरुषं परम् । देव ते चेष्टितं कश्चिन्न वेद नृविडम्बनम् ॥७०॥
न तेऽस्ति कश्चिद्दयितो द्वेष्यो वा पर एव च । त्वन्मायापिहितात्मानस्त्वां पश्यन्ति तथाविधम्
अजस्याकर्तुरीशस्य देवतिर्यङ्नरादिषु । जन्मकर्मादिकं यद्यत्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥७२॥
त्वमाहुरक्षरं जातं कथाश्रवणसिद्धये । केचित्कोसलराजस्य तपसः फलसिद्धये ॥७३॥

हूँ ॥ ६०–६२ ॥ सभी भूतों में बाहर-भीतर अलक्षित होकर विद्यमान आप योगमाया का अवलम्बन कर मनुष्य विग्रह धारण किये हैं ॥ ६३ ॥

मायिक की माया को साधारण जन जिस प्रकार नहीं जानते, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष आपके शुद्ध-स्वरूप को नहीं जान सकते। हे भगवन् ! आप महाभागवत् अपने भक्तों के लिए भक्तियोग विधि की शिक्षा देने के लिए ही अवतार लिए हैं। तमोगुणी मैं आपको कैसे जान सकती हूँ ? हे रघुश्रेष्ठ ! संसार में जो कोई आपके परमतत्त्व को जानते हों तो जानते रहें, मेरे हृदय में तो आपका यही रूप हमेशा विराज-मान रहे। हे राम ! मोक्षदायक और संसार सागर से पार करने वाले तथा सत्पथ प्रदर्शक आपके चरण-कमलों का आज मुझे दर्शन हुआ। हे आदिपुरुष ! जो मनुष्य धन, पुत्र, स्त्री और ऐश्वर्य आदि से उन्मत्त हो रहे हैं, वे आपकी स्तुति नहीं कर सकते; क्योंकि आप अकिञ्चन प्राणियों के सर्वस्व हैं ॥ ६४–६७ ॥ गुणातीत, अकिञ्चन प्राणियों के धन, आत्माराम में रमण करने वाले निर्गुण और गुणों के आत्मा आपको मैं बारम्बार नमस्कार करती हूँ। आप कालरूप से सबका नियन्ता, आदि-मध्य-अन्त्य रहित सर्वत्र समभाव से व्याप्त परात्पर पुरुष हैं। हे देव ! मानव चरित्र का अनुकरण करते हुए जिन लीलाओं को आप करते हैं उन्हें कोई भी नहीं जान सकता ॥ ६८–७० ॥

हे प्रभो ! न कोई आपका प्रिय है और न कोई आपका अप्रिय, और कोई आपका उदासीन भी नहीं है। आपकी माया से आवृत्त आत्मा वाले प्राणी आपको तत्तद् स्वरूप में देखते हैं ॥ ७१ ॥ आप जन्म-रहित, अकर्त्ता और ईश्वर हैं। आपकी महती लीला से ही देव, तिर्यक्, मनुष्य आदि योनियों में आपका जन्म-कर्म होता है ॥ ७२ ॥ आप अविनाशी कहे जाते हैं और कथा-श्रवण की सिद्धि के लिये ही आप

कौसल्यया प्रार्थ्यमानं जातमाहुः परे जनाः। दुष्टराक्षसभूभारहरणायार्थितो विभुः ॥७४॥
ब्रह्मणा नररूपेण जातोऽयमिति केचन। शृण्वन्ति गायन्ति च ये कथास्ते रघुनन्दन ७५॥
पश्यन्ति तव पादाब्जं भवार्णवसुतारणम्। त्वन्मायागुणबद्धाहं व्यतिरिक्तं गुणाश्रयम् ॥७६॥
कथं त्वां देवजानीयां स्तोतुं वाऽविषयं विभुम्।
नमस्यामि रघुश्रेष्ठं बाणासनशरान्वितम्। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सुग्रीवादिभिरन्वितम् ७७॥
एवं स्तुतो रघुश्रेष्ठः प्रसन्नः प्रणताघहृत्। उवाच योगिनीं भक्तां किं ते मनसि काङ्क्षितम् ॥
सा प्राह राघवं भक्त्या भक्तिं ते भक्तवत्सल। यत्र कुत्रापि जाताया निश्चलां देहि मे प्रभो ७९
त्वद्भक्तेषु सदा सङ्गो भूयान्मे प्राकृतेषु न। जिह्वा मे रामरामेति भक्त्या वदतु सर्वदा ।८०।
मानसं श्यामलं रूपं सीतालक्ष्मणसंयुतम्। धनुर्बाणधरं पीतवाससं मुकुटोज्ज्वलम् ॥८१॥
अङ्गदैर्नूपुरैर्मुक्ताहारैः कौस्तुभकुण्डलैः। भान्तं स्मरतु मे राम वरं नान्यं वृणे प्रभो ॥८२।

श्रीराम उवाच

भवत्वेवं महाभागे गच्छ त्वं बदरीवनम्।

अवतार ग्रहण करते हैं। कोई-कोई कहते हैं कि कोशलाधीश महाराज दशरथ की तपस्या का फल देने के लिये आप अवतार लिये हैं ॥ ७३ ॥ अन्य लोगों का कहना है कि आप कौसल्याजी की प्रार्थना से अवतार लिये हैं और कोई-कोई कहते हैं कि ब्रह्माजी की प्रार्थना करने पर भूमि के भारस्वरूप राक्षसों का विनाश करने के लिये ही सर्वव्यापक होकर आप मनुष्य रूप में अवतरित हैं। हे रघुनन्दन! जो लोग आपकी कथा श्रवण-कीर्त्तन करेंगे, निश्चय ही संसार सागर से पार करने वाले आपके चरणारविन्दों का दर्शन करेंगे। हे देव! मैं आपके माया के गुणों से बद्ध हूँ। पुनः मैं उन गुणों से पृथक् गुणाश्रय आपको कैसे जान सकती ? तथा च आप विभु की स्तुति मैं कैसे कर सकती (क्योंकि आप वाणी के अविषय हैं)? अत-एव हे रघुश्रेष्ठ! अनुज लक्ष्मण और सुग्रीवादि के साथ धनुष-बाण धारण करने वाले आपको मैं केवल प्रणाम करती हूँ॥ ७४–७७॥

उसके इस प्रकार स्तुति करने पर प्रणतपापहारी रघुश्रेष्ठ प्रसन्न होकर भक्ता उस योगिनी से बोले कि तुम्हारी इच्छा क्या है ? ॥ ७८ ॥ भक्तिपूर्वक वह श्रीरघुनाथजी से बोली—हे भक्तवत्सल प्रभो! मैं जहाँ कहीं भी जन्म ग्रहण करूँ, आप निश्चल भक्ति मुझे दीजिये ॥ ७९ ॥ हमेशा आपके भक्तों से ही मेरा साथ हो, सांसारिक लोगों का साथ न हो और मेरी जिह्वा हमेशा राम-राम यह कहती रहे ॥ ८० ॥ हे राम! मेरा मन धनुर्बाण धारण किये, पीताम्बर धारी, सुन्दर मुकुट, भुजबन्द, नूपुर, मोतियों की माला, कौस्तुभमणि और कुण्डलों से विभूषित श्यामल-मनोहर स्वरूप, श्रीसीताजी और लक्ष्मण के साथ आपका चिन्तन करता रहे। हे प्रभो! इसके अतिरिक्त मैं अन्य कोई वरदान नहीं माँगती ॥ ८१–८२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे महाभागे! यह ही हो। तू अब बदरीकाश्रम में जाओ और वहाँ पर मेरा

तत्रैव मां स्मरन्ती त्वं त्यक्त्वेदं भूतपञ्चकम् । मामेव परमात्मानमचिरात्प्रतिपद्यसे ॥८३॥

श्रुत्वा रघूत्तमवचोऽमृतसारकल्पं गत्वा तदैव बदरीतरुखण्डजुष्टम् ।
तीर्थं तदा रघुपतिं मनसा स्मरन्ती त्यक्त्वा कलेवरमवाप परं पदं सा ॥८४॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥६॥

सप्तम सर्ग

वानरों का प्रायोपवेशन और सम्पाति से भेंट

श्रीमहादेव उवाच

अथ तत्र समासीना वृक्षखण्डेषु वानराः । चिन्तयन्तो विमुह्यन्तः सीतामार्गणकर्शिताः ॥१॥
तत्रोवाचाङ्गदः कश्चिद्वानरान् वानरर्षभः । भ्रमतां गह्वरेऽस्माकं मास नूनं गतोऽभवत् ॥२॥
सीता नाधिगतास्माभिर्न कृतं राजशासनम् । यदि गच्छामः किष्किन्धां सुग्रीवोऽस्मान् हनिष्यति
विशेषतः शत्रुसुतं मां मिषान्निहनिस्यति । मयि तस्य कुतः प्रीतिरहं रामेण रक्षितः ॥४॥

चिन्तन करती हुई रहो। शीघ्र ही यह पाञ्चभौतिक शरीर छोड़कर तू मेरे परमधाम को प्राप्त करोगी ॥८३॥ श्रीरघुनाथजी की अमृत तुल्य वाणी को सुनकर वह स्वयंप्रभा उसी समय पुण्यस्थली बदरीकाश्रम चली गयी। वहाँ अनेक बैर के वृक्ष लगे हुए हैं। उस स्थान पर वह अपने अन्तःकरण में श्री रघुनाथजी का स्मरण करती हुई अन्त में शरीर का त्याग होने पर श्रीरघुनाथजी के परमपद को प्राप्त की ॥ ८४ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंबादे किष्किन्धाकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः षष्ठसर्गः परिपूर्णः ॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! सीताजी का अन्वेषण करते-करते थककर वानरगण उस गुफा के समीप वृक्षों के डालों पर बैठकर (सीताजी का पता न लगने से) विमोहित हो सोच-विचार कर रहे थे ॥१॥ उस समय वानरश्रेष्ठ अङ्गदजी कुछ वानरों से बोले—प्रतीत होता है कि इस कन्दरा में खोजते-खोजते निश्चय ही हमलोगों का एक मास व्यतीत हो गया ॥ २ ॥ अब तक हमलोगों को सीताजी का पता नहीं चला। हमलोग वानरराज सुग्रीव की आज्ञा का पालन नहीं कर सके, यदि हम किष्किन्धापुरी को लौट चलें तो अवश्य ही वह हमें मार देगा ॥ ३ ॥ अपने शत्रु का लड़का समझ कर वह तो इस बहाने अवश्य ही मुझे मार देगा। मेरी रक्षा तो श्रीरामचन्द्रजी ही किये हैं, मुझमें उसका प्रेम कहाँ हो सकता ? ॥ ४ ॥

इदानीं रामकार्यं मे न कृतं तन्मिषं भवेत् । तस्य मद्धनने नूनं सुग्रीवस्य दुरात्मनः ॥५॥
मातृकल्पां भ्रातृभार्यां पापात्मानुभवत्यसौ । न गच्छेयमतः पार्श्वं तस्य वानरपुङ्गवाः ॥६॥
त्यक्ष्यामि जीवितं चात्र येन केनापि मृत्युना । इत्यश्रुनयनं केचिद्दृष्ट्वा वानरपुङ्गवाः ॥७॥
व्यथिताः साश्रुनयना युवराजमथाब्रुवन् ॥८॥
किमर्थं तव शोकोऽत्र वयं ते प्राणरक्षकाः । भवामो निवसामोऽत्र गुहायां भयवर्जिताः ॥९॥
सर्वसौभाग्यसहितं पुरं देवपुरोपमम् । शनैः परस्परं वाक्यं वदतां मारुतात्मजः ॥१०॥
श्रुत्वाङ्गदं समालिङ्ग्य प्रोवाच नयकोविदः । विचार्यते किमर्थं ते दुर्विचारो न युज्यते ॥११॥
राज्ञोऽत्यन्तप्रियस्त्वं हि तारापुत्रोऽतिवल्लभः । रामस्य लक्ष्मणात्प्रीतिस्त्वयि नित्यं प्रवर्धते ॥१२॥
अतो न राघवाद्भीतिस्तव राज्ञो विशेषतः । अहं तव हिते सक्तो वत्स नान्यं विचारय ॥१३॥
गुहावासश्च निर्भेद्य इत्युक्तं वानरैस्तु यत् । तदेतद्रामबाणानामभेद्यं किं जगत्त्रये ॥१४॥
ये त्वां दुर्बोधयन्त्येते वानरा वानरर्षभ । पुत्रदारादिकं त्यक्त्वा कथं स्थास्यन्ति ते त्वया ॥
अन्यद्गुह्यतमं वक्ष्ये रहस्यं शृणु मे सुत । रामो न मानुषो देवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः १६

मुझसे श्रीरामचन्द्रजी का कार्य नहीं हुआ । अत एव इस व्याज से मेरा वध करने के लिए उसे अच्छा अवसर मिल जायगा ॥ ५ ॥ वह दुरात्मा अपनी माता के समान अपने बड़े भाई की पत्नी का भोग करता है । अत एव वानरश्रेष्ठों ! अब मैं उसके पास नहीं जाऊँगा और येन केन प्रकारेण यहीं पर अपना जीवन समाप्त कर दूँगा ।

इस प्रकार अङ्गद के नेत्रों में जल भरा देखकर कितने प्रमुख वानरों को बड़ा खेद हुआ और वे सब आँखों में आँसू भरकर युवराज से बोले ॥ ६-८ ॥ आप शोक क्यों करते हैं ? हमलोग आपके प्राणों की रक्षा करने वाले हैं और निर्भय हो इस गुफा में रहेंगे ॥ ९ ॥ यह सर्वसौभाग्य सम्पन्न अमरावती के तुल्य है । इस प्रकार धीरे-धीरे परस्पर बात-चीत करते हुए ये शब्द नीति निपुण हनुमान जी को सुनायी पड़े । इसे सुनकर वे अङ्गद का आलिङ्गन कर बोले—अङ्गद ! यह चिन्ता तू क्यों करते हो ? यह दुर्विचार उचित नहीं है ॥ १०-११ ॥ तुम तारा के अत्यन्त प्रिय पुत्र हो; अत एव महाराज सुग्रीव के तुम अत्यन्त प्रिय हो । श्रीरामचन्द्रजी की नित्य प्रति लक्ष्मणजी से भी अधिक प्रीति बढ़ती जाती है ॥ १२ ॥ अत एव श्रीरामचन्द्रजी अथवा राजा सुग्रीव से तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं है । पुनः विशेष रूप से मैं तुम्हारे हित में तत्पर हूँ । अत एव हे वत्स ! तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो ॥ १३ ॥ इन वानरों का कहना है कि इस गुफा में किसी प्रकार का भय नहीं होगा तो त्रैलोक्य में वह कौन वस्तु है जो भगवान श्रीराम के बाणों से अभेद्य हो ? ॥ १४ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! ये वानरगण तुम्हें जो अनुचित सलाह देते हैं तो वे भी अपनी स्त्री, पुत्र आदि को छोड़कर तुम्हारे साथ कैसे रहेंगे ? ॥ १५ ॥ बेटा ! तुझे एक गुप्त रहस्य बतलाता हूँ, इस रहस्य को

सीता भगवती माया जनसम्मोहकारिणी । लक्ष्मणो भुवनाधारः साक्षाच्छेषः फणीश्वरः ।१७॥
ब्रह्मणा प्रार्थिताः सर्वे रक्षोगणविनाशने । मायामानुषभावेन जाता लोकैकरक्षकाः ॥१८॥
वयं च पार्षदाः सर्वे विष्णोर्वैकुण्ठवासिनः । मनुष्यभावमापन्ने स्वेच्छया परमात्मनि ॥१९॥
वयं वानररूपेण जातास्तस्यैव मायया । वयं तु तपसा पूर्वमाराध्य जगतां पतिम् ॥२०॥
तेनैवानुगृहीताः स्मः पार्षदत्वमुपागताः । इदानीमपि तस्यैव सेवां कृत्वैव मायया ॥२१॥
पुनर्वैकुण्ठमासाद्य सुखं स्थास्यामहे वयम् । इत्यङ्गदमथाश्वास्य गता विन्ध्यं महाचलम् ॥२२॥
विचिन्वन्तोऽथ शनकैर्जानकीं दक्षिणाम्बुधेः । तीरे महेन्द्राख्यगिरेः पवित्रं पादमाययुः ॥२३॥
दृष्ट्वा समुद्रं दुष्पारमगाधं भयवर्धनम् । वानरा भयसन्त्रस्ताः किं कुर्म इति वादिनः २४॥
निषेदुरुदधेस्तीरे सर्वे चिन्तासमन्विताः । मन्त्रयामासुरन्योन्यमङ्गदाद्या महाबलाः ॥२५॥
भ्रमतो मे वने मासो गतोऽत्रैव गुहान्तरे । न दृष्टो रावणो वाद्य सीता वा जनकात्मजा २६॥
सुग्रीवस्तीक्ष्णदण्डोऽस्मान्निहन्त्येव न संशयः । सुग्रीववधतोऽस्माकं श्रेयः प्रायोपवेशनम् ॥२७।
इति निश्चित्य तत्रैव दर्भानास्तीर्य सर्वतः । उपाविवेशुस्ते सर्वे मरणे कृतनिश्चयाः ॥२८॥

सुनो—भगवान् श्रीराम कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। वे निर्विकार साक्षात् नारायण देव हैं॥ १६॥ भगवती श्रीसीताजी जगन्मोहिनी माया हैं तथा च श्रीलक्ष्मणजी त्रिभुवनाधार साक्षात् नागराज श्रीशेषजी हैं॥ १७॥ ये लोग ब्रह्माजी की प्रार्थना करने पर राक्षसों का नाश करने के लिये माया-मानव के रूप में अवतरित हैं। इनलोगों में प्रत्येक व्यक्ति त्रिलोकी की रक्षा करने में समर्थ हैं॥ १८॥ हम लोग वैकुण्ठ-वासी भगवान् विष्णु के पार्षद हैं। स्वेच्छया भगवान् जब मनुष्य रूप में अवतरित हुए तब हमलोग उनकी माया-शक्ति से वानर के रूप में उत्पन्न हो गये। पूर्व समय में हमलोग श्रीजगदीश्वर की आराधना तपस्या के द्वारा किये थे। अत एव उनकी कृपा से हम लोग उनके पार्षद हुए थे। इस समय भी हमलोग माया की प्रेरणा से उनकी सेवाकर अन्त में सुखपूर्वक वैकुण्ठ में रहेंगे। इस प्रकार अङ्गदजी को आश्वस्तकर हनुमानजी विन्ध्य पर्वत पर गये॥ १९-२२॥

पुनः धीरे-धीरे श्रीजानकीजी का अन्वेषण करते हुए दक्षिण समुद्र के तटपर महेन्द्र पर्वत की तराई में पहुँचे॥ २३॥ वहाँ पर अपार, अगाध और भय को बढ़ाने वाला समुद्र को देखकर वे भयभीत हो गये और परस्पर कहने लगे कि हमें अब क्या करना चाहिए?॥ २४॥ अङ्गद आदि सभी महापराक्रमी वानर गण अत्यन्त शोकाकुल हो समुद्र तट पर बैठकर आपस में विचार विमर्श करने लगे॥ २५॥ अहो! वन में खोजते-खोजते उस गुफा में ही एक मास व्यतीत हो गया किन्तु अभी तक हम रावण अथवा जनक-नन्दिनी सीता को नहीं देख सके॥ २६॥

सुग्रीव तीक्ष्ण दण्डवाला है, निःसन्देह वह हमें मार देगा। सुग्रीव के द्वारा मरने से तो अच्छा है कि हम प्रायोपवेशन (अन्न-जल छोड़ना) से ही प्राणत्याग करें, इसमें हमारा अधिक कल्याण है॥ २७॥ यह निर्णय कर वे सब यत्र-तत्र कुशासन बिछाकर मरने का निश्चय कर वहीं बैठ गये॥ २८॥ इसी समय

एतस्मिन्नन्तरे तत्र महेन्द्राद्रिगुहान्तरात् । निर्गत्य शनकैरागाद्गृध्रः पर्वतसन्निभः ॥२९॥
दृष्ट्वा प्रायोपवेशेन स्थितान्वानरपुङ्गवान् । उवाच शनकैर्गृध्रः प्राप्तो भक्ष्योऽद्य मे बहुः ॥३०॥
एकैकशः क्रमात्सर्वान् भक्षयामि दिने दिने । श्रुत्वा तद्गृध्रवचनं वानरा भीतमानसाः ॥३१॥
भक्षयिष्यन्ति नः सर्वानसौ गृध्रो न संशयः । रामकार्यं च नास्माभिः कृतं किञ्चिद्धरीश्वराः ३२॥
सुग्रीवस्यापि च हितं न कृतं स्वात्मनामपि । वृथानेन वधं प्राप्ता गच्छामो यमसादनम् ॥३३॥
अहो जटायुर्धर्मात्मा रामस्यार्थे मृतः सुधीः । मोक्षं प्राप दुरावापं योगिनामप्यरिन्दमः ॥३४॥
सम्पातिस्तु तदा वाक्यं श्रुत्वा वानरभाषितम्। के वा यूयं मम भ्रातुः कर्णपीयूषसन्निभम् ॥३५॥
जटायुरिति नामाद्य व्याहरन्तः परस्परम् । उच्यतां वो भयं माभून्मत्तः प्लवगसत्तमाः ॥३६॥
तमुवाचाङ्गदः श्रीमानुत्थितो गृध्रसन्निधौ । रामो दाशरथिः श्रीमान् लक्ष्मणेन समन्वितः ३७॥
सीतया भार्यया सार्धं विचचार महावने । तस्य सीता हृता साध्वी रावणेन दुरात्मना ॥३८॥
मृगयां निर्गते रामे लक्ष्मणे च हृता बलात् । रामरामेति क्रोशन्ती श्रुत्वा गृध्रः प्रतापवान् ३९॥
जटायुर्नाम पक्षीन्द्रो युद्धं कृत्वा सुदारुणम् । रावणेन हतो वीरो राघवार्थं महाबलः ॥४०॥

वहाँ महेन्द्राचल के गुफा से निकल कर धीरे-धीरे पर्वताकार एक गृध्र आया ॥ २९ ॥ वहाँ पर प्रायोपवेशन के लिये बैठे बड़े-बड़े वानरों देखकर वह मन्द स्वर में कहने लगा—आज बहुत सा खाद्य मुझे प्राप्त हो गया है ॥ ३० ॥ प्रतिदिन मैं एक-एक कर इन्हें खाऊँगा। गृध्र के ये वचन सुनकर वे सभी वानर भयभीत होकर कहने लगे ॥ ३१ ॥ निःसन्देह यह गृध्र हम लोगों को खा जायेगा। हे वानरेश्वरगण! हमलोग भगवान का कार्य तो कुछ किये नहीं और राजा सुग्रीव का अथवा अपना भी हम कुछ हितकार्य नहीं किये। व्यर्थ ही हमलोग इससे मरकर यमलोक को जायेंगे ॥ ३२–३३॥

अहो! धर्मात्मा जटायु धन्य है जो बुद्धिमान् श्रीराम के कार्य के लिये अपना प्राण दे दिया। योगियों को भी दुर्लभ वह शत्रुदमन मोक्ष-पद प्राप्त कर लिया ॥ ३४ ॥ वानरों के ये वाक्य सुनकर सम्पाति बोला—हे कपिश्रेष्ठ! आपलोग कौन हैं जो आपस में मेरे कानों को अमृत के समान प्रिय लगने वाले मेरे भाई जटायु का नाम ले रहे हैं। आप मुझसे किसी प्रकार से भय-भीत न हों और अपना वृत्तान्त सुनाओ ॥ ३५–३६ ॥

तब श्रीमान् अङ्गदजी उठकर उस गृध्र के पास गये और बोले— दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी अनुज लक्ष्मण और प्राण प्रिया सीता के साथ घोर दण्डकारण्य में विचरण कर रहे थे। वहाँ उनकी साध्वी भार्या सीता को दुरात्मा रावण हर ले गया ॥ ३७–३८ ॥ राम और लक्ष्मण जब मृगया के लिये गये थे तब वह बलात् सीता को हरण कर ले गया। उस समय वे हा राम! हा राम! यह कहकर रोने लगी। उनका यह रूदन सुनकर महाप्रतापी पक्षिराज गृध्रवर जटायु श्रीरघुनाथजी के लिये रावण से घोर युद्ध किया, परन्तु अन्त में महाबलवान् वीरवर रावण के हाथ मारे गये ॥ ३९–४० ॥

रामेण दग्धो रामस्य सायुज्यमगमत्क्षणात् । रामः सुग्रीवमासाद्य सख्यं कृत्वाग्निसाक्षिकम्॥४१॥
सुग्रीवचोदितो हत्वा वालिनं सुदुरासदम् । राज्यं ददौ वानराणां सुग्रीवाय महाबलः ॥४२॥
सुग्रीवः प्रेषयामास सीतायाः परिमार्गणे । अस्मान्वानरवृन्दान्वै महासत्त्वान्महाबलः ॥४३॥
मासादर्वाङ्निवर्तध्वं नोचेत्प्राणान्हरामि वः । इत्याज्ञया भ्रमन्तोऽस्मिन्वने गह्वरमध्यगाः ॥४४॥
गतो मासो न जानीमः सीतां वा रावणं च वा । मर्तुं प्रायोपविष्टाः स्मस्तीरे लवणवारिधेः ।।४५॥
यदि जानासि हे पक्षिन्सीतां कथय न शुभाम् । अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा सम्पातिर्हृष्टमानसः ॥४६॥
उवाच मत्प्रियो भ्राता जटायुः प्लवगेश्वराः । बहुवर्षसहस्रान्ते भ्रातृवार्ता श्रुता मया ॥४७॥
वाक्साहाय्यं करिष्येऽहं भवतां प्लवगेश्वराः । भ्रातुः सलिलदानाय नयध्वं मां जलान्तिकम् ४८॥
पश्चात्सर्वं शुभं वक्ष्ये भवतां कार्यसिद्धये । तथेति निन्युस्ते तीरं समुद्रस्य विहङ्गमम् ॥४९॥
सोऽपि तत्सलिले स्नात्वा भ्रातुर्दत्त्वा जलाञ्जलिम् ।
पुनः स्वस्थानमासाद्य स्थितो नीतो हरीश्वरैः । सम्पातिः कथयामास वानरान्परिहर्षयन् ॥५०॥
लङ्कानाम नगर्यास्ते त्रिकूटगिरिमूर्धनि । तत्राशोकवने सीता राक्षसीभिः सुरक्षिता ।।५१॥

तब श्रीरामचन्द्रजी स्वयं उनका दाह संस्कार किये और तत्काल भगवान राम का सायुज्य पद जटायु प्राप्त किया। तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी सुग्रीव के पास आये और अग्नि की साक्षी देकर उनसे मित्रता किये ॥ ४७ ॥ तत्पश्चात् सुग्रीव के कहने पर महाबली श्रीरामचन्द्रजी अति दुर्जेय वाली को मारे और वानरों का राज्य सुग्रीव को दिये ॥ ४२ ॥ महाबली सुग्रीव हमलोग जैसे अनेकों महापराक्रमी वानरों को सीताजी की खोज के लिये भेजे हैं ॥ ४३ ॥ उनका कहना है कि एक मास के भीतर ही सबको लौट आना है, नहीं तो मैं सबको मार दूँगा। उनकी आज्ञा से इस वन में घूमते हुए हमलोग एक गुफा में पहुँचे ॥४४॥ वहाँ पर एकमास पूर्ण हो गया परन्तु अभी तक हमें सीता अथवा रावण किसी का भी पता नहीं चला। अतएव हमलोग प्रायोपवेशन के द्वारा प्राण त्यागने हेतु इस क्षार समुद्र के तटपर बैठे हैं ॥ ४५ ॥ हे पक्षि! शुभलक्षणा सीता का यदि तुम्हें पता हो तो बताओ। अङ्गद की यह वाणी सुनकर सम्पाति मन में प्रसन्न होकर बोला—हे कपीश्वरों! जटायु मेरा परमप्रिय भाई था। कई सहस्र वर्षों के बाद आज मैं अपने भाई का समाचार सुना हूँ ॥ ४६–४७ ॥

हे वानरों! अवश्य ही मैं वाणी से आपलोगों की कुछ सहायता कर सकता हूँ। भाई को जल देने के लिये आप मुझे जल के समीप ले चलें। पुनः आप लोगों के कार्य सिद्धि के लिये उचित सलाह दूँगा। 'तथा इति' यह कर वे सम्पाति को समुद्र के तटपर ले गये ॥ ४९ ॥ वहाँ पहुँचकर सम्पाति जल में स्नान कर भाई को जल दिया। तब वानर गण सम्पाति को उसके स्थान पर ले गये। वहाँ बैठकर सम्पाति वानरों को हर्षित करता हुआ बोला—त्रिकूटपर्वत पर लङ्का नामक एक नगरी है। वहाँ पर श्रीसीताजी अशोक वन में राक्षसियों की निगरानी में रहती हैं ॥ ५०–५१ ॥

समुद्रमध्ये सा लङ्का शतयोजनदूरतः। दृश्यते मे न सन्देहः सीता च परिदृश्यते ॥५२॥
गृध्रत्वाद्दूरदृष्टिर्मे नात्र संशयितुं क्षमम्। शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं यस्तु लङ्घयेत् ॥५३॥
स एव जानकीं दृष्ट्वा पुनरायास्यति ध्रुवम्। अहमेव दुरात्मानं रावणं हन्तुमुत्सहे।
भ्रातुर्हन्तारमेकाकी किन्तु पक्षविवर्जितः ॥५४॥
यतध्वमतियत्नेन लङ्घितुं सरितां पतिम्। ततो हन्ता रघुश्रेष्ठो रावणं राक्षसाधिपम् ॥५५॥
उल्लङ्घ्य सिन्धुं शतयोजनायतं लङ्कां प्रविश्याथ विदेहकन्यकाम्।
दृष्ट्वा समाभाष्य च वारिधिं पुनस्ततुं समर्थः कतमो विचार्यताम् ॥५६॥
इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥७॥

अष्टम सर्ग

सम्पाति की आत्मकथा

श्रीमहादेव उवाच

अथ ते कौतुकाविष्टा सम्पातिं सर्ववानराः। पप्रच्छुर्भगवन् ब्रूहि स्वमुदन्तं त्वमादितः ॥१॥
सम्पातिः कथयामास स्ववृत्तान्तं पुरा कृतम्। अहं पुरा जटायुश्च भ्रातरौ रूढयौवनौ ॥२॥

निःसन्देह लङ्कापुरी यहाँ से सौ योजन दूर समुद्र के मध्य में है। मुझे लंकापुरी और सीताजी यहाँ से दिखाई पड़तीं हैं ॥ ५२ ॥ मैं गृध्र हूँ। अत एव मेरी दूरदृष्टि है, इसमें सन्देह का लेश नहीं है। आपलोगों में से जो सौ योजन विस्तृत समुद्र को लाँघने में समर्थ हो वह निश्चय ही जानकीजी को देखकर आ सकता है। मेरे भाई को मारने वाला दुरात्मा रावण के लिये तो अकेला मैं ही पर्याप्त हूँ, किन्तु मेरे पंख नहीं हैं, अत एव मैं असमर्थ हूँ ॥ ५३--५४ ॥ आप लोग समुद्र को पार करने का यत्न करें, पुनः राक्षसाधिप रावण को तो स्वयं रघुश्रेष्ठ मारेंगे ॥ ५५ ॥ शतयोजन विस्तृत इस समुद्र को लाङ्घ लंका में जाकर वैदेही जानकी को देख तथा उनसे बातचीत (सम्भाषण) कर पुनः समुद्र को पार कर आने में कौन समर्थ है, इसका आपलोग विचार करें ॥ ५६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय डॉ० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितयाभाषा-टीकयासहितः सप्तमसर्गः परिपूर्णः ॥ ७ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! सम्पाति का यह कथन सुनकर वे वानरगण उत्सुकता से सम्पाति से पूछे—भगवन् ! आप आदि से अपना इतिवृत्त सुनाइये ॥ १ ॥ तदनन्तर सम्पाति अपना पूर्व का वृत्तान्त

बलेन दर्पितावावां बलजिज्ञासया खगौ । सूर्यमण्डलपर्यन्तं गन्तुमुत्पतितौ मदात् ॥३॥
बहुयोजनसाहस्रं गतौ तत्र प्रतापितः । जटायुस्तं परित्रातुं पक्षैराच्छाद्य मोहतः ॥४॥
स्थितोऽहं रश्मिभिर्दग्धपक्षोऽस्मिन्विन्ध्यमूर्धनि । पतितो दूरपतनान्मूर्च्छितोऽहं कपीश्वराः ॥५॥
दिनत्रयात्पुनः प्राणसहितो दग्धपक्षकः । देशं वा गिरिकूटान्वा न जाने भ्रान्तमानसः ।६।
शनैरुन्मील्य नयने दृष्ट्वा तत्राश्रमं शुभम् । शनैः शनैराश्रमस्य समीपं गतवानहम् ॥७॥
चन्द्रमा नाम मुनिराट् दृष्ट्वा मां विस्मितोऽवदत् । सम्पाते किमिदं तेऽद्य विरूपं केन वा कृतम्
जानामि त्वामहं पूर्वमत्यन्तं बलवानसि । दग्धौ किमर्थं ते पक्षौ कथ्यतां यदि मन्यसे ॥९॥
ततः स्वचेष्टितं सर्वं कथयित्वातिदुःखितः । अब्रुवं मुनिशार्दूलं दह्येऽहं दाववह्निना ॥१०॥
कथं धारयितुं शक्तो विपक्षो जीवितं प्रभो । इत्युक्तोऽथ मुनिर्वीक्ष्य मां दयार्द्रविलोचनः ।११
शृणु वत्स वचो मेऽद्य श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम् । देहमूलमिदं दुःखं देहः कर्मसमुद्भवः ॥१२॥
कर्म प्रवर्तते देहेऽहंबुद्ध्या पुरुषस्य हि । अहङ्कारस्त्वनादिः स्यादविद्यासंभवो जडः ॥१३
चिच्छायया सदा युक्तस्तप्तायःपिण्डवत्सदा । तेन देहस्य तादात्म्याद्देहश्चेतनवान्भवेत् ॥१४॥

सुनाते हुए बोला—पूर्व समय में मैं और मेरा भाई जटायु जिस समय हमलोग पूर्ण युवा थे, अपने बल के मद से उन्मत्त होकर यह जानने के लिए कि हम कितने बलवान् हैं, अति घमण्ड से आकाश में सूर्यमण्डल तक जाने के लिए उड़े ॥ २-३ ॥ हजारों योजन ऊँचे चले जाने पर जटायु सूर्य के तेज से जलने लगा। उसकी रक्षा करने के लिये मैं मोहवश उसे अपने पंखों से ढँककर चलने लगा और अन्त में सूर्य की किरणों से मेरा पंख जल जाने के कारण यहाँ विन्ध्याचल पर्वत के शिखर पर गिर पड़ा और बहुत ऊँचाई से गिरने से मूर्च्छित हो गया ॥ ४-५ ॥ तीन दिन के बाद जब मुझे होश हुआ तो पंख जल जाने से मेरा मन भ्रम में पड़ गया और मैं यह नहीं समझ सका कि यह कौन देश अथवा पर्वत शिखर है ॥ ६ ॥ पुनः धीरे-धीरे आँख खोलने पर वहाँ मुझे एक सुन्दर आश्रम दिखाई दिया। तदनन्तर धीरे-धीरे मैं उस आश्रम के समीप गया ॥ ७ ॥

उस आश्रम में चन्द्रमा नामक मुनीश्वर रहते थे। मुझे देखकर विस्मयपूर्वक वे बोले—सम्पाति ! यह क्या ? तुझे इस प्रकार कुरूप कौन कर दिया ? ॥ ८ ॥ तुम्हें मैं पहले से ही जानता हूँ; तुम बड़े बलवान् हो, पुनः तुम्हारे पंख कैसे जल गये ? यदि उचित हो तो तू अपना वृत्तान्त सुनाओ ॥ ९ ॥ उन मुनिश्रेष्ठ को मैं सम्पूर्ण अपना इतिवृत्त सुनाया और अति दुःखित होकर बोला—अब मैं दावाग्नि में जलकर मरूँगा ॥ १० ॥ क्योंकि हे प्रभो ! पंखों के बिना किस प्रकार मैं अपना जीवन धारण कर सकता हूँ ! इस प्रकार कहने पर दयावश मुनिवर अपने नेत्रों में जल भरकर मेरी ओर देखते हुए बोले—वत्स ! अब तू मेरी बात सुनो, उसे सुनकर जैसी ईच्छा हो वैसा करना। देह ही इस दुःख का आश्रय है, तथा च देह कर्मजन्य है ॥ १२ ॥ पुरुष जब शरीर में अहङ्कार बुद्धि रखता है तब कर्म की प्रवृत्ति होती है। यह कर्म अविद्या से उत्पन्न जड अहङ्कार अनादि है ॥ १३ ॥ तप्त लौहपिण्ड की भाँति अहङ्कार सर्वदा चिदाभास

देहोऽहमिति बुद्धिः स्यादात्मनोऽहङ्कृतेर्बलात् । तन्मूल एष संसारः सुखदुःखादिसाधकः ॥१५॥
आत्मनो निर्विकारस्य मिथ्या तादात्म्यतः सदा । देहोऽहं कर्मकर्ताहमिति सङ्कल्प्य सर्वदा ।१६॥
जीवः करोति कर्माणि तत्फलैर्बद्धयतेऽवशः । ऊर्ध्वाधो भ्रमते नित्यं पापपुण्यात्मकः स्वयम्१७
कृतं मयाधिकं पुण्यं यज्ञदानादि निश्चितम् । स्वर्गं गत्वा सुखं भोक्ष्य इति सङ्कल्पवान्भवेत् १८
तथैवाध्यासतस्तत्र चिरं भुक्त्वा सुखं महत् । क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कर्मचोदितः ॥१९॥
पतित्वा मण्डले चेन्दोस्ततो नीहारसंयुतः । भूमौ पतित्वा व्रीह्यादौ तत्र स्थित्वा चिरं पुनः
भूत्वा चतुर्विधं भोज्यं पुरुषैर्भुज्यते ततः । रेतो भूत्वा पुनस्तेन ऋतौ स्त्रीयोनिसिञ्चितः २१
योनिरक्तेन संयुक्तं जरायुपरिवेष्टितम् । दिनेनैकेन कललं भूत्वा रूढत्वमाप्नुयात् ॥२२॥
तत्पुनः पञ्चरात्रेण बुद्बुदाकारतामियात् । सप्तरात्रेण तदपि मांसपेशित्वमाप्नुयात् ॥२३॥
पक्षमात्रेण सा पेशिरुधिरेण परिप्लुता । तस्या एवाङ्कुरोत्पत्तिः पञ्चविंशतिरात्रिषु ॥२४॥
ग्रीवा शिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवंशस्तथोदरम् । पञ्चधाङ्गानि चैकैकं जायन्ते मासतः क्रमात् ।२५
पाणिपादौ तथा पार्श्वः कटिर्जानु तथैव च । मासद्वयात्प्रजायन्ते क्रमेणैव न चान्यथा ॥२६॥

से व्याप्त है। उस चिदाभास विशिष्ट अहङ्कार का देह से तादात्म्य सम्बन्ध होने से देह चेतनायुक्त होता है ॥ १४ ॥ अहङ्कार के कारण ही आत्मा को यह प्रतीति होती है कि "मैं देह हूँ", इसी से यह सुख दुःखादि देनेवाला जन्म-मरणरूप यह संसार प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

इस देह का निर्विकार आत्मा के साथ मिथ्या तादात्म्य सम्बन्ध होने से जीव सर्वदा मैं देह हूँ यह संकल्प कर अपने कर्त्ता को मानकर अनेक कर्म करता है और विवश होकर उनके फलों में बँधता है। इस प्रकार पाप-पुण्य के वश में होकर हमेशा ऊँच-नीच योनियों में भ्रमण करता रहता है ॥ १६–१७ ॥ मैं अत्यधिक यज्ञ-दान पुण्य आदि किया हूँ। अत-एव मैं निश्चय ही स्वर्ग में जाकर सुखभोग करूँगा ॥ १८ ॥ यह अध्यास से वहाँ चिर समय तक महान् सुखभोग कर पुण्यक्षय हो जाने पर प्रारब्ध की प्रेरणा से इच्छा न रहते हुए भी अधः पतित होता है ॥ १९ ॥ सर्व प्रथम वह चन्द्रमण्डल पर गिरता है और पुनः चन्द्र किरणों के द्वारा कुहरा के साथ पृथ्वीपर आकर बहुत दिनों तक व्रीहि आदि धान्यों में रहता है ॥ २० ॥ पुनः वह चार प्रकार के अन्न रूप से पुरुषों द्वारा खाया जाता है और वीर्यरूप में परिणत हो जाता है। तब वह उसके द्वारा ऋतु काल में स्त्री भी योनियों में डाला जाता है ॥ २१ ॥ योनि स्थित रज से मिलकर एक दिन में वह झिल्ली से परिवेष्टित "कलल" होकर थोड़ा कठोर हो जाता है ॥ २२ ॥

पुनः पाँच रात्रि में वह बुद्बुदाकार होकर सात रात्रि व्यतीत होने पर मांसपेशी के समान अण्डाकार हो जाता है ॥ २३ ॥ पन्द्रह दिन के अन्दर उस माँसपेशी में रक्त भर जाता है और पचीस रात्रि के बाद उसमें अङ्कुर उत्पन्न होने लगता है ॥ २४ ॥ एक मास के बाद उसमें एक-एक कर क्रमशः ग्रीवा, शिर, कन्धा, रीढ की हड्डी और पेट ये पाँच अङ्ग, उत्पन्न हो जाते हैं ॥ २५ ॥ पुनः दो माह में क्रमशः हाथ-

त्रिभिर्मासैः प्रजायन्ते अङ्गानां सन्धयः क्रमात् । सर्वाङ्गुल्यः प्रजायन्ते क्रमान्मासचतुष्टये २७।
नासा कर्णौ च नेत्रे च जायन्ते पञ्चमासतः । दन्तपङ्क्तिर्नखा गुह्यं पञ्चमे जायते तथा ॥२८॥
अर्वाक्षण्मासतश्छिद्रं कर्णयोर्भवति स्फुटम् । पायुर्मेढ्रमुपस्थं च नाभिश्चापि भवेन्नृणाम् ॥२९॥
सप्तमे मासि रोमाणि शिरः केशास्तथैव च । विभक्तावयवत्वं च सर्वं सम्पद्यतेऽष्टमे ॥३०॥
जठरे वर्धते गर्भः स्त्रिया एवं विहङ्गम । पञ्चमे मासि चैतन्यं जीवः प्राप्नोति सर्वशः ३१
नाभिसूत्राल्परन्ध्रेण मातृभुक्तान्नसारतः । वर्धते गर्भगः पिण्डो न म्रियेत स्वकर्मतः ॥३२॥
स्मृत्वा सर्वाणि जन्मानि पूर्वकर्माणि सर्वशः । जठरानलतप्तोऽयमिदं वचनमब्रवीत् ॥३३॥
नानायोनिसहस्रेषु जायमानोऽनुभूतवान् । पुत्रदारादिसम्बन्धं कोटिशः पशुबान्धवान् ॥३४।
कुटुम्बभरणासक्त्या न्यायान्यायैर्धनार्जनम् । कृतं नाकरवं विष्णुचिन्तां स्वप्नेऽपि दुर्भगः ३५।
इदानीं तत्फलं भुञ्जे गर्भदुःखं महत्तरम् । अशाश्वते शाश्वतवद्देहे तृष्णासमन्वितः ॥३६॥
अकार्याण्येव कृतवान्न कृतं हितमात्मनः । इत्येवं बहुधा दुःखमनुभूय स्वकर्मतः ॥३७॥
कदा निष्क्रमणं मे स्याद्गर्भान्निरयसन्निभात् । इत ऊर्ध्वं नित्यमहं विष्णुमेवानुपूजये ॥३८॥

पाँव, पसलियाँ, कमर और घुटने बन जाते हैं। इस क्रम में व्युत्क्रम नहीं होता ॥ २६ ॥ इसी प्रकार तीन माह में उसमें अङ्गों की सन्धियाँ तथा चार महीने में उसमें अङ्गुलियाँ उत्पन्न हो जाती हैं ॥ २७ ॥ पाँच मास होने पर नाक, कान, नेत्र और पञ्चम मास में ही दाँत के मसूढे, नख और गुह्यस्थान निर्मित होते हैं ॥ २८ ॥

छठे मास के आरम्भ में ही कानों के छिद्र, गुदा, स्त्री-पुरुष की योनि के अनुसार लिंग तथा नाभि उत्पन्न होते हैं ॥ २९ ॥ सातवें महीने में सभी अङ्ग पृथक्-पृथक् स्पष्ट हो जाते हैं ॥ ३० ॥ हे पक्षिन् ! इस प्रकार स्त्री के गर्भाशय में गर्भ बढ़ता है। पाँचवें महीने में जीव की चेतना शक्ति प्राप्त होती है ॥३१॥ माता में द्वारा भोजन किये हुए रस को गर्भस्थित पिण्ड अपनी नाभि में लगे हुए नाल के सूक्ष्मछिद्र के द्वारा प्राप्त करता है। और अपने कर्मवश जीवित रहता है ॥ ३२ ॥ अपने सभी पूर्वजन्म और कर्मों का उस समय जीव स्मरण करके जठरानल में सन्तप्त होकर यह कहता है कि मैं पहले कई हजार योनियों में उत्पन्न होकर करोड़ों बन्धु-बान्धव, पशु, स्त्री पुत्रादि सम्बन्ध का अनुभव किया हूँ ॥ ३३-३४ ॥ अभागा मैं स्वप्न में भी भगवान् विष्णु का स्मरण नहीं किया; केवल अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण में लिप्त होकर न्याय अथवा अन्याय से धन कमाने में लगा रहा ॥ ३५ ॥

उसके परिणाम स्वरूप अब मैं गर्भ के इस महान दुःख को भोग रहा हूँ और इस नश्वर शरीर को तृष्णा में फँसा हुआ हूँ ॥ ३६ ॥ मैं अकार्य कर्म ही करता था और अपना हित कार्य नहीं किया। अत-एव अपने पूर्वकर्म के अनुसार मैं इस प्रकार अति दुःख भोग करता हूँ ॥ ३७ ॥ न जाने इस नरक तुल्य कर्म से मेरा कब निस्तार होगा। पुनः मैं हमेशा श्रीविष्णु भगवान् की उपासना ही करूँगा ॥ ३८ ॥ यह चिन्ता

इत्यादि चिन्तयन् जीवो योनियन्त्रप्रपीडितः। जायमानोऽतिदुःखेन नरकात्पातकी यथा ॥३९॥
पूतिव्रणान्निपतितः कृमिरेष इवापरः। ततो बाल्यादिदुःखानि सर्व एव विभुञ्जते ।४०।
त्वया चैवानुभूतानि सर्वत्र विदितानि च। न वर्णितानि मे गृध्र यौवनादिषु सर्वतः ॥४१॥
एवं देहोऽहमित्यस्मादभ्यासान्निरयादिकम्। गर्भवासादिदुःखानि भवन्त्यभिनिवेशतः ॥४२॥
तस्माद्देहद्वयादन्यमात्मानं प्रकृतेः परम्। ज्ञात्वा देहादिममतां त्यक्त्वात्मज्ञानवान् भवेत्
जाग्रदादिविनिर्मुक्तं सत्यज्ञानादिलक्षणम्। शुद्धं बुद्धं सदा शान्तमात्मानमवधारयेत् ॥४४॥
चिदात्मनि परिज्ञाते नष्टे मोहेऽज्ञसम्भवे। देहः पततु वारब्धकर्मवेगेन तिष्ठतु ॥४५॥
योगिनो नहि दुःखं वा सुखं वाज्ञानसम्भवम्। तस्माद्देहेन सहितो यावत्प्रारब्धसङ्क्षयः ॥४६॥
तावत्तिष्ठ सुखेन त्वं धृतकञ्चुकसर्पवत्। अन्यद्वक्ष्यामि ते पक्षिन् शृणु मे परमं हितम् ४७॥
त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणोऽव्ययः। रावणस्य वधार्थाय दण्डकानागमिष्यति ॥४८॥
सीतया भार्यया सार्धं लक्ष्मणेन समन्वितः। तत्राश्रमे जनकजां भ्रातृभ्यां रहिते वने ॥४९॥
रावणश्चौरवन्नीत्वा लङ्कायां स्थापयिष्यति। तस्याः सुग्रीवनिर्देशाद्वानराः परिमार्गणे ॥५०॥

करते-करते वह जीव योनियन्त्र से प्रपीडित हो अतिकष्ट से जन्म लेता है। जिस प्रकार कोई पापी नरक से निकलता है ॥ ३९ ॥ उस समय यह दुर्गन्धित घाव से पतित कीड़े के समान होता है और इसे बाल्य आदि अवस्थाओं के क्लेश भोगने पड़ते हैं। इस प्रकार सभी देहधारियों को ये कष्ट उठाने पड़ते हैं ॥ ४० ॥ हे गृध्र! यौवनादि सभी अवस्थाओं में होने वाले सभी दुःखों को तू स्वयं देखे हो और सभी लोग इन्हें जानते ही हैं, अत-एव मैं इसका वर्णन नहीं किया ॥ ४१ ॥

मैं देह हूँ, इस प्रकार अभ्यास से उत्पन्न देहाभिमान के कारण जीव को नरक और गर्भवास आदि के अनेक दुःख उठाने पड़ते हैं ॥ ४२ ॥ अत-एव मनुष्य को यह चाहिए कि अपने आत्मा को प्रवृत्ति से परे, स्थूल-सूक्ष्म दोनों प्रकार के शरीरों से पृथक् समझकर देहादि की ममता छोड़कर आत्मज्ञान सम्पन्न हो ॥ ४३ ॥ हमेशा आत्मा को जाग्रत आदि अवस्थाओं से रहित, सत्-चित् स्वरूप, शुद्ध-बुद्ध और शान्त समझे ॥ ४४ ॥ चित्स्वरूप आत्मा का ज्ञान हो जाने पर अज्ञान जनित मोह जब नष्ट हो जाता है, तब कर्म के अनुसार यह शरीर स्थित रहे अथवा नष्ट हो जाय, योगी को किसी प्रकार अज्ञान जनित सुख दुःख नहीं होता। तुम्हारा प्रारब्ध जब तक क्षय नहीं हो जाता, तब तक केंचुल युक्त सर्प की भाँति देह धारण कर आनन्दपूर्वक रहो। हे पक्षिन्! इसके अतिरिक्त तुम्हारे परमहित की बात बतलाता हूँ सुनो ॥ ४५--४७ ॥ त्रेतायुग में महाराज दशरथ के यहाँ अविनाशी नारायण अवतार लेकर रावण का बध करने के लिये अपनी स्त्री सीता और अनुज लक्ष्मण के साथ दण्डकारण्य में आयेंगे। उस स्थान पर दोनों भाइयों के तपोवन से दूर चले जाने पर रावण श्रीजानकीजी को एकान्त आश्रम से चोर की भाँति चुराकर लङ्का में रखेगा। तब वानरराज सुग्रीव की आज्ञा से उन्हें अन्वेषण करते हुए कुछ वानर गण समुद्र तटपर आयेंगे, वहाँ पर

आगमिष्यन्ति जलधेस्तीरं तत्र समागमः । त्वया तैः कारणवशाद्भविष्यति न संशयः ॥५१॥
तदा सीतास्थितिं तेभ्यः कथयस्व यथार्थतः । तदैव तव पक्षौ द्वावुत्पत्स्येते पुनर्नवौ ॥५२॥

सम्पातिरुवाच

बोधयामास मां चन्द्रनामा मुनिकुलेश्वरः । पश्यन्तु पक्षौ मे जातौ नूतनावतिकोमलौ ॥५३॥
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि सीतां द्रक्ष्यथ निश्चयम् । यत्नं कुरुध्वं दुर्लङ्घ्यसमुद्रस्य विलङ्घने ५४॥

यन्नामस्मृतिमात्रतोऽपरिमितं संसारवारांनिधिं
तीर्त्वा गच्छति दुर्जनोऽपि परमं विष्णोः पदं शाश्वतम् ।
तस्यैव स्थितिकारिणस्त्रिजगतां रामस्य भक्ताः प्रिया
यूयं किं न समुद्रमात्रतरणे शक्ताः कथं वानराः ॥५५॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥८॥

निःसन्देह किसी कारण से उनका तुमसे समागम होगा ॥ ४८--५१ ॥ तदनन्तर तुम उन्हें सीता के बारे में यथार्थतः बतला देना । उसी समय तुम्हारे नवीन पङ्ख उत्पन्न होंगे ॥ ५२ ॥

सम्पाति बोला—इस प्रकार चन्द्रमा नामक मुनीश्वर मुझे समझाये । नूतन एवं कोमल पङ्ख निकल आए यह देखिए ॥ ५३ ॥ अब मैं जाना चाहता हूँ, आप लोगों का कल्याण हो । निःसन्देह आपलोग सीताजी को देखेंगे । इस दुर्लङ्घ्य समुद्र को लाङ्घने का उपाय आपलोग कीजिए ॥ ५४ ॥ हे वानरगण ! जिनके नाम की स्मृति मात्र से दुर्जन भी इस अपार संसार-सागर को पार कर श्रीविष्णु भगवान् के सनातन पद को प्राप्त करते हैं, आप लोग उन्हीं त्रिलोकी श्रीरामचन्द्र के प्रिय भक्त हैं । पुनः इस क्षुद्र समुद्र को लाङ्घने में आपलोग समर्थ क्यों नहीं होंगे ? ॥ ५५ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-
निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
अष्टमसर्गः परिपूर्णः ॥ ८ ॥

—*—

नवम सर्ग

समुद्रोल्लङ्घन की मन्त्रणा

श्रीमहादेव उवाच

गते विहायसा गृध्रराजे वानरपुङ्गवाः । हर्षेण महताविष्टाः सीतादर्शनलालसाः ॥१॥
ऊचुः समुद्रं पश्यन्तो नक्रचक्रभयङ्करम् । तरङ्गादिभिरुन्नद्धमाकाशमिव दुर्ग्रहम् ॥२॥
परस्परमवोचन्वै कथमेनं तरामहे । उवाच चाङ्गदस्तत्र शृणुध्वं वानरोत्तमाः ॥३॥
भवन्तोऽत्यन्तबलिनः शूराश्च कृतविक्रमाः । को वाऽत्र वारिधिं तीर्त्वा राजकार्यं करिष्यति ॥४॥
एतेषां वानराणां स प्राणदाता न संशयः । तदुत्तिष्ठतु मे शीघ्रं पुरतो यो महाबलः ॥५॥
वानराणां च सर्वेषां रामसुग्रीवयोरपि । स एव पालको भूयान्नात्र कार्या विचारणा ॥६॥
इत्युक्ते युवराजेन तूष्णीं वानरसैनिकाः । आसन्नोचुः किञ्चिदपि परस्परविलोकिनः ॥७॥

अङ्गद उवाच

उच्यतां वै बलं सर्वैः प्रत्येकं कार्यसिद्धये । केन वा साध्यते कार्यं जानीमस्तदनन्तरम् ॥८॥
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रोचुर्वीरा बलं पृथक् । योजनानां दशारभ्य दशोत्तरगुणं जगुः ॥९॥
शतादर्वाग्जाम्बवांस्तु प्राह मध्ये वनौकसाम् । पुरा त्रिविक्रमे देवे पादं भूमानलक्षणम् ॥१०॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! गृध्रराज के आकाशमार्ग से जाने के अनन्तर सीताजी के दर्शन के लिये उत्कण्ठित वानरेश्वर अत्यन्त हर्षित हुए ॥ १ ॥ परन्तु समुद्र मगर और भँवर आदि से युक्त और भयङ्कर उन्नत तरङ्गों वाले आकाश के समान दुर्लङ्घ्य है, यह देखकर आपस में कहने लगे कि हमलोग इसे कैसे पार कर सकेंगे। तत्पश्चात् अङ्गदजी बोले—हे वानरश्रेष्ठगण ! आपलोग सुनें ॥ २–३ ॥ आपलोग अत्यन्त बलवान् शूरवीर और पराक्रमी हैं। अत-एव आप लोगों में समुद्र पार कर राज्यकार्य करे, ऐसा कौन है ॥ ४ ॥

निःसन्देह इन वानरों का वह प्राणदाता होगा। जो महाबली है, वह शीघ्र उठकर मेरे सामने आवे ॥ ५ ॥ वह निश्चय ही वानरों का, सुग्रीव का और श्रीरामचन्द्रजी का रक्षा करने वाला होगा ॥ ६ ॥ इस प्रकार युवराज अङ्गद के कहने पर सभी वानर सेनापति चुपचाप बैठे रहे। कोई कुछ भी नहीं बोला और आपस में परस्पर एक दूसरे का मुख देखते रहे ॥ ७ ॥ अङ्गद बोले—आप लोग इस कार्य को करने के लिये अपनी शक्ति का वर्णन करें। तत्पश्चात् यह पता चल जाएगा कि कौन यह कार्य सिद्ध कर सकेगा ॥ ८ ॥ अङ्गदजी का यह कथन सुनकर वीर वानरगण पृथक्-पृथक् अपना बल वर्णन करने लगे। दशयोजन से लेकर क्रमशः दशगुणोत्तर जाने में अपना सामर्थ्य प्रकट किये ॥ ९ ॥ सबके अन्त में सौ योजन जाने का बल जाम्बवन्त बताये। वे बोले—पूर्व समय में भगवान् त्रिविक्रम जब अवतार लिये तो

त्रिःसप्तकृत्वोऽहमगां प्रदक्षिणविधानतः । इदानीं वार्धकग्रस्तो न शक्नोमि विलङ्घितुम् ११॥
अङ्गदोऽप्याह मे गन्तुं शक्यं पारं महोदधेः । पुनर्लङ्घनसामर्थ्यं न जानाम्यस्ति वा न वा ।१२॥
तमाह जाम्बवान्वीरस्त्वं राजा नो नियामकः। न युक्तं त्वां नियोक्तुं मे त्वं समर्थोऽसि यद्यपि ॥

अङ्गद उवाच

एवं चेत्पूर्ववत्सर्वे स्वप्स्यामो दर्भविष्टरे । केनापि न कृतं कार्यं जीवितुं च न शक्यते ॥१४॥
तमाह जाम्बवान्वीरो दर्शयिष्यामि ते सुत । येनास्माकं कार्यसिद्धिर्भविष्यत्यचिरेण च ॥१५॥
इत्युक्त्वा जाम्बवान्प्राह हनूमन्तमवस्थितम्। हनूमन्किं रहस्तूष्णीं स्थीयते कार्यगौरवे ॥१६॥
प्राप्तेऽङ्गनेव सामर्थ्यं दर्शयाद्य महाबल । त्वं साक्षाद्वायुतनयो वायुतुल्यपराक्रमः ॥१७॥
रामकार्यार्थमेव त्वं जनितोऽसि महात्मना । जातमात्रेण ते पूर्वं दृष्ट्वोद्यन्तं विभावसुम् ॥१८॥
पक्वं फलं जिघृक्षामीत्युत्प्लुतं बालचेष्टया । योजनानां पञ्चशतं पतितोऽसि ततो भुवि ॥१९॥
अतस्त्वद्बलमाहात्म्यं को वा शक्नोति वर्णितुम् । उत्तिष्ठ कुरु रामस्य कार्यं नः पाहि सुव्रत ।२०॥
श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनुमानतिहर्षितः । चकार नादं सिंहस्य ब्रह्माण्डं स्फोटयन्निव ॥२१॥

तब मैं पृथ्वी के समान उनके चरण के चारो ओर इक्कीस बार परिक्रमा किया था। परन्तु अब मैं वृद्ध हो गया हूँ, अत-एव मैं समुद्र को पार नहीं कर सकता ॥ १०–११ ॥

अङ्गदजी भी बोले—मैं इस महासागर को पार कर सकता हूँ किन्तु लौटकर आने में मैं समर्थ हूँ या नहीं यह नहीं कह सकता ॥ १२ ॥ अङ्गद की बात सुनकर जाम्बवान् उनसे बोले—अङ्गदजी आप इस कार्य को करने में यद्यपि समर्थ हैं तथापि आपको इस कार्य में नियुक्त करना उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि आप हमलोगों के नायक और नियामक हैं ॥ १३ ॥ तब अङ्गदजी बोले—यह बात है, तो हमलोगों को पुनः कुशासनों पर पड़ा रहना चाहिये। यह कर्म तो कोई किया नहीं। तब हम जीवित कैसे रह सकते हैं ? ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् वीरवर जाम्बवान्जी बोले—बेटा ! जिनके द्वारा हमलोगों का कार्य सिद्ध होगा उस वीर को मैं दिखलाता हूँ ॥ १५ ॥ यह कहकर बैठे हुए हनुमानजी से जाम्बवान बोले—हे हनुमान् ! यह कार्यगौरव के उपस्थित होने पर आप एकान्त में अनजान की भाँति चुप-चाप क्यों बैठे हैं ? हे महाबल ! आप साक्षात् वायुदेव के पुत्र और बायु के समान बलवान हैं। अत-एव आज आप अपना पराक्रम दिखलाइये ॥ १६–१७ ॥ महात्मा वायु के द्वारा आप श्रीरामचन्द्र के कार्य के लिये ही उत्पन्न हुए हैं। जन्म के समय में ही उदित सूर्य को देखकर इस पके हुए फल को ग्रहण करने की ईच्छा से बाललीला में पाँच सौ योजन ऊपर उछलकर पुनः जमीन पर गिरे थे ॥ १८–१९ ॥ अत-एव आपके बल की महत्ता को कौन वर्णन कर सकता है। हे सुव्रत ! आप उठें और श्रीरामचन्द्रजी का कार्य कर हमलोगों की रक्षा कीजिये ॥ २० ॥ जाम्बवान् का यह कथन सुनकर हनुमानजी अति हर्षित हो समस्त ब्रह्माण्ड को कम्पायमान करने की भाँति घोर-सिंहनाद किये ॥ २१ ॥

बभूव पर्वताकारस्त्रिविक्रम इवापरः । लङ्घयित्वा जलनिधिं कृत्वा लङ्कां च भस्मसात् २२
रावणं सकुलं हत्वा नेष्ये जनकनन्दिनीम् । यद्वा बद्ध्वा गले रज्ज्वा रावणं वामपाणिना २३
लङ्कां सपर्वतां धृत्वा रामस्याग्रे क्षिपाम्यहम् । यद्वा दृष्ट्वैव यास्यामि जानकीं शुभलक्षणाम् ॥२४॥
श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं जाम्बवानिदमब्रवीत् । दृष्ट्वैवागच्छ भद्रं ते जीवन्तीं जानकीं शुभाम् ॥२५॥
पश्चाद्रामेण सहितो दर्शयिष्यसि पौरुषम् । कल्याणं भवताद्भद्र गच्छतस्ते विहायसा ॥२६॥
गच्छन्तं रामकार्यार्थं वायुस्त्वामनुगच्छतु । इत्याशीर्भिः समामन्त्र्य विसृष्टः प्लवगाधिपैः २७
महेन्द्राद्रिशिरो गत्वा बभूवाद्भुतदर्शनः ॥२८॥

महानगेन्द्रप्रतिमो महात्मा सुवर्णवर्णोऽरुणचारुवक्त्रः ।
महाफणीन्द्राभसुदीर्घबाहुर्वातात्मजोऽदृश्यत सर्वभूतैः ॥२९॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे नवमः सर्गः ॥९॥

वे दूसरे त्रिविक्रम भगवान् के समान पर्वताकार हो गये । वे बोले—हे वानरों ! मैं समुद्र को पारकर लङ्का को भस्म कर दूँगा और कुल सहित रावण को मारकर श्रीजानकीजी को ले आऊँगा, अथवा रावण के गले में रस्सी बाँधकर बायें हाथ पर पर्वत सहित लङ्का को उठाकर श्रीराम के आगे मैं धर दूँ । अथवा केवल शुभलक्षणा श्रीजानकीजी को ही देखकर चला आऊँ ॥ २२-२४ ॥ श्रीहनुमानजी का यह कथन सुनकर जाम्बवान्जी बोले—हे वीर ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम शुभलक्षणा जानकीजी को सकुशल देखकर ही केवल चले आओ ॥ २५ ॥

पुनः श्रीरामचन्द्रजी के साथ जाकर अपना पौरुष दिखलाना । हे भद्र ! आकाशमार्ग जाते हुए तुम्हारा कल्याण हो ॥ २६ ॥ रामकार्य के लिये जाते हुए तुम्हारा वायु अनुगमन करें । इस प्रकार आशिर्वाद देकर तथा वानरों के अधिपतियों द्वारा विदा होकर हनुमान्जी महेन्द्राचल के शिखर पर चढ़ गये । वहाँ पर वे अद्भुत रूप धारण किये ॥ २७-२८ ॥ उस समय महात्मा हनुमानजी महान् पर्वत-राज के समान विशाल शरीर, सुवर्ण की कान्ति, बाल सूर्य के समान अरूणवर्ण, मनोहर मुख और महान् फणीन्द्र के समान विशाल भुजावाले सभी प्राणियों को दिखायी देने लगे ॥ २९ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे किष्किन्धाकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकया
सहितः नवमसर्गः परिपूर्णः ॥ ९ ॥

परिपूर्णमिदं किष्किन्धाकाण्डम्

ॐ

अध्यात्मरामायण

सुन्दरकाण्ड

प्रथम सर्ग

हनुमानजी का समुद्रोल्लङ्घन और लङ्का में प्रवेश करना

श्रीमहादेव उवाच

शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं मकरालयम् । लिलङ्घयिषुरानन्दसन्दोहो मारुतात्मजः ॥१॥
ध्यात्वा रामं परात्मानमिदं वचनमब्रवीत् । पश्यन्तु वानराः सर्वे गच्छन्तं मां विहायसा ॥२॥
अमोघं रामनिर्मुक्तं महाबाणमिवाखिलाः । पश्याम्यद्यैव रामस्य पत्नीं जनकनन्दिनीम् ॥३॥
कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं पुनः पश्यामि राघवम्। प्राणप्रयाणसमये यस्य नाम सकृत्स्मरन् ॥४॥
नरस्तीर्त्वा भवाम्भोधिमपारं याति तत्पदम् । किं पुनस्तस्य दूतोऽहं तदङ्गाङ्गुलिमुद्रिकः ॥५॥
तमेव हृदये ध्यात्वा लङ्घयाम्यल्पवारिधिम् । इत्युक्त्वा हनुमान्बाहू प्रसार्यायतवालधिः ॥६॥
ऋजुग्रीवोर्ध्वदृष्टिः सन्नाकुञ्चितपदद्वयः । दक्षिणाभिमुखस्तूर्णं पुप्लुवेऽनिलविक्रमः ॥७॥
आकाशात्त्वरितं देवैर्वीक्ष्यमाणो जगाम सः । दृष्ट्वाऽनिलसुतं देवा गच्छन्तं वायुवेगतः ॥८॥
परीक्षणार्थं तत्त्वस्य वानरस्येदमब्रुवन् । गच्छत्येष महासत्त्वो वानरो वायुविक्रमः ॥९॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! शत योजन विस्तृत मकरादि दुष्ट जन्तुओं से पूर्ण समुद्र को लाङ्घने के लिये उद्यत आनन्दघन श्रीहनुमानजी परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण कर बोले—हे वानरगण ! आप लोग देखें, मैं भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के अमोघ बाण के समान आकाश मार्ग से जा रहा हूँ। आज ही मैं रामप्रिया श्रीजनकनन्दिनी का दर्शन करूँगा। प्राण-प्रयाण समय में एक बार जिनके नाम का स्मरण करने से मनुष्य अपार भवसागर को पार कर उनके परम पद को प्राप्त करता है; मैं उनका दूत उनके अंगुली की मुद्रिका लिये हुए अपने हृदय में उनका ध्यान करता हुआ इस तुच्छ समुद्र को पार कर जाऊँगा। यह कह कर श्रीहनुमानजी अपनी भुजा फैलाकर पूँछ सीधा किये और शीघ्र ही गरदन को सीधा कर ऊपर की ओर देखकर पैर को सकुञ्चित कर दक्षिण की ओर मुख कर वायुवेग में उड़े ॥ १—७ ॥ देवताओं के देखते-देखते अति वेग से जाते हुए देखकर उनके सामर्थ्य की परीक्षा लेने के लिये देवगण आपस में विचार किये—

लङ्कां प्रवेष्टुं शक्तो वा न वा जानीमहे बलम् । एवं विचार्य नागानां मातरं सुरसाभिधाम् ॥१०॥
अब्रवीद्देवतावृन्दः कौतूहलसमन्वितः । गच्छ त्वं वानरेन्द्रस्य किञ्चिद्विघ्नं समाचर ॥११॥
ज्ञात्वा तस्य बलं बुद्धिं पुनरेहि त्वरान्विता । इत्युक्ता सा ययौ शीघ्रं हनुमद्विघ्नकारणात् ।१२॥
आवृत्य मार्गं पुरतः स्थित्वा वानरमब्रवीत् । एहि मे वदनं शीघ्रं प्रविशस्व महामते ॥१३॥
देवैस्त्वं कल्पितो भक्ष्यः क्षुधासम्पीडितात्मनः। तामाह हनुमान्मातरहं रामस्य शासनात् ॥१४॥
गच्छामि जानकीं द्रष्टुं पुनरागम्य सत्वरः । रामाय कुशलं तस्याः कथयित्वा त्वदाननम् ॥१५॥
निवेक्ष्ये देहि मे मार्गं सुरसायै नमोस्तु ते । इत्युक्त्वा पुनरेवाह सुरसा क्षुधितास्म्यहम् ॥१६॥
प्रविश्य गच्छ मे वक्त्रं नो चेत्त्वां भक्षयाम्यहम् । इत्युक्तो हनुमानाह मुखं शीघ्रं विदारय ॥१७॥
प्रविश्य वदनं तेऽद्य गच्छामि त्वरयान्वितः । इत्युक्त्वा योजनायामदेहो भूत्वा पुरः स्थितः १८
दृष्ट्वा हनुमतो रूपं सुरसा पञ्चयोजनम् । मुखं चकार हनुमान् द्विगुणं रूपमादधत् ॥१९॥
ततश्चकार सुरसा योजनानां च विंशतिम् । वक्त्रं चकार हनुमांस्त्रिंशद्योजनसम्मितम् ॥२०॥
ततश्चकार सुरसा पञ्चाशद्योजनायतम् । वक्त्रं तदा हनूमांस्तु बभूवाङ्गुष्ठसन्निभः ॥२१॥

महाशक्तिशाली वायु के समान पराक्रमवाला यह वानर जा रहा है ॥ ८-९ ॥ परन्तु यह लङ्का में प्रवेश कर सकता है या नहीं यह विदित नहीं होता। अत-एव इसके बल का परीक्षण करना चाहिए । इस प्रकार विचार कर कुतूहलवश नागमाता सुरसा से वे लोग बोले—तुम वानरेन्द्र के पास जाकर कुछ विघ्न उपस्थित करो और इसके बल-बुद्धि का पता लगाकर शीघ्र ही चली आओ । देवताओं के यह कहने पर वह सुरसा शीघ्र ही हनुमानजी के पास विघ्न उपस्थित करने के लिए आयी ॥ १०–१२ ॥

वह सामने स्थित हो हनुमानजी से बोली—हे महामते ! आओ और शीघ्र मेरे मुख में प्रवेश करो । भुख से प्रपीडित मुझे देवताओं ने मेरे लिये तुम्हें भक्ष्य रूप में भेजा है । सुरसा का यह कथन सुनकर हनुमानजी बोले—हे मातः ! मैं श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से श्रीजानकीजी को देखने के लिये जा रहा हूँ। शीघ्र ही उनका दर्शन कर और श्रीसीताजी का कुशल-समाचार श्रीरघुनाथजी को सुनाकर पुनः तेरे मुख में मैं प्रवेश करूँगा । मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ, तू मुझे जाने दे । यह सुनकर सुरसा बोली—मैं भुखी हूँ। अत-एव एक बार मेरे मुख में प्रवेश कर पुनः तुम चले जाना, नहीं तो तुझे मैं खाऊँगी। तत्पश्चात् हनुमानजी बोले—तू शीघ्र अपना मुख खोलो शीघ्र ही तुम्हारे मुख में प्रवेश कर मैं लङ्का को जाऊँगा । यह कहकर एक योजन का शरीर धारण कर हनुमानजी सामने खड़े हो गये ॥१३–१८॥ हनुमानजी का यह रूप देखकर सुरसा पाँच योजन अपना मुख फैलायी; तब हनुमानजी अपना शरीर सुरसा से दूना कर लिये ॥ १९ ॥ पुनः सुरसा अपना मुख बीस योजन फैलायी । तब हनुमानजी अपना मुख तीस योजन कर लिये ॥ २० ॥ तत्पश्चात् पचास योजन में सुरसा अपना मुख फैलायी । तदनन्तर हनुमानजी अङ्गुष्ठ

प्रविश्य वदनं तस्याः पुनरेत्य पुरः स्थितः । प्रविष्टो निर्गतोऽहं ते वदनं देवि ते नमः ॥२२॥
एवं वदन्तं दृष्ट्वा सा हनूमन्तमथाब्रवीत् । गच्छ साधय रामस्य कार्यं बुद्धिमतां वर ॥२३॥
देवैः सम्प्रेषिताहं ते बलं जिज्ञासुभिः कपे । दृष्ट्वा सीतां पुनर्गत्वा रामं द्रक्ष्यसि गच्छ भोः २४॥
इत्युक्त्वा सा ययौ देवलोकं वायुसुतः पुनः । जगाम वायुमार्गेण गरुत्मानिव पक्षिराट् ॥२५॥
समुद्रोऽप्याह मैनाकं मणिकाञ्चनपर्वतम् । गच्छत्येष महासत्त्वो हनूमान्मारुतात्मजः । २६॥
रामस्य कार्यसिद्ध्यर्थं तस्य त्वं सचिवो भव । सगरैर्वर्धितो यस्मात्पुराहं सागरोऽभवम् । २७।
तस्यान्वये बभूवासौ रामो दाशरथिः प्रभुः । तस्य कार्यार्थसिद्ध्यर्थं गच्छत्येष महाकपिः ॥२८॥
त्वमुत्तिष्ठ जलात्तूर्णं त्वयि विश्रम्य गच्छतु । स तथेति प्रादुरभूज्जलमध्यान्महोन्नतः ॥२९॥
नानामणिमयैः शृङ्गैस्तस्योपरि नराकृतिः । प्राह यान्तं हनूमन्तं मैनाकोऽहं महाकपे ॥३०॥
समुद्रेण समादिष्टस्त्वद्विश्रामाय मारुते । आगच्छामृतकल्पानि जग्ध्वा पक्वफलानि मे ३१।
विश्रम्यात्र क्षणं पश्चाद्गमिष्यसि यथासुखम् । एवमुक्तोऽथ तं प्राह हनूमान्मारुतात्मजः । ३२॥
गच्छतो रामकार्यार्थं भक्षणं मे कथं भवेत् । विश्रामो वा कथं मे स्याद्गन्तव्यं त्वरितं मया ३३

प्रमाण रूप धारण कर उसके मुख में प्रवेश कर बाहर आगये और हाथ जोड़ कर बोले—देवि ! मैं तुम्हारे मुख में प्रवेश कर निकल आया । आपको नमस्कार है ॥ २१–२२ ॥

हनुमानजी को इस प्रकार कहता हुआ देखकर सुरसा बोली—हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! जाओ, तुम श्रीरामचन्द्रजी का कार्य सिद्ध करो । हे कपिवर ! देवगण तुम्हारे बल को जानना चाहते थे । अत-एव वे लोग मुझे भेजे थे । जाओ, सीता को देखकर श्रीरामचन्द्रजी को देखोगे ॥ २३–२४ ॥ यह कहकर सुरसा देवलोक चली गयी और श्रीहनुमानजी पक्षिराज गरुड़ की भाँति आकाशमार्ग से चलने लगे ॥२५॥ इसी समय मणि कञ्चन पर्वत मैनाक से समुद्र बोला—ये महाशक्तिशाली पवनपुत्र हनुमानजी श्रीरामचन्द्रजी का कार्य सिद्ध करने के लिये जारहे हैं । इनकी तुम सहायता करो । पूर्व समय में सगर पुत्रों ने मुझे बढ़ाया था । अत-एव मैं सागर नाम से विख्यात हूँ ॥२६–२७॥

दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामचन्द्र उन्हीं के वंशज हैं । ये कपिराज हनुमान उनका कार्य सिद्ध करने के लिये जा रहे हैं ॥ २८ ॥ तू शीघ्र ही जल से ऊपर उठो, जिससे कुछ समय तक ये तुम पर विश्राम कर लें और आगे जाँय । 'तथा इति' यह कह कर मैनाक शीघ्र ही अपने अनेक मणिमय शिखरों युक्त पानी से बहुत ऊपर उठकर अपने शृङ्गों पर मनुष्य का रूप धारणकर जाते हुए हनुमानजी से बोला—हे महाकपि ! मैं मैनाक हूँ । हे मारुते ! आपको विश्राम देने के लिये समुद्र ने मुझे आज्ञा दी है । तुम अमृत के समान सुपक्व फलों को खाकर विश्राम करो और पुनः आनन्द पूर्वक जाना । मैनाक का यह कथन सुनकर पवनपुत्र हनुमानजी बोले ॥२९–३२॥ श्रीरघुनाथजी का कार्य सिद्ध करने के लिये जाते समय मैं भोजनादि कैसे कर सकता हूँ ? शीघ्रही मुझे जाना है । अत-एव विश्राम का समय भी मुझे कहाँ है ? ॥ ३३ ॥

इत्युक्त्वा स्पृष्टशिखरः कराग्रेण ययौ कपिः। किञ्चिद्दूरं गतस्यास्य छायां छायाग्रहोऽग्रहीत् ३४
सिंहिकानाम सा घोरा जलमध्ये स्थिता सदा। आकाशगामिनां छायामाक्रम्याकृष्य भक्षयेत् ॥
तया गृहीतो हनुमांश्चिन्तयामास वीर्यवान्। केनेदं मे कृतं वेगरोधनं विघ्नकारिणा ॥३६॥
दृश्यते नैव कोऽप्यत्र विस्मयो मे प्रजायते। एवं विचिन्त्य हनुमानधो दृष्टिं प्रसारयत् ॥३७॥
तत्र दृष्ट्वा महाकायां सिंहिकां घोररूपिणीम्। पपात सलिले तूर्णं पद्भ्यामेवाहनद्रुषा ॥३८॥
पुनरुत्प्लुत्य हनुमान्दक्षिणाभिमुखो ययौ। ततो दक्षिणमासाद्य कूलं नानाफलद्रुमम् ॥३९॥
नानापक्षिमृगाकीर्णं नानापुष्पलतावृतम्। ततो ददर्श नगरं त्रिकूटाचलमूर्धनि ॥४०॥
प्राकारैर्बहुभिर्युक्तं परिखाभिश्च सर्वतः। प्रवेक्ष्यामि कथं लङ्कामिति चिन्तापरोऽभवत् ४१॥
रात्रौ वेक्ष्यामि सूक्ष्मोऽहं लङ्कां रावणपालिताम्। एवं विचिन्त्य तत्रैव स्थित्वा लङ्कां जगाम सः ॥
धृत्वा सूक्ष्मं वपुर्द्वारं प्रविवेश प्रतापवान्। तत्र लङ्कापुरी साक्षाद्राक्षसीवेषधारिणी ॥४३॥
प्रविशन्तं हनूमन्तं दृष्ट्वा लङ्का व्यतर्जयत्। कस्त्वं वानररूपेण मामनादृत्य लङ्किनीम् ॥४४॥
प्रविश्य चोरवद्रात्रौ किं भवान्कर्तुमिच्छति। इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षी पादेनाभिजघान तम् ।४५।

यह कहकर कपिवर हनुमानजी मैनाक के शिखर को अङ्गुली से स्पर्श कर आगे चल दिये। इन्हें कुछ दूर जाने पर एक छायाग्रह उनकी छाया को पकड़ लिया ॥ ३४ ॥ वह जल के मध्य में हमेशा निवास करने वाली सिंहिका नाम की राक्षसी थी। वह आकाश मार्ग से जाने वालों की छाया पकड़कर उसे खा जाती थी ॥ ३५ ॥ उसके द्वारा पकड़ लिये जाने पर वहाँ पराक्रमी हनुमानजी सोचने लगे कि वह कौन विघ्न करने वाला है जो मेरे वेग को रोक लिया ? ॥ ३६ ॥ यहाँ कोई दिखायी नहीं देता। अत एव मुझे अति-विस्मय हो रहा है। यह सोचते हुए हनुमानजी अपनी दृष्टि नीचे किये ॥ ३७ ॥ तब उन्हें महाकायवाली सिंहिका नाम की घोर राक्षसी दिखायी दी। शीघ्र ही वे जल में कूदकर लातों से ही उसे मार दिये ॥६८॥ तदनन्तर हनुमानजी पुनः उछलकर दक्षिण दिशा की ओर चलने लगे और अनेक फलयुक्त वृक्षों वाले समुद्र के दक्षिण तट पर पहुँच गये ॥ ३९ ॥

वह तट विविध प्रकार के पक्षि और मृगों से परिपूर्ण और विविध प्रकार के पुष्प लताओं से आवृत्त था। तदनन्तर त्रिकूट पर्वत पर विद्यमान नगर को देखे। वह नगर सभी ओर से अनेक परकोट और खाइयों से घिरा हुआ था। उसे देखकर वे सोचने लगे कि लङ्कापुरी में मैं कैसे प्रवेश करूँगा ॥ ४०–४१ ॥ अपना लघुरूप धारणकर मैं रावण के द्वारा पालित लङ्का में रात्रि के समय प्रवेश करूँगा, यह सोच-विचार कर वे वहीं रुक गये, और यथा समय पुनः चले ॥ ४२ ॥ महाप्रतापी हनुमानजी अपना सूक्ष्मरूप धारण कर जब लंका में प्रवेश किये, तब वहाँ पर साक्षात् लंकापुरी राक्षसी वेष धारण कर खड़ी थी ॥ ४३ ॥ श्रीहनुमानजी को लंका में प्रवेश करते देख उसने डाँटा और पूछा—तुम वानर रूप धारणकर इस रात्रि में मुझ लङ्किनी का अनादर कर चोर की भाँति लका में प्रवेश कर रहे हो और क्या करना चाहते हो ? यह

हनुमानपि तां वाममुष्टिनावज्ञयाहनत् । तदैव पतिता भूमौ रक्तमुद्वमती भृशम् ॥४६॥
उत्थाय प्राह सा लङ्का हनुमन्तं महाबलम् । हनूमन् गच्छ भद्रं ते जिता लङ्का त्वयानघ ॥४७॥
पुराऽहं ब्रह्मणा प्रोक्ता ह्यष्टाविंशतिपर्यये । त्रेतायुगे दाशरथी रामो नारायणोऽव्ययः ॥४८॥
जनिष्यते योगमाया सीता जनकवेश्मनि । भूभारहरणार्थाय प्रार्थितोऽयं मया क्वचित् ॥४९॥
सभार्यो राघवो भ्रात्रा गमिष्यति महावनम् । तत्र सीतां महामायां रावणोऽपहरिष्यति ॥५०॥
पश्चाद्रामेण साचिव्यं सुग्रीवस्य भविष्यति । सुग्रीवो जानकीं द्रष्टुं वानरान्प्रेषयिष्यति ॥५१॥
तत्रैको वानरो रात्रावागमिष्यति तेऽन्तिकम् । त्वया च भर्त्सितः सोऽपि त्वां हनिष्यति मुष्टिना ॥
तेनाहता त्वं व्यथिता भविष्यसि यदानघे । तदैव रावणस्यान्तो भविष्यति न संशयः ॥५३॥
तस्मात्त्वया जिता लङ्का जितं सर्वं त्वयानघ । रावणान्तःपुरवरे क्रीडाकाननमुत्तमम् ॥५४॥
तन्मध्येऽशोकवनिका दिव्यपादपसङ्कुला । अस्ति तस्यां महावृक्षः शिंशपा नाम मध्यगः ५५।
तत्रास्ते जानकी घोरराक्षसीभिः सुरक्षिता । दृष्ट्वैव गच्छ त्वरितं राघवाय निवेदय ॥५६॥

कहकर वह आँखों को क्रोध से लाल कर हनुमानजी को लात मारी ॥ ४४–४५ ॥ तदनन्तर उसकी अवज्ञा कर हनुमानजी ने अपने बायें हाथ से उसे घूँसा मारा, जिससे वह अत्यधिक रुधिर वमन करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥ ४६ ॥

पुनः उठकर वह लङ्किनी महाबली हनुमानजी से बोली—हे हनुमन् ! जाओ, तुम्हारा कल्याण हो । हे अनघ ! तुम लङ्कापुरी को जीत लिये ॥ ४७ ॥ पूर्व समय में ब्रह्माजी मुझसे कहे थे कि मैं किसी समय भूभारहरण के लिये नारायणदेव से प्रार्थना किया था । अत-एव अट्ठाइसवें महायुग के त्रेतायुग में दशरथ-नन्दन श्रीराम के रूप में अविनाशी नारायण देव उत्पन्न होंगे ॥ ४८ ॥ उनकी योगमाया सीता राजाजनक के घर अवतरित होंगी ॥ ४८-४९ ॥

अनुज लक्ष्मण और भार्या सीता के साथ वे महावन में जायेंगे । वहाँ पर महामाया रूपिणी सीता का रावण हरण करेगा ॥ ५० ॥

तब सुग्रीव के साथ श्रीराम की मित्रता होगी । सुग्रीव श्रीजानकीजी की खोज के लिये वानरों को भेजेगा ॥ ५१ ॥ उनमें से रात्रि के समय एक वानर तुम्हारे समीप आयेगा । तुमसे तिरस्कृत होने पर वह तुम्हें मुष्टिका से मारेगा ॥ ५२ ॥ हे अनघे ! जब तुम उसके मार से व्यथित हो जाओगी तभी रावण का निःसन्देह अन्त होगा ॥ ५३ ॥ अत-एव हे अनघ ! तुम लङ्का को जीत लिये तो सबको जीत लिये । रावण के अन्तः पुर में एक क्रीडावन है ॥ ५४ ॥ उसमें दिव्यवृक्षों से सम्पन्न एक अशोक वाटिका है । उसके मध्य एक विशाल शिंशपा (सीसम) नाम का वृक्ष है ॥ ५५ ॥ वहाँ घोर राक्षसियों से सुरक्षित श्रीजानकीजी रहती हैं । उनका दर्शन कर शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजी को उनका समाचार निवेदन करो ॥ ५६ ॥

धन्याहमप्यद्य चिराय राघवस्मृतिर्ममासीद्भवपाशमोचिनी।
तद्भक्तसङ्गोऽप्यतिदुर्लभो मम प्रसीदतां दाशरथिः सदा हृदि ॥५७॥
उल्लङ्घितेऽब्धौ पवनात्मजेन धरासुतायाश्च दशाननस्य।
पुस्फोर वामाक्षि भुजश्च तीव्रं रामस्य दक्षाङ्गमतीन्द्रियस्य ॥५८॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥१॥

द्वितीय सर्ग

हनुमानजी का अशोक वाटिका में जाना तथा सीताजी को रावण का भय दिखलाना

श्रीमहादेव उवाच

ततो जगाम हनुमान् लङ्कां परमशोभनाम्। रात्रौ सूक्ष्मतनुर्भूत्वा बभ्राम परितः पुरीम् ॥१॥
सीतान्वेषणकार्यार्थी प्रविवेश नृपालयम्। तत्र सर्वप्रदेशेषु विविच्य हनुमान्कपिः ॥२॥
नापश्यज्जानकीं स्मृत्वा ततो लङ्काभिभाषितम्। जगाम हनुमान् शीघ्रमशोकवनिकां शुभाम् ३॥
सुरपादपसम्बाधां रत्नसोपानवापिकाम्। नानापक्षिमृगाकीर्णां स्वर्णप्रासादशोभिताम् ॥४॥

मैं धन्य हूँ; बहुत दिनों के बाद भव-बन्धन को नष्ट करने वाली श्रीरामचन्द्रजी की स्मृति मुझे हुई है और उनके भक्त का अतिदुर्लभ सङ्ग हुआ है। मेरे हृदय में विराजमान दाशरथी प्रभु श्रीरामचन्द्र हमेशा मुझपर प्रसन्न हैं॥ ५७॥

पवनकुमार श्रीहनुमानजी को समुद्र पार करते ही पृथ्वी सुता श्रीसीताजी और दशानन रावण दोनों के वाम अङ्ग और भुजा तथा अतीन्द्रिय परमात्मा श्रीरामचन्द्र के दायें अङ्ग बड़े जोर-जोर से फड़कने लगे ॥ ५८ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्रामनिवासि-
पराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः
प्रथमसर्गः परिपूर्णः ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति) तत्पश्चात् हनुमानजी परम रमणीय लङ्कापुरी में गये और सूक्ष्म-शरीर धारण कर रात्रि में नगर में सर्वत्र भ्रमण करते रहे ॥ १ ॥ श्रीसीताजी का आन्वेषण करने के लिये वे राजभवन में प्रवेश किये। वहाँ पर सर्वत्र खोजने के बाद भी सीताजी का जब पता नहीं चला तब हनुमानजी को लङ्किनी का कथन स्मरण हुआ और वे शीघ्र ही रमणीय अशोकवाटिका में गये ॥ २–३ ॥ कल्प वृक्षों और रत्न जटित सीढ़ियों वाले बावलियों से युक्त वह अशोक वाटिका अपूर्वशोभा वाली थी।

फलैरानम्रशाखाग्रपादपैः परिवारिताम् । विचिन्वन् जानकीं तत्र प्रतिवृक्षं मरुत्सुतः ॥५॥
ददर्शाभ्रंलिहं तत्र चैत्यप्रासादमुत्तमम् । दृष्ट्वा विस्मयमापन्नो मणिस्तम्भशतान्वितम् ॥६॥
समतीत्य पुनर्गत्वा किञ्चिद्दूरं स मारुतिः । ददर्श शिंशपावृक्षमत्यन्तनिविडच्छदम् ॥७॥
अदृष्टातपमाकीर्णं स्वर्णवर्णविहङ्गमम् । तन्मूले राक्षसीमध्ये स्थितां जनकनन्दिनीम् ॥८॥
ददर्श हनुमान् वीरो देवतामिव भूतले । एकवेणीं कृशां दीनां मलिनाम्बरधारिणीम् ॥९॥
भूमौ शयानां शोचन्तीं रामरामेति भाषिणीम् । त्रातारं नाधिगच्छन्तीमुपवासकृशां शुभाम् १०।
शाखान्तच्छदमध्यस्थो ददर्श कपिकुञ्जरः । कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं दृष्ट्वा जनकनन्दिनीम् ॥११॥
मयैव साधितं कार्यं रामस्य परमात्मनः । ततः किलकिलाशब्दो बभूवान्तःपुराद्बहिः ॥१२॥
किमेतदिति सँल्लीनो वृक्षपत्रेषु मारुतिः । आयान्तं रावणं तत्र स्त्रीजनैः परिवारितम् ॥१३॥
दशास्यं विंशतिभुजं नीलाञ्जनचयोपमम् । दृष्ट्वा विस्मयमापन्नः पत्रखण्डेष्वलीयत । १४॥
रावणो राघवेणाशु मरणं मे कथं भवेत् । सीतार्थमपि नायाति रामः किं कारणं भवेत् ।१५॥

उसमें विविध प्रकार के पक्षी और मृगगण विचरण कर रहे थे और सुवर्ण निर्मित महलों से वह वाटिका सुशोभित थी ॥ ४ ॥

फलों के बोझ से झुके हुए वृक्षों से वह वाटिका घिरी हुई थी। पवनसुत हनुमानजी वहाँ पर प्रत्येकवृक्ष के नीचे श्रीजानकीजी को खोजते हुए अति रमणीय देवालय देखे। उस देवालय के शिखर बादलों से टकरा रहे थे। सैकड़ों मणिमय स्तम्भों से युक्त उस देवालय को देखकर उन्हें अति आश्चर्य हुआ ॥ ५–६ ॥ उससे कुछ दूर और जाने पर अति घने पत्तों से युक्त शिंशपा के वृक्ष को हनुमानजी देखे ॥ ७ ॥ वहाँ पर कभी भी धूप नहीं जाती थी और वह सुवर्ण वर्ण के पक्षियों से युक्त था। उस वृक्ष के नीचे राक्षसियों के मध्य स्थित देवता के समान जनकनन्दिनी श्रीसीताजी को वीरवर हनुमानजी देखे। एक वेणी, अत्यन्त दुबली-पतली, दीन, मलिन वस्त्र धारण की हुई और भूमि पर पड़ी हुई अतिशोक पूर्वक राम-राम रटती हुई श्रीसीताजी को वे देखे। उपवास से अतिदुर्बल उन्हें अपना रक्षक भी कोई दिखायी नहीं देता था ॥ ८–१० ॥ कपिवर श्रीहनुमानजी डालपर पत्तों में छिपकर श्रीजानकी को देखने लगे और मन ही मन कहने लगे कि श्रीजानकीजी को देखकर आज मैं कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया ॥११॥

मैं ही परमात्मा श्रीरामचन्द्र का कार्य सिद्ध किया। तब अन्तः पुर से किल-किला शब्द की आवाज बाहर आयी ॥ ११–१२ ॥ तत्पश्चात् श्रीहनुमानजी यह क्या है ? यह सोचकर वृक्ष के पत्तों में छिपे हुए देखे कि स्त्रियों से चारों ओर घिरा हुआ रावण उसी ओर आ रहा है ॥ १३ ॥ वह दशमुख और बीस भुजा युक्त कज्जल के समान काला शरीर वाला है, उसे देखकर हनुमानजी को अति विस्मय हुआ और वे पत्तों में छिप गये ॥ १४ ॥ श्रीरघुनाथजी के द्वारा शीघ्र मेरा मरण कैसे हो यह रावण सोचता रहता था। न जाने श्रीरामजी अभी तक सीता को लेने के लिये भी क्यों नहीं आए ? इस प्रकार हृदय में हमेशा

इत्येवं चिन्तयन्नित्यं राममेव सदा हृदि । तस्मिन्दिनेऽपररात्रौ रावणो राक्षसाधिपः ॥१६॥
स्वप्ने रामेण सन्दिष्टः कश्चिदागत्य वानरः । कामरूपधरः सूक्ष्मो वृक्षाग्रस्थोऽनुपश्यति ॥१७॥
इति दृष्ट्वाद्भुतं स्वप्नं स्वात्मन्येवानुचिन्त्य सः । स्वप्नः कदाचित्सत्यः स्यादेवं तत्र करोम्यहम्१८
जानकीं वाक्शरैर्विद्ध्वा दुःखितां नितरामहम् । करोमि दृष्ट्वा रामाय निवेदयतु वानरः ॥१९॥
इत्येवं चिन्तयन्सीतासमीपमगमद्द्रुतम् । नूपुराणां किङ्किणीनां श्रुत्वा शिञ्जितमङ्गना ।२०॥
सीता भीता लीयमाना स्वात्मन्येव सुमध्यमा । अधोमुख्यश्रुनयना स्थिता रामार्पितान्तरा ॥२१॥
रावणोऽपि तदा सीतामालोक्याह सुमध्यमे । मां दृष्ट्वा किं वृथा सुभ्रु स्वात्मन्येव विलीयसे ॥२२॥
रामो वनचराणां हि मध्ये तिष्ठति सानुजः । कदाचिद्दृश्यते कैश्चित्कदाचिन्नैव दृश्यते ॥२३॥
मया तु बहुधा लोकाः प्रेषितास्तस्य दर्शने । न पश्यन्ति प्रयत्नेन वीक्षमाणाः समन्ततः ॥२४॥
किं करिष्यसि रामेण निःस्पृहेण सदा त्वयि । त्वया सदालिङ्गितोऽपि समीपस्थोऽपि सर्वदा २५॥
हृदयेऽस्य न च स्नेहस्त्वयि रामस्य जायते । त्वत्कृतान्सर्वभोगांश्च त्वद्गुणानपि राघवः ॥२६॥
भुञ्जानोऽपि न जानाति कृतघ्नो निर्गुणोऽधमः । त्वमानीता मया साध्वी दुःखशोकसमाकुला ॥

श्रीरामचन्द्रजी का चिन्तन रहने से राक्षसराज रावण उसी दिन रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न देखा कि राम का संदेश लेकर कोई वानर आया है और स्वेच्छा रूप धारण कर सूक्ष्मरूप से वृक्ष की डाल पर बैठकर देख रहा है ॥ १५–१७ ॥ इस अद्‌भूत स्वप्न को देखकर वह मन ही मन सोचा कि कदाचित् यह स्वप्न सत्य हो, अत-एव मैं यह करूँ कि अशोक वाटिका में चलकर अपने वाणी रूपी बाणों से जानकीजी को वेधकर अत्यन्त दुःखी करूँ, जिससे वह वानर यह सब देखकर श्रीरामचन्द्र से कहे ॥ १८–१९ ॥ यह सोच-कर वह शीघ्र ही सीता के पास आया। स्त्रियों के नूपुर, किंकिणी आदि की झनकार सुनकर सुन्दर कटिवाली श्रीसीताजी व्याकुल हो अपने शरीर को सिकोड़कर साश्रुनेत्र हो अपने मन को श्रीरामचन्द्रजी को अर्पितकर अधोमुख हो बैठ गयीं ॥ २०–२१ ॥

सीताजी को देखकर रावण बोला—हे सुन्दर कटि और सुन्दरभृकुटिवाली सीते ! मुझे देखकर व्यर्थ ही तू इतनी संकुञ्चित होती हो ॥ २२ ॥ राम वनचरों के मध्य अपने अनुज के साथ रहता है। कभी तो वह किसी को दिखायी पड़ता है और कभी दिखायी भी नहीं पड़ता ॥ २३ ॥ मैं उसे देखने के लिये अनेक लोगों को भेजा, किन्तु प्रयत्न कर चारों तरफ देखने पर भी वह किसी को दिखायी नहीं पड़ा ॥ २४ ॥ उस उदासीन राम से अब तूझे क्या प्रयोजन है ? हमेशा तुम्हारे समीप रहते हुए और सदा तुमसे आलिङ्गित होता हुआ भी अबतक तुम्हारे प्रति उसके हृदय में स्नेह नहीं हुआ। तुम्हारे द्वारा राम को प्राप्त सम्पूर्ण भोग और तुम्हारे सम्पूर्ण गुणों को भोगकर भी कृतघ्न उदासीन और अधम कभी तुम्हारी याद भी नहीं करता। तुम मेरे द्वारा हरण कर लाई गयी हो और तू उसकी सुशीला पत्नी हो तथा इस समय दुःख

इदानीमपि नायाति भक्तिहीनः कथं व्रजेत् । निःसत्त्वो निर्ममो मानी मूढः पण्डितमानवान् २८
नराधमं त्वद्विमुखं किं करिष्यसि भामिनि । त्वय्यतीव समासक्तं मां भजस्वासुरोत्तमम् ॥२९॥
देवगन्धर्वनागानां　यक्षकिन्नरयोषिताम् । भविष्यसि नियोक्त्री त्वं यदि मां प्रतिपद्यसे ३०॥
रावणस्य वचः श्रुत्वा सीतामर्षसमन्विता । उवाचाधोमुखी भूत्वा निधाय तृणमन्तरे ॥३१॥
राघवाद्भिभ्यता नूनं भिक्षुरूपं त्वया धृतम् । रहिते राघवाभ्यां त्वं शुनीव हविरध्वरे ॥३२॥
हृतवानसि मां नीच तत्फलं प्राप्स्यसेऽचिरात् । यदा　रामशराघातविदारितवपुर्भवान् ॥३३॥

और शोक से व्यथित हो। अबतक वह राम नहीं आया; तुझमें प्रेमरहित वह आता भी कैसे ? वह पराक्रम रहित, ममता शून्य, अभिमानी, मूढ़, अपने को पण्डित मानने वाला है ॥ २५-२८ ॥

हे भामिनि ! तुमसे विमुख उस नराधम से तुझे क्या प्रयोजन[1] मैं तुझमें अत्यन्त प्रीति रखता हूँ। अत-एव तुम मेरा अनुगमन करो ॥ २९ ॥ मेरे अधीन तुझे रहने पर देव, गन्धर्व, नाग, तथा किन्नर आदि की स्त्रियों पर तू शासन करोगी ॥ ३० ॥ रावण के ये वाक्य सुनकर सीताजी अति क्रोधित हो अपना सिर नीचा कर अपने और रावण के बीच तृण रखकर[2] रावण से बोलीं ॥ ३१ ॥ रे नीच ! निःसन्देह श्रीरघुनाथ जी से डरकर भिक्षुक का रूप धारणकर, उन दोनों रघुश्रेष्ठों की अनुपस्थिति में जन शून्य यज्ञशाला से कुत्ते द्वारा ले गयी हवि की भाँति तू मुझे हरण कर ले आया है । अतिशीघ्र तू उसका फल पाओगे । श्रीरघुनाथजी

---

१. श्लोक २३ से २८ तक रावण भगवान् की निन्दा द्वारा स्तुति किया है । इसका गूढ़ रहस्य यह है—
अनुज लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजी वनवासियों के मध्य में रहते हैं । उन वनवासियों में से किसी को ध्यान धारणादि द्वारा दिखायी पड़ते हैं और कभी वे ध्यान-धारणादि द्वारा दिखायी नहीं देते ॥२३॥ मैं उनका साक्षात् करने के लिये अनेकों बार ध्यान लगाया किन्तु कभी भी मुझे उनका दर्शन नहीं हुआ ॥२४॥ योगमाया तुम्हारा परम ब्रह्म श्रीराम के साथ हमेशा संयोग और तादात्म्य सम्बन्ध है, फिर भी वह श्रीराम हमेशा स्पृहा रहित संग विहीन है । निःस्पृह और अकेला होने से वह परमब्रह्म तुम माया के बन्धन में नहीं पड़ता और वह तुम माया के गुण अथवा भोगों में भी नहीं फँसता ॥२६॥ सांख्य के मत से वह भोक्ता भी है, तथापि मैं भोक्ता हूँ, इसका अभिमान नहीं करता । अत-एव कृतघ्न (किये हुए कर्मों का नाश करने वाला) निर्गुण (सत्त्व रज, तम आदि से रहित) अधम (न धमति शब्दविषयोभवति अर्थात् वाणी से परे) भी है ॥२७॥ माया पर उसकी प्रीति नहीं है । अत एव अब तक माया के पास वह नहीं आया । रावण को अपने पर संकेत है कि मेरे हृदय में भक्ति न होने से अब तक वह नहीं आया । भक्ति हीन होने से मेरा मन उस परमब्रह्म तक पहूँच भी कैसे पाता ? वह निर्गुण, ममता शून्य, अमानी, मूढ़ मू=शिवः, उः=ब्रह्मा, ताभ्याम् ऊढः=ध्यानविषयान्नीतः अर्थात् शिव और ब्रह्माजी द्वारा ध्येय) विद्वानों के द्वारा सम्मानित है । वह नराधम (नराः अधमाः यस्मात् स नराधमः) मनुष्य जिससे अधम है अर्थात् पुरुषोत्तम, विमुख अर्थात् माया से विमुख है ॥ २८ ॥

२. पतिव्रता स्त्री को किसी भी दूसरे पुरुष से बात-चीत नहीं करनी चाहिए । अपरिहार्य कोई बात हो तो किसी भी जड़ वस्तु को बीच में रखकर बात करनी चाहिये । अत-एव श्रीसीताजी बीच में तृण रख कर रावण से बोलीं ।

ज्ञास्यसेऽमानुषं रामं गमिष्यसि यमान्तिकम् । समुद्रं शोषयित्वा वा शरैर्बद्ध्वाथ वारिधिम् ॥३४॥
हन्तुं त्वां समरे रामो लक्ष्मणेन समन्वितः । आगमिष्यत्यसन्देहो द्रक्ष्यसे राक्षसाधम ॥३५॥
त्वां सपुत्रं सहबलं हत्वा नेष्यति मां पुरम् । श्रुत्वा रक्षःपतिः क्रुद्धो जानक्याः परुषाक्षरम् ॥३६॥
वाक्यं क्रोधसमाविष्टः खड्गमुद्यम्य सत्वरः । हन्तुं जनकराजस्य तनयां ताम्रलोचनः ॥३७॥
मन्दोदरी निवार्याह पतिं पतिहिते रता । त्यजैनां मानुषीं दीनां दुःखितां कृपणां कृशाम् ३८
देवगन्धर्वनागानां बह्व्यः सन्ति वराङ्गनाः । त्वामेव वरयन्त्युच्चैर्मदमत्तविलोचनाः ॥३९॥
ततोऽब्रवीद्दशग्रीवो राक्षसीर्विकृताननाः । यथा मे वशगा सीता भविष्यति सकामना ॥
तथा यतध्वं त्वरितं तर्जनादरणादिभिः ॥४०॥
द्विमासाभ्यन्तरे सीता यदि मे वशगा भवेत् । तदा सर्वसुखोपेता राज्यं भोक्ष्यति सा मया ॥४१॥
यदि मासद्वयादूर्ध्वं मच्छय्यां नाभिनन्दति । तदा मे प्रातराशाय हत्वा कुरुत मानुषीम् ॥४२॥
इत्युक्त्वा प्रययौ स्त्रीभी रावणोऽन्तःपुरालयम् । राक्षस्यो जानकीमेत्य भीषयन्त्यः स्वतर्जनैः ४३।
तत्रैका जानकीमाह यौवनं ते वृथा गतम् । रावणेन समासाद्य सफलं तु भविष्यति ॥४४॥

की बाण वर्षा से विदीर्ण होकर जब तू यमलोक को जायेगा तब श्रीरामचन्द्र को परमब्रह्म समझेगा। रे राक्षसाधम ! निःसन्देह तू अतिशीघ्र यह देखेगा कि युद्ध में तुम्हें मारने के लिये अनुज लक्ष्मण सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी समुद्र को सुखाकर अथवा बाणों से पुल बाँधकर यहाँ आयेंगे ॥ ३२–३५ । तुझे पुत्र और सेनाओं सहित मारकर मुझे अयोध्यापुरी में जायेंगे । जानकीजी का इस प्रकार कठोर शब्द सुनकर राक्षसाधिप रावण अत्यन्त क्रोधित हो क्रोध से आँख लाल कर शीघ्र अपना खड्ग निकालकर जनकनन्दिनी सीता को मारने पर तैयार हो गया ॥ ३६–३७ ॥ तदनन्तर अपने पति के हित में तत्पर महारानी मन्दोदरी अपने पति को रोकते हुए बोली—पतिदेव ! इस दीना, क्षीणा, दुखिया एवं कातर स्त्री को छोड़ दीजिये ॥३८॥ देव, गन्धर्व, नाग आदि की अनेकों मदमत्त नेत्रोंवाली मनोहारिणी वाराङ्गनाएँ हैं जो अत्युत्कट ईच्छा से आपका वरण करना चाहती हैं ॥ ३९ ॥

तत्पश्चात् अनेक विकराल वदनवाली राक्षसियों से रावण बोला—जिस प्रकार सीता कामना से मेरे वश में हो जाय, उस प्रकार तुमलोग भय अथवा आदरपूर्वक यत्न करो ॥ ४० ॥ दो माह के भीतर यदि सीता मेरे वश में हो गयी तो वह सर्वसुख सम्पन्न मेरे साथ राज्य का भोग करेगी ॥ ४१ ॥ दो माह के भीतर यह यदि मेरे शय्या पर आना न स्वीकार करे तो इस मानुषी को मारकर प्रातःकाल का मेरा कलेवा बना देना ॥ ४२ ॥ यह कहकर रावण अपनी स्त्रियों के साथ अन्तःपुर में चला गया और राक्षसियाँ श्रीसीताजी के पास आकर उन्हें विविध उपायों से भयभीत करने लगीं ॥ ४३ ॥ राक्षसियों में से एक राक्षसी बोली—व्यर्थ ही तुम्हारा जीवन गया। रावण से यदि तुम्हारा सहवास हो तो तुम्हारा जीवन धन्य हो जाय ॥ ४४ ॥ दूसरी राक्षसी क्रोध दिखाती हुई बोली—जानकी ! देर क्यों करती हो ? अन्य

अपरा चाह कोपेन किं विलम्बेन जानकि। इदानीं छेद्यतामङ्गं विभज्य च पृथक् पृथक् ॥४५॥
अन्यां तु खड्गमुद्यम्य जानकीं हन्तुमुद्यता। अन्या करालवदना विदार्यास्यमभीषयत् ॥४६॥
एवं तां भीषयन्तीस्ता राक्षसीर्विकृताननाः। निवार्य त्रिजटा वृद्धा राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥४७॥
शृणुध्वं दुष्टराक्षस्यो मद्वाक्यं वो हितं भवेत् ॥४८॥

न भीषयध्वं रुदतीं नमस्कुरुत जानकीम्। इदानीमेव मे स्वप्ने रामः कमललोचनः ॥४९॥
आरुह्यैरावतं शुभ्रं लक्ष्मणेन समागतः। दग्ध्वा लङ्कापुरीं सर्वां हत्वा रावणमाहवे ॥५०॥
आरोप्य जानकीं स्वाङ्के स्थितो दृष्टोऽगमूर्धनि। रावणो गोमयह्रदे तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ॥५१॥
अगाहत्पुत्रपौत्रैश्च कृत्वा वदनमालिकाम्। विभीषणस्तु रामस्य सन्निधौ हृष्टमानसः ॥५२॥
सेवां करोति रामस्य पादयोर्भक्तिसंयुतः। सर्वथा रावणं रामो हत्वा सकुलमञ्जसा ॥५३॥
विभीषणायाधिपत्यं दत्त्वा सीतां शुभाननाम्। अङ्के निधाय स्वपुरीं गमिष्यति न संशयः ॥५४॥
त्रिजटाया वचः श्रुत्वा भीतास्ता राक्षसस्त्रियः। तूष्णीमासंस्तत्र तत्र निद्रावशमुपागताः ॥५५॥
तर्जिता राक्षसीभिः सा सीता भीतातिविह्वला। त्रातारं नाधिगच्छन्ती दुःखेन परिमूर्च्छिता ५६
अश्रुभिः पूर्णनयनाचिन्तयन्तीदमब्रवीत्।
प्रभाते भक्षयिष्यन्ति राक्षस्यो मां न संशयः। इदानीमेव मरणं केनोपायेन मे भवेत् ॥५७॥

राक्षसी खड्ग लेकर बोली—इसके अङ्गोंको काटकर पृथक्-पृथक् कर दो। कोई राक्षसी अपना भयङ्कर मुख फैलाकर सीताजी को डराने लगी ॥ ४५–४६ ॥ तदनन्तर इस प्रकार सीताजी को डराती हुई देखकर उन विकृत वदना राक्षसियों को रोककर वृद्धा राक्षसी त्रिजटा उनसे बोली ॥ ४७ ॥ रे दुष्टा राक्षसियों मेरी बात सुनो इससे तुम्हारा हित होगा ॥ ४८ ॥

इस रोती हुई जानकी को तुमलोग डराओ मत, बल्कि इन्हें नमस्कार करो। अभी ही मैं स्वप्न देखी हूँ कि कमललोचन भगवान् श्रीराम अनुज लक्ष्मण के साथ श्वेत ऐरावत हाथी पर चढ़कर आये हैं। मैं देखी हूँ कि लंकापुरी को जलाकर सपरिवार रावण को मारकर जानकीजी को अपनी गोद में बैठाकर पर्वत शिखर पर वे बैठे हैं। गले में मुण्डों की माला पहन, शरीर में तेल लगा, नग्न वदन रावण अपने पुत्र-पौत्रों के साथ गोबर के कुण्ड में गिर पड़ा है और विभीषण प्रसन्नमन श्रीरघुनाथजी के पास बैठा हुआ अतिभक्ति-पूर्वक उनके चरणारविन्द की सेवा कर रहा है। अत-एव प्रतीत होता है कि अनायास ही श्रीरामचन्द्रजी कुल सहित रावण का संहार कर विभीषण को लंका का राज्य देंगे और सुमुखी सीता को गोद में बैठाकर अपने नगर को चले जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४९–५४ ॥

त्रिजटा का यह कथन सुनकर राक्षसियाँ डर कर चुपचाप यत्र-तत्र बैठ गयीं और कुछ देर के बाद उन्हें नींद आ गयी ॥ ५५ ॥ राक्षसियों के डराये जाने से भयसे अतिव्याकुल हो सीताजी अपना रक्षक न देखकर दुःख से मूर्च्छित हो गयीं ॥ ५६ ॥ पुनः आँखों में आँसू भरकर अति चिन्तित हो इस प्रकार

एवं सुदुःखेन परिप्लुता सा विमुक्तकण्ठं रुदती चिराय ।
आलम्ब्य शाखां कृतनिश्चया मृतौ न जानती कञ्चिदुपायमङ्गना ॥५८॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीय सर्ग

जानकीजी से भेंट, वाटिका विध्वंस और ब्रह्मपाश से हनुमानजी का बन्धन

श्रीमहादेव उवाच

उद्बन्धनेन वा मोक्ष्ये शरीरं राघवं विना । जीवितेन फलं किं स्यान्मम रक्षोऽधिमध्यतः ॥१॥
दीर्घा वेणी ममात्यर्थमुद्बन्धाय भविष्यति । एवं निश्चितबुद्धिं तां मरणायाथ जानकीम् ॥२॥
विलोक्य हनुमान्किञ्चिद्विचार्यैतदभाषत । शनैः शनैः सूक्ष्मरूपो जानक्याः श्रोत्रगं वचः ॥३॥
इक्ष्वाकुवंशसम्भूतो राजा दशरथो महान् । अयोध्याधिपतिस्तस्य चत्वारो लोकविश्रुताः ॥४॥
पुत्रा देवसमाः सर्वे लक्षणैरुपलक्षिताः । रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतश्चैव शत्रुहा ॥५॥
ज्येष्ठो रामः पितुर्वाक्याद्दण्डकारण्यमागतः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया भार्यया सह ॥६॥

कहने लगीं—निःसन्देह प्रातःकाल ही राक्षसियाँ मुझे खा जायेंगी । कौन उपाय है कि अभी मेरा मृत्यु हो जाय ? ॥ ५७ ॥ इस प्रकार अपना मृत्यु निश्चय कर मृत्यु का साधन न देखकर कल्याणी सीता वृक्ष का शाखा पकड़े हुए अति दुःखित हो बहुत देरतक फूट-फूट कर रोती रहीं ॥ ५८ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे बिहारप्रान्तीयभोजपुरमण्डलान्तर्गतखजुरियाँग्राम-निवासिपराशरगोत्रीय पं० रामव्रतपाण्डेयात्मज डॉ० चन्द्रमापाण्डेयेन विरचितया भाषाटीकयासहितः द्वितीयसर्गः परिपूर्णः ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—(हे पार्वति) सीताजी निश्चय की कि मैं फाँसी लगाकर ही अपना शरीर छोड़ दूँ, इन राक्षसियों के मध्य रहकर श्रीरघुनाथजी के बिना जीवित रहने से क्या लाभ ? ॥१॥ मेरी लम्बी वेणी फाँसी लगाने के लिये पर्याप्त है । इस प्रकार मरने के लिये निश्चित बुद्धि वाली जानकीजी को देखकर सूक्ष्मरूपधारी हनुमानजी मन ही मन कुछ सोचकर श्रीसीताजी के कानों में सुनायी पड़ने योग्य धीरे-धीरे इस प्रकार कहने लगे ॥२–३॥ इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न अयोध्याधिपति अतिप्रतापी महाराज दशरथ थे। त्रिलोकी में विख्यात उनके चार लड़के हुए। वे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ये चारों लड़के देवताओं के समान सभी शुभलक्षणों से सम्पन्न हैं ॥४–५॥

सबसे बड़े लड़के श्रीरामचन्द्र अपने पिता की आज्ञा से अनुज लक्ष्मण और भार्या सीता के साथ

उवास गौतमीतीरे पञ्चवट्यां महामनाः । तत्र नीता महाभागा सीता जनकनन्दिनी ॥७॥
रहिते रामचन्द्रेण रावणेन दुरात्मना । ततो रामोऽतिदुःखार्तो मार्गमाणोऽथ जानकीम् ।८
जटायुषं पक्षिराजमपश्यत्पतितं भुवि । तस्मै दत्त्वा दिवं शीघ्रमृष्यमूकमुपागमत् ॥९॥
सुग्रीवेण कृता मैत्री रामस्य विदितात्मनः । तद्भार्याहारिणं हत्वा वालिनं रघुनन्दनः ॥१०॥
राज्येऽभिषिच्य सुग्रीवं मित्रकार्यं चकार सः । सुग्रीवस्तु समानाय्य वानरान्वानरप्रभुः ॥११॥
प्रेषयामास परितो वानरान्परिमार्गणे । सीतायास्तत्र चैकोऽहं सुग्रीवसचिवो हरिः ॥१२॥
सम्पातिवचनाच्छीघ्रमुल्लङ्घ्य शतयोजनम् । समुद्रं नगरीं लङ्कां विचिन्वञ्जानकीं शुभाम् । १३॥
शनैरशोकवनिकां विचिन्वन् शिंशपातरुम् । अद्राक्षं जानकीमत्र शोचन्तीं दुःखसम्प्लुताम् ॥१४॥
रामस्य महिषीं देवीं कृतकृत्योऽहमागतः । इत्युक्त्वोपरराामाथ मारुतिर्बुद्धिमत्तरः ॥१५॥
सीता क्रमेण तत्सर्वं श्रुत्वा विस्मयमायमौ । किमिदं मे श्रुतं व्योम्नि वायुना समुदीरितम् ॥१६॥
स्वप्नो वा मे मनोभ्रान्तिर्यदि वा सत्यमेव तत् । निद्रा मे नास्ति दुःखेन जानाम्येतत्कुतो भ्रमः ॥
येन मे कर्णपीयूषं वचनं समुदीरितम् । स दृश्यतां महाभागः प्रियवादी ममाग्रतः ॥१८॥

दण्डकारण्य में आये थे। वे महामना गौतमी नदी के तटपर पञ्चवटी आश्रम में रहते थे। श्रीरामचन्द्र के न रहने पर उस आश्रम से दुरात्मा रावण महाभागा जानकी को चुराकर ले गया। तदनन्तर अतिशोकाकुल हो भगवान श्रीराम जानकीजी को यत्र-तत्र अन्वेषण करते हुए पृथिवी पर पड़े पक्षिराज जटायु को देखे। शीघ्र ही उसे दिव्य धामपर पहुँचाकर ऋष्यमूक पर्वत पर वे आये ॥६–७॥ वहाँ आकर आत्मदर्शी भगवान् श्रीराम सुग्रीव से मित्रता किये और उसकी स्त्री का हरण करने वाले दुष्ट वाली को मारकर सुग्रीव को राज्यपद पर अभिषिक्त किये। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी अपने मित्र का कर्य सिद्ध किये। वानरों के प्रभु सुग्रीव सभी वानरों को बुलाकर सीताजी का अन्वेषण करने के लिये विविध दिशाओं में भेजे। उनमें से सुग्रीव का मन्त्री मैं एक वानर हूँ। सम्पाति के कथन से मैं सौ योजन विस्तृत समुद्र को पारकर इस लङ्कापुरी में आया हूँ और सभी जगह यहाँ पर शुभलक्षणा सीता का मैं अन्वेषण किया। धीरे-धीरे अशोक वाटिका में खोजते-खोजते इस शिंशपा के वृक्ष को मैं देखा और यहाँ पर अत्यन्त दुःख से शोक करती हुई श्रीरामचन्द्रजी की महारानी देवी श्रीजानकीजी को देखा। इनके दर्शन से मैं कृतकृत्य हो गया। यह कहकर बुद्धिमान श्रीहनुमानजी मौन हो गये ॥१०–१५॥

क्रमपूर्वक सभी बातों को सुनकर सीताजी को अति विस्मय हुआ और वे कहने लगीं—मैं आकाश में जो शब्द सुनी हूँ, यह वायु द्वारा उच्चरित है क्या ? ॥१६॥ अथवा यह मेरा स्वप्न या मन का भ्रान्ति है ? अथवा जो मैं सुनी यह सत्य ही है क्या ? क्योंकि दुःख से मुझे नींद नहीं आती। इसे प्रत्यक्ष मैं सुन रही हूँ। अत-एव यह भ्रम भी नहीं हो सकता ॥१७॥ मेरे कानों को अमृत के समान जो इन वाक्यों को सुनाया, प्रियवादी महाभाग मेरे सामने प्रकट हों ॥१८॥

श्रुत्वा तज्जानकीवाक्यं हनुमान्पत्रखण्डतः । अवतीर्य शनैः सीतापुरतः समवस्थितः ॥१९॥
कलविङ्कप्रमाणाङ्गो रक्तास्यः पीतवानरः । ननाम शनकैः सीतां प्राञ्जलिः पुरतः स्थितः ॥२०॥
दृष्ट्वा तं जानकी भीता रावणोऽयमुपागतः । मां मोहयितुमायातो मायया वानराकृतिः ॥२१॥
इत्येवं चिन्तयित्वा सा तूष्णीमासीदधोमुखी । पुनरप्याह तां सीतां देवि यत्त्वं विशङ्कसे ॥२२॥
नाहं तथाविधो मातस्त्यज शङ्कां मयि स्थिताम् । दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्य परमात्मनः २३॥
सचिवोऽहं हरीन्द्रस्य सुग्रीवस्य शुभप्रदे । वायोः पुत्रोऽहमखिलप्राणभूतस्य शोभने ॥२४॥
तच्छ्रुत्वा जानकी प्राह हनूमन्तं कृताञ्जलिम् । वानराणां मनुष्याणां सङ्गतिर्घटते कथम् ॥२५॥
यथा त्वं रामचन्द्रस्य दासोऽहमिति भाषसे । तामाह मारुतिः प्रीतो जानकीं पुरतः स्थितः ।२६॥
ऋष्यमूकमगाद्रामः शबर्या नोदितः सुधीः । सुग्रीवो ऋष्यमूकस्थो दृष्टवान् रामलक्ष्मणौ ॥२७॥
भीतो मां प्रेषयामास ज्ञातुं रामस्य हृद्गतम् । ब्रह्मचारिवपुर्धृत्वा गतोऽहं रामसन्निधिम् ॥२८॥
ज्ञात्वा रामस्य सद्भावं स्कन्धोपरि निधाय तौ । नीत्वा सुग्रीवसामीप्यं सख्यं चाकरवं तयोः २९।
सुग्रीवस्य हृता भार्या वालिना तं रघूत्तमः । जघानैकेन बाणेन ततो राज्येऽभ्यषेचयत् ॥३०॥
सुग्रीवं वानराणां स प्रेषयामास वानरान् । दिग्भ्यो महाबलान्वीरान् भवत्याः परिमार्गणे ३१

श्रीजानकीजी के ये वचन सुनकर हनुमानजी धीरे-धीरे उस वृक्ष पर से उतर कर श्रीसीताजी के सामने खड़े हो गये ॥१९॥ वे उस समय अरुणवदन, पीत वर्ण और कलविक (चटक) पक्षी के समान आकार वाले वानर के रूप में धीरे से सामने आकर श्रीसीताजी को हाथ जोड़कर प्रणाम किये ॥२०॥ उन्हें देखकर जानकीजी को यह भय हुआ कि मुझे मोहित करने के लिये माया से वानर का रूप धारणकर रावण ही आया है ॥२१॥ यह सोचकर वे नीचे मुख कर चुपचाप बैठ गयीं। तदनन्तर हनुमानजी से बोले—देवि! आप जो सन्देह कर रही हैं, वह मैं नहीं हूँ। हे मातः! मेरे विषय में अपनी शङ्का को आप दूर कर दें। हे शुभप्रदे! कोसलेन्द्र परमात्मा श्रीरामचन्द्र का मैं दास और वानरराज सुग्रीव का मैं मन्त्री हूँ। तथा च हे शोभने! सम्पूर्ण प्राणियों के प्राणभूत वायु का मैं पुत्र हूँ ॥२२–२४॥ यह सुनकर हाथ जोड़े हुए खड़े हनुमानजी से जानकीजी बोलीं—वानरों और मनुष्यों की मित्रता कैसे हो सकती है? तब सामने खड़े हुए हनुमानजी प्रसन्न हो श्रीजानकीजी से कहने लगे—शबरी के कहने पर बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ऋष्यमूक पर्वत पर आये। उस पर्वत पर बैठे हुए सुग्रीव ने दूर से ही श्रीराम और लक्ष्मण को आते देखकर मन में डरकर मुझे उनके पास उनका आशय जानने के लिये भेजा। तब मैं ब्रह्मचारी वेष धारण कर उनके पास आया ॥२७–२८॥

मैं उनका हृदय शुद्ध समझकर अपने कन्धे पर उन्हें चढ़ा सुग्रीव से मित्रता करने के लिये सुग्रीव के पास उन्हें ले गया और दोनों की मित्रता करवा दिया ॥२९॥ सुग्रीव की पत्नी को वाली हरण कर लिया था। श्रीरघुनाथजी एक ही बाण से वाली को मारकर सुग्रीव को वानरों के राज्यपद पर अभिषिक्त कर दिये। तब

गच्छन्तं राघवो दृष्ट्वा मामभाषत सादरम् ॥३२॥
त्वयि कार्यमशेषं मे स्थितं मारुतनन्दन । ब्रूहि मे कुशलं सर्वं सीतायै लक्ष्मणस्य च ॥३३॥
अङ्गुलीयकमेतन्मे परिज्ञानार्थमुत्तमम् । सीतायै दीयतां साधु मन्नामाक्षरमुद्रितम् ॥३४॥
इत्युक्त्वा प्रददौ मह्यं कराग्रादङ्गुलीयकम् । प्रयत्नेन मयानीतं देवि पश्याङ्गुलीयकम् ॥३५॥
इत्युक्त्वा प्रददौ देव्यै मुद्रिकां मारुतात्मजः । नमस्कृत्य स्थितो दूराद्बद्धाञ्जलिपुटो हरिः ॥३६॥
दृष्ट्वा सीता प्रमुदिता रामनामाङ्कितां तदा । मुद्रिकां शिरसा धृत्वा स्रवदानन्दनेत्रजा ॥३७॥
कपे मे प्राणदाता त्वं बुद्धिमानसि राघवे । भक्तोऽसि प्रियकारी त्वं विश्वासोऽस्ति तवैव हि ३८
नो चेन्मत्सन्निधिं चान्यं पुरुषं प्रेषयेत्कथम् । हनूमन्दृष्टमखिलं मम दुःखादिकं त्वया ॥३९॥
सर्वं कथय रामाय यथा मे जायते दया । मासद्वयावधि प्राणाः स्थास्यन्ति मम सत्तम ४०
नागमिष्यति चेद्रामो भक्षयिष्यति मां खलः । अतः शीघ्रं कपीन्द्रेण सुग्रीवेण समन्वितः ॥४१॥
वानरानीकपैः सार्धं हत्वा रावणमाहवे । सपुत्रं सबलं रामो यदि मां मोचयेत्प्रभुः ॥४२॥
तत्तस्य सदृशं वीर्यं वीर वर्णय वर्णितम् । यथा मां तारयेद्रामो हत्वा शीघ्रं दशाननम् ४३
तथा यतस्व हनुमन्वाचा धर्ममवाप्नुहि । हनूमानपि तामाह देवि दृष्टो यथा मया ॥४४॥

सुग्रीव ने आपका अन्वेषण करने के लिये महाबलवान् वीर वानरों को अनेक दिशाओं में भेजा ॥३०–३१॥ मुझे जाते हुए देखकर श्रीरघुनाथजी आदर पूर्वक मुझसे बोले—हे मारुतनन्दन ! मेरा सम्पूर्ण कार्य तुम्हारे ऊपर ही है । तू लक्ष्मण और मेरा कुशल सीताजी से कहना ॥३२–३३॥

यह मेरे नाम अङ्कित मेरी मुद्रिका पहचान के लिये सावधानी पूर्वक सीता को देना ॥३४॥ यह कह कर वे अपनी अंगूठी उतारकर मुझे दिये, इसे अति सावधानी पूर्वक यहाँ ले आया हूँ । हे देवि ! इस मुद्रिका को आप देखिये ॥३५॥ यह कहकर पवनकुमार हनुमानजी उस मुद्रिका को सीताजी को दिये और दूर पर हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥३६॥ राम नामाङ्कित उस मुद्रिका को देखकर प्रमुदित हो सीताजी अपने शिर से लगाकर नेत्रों से आनन्दाश्रु बहाने लगीं ॥३७॥ तत्पश्चात् वे हनुमानजी से बोलीं—कपिश्रेष्ठ ! तुम मेरे प्राणदाता हो । तुम अति बुद्धिमान्, श्रीरघुनाथजी के भक्त और प्रिय करने वाले हो । तुमपर ही निश्चय रूप से उनका विश्वास है । ३८॥

नहीं तो पर पुरुष तुमको वे मेरे पास क्यों भेजते ? हे हनुमान् ! मेरे सम्पूर्ण दुःखों को तुम देख ही लिये ॥३९॥ सम्पूर्ण दशा का वर्णन तुम श्रीरामचन्द्रजी से करना जिससे मुझपर उनकी दया उत्पन्न हो । हे सत्तम ! दो मास तक मेरे प्राण स्थित रह सकते हैं ॥४०॥ इसके मध्य ही यदि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी नहीं आये तो यह खल मुझे खा जायेगा । अत-एव शीघ्र ही कपीन्द्र सुग्रीव के साथ वानर यूथपतियों को लेकर शीघ्र ही रावण को पुत्र और सेना सहित संग्राम में मारकर मुझे मुक्त करें तो यह पुरुषार्थ उत्तम होगा । हे हनुमान् ! तुम इस प्रकार वर्णन करना कि शीघ्र ही वे रावण को मारकर मेरा उद्धार करें । यह कार्य

रामः सलक्ष्मणः शीघ्रमागमिष्यति सायुधः । सुग्रीवेण ससैन्येन हत्वा दशमुखं बलात् ॥४५॥
समानेष्यति देवि त्वामयोध्यां नात्र संशयः । तमाह जानकी रामः कथं वारिधिमाततम् ॥४६॥
तीर्त्वायास्यत्यमेयात्मा वानरानीकपैः सह । हनूमानाह मे स्कन्धावारुह्य पुरुषर्षभौ ॥४७॥
आयास्यतः ससैन्यश्च सुग्रीवो वानरेश्वरः । विहायसा क्षणेनैव तीर्त्वा वारिधिमाततम् ॥४८॥
निर्दहिष्यति रक्षौघांस्त्वत्कृते नात्र संशयः । अनुज्ञां देहि मे देवि गच्छामि त्वरयान्वितः ॥४९॥
द्रष्टुं रामं सह भ्रात्रा त्वरयामि तवान्तिकम् । देवि किञ्चिदभिज्ञानं देहि मे येन राघवः ॥५०॥
विश्वसेन्मां प्रयत्नेन ततो गन्ता समुत्सुकः । ततः किञ्चिद्विचार्याथ सीता कमललोचना ॥५१॥
विमुच्य केशपाशान्ते स्थितं चूडामणिं ददौ । अनेन विश्वसेद्रामस्त्वां कपीन्द्र सलक्ष्मणः ॥५२॥
अभिज्ञानार्थमन्यच्च वदामि तव सुव्रत ।
चित्रकूटगिरौ पूर्वमेकदा रहसि स्थितः । मदङ्के शिर आधाय निद्राति रघुनन्दनः ॥५३॥
ऐन्द्रः काकस्तदागत्य नखैस्तुण्डेन चासकृत् । मत्पादाङ्गुष्ठमारक्तं विददारामिषाशया ॥५४॥
ततो रामः प्रबुद्ध्याथ दृष्ट्वा पादं कृतव्रणम् । केन भद्रे कृतं चैतद्विप्रियं मे दुरात्मना ॥५५॥

कर तुम अधिक पुण्य प्राप्त करो। तदनन्तर हनुमानजी श्रीसीताजी से बोले—देवि ! मैं जिस प्रकार देखा हूँ, इससे प्रतीत होता है कि लक्ष्मण के सहित श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही अपने आयुध लेकर सेनायुक्त सुग्रीव के साथ आयेंगे और बलपूर्वक दशानन को मारकर निःसन्देह आपको अयोध्या ले जायेंगे। तब हनुमानजी से श्रीजानकीजी बोलीं कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अमेयात्मा (शरीर के मापदण्ड से रहित सर्वव्यापक) हैं; परञ्च वानर यूथपतियों के साथ समुद्र को किस प्रकार पारकर यहाँ आयेंगे ? यह सुनकर हनुमानजी बोले—वे दोनों पुरुष श्रेष्ठ मेरे कन्धों पर चढ़कर आयेंगे और वानरराज सुग्रीव सेना सहित इस विस्तृत समुद्र को आकाशमार्ग से एक क्षण में पारकर आपके लिये निःसन्देह सभी राक्षसों को भस्म कर देंगे। हे देवि ! आप मुझे आज्ञा दें, तत्क्षण मैं अनुज सहित भगवान् श्रीराम का दर्शन करने के लिये जाता हूँ और शीघ्र ही उन्हें आपके पास लाने का प्रयास करता हूँ। हे देवि ! आप ऐसा कोई चिन्ह दें जिसे देखकर श्रीरघुनाथजी मेरा विश्वास करें। उसे सावधानी पूर्वक लेकर उत्सुकता से उनके पास जाऊँगा। तत्पश्चात् कमललोचना सीताजी कुछ सोच-समझकर अपने केशपाश में स्थित चूड़ामणि को निकाल हनुमानजी को देकर बोलीं—हे कपिवर ! इससे श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण तुम्हारा विश्वास करेंगे ॥४१–५२॥ हे सुव्रत ! उन्हें अभिज्ञान के लिये अन्य बात भी तुझे बतलाती हूँ। चित्रकूटपर्वत पर एकान्त में एक दिन हमलोग बैठे थे। मेरे गोद में शिर रखकर वे रघुनन्दन सो रहे थे ॥५३॥

उसी समय इन्द्र का पुत्र (जयन्त) काकवेष में आकर माँस की ईच्छा से लाल-लाल मेरे पैर के अंगूठे को अपनी चोंच और पँजों से विदीर्ण कर दिया ॥५४॥

जब श्रीरामचन्द्रजी सोकर उठे तब मेरे पैर में घाव देखकर बोले—प्रिये ! कौन दुरात्मा यह मेरा

इत्युक्त्वा पुरतोऽपश्यद्वायसं मां पुनः पुनः। अभिद्रवन्तं रक्ताक्तनखतुण्डं चुकोप ह ॥५६॥
तृणमेकमुपादाय दिव्यास्त्रेणाभियोज्य तत्। चिक्षेप लीलया रामो वायसोपरि तज्ज्वलत् ॥५७॥
अभ्यद्रवद्वायसश्च भीतो लोकान् भ्रमन्पुनः। इन्द्रब्रह्मादिभिश्चापि न शक्यो रक्षितुं तदा ॥५८॥
रामस्य पादयोरग्रेऽपतद्भीत्या दयानिधेः। शरणागतमालोक्य रामस्तमिदमब्रवीत् ॥५९॥
अमोघमेतदस्त्रं मे दत्त्वैकाक्षमितो व्रज। सव्यं दत्त्वा ततः काक एवं पौरुषवानपि ॥६०॥
उपेक्षते किमर्थं मामिदानीं सोऽपि राघवः। हनूमानपि तामाह श्रुत्वा सीतानुभाषितम् ॥६१॥
देवि त्वां यदि जानाति स्थितामत्र रघूत्तमः। करिष्यति क्षणाद्भस्म लङ्कां राक्षसमण्डिताम् ॥६२॥
जानकी प्राह तं वत्स कथं त्वं योत्स्यसेऽसुरैः। अतिसूक्ष्मवपुः सर्वे वानराश्च भवादृशाः ॥६३॥
श्रुत्वा तद्वचनं देव्यै पूर्वरूपमदर्शयत्। मेरुमन्दरसङ्काशं रक्षोगणविभीषणम् ॥६४॥
दृष्ट्वा सीता हनूमन्तं महापर्वतसन्निभम्। हर्षेण महताविष्टा प्राह तं कपिकुञ्जरम् ॥६५॥
समर्थोऽसि महासत्त्व द्रक्ष्यन्ति त्वां महाबलम्। राक्षस्यस्ते शुभः पन्था गच्छ रामान्तिकं द्रुतम् ॥
बुभुक्षितः कपिः प्राह दर्शनात्पारणं मम। भविष्यति फलैः सर्वैस्तव दृष्टौ स्थितैर्हि मे ॥६७॥

अप्रिय किया है ? ॥ ५५ ॥ यह कहते हुए ही वे पुनः पुनः उस काक को मेरे तरफ आते देखे। उसकी चोंच और पञ्जों में खून लगे हुए थे। उसे देखकर श्रीरघुनाथजी अति क्रोधित हुए ॥ ५६ ॥ वे एक तृण उठाकर उसे दिव्यास्त्र से अभिमन्त्रित कर उस प्रज्वलित अस्त्र को उस कौवे के ऊपर लीला से ही फेंक दिये। तत्पश्चात् भयभीत होकर वह कौवा त्रैलोक्य में दौड़ता फिरा, परन्तु इन्द्र, ब्रह्मा आदि भी जब उसकी रक्षा नहीं कर सके, तब डरकर वह दयानिधान श्रीरामचन्द्र के चरणों में आ पड़ा। उस शरणागत को देखकर श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार बोले ॥ ५७-५९ ॥ मेरा यह अमोघ अस्त्र है। अत-एव तू अपना एक नेत्र देकर यहाँ से चले जाओ। तब वह कौवा अपनी बायीं आँख देकर वहाँ से चला गया। इस प्रकार के पुरुषार्थी भगवान् श्रीरघुनाथजी न जाने इस समय मेरी क्यों उपेक्षा कर रहे हैं ? श्रीसीताजी का यह कथन सुनकर श्रीहनुमानजी बोले—देवि ! यदि रघूत्तम भगवान को तुम्हें यहाँ रहने का पता चलेगा तो राक्षसों से सुसज्जित इस लङ्का को क्षण भर में ही वे भस्म कर देंगे ॥ ६०-६२ ॥

तब श्रीजानकीजी ने कहा—वत्स ! तुम्हारे जैसे ही अति सूक्ष्म शरीरवाले सभी वानरगण हैं तो राक्षसों के साथ कैसे लड़ सकते हैं ? ॥ ६३ ॥ देवी श्रीजानकीजी का यह कथन सुनकर हनुमानजी अपना पूर्व रूप प्रकट किये जो सुमेरु और मन्दराचल पर्वत के समान अति विशाल और राक्षसों को भय उत्पन्न करने वाला था ॥ ६४ ॥ पर्वत के समान विशालकाय श्रीहनुमानजी को देखकर सीताजी को अत्यधिक आनन्द हुआ और वे कपिश्रेष्ठ हनुमानजी से बोलीं—हे महासत्त्व ! तुम महाबलशाली और अति सामर्थ्यवान् हो; तू शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजी के पास चले जाओ, तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो; नहीं तो तुम्हें राक्षसियाँ देख लेंगी ॥ ६५-६६ ॥ यह सुनकर बुभुक्षित श्रीहनुमानजी जानकीजी से बोले—मैं आपका दर्शन कर

तथेत्युक्तः स जानक्या भक्षयित्वा फलं कपिः ।

ततः प्रस्थापितोऽगच्छज्जानकीं प्रणिपत्य सः । किञ्चिद्दूरमथो गत्वा स्वात्मन्येवानुचिन्तयत् ६८

कार्यार्थमागतो दूतः स्वामिकार्याविरोधतः । अन्यत्किञ्चिदसम्पाद्य गच्छत्यधम एव सः ।६९॥

अतोऽहं किञ्चिदन्यच्च कृत्वा दृष्ट्वाथ रावणम् । सम्भाष्य च ततो रामदर्शनार्थं व्रजाम्यहम् ॥७०॥

इति निश्चित्य मनसा वृक्षखण्डान्महाबलः । उत्पाट्याशोकवनिकां निर्वृक्षामकरोत्क्षणात् ।७१॥

सीताश्रयनगं त्यक्त्वा वनं शून्यं चकार सः । उत्पाटयन्तं विपिनं दृष्ट्वा राक्षसयोषितः ॥७२॥

अपृच्छन् जानकीं कोऽसौ वानराकृतिरुद्भटः ॥७३॥

जानक्युवाच

भवत्य एव जानन्ति मायां राक्षसनिर्मिताम् । नाहमेनं विजानामि दुःखशोकसमाकुला ।७४॥

इत्युक्तास्त्वरितं गत्वा राक्षस्यो भयपीडिताः । हनूमता कृतं सर्वं रावणाय न्यवेदयन् ॥७५॥

देव कश्चिन्महासत्त्वो वानराकृतिदेहभृत् ।

सीतया सह सम्भाष्य ह्यशोकवनिकां क्षणात् । उत्पाट्य चैत्यप्रासादं बभञ्जामितविक्रमः ॥७६॥

प्रासादरक्षिणः सर्वान्हत्वा तत्रैव तस्थिवान् । तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थाय वनभङ्गं महाप्रियम् ॥७७॥

किङ्करान्प्रेषयामास नियुतं राक्षसाधिपः । निर्भग्नचैत्यप्रासादप्रथमान्तरसंस्थितः ॥७८॥

चुका । अब आपके सामने लगे फलों से मेरा पारण होगा ॥ ६७ ॥ श्रीजानकीजी के "तथा इति" यह कहने पर कपिवर हनुमानजी फल खाये और श्रीजानकीजी से विदा हो उन्हें प्रणाम कर प्रस्थान किये । पुनः कुछ दूर आने पर मनमें विचार किये कि अपने स्वामी के कार्य के लिए आया दूत स्वामी के कार्य में विरोध करनेवाले के प्रति कुछ विरोध न करे और चुप-चाप चला जाय तो वह दूत अधम कहा जाता है ॥ ६९ ॥ अत एव मैं कुछ और कार्य कर रावण को देख और उससे बातचीत कर श्रीरघुनाथजी के दर्शन के लिए जाऊँगा ॥ ७० ॥

मनमें यह निश्चय कर महाबली हनुमानजी वृक्षों को उखाड़कर क्षण भर में ही उस अशोक वाटिका को वृक्ष हीन कर दिये ॥ ७१ ॥ सीताजी के आश्रय वाला उस शिंशपा के वृक्ष को छोड़कर सम्पूर्ण वन को वे वृक्ष हीन कर दिये । उन्हें वन को उजाड़ते देखकर राक्षसियों ने श्रीजानकीजी से पूछा कि यह वानराकार उद्भट वीर कौन है ?॥ ७२-७३ ॥ जानकीजी बोलीं—राक्षसी माया को आपलोग ही जान सकतीं हैं । दुःख शोक से व्याकुल मैं इसे नहीं जानती ॥ ७४ ॥ यह कहने पर भय से पीडित हो राक्षसियाँ रावण के पास जाकर हनुमानजी द्वारा किये गये सारे कृत्य को सुनायीं ॥ ७५ ॥ वे बोलीं—देव ! एक बड़ा पराक्रमी वानराकार वाला प्राणी सीताजी से सम्भाषण कर क्षणभर में ही अशोक वाटिका को उजाड़ दिया है । वह पराक्रमी मन्दिर के प्रासाद को ध्वस्त कर उसके रक्षक सभी राक्षसों को मार इस समय वह वहीं बैठा है । "वन उजाड़ा गया" यह महान् अप्रिय समाचार सुनकर रावण शीघ्र उठा और वह राक्षसाधिप अपने